ब्रज साहित्य माला सं० ६

भक्त-कवि व्यास जी

मध्य युग के कृष्ण-भक्त कवि महात्मा हरिराम जी व्यास के जीवन-वृत्तांत
की आलोचनात्मक शोध, काव्य की समीक्षा और उनकी
समस्त रचनाओं का सुसंपादित संकलन.

रचयिता :

वासुदेव गोस्वामी

संपादक :

प्रभुदयाल मीतल

प्रकाशक :

अग्रवाल प्रेस, मथुरा.

मूल्य ६)

प्रथम संस्करण
माघ शु० १२ सं० २००६ वि०

ब्रज-साहित्य-माला नं०
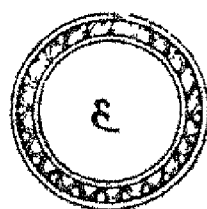
मुद्रक, प्रकाशक ·
प्रभुदयाल मीतल, प्रेस, अग्रवाल भवन,

समर्पण

जिनके कोमल कंठ के सरस संगीत की

स्मृति से प्रेरणा पाकर

उनके वृंदावन-वास की तिथि

पौष शुक्ला ७ संवत् २००५ वि० गुरुवार को

प्रस्तुत पुस्तक की रचना का संकल्प किया था,

उन्हीं परम पूज्य पिता

पं० श्री मुकुंदलाल गोस्वामी

की तृप्ति हेतु

यह श्रद्धांजलि अर्पित है।

समर्पण कर्ता—

वासुदेव

व्यास पंचमी, सं० २००६ वि०

प्राक्कथन

★

हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथो मे कृष्ण-भक्ति काल की साहित्यिक प्रगति से परिचय कराने मे हरिराम व्यास का भी कवि रूप मे नामोल्लेख पाया जाता है, किंतु उनके व्यक्तित्व का यथोचित परिचय देने वाला अभी तक कोई साहित्य हिंदी संसार के सम्मुख नहीं आया। सं० १९८० मे प्रकाशित 'व्रज-माधुरी-सार' मे श्री वियोगी हरि जी ने हरिराम व्यास के भी कुछ पद संगृहीत किये थे, और उस सकलन की योजना के अनुसार उनके जीवन-वृत्त का भी संक्षिप्त परिचय दिया था। इसके अनंतर संवत् १९९१ में अखिल भारतवर्षीय श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा वृंदावन द्वारा 'व्यास-वाणी' के नाम से व्यास जी की उपलब्ध समस्त रचनाओं का प्रथम बार प्रकाशन हुआ। इस प्रकाशन की प्रस्तावना मे व्यास जी का हित-शिष्य होने के संबंध मे प्रचलित मत को वाणी के अंतर्साक्ष्य से सिद्ध करने के प्रयत्न मे आलोचनात्मक शैली के प्रयोग का भी कुछ आभास मिला। वृंदावन निवासी व्यासवंशीय गोस्वामी श्री राधाकिशोर जी को कदाचित् इस प्रस्तावना ने शीघ्र ही व्यास-वाणी का एक और प्रकाशन रसिकों के सम्मुख रखने की प्रेरणा दी, जो संवत् १९९४ में मुद्रित हुआ और जिसके प्राक्कथन में व्यास जी का हित-शिष्य होने के मत का विरोध किया गया। व्यास-वाणी के यह दोनो संस्करण साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से प्रकाशित हुए थे। इससे इनमें व्यास जी के जीवन-चरित्र संबंधी उल्लेख भी तदनुकूल ही हैं।

हिंदी संसार को उपर्युक्त प्रकाशनों ने व्यास जी की रचनाओं से परिचय कराने में महत्त्वपूर्ण सुयोग प्रदान किया है। धार्मिक केन्द्रों से प्रकाशित व्यास-वाणी का अध्ययन अभी तक भक्ति की साधना के लिए प्रधान रूप से होता रहा है। लेखक के निजी संग्रहालय में संवत् १८९४ की हस्तलिखित व्यास-वाणी की एक प्रति मे दो स्थानों पर की पुष्पिकाओं को पढ़ने से यह सिद्ध हो जाता है कि बड़े-बड़े दिग्विजयी शास्त्रार्थी विद्वान व्यास जी की वाणी के पाठ द्वारा भगवान् के मानसी ध्यान-पूजन की साधना करते रहे हैं। उक्त प्रति में पृष्ठ १९२ पर लिखित रास पंचाध्यायी के पश्चात् की पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति श्री पंचध्यायी कृत रास संपूर्ण ॥शुभंभूयात् ॥ संवत् १८९४ चैत्र शुक्ल ॥१२ ॥सोम॥ लिखदई पं श्री करोरिया भजनदास के मानसी ध्यान पूजा के अर्थ सों जानबी जिनने दिगविजय करी दिसा दस मे ॥ ताको झंडा झांसी मे रुपेहे। बजाजी के पूर पे ॥ इति विजै कीर्ति ॥'

'श्याम वाणी' का संपादन-प्रकाशन के अर्थ पठन-पाठन करने वाली परंपरा के अंतर्गत ही उक्त दोनों प्रकाशन भी आते हैं। श्याम-वाणी में हमें उस समय का जीता-जागता चित्र सुलभ होता है, जो कवि की वास्तविक देन है। बंगाल के किसी कवि ने कहा भी है, 'वही लेखक अथवा कलाकार कवि कहला सकता है, जो अपने देश के भूगोल का ज्ञान देता है' अर्थात् जिसके विचारों से हमें उस समय के सारे समाज की स्थिति का पता लग जाए। जो लेखक मनुष्य की हृदय-नदी को बता सकता है, वह कवि से ऊपर है, उसी को तत्वदर्शी कहा जाता है। उक्त परिभाषा के अनुसार श्याम जी भी तत्वदर्शी थे। उन्होंने न केवल अपने समय को प्रतिबिंबित करने भर में अपना कर्तव्य समझा, वरन् एक भक्त और लोकोपकारी महात्मा के नाते अपने आदर्श आचरण और उपदेशों द्वारा उसे कुमार्ग पर जाने से भी रोका।

अपने संप्रदाय के अनन्य प्रेमी होने पर भी वे दूसरे वैष्णव संप्रदायों का आदर करते थे। वास्तव में उन्होंने सांप्रदायिक असहिष्णुता की प्रवृत्ति में रोक अटकाई। संत नाभादास एवं गोस्वामी तुलसीदास जी की भाँति उनमें अनन्यता और समरसता के भावों का अपूर्व सामंजस्य पाया जाता है। इतने लोकप्रिय और श्रद्धास्पद होने पर भी अपना कोई अलग संप्रदाय न चला कर, जो उस समय की एक साधारण सी प्रवृत्ति भी थी, उन्होंने कृष्ण-पूजा की माधुर्य-भावना को प्रधानता देने वाले सभी संप्रदायों के प्रति अपना अनुराग दिखाया।

परंतु जहाँ श्याम जी एक आदर्श भक्त-शिरोमणि हुए हैं, वहाँ वे उच्च कोटि के कवि भी थे। इस कारण साहित्य-प्रेम के लिए भी श्याम जी से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। फिर विषय की भिन्नता और दृष्टिकोण की व्यापकता के कारण श्याम-वाणी में ऐसे तथ्यपूर्ण अनेक कथन भरे हुए हैं, जिनसे तत्कालीन परिस्थिति एवं अन्य कवियों के जीवनवृत्त संबंधी कई बातों का प्रामाणिक ज्ञान मिल सकता है। परंतु स्वयं श्याम जी के ही जीवन-चरित्र संबंधी वैज्ञानिक खोजपूर्ण विवेचना के अभाव में उस सामग्री का भी समुचित उपयोग नहीं हो सका है।

लेखक को श्याम जी के साहित्य से स्वाभाविक प्रेम होने के कुछ सांस्कारिक कारण भी हैं। एक तो लेखक का जन्म श्याम-वंश में हुआ और इसके पूज्य देवालय में परंपरा से प्रति वर्ष श्याम जी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। लेखक का संपर्क बाल्यावस्था में ही कृष्ण-कीर्तन की एक सुव्यवस्थित मंडली से, जो अब भी चल रही है, रहा है। दतिया में यह कीर्तन-मंडली 'समाज' के नाम से प्रसिद्ध है और इसके सदस्य 'समाजी' कहलाते हैं। लेखक के पिता इस समाज के एक प्रमुख आजीवन सदस्य रहे। इस समाज का कीर्तन सुनने तथा कई अवसरों पर इसमें सक्रिय भाग लेने का सौभाग्य लेखक को रहा है। इस वातावरण ने लेखक को ब्रजभाषा काव्य की अमूल्य निधि का परिचय दिया, जिसके फलस्वरूप यह ग्रंथ इस रूप में प्रस्तुत है।

इस पुस्तक के लिखने का मेरा प्रयोजन हिंदी साहित्य प्रेमियों को श्री हरिराम व्यास का परिचय देना मात्र है। इसमे सांप्रदायिक सिद्धांतों की आलोचना करने का मेरा उद्देश्य नहीं रहा है। प्रत्येक तथ्य को प्रकट करने के साथ-साथ अपनी उस विचारधारा को मैंने प्रकट कर दिया है, जिसके आधार पर वह स्वीकार किया गया है। ऐसा करने मे कितनी ही प्रचलित बातों तथा विद्वानों के मतों पर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ देने के लिए मै विवश था। इस विवेचना के आधार पर उन विद्वानों की निर्धारित मान्यताओं मे परिवर्तन भी करना पड़ा है। परंतु यह मैं निस्संकोच रूप से प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मैं बहुत ही अल्पज्ञ हूँ। यह शोध संबंधी पुस्तक लिखने की कुछ धुन ही मुझ पर सवार हो गई। वैज्ञानिक ढंग पर शोधकर्त्ता के कटु कर्तव्य के वशीभूत होकर मुझे यह दुस्साहस करना पड़ा, जिसे मेरे सम्मान्य लेखक और विद्वान उदारता पूर्वक क्षमा करेंगे। मै अपने निर्णयों में संदिग्ध नहीं हूँ, फिर भी संभव है कि आगे ऐसे तथ्य सामने आवे जो उन्हे बदल सकें, परंतु मुझे किसी निर्णय में कोई आग्रह नहीं। मेरा उद्देश्य सत्य की खोज करना है। व्यास जी के जीवन-चरित्र पर प्रकाश डालने वाली जो सामग्री जिस रूप में मुझे मिली, उसको यथा स्थान प्रकट कर उसकी विवेचना द्वारा यह निर्णय किया गया है कि वह कहाँ तक मान्य है। प्रत्येक विषय पर एक निश्चित मत स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। सभी श्रेणी के पाठकों को विषय की रोचकता प्रकट करने के लिए ऐसी लेखन-शैली प्रयोग मैं लाई गई है, जो शोधोचित गंभीर विवेचना तथा सरस काव्य के आनंद मैं साम्य स्थापित कर सके।

एक ही ग्रंथ में हरिराम जी व्यास के चरित्र से संबंधित यथा संभव सभी सामग्री उपलब्ध करने के लिए इस ग्रंथ में, अन्य महात्माओं की भाँति, व्यास जी के संबंध मे भी प्रचलित, चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख कर देना भी अनावश्यक नहीं समझा गया है। यद्यपि इन चमत्कारपूर्ण घटनाओं की ऐतिहासिकता की समीक्षा करना लेखक का उद्देश्य नहीं है, तथापि उन घटनाओं को प्रकट करने वाले उन सूत्रों को भी यथा स्थान प्रदर्शित कर दिया हैं, जिनके द्वारा उल्लिखित चमत्कारी की घटनाएँ लेखक को सूचित हुई हैं। विवेचना के फल स्वरूप व्यास जी के संबंध की अभी तक प्रचलित धारणाओं में जो सशोधन हुए है, उनमे व्यास जी की माता का नाम, पत्नी का नाम, भाई का अस्तित्व तथा वृंदावन को दो बार जाना आदि विषय मुख्य हैं। जिन नवीन बातों को प्रकट किया गया है, उनमें सबसे अधिक परिश्रम व्यास जी के देहांत-काल का निर्णय करने मे हुआ है। अभी तक व्यास जी का देहांत काल लेखक की जानकारी में कहीं प्रकाशित नहीं हुआ। कहना न होगा कि व्यास-वाणी का अन्य किसी विवेचन मे बहिर्साक्ष्य के रूप में प्रयोग तभी प्रामाणिक रूप से हो सकता है, जब कि व्यास जी का देहांत-काल वैज्ञानिक

व्यास जी की रचना-शैली के निकटतम प्रतीत हुआ तथा समस्त पाठांतरों को पा
टिप्पणी में भी प्रकट कर दिया गया है। साथ ही साथ उन प्रतियों के नाम न
संकेत द्वारा स्वीकृत पाठ की निकटता के क्रम से बतलाये गये हैं, जिनमें वे पाठान
उपलब्ध हुए हैं। पाठों की साधारण विभिन्नताएं इतनी अधिक मिलीं कि उन स
का प्रकट करना एक व्यर्थ का काम समझा गया। अतः उनको लिपिकार की उच्चारण
शैली का कारण समझ कर उनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा गया।

वाणी भाग के संपादन में जिन विभिन्न प्रतियों का प्रयोग किया गया है, उनके संकेत और परिचय इस प्रकार है—

संकेत **प्रति परिचय**

(क) 'रस सिद्धांत के पद' अनन्य व्यास जी कृत। लिपिकाल संवत् १८८३। इस प्रति में शृंगार रस बिहार संबंधी व्यास जी के २५५ पद संकलित हैं।

(ख) 'व्यास जू की बानी सिद्धांत की'। लिपिकाल संवत् १८८८। इस प्रति में सिद्धांत संबंधी २८८ पद, शृंगार रस संबंधी १० पद तथा साखी के ८६ दोहा हैं।

(ग) 'व्यास जू की बानी'। लिपिकाल संवत् १८९४। इसमें सिद्धांत के २३६ पद, शृंगार के २७६ पद, समय के ९० पद, रास पंचाध्यायी के १२१ त्रिपदी छंद, तथा साखी के ८६ दोहा, जो 'व्यास जू की चौरासी हित उपदेश' के नाम से दिये गये हैं, उपलब्ध होते हैं। ३३२८ श्लोक के कलेवर की इस व्यास-वाणी का विषय वर्गीकरण भी बहुत सुंदर है।

(घ) 'व्यास जी की चौरासी'। लिपिकाल संवत् १९१४। इस प्रति में व्यास जी की साखी के ८७ दोहा है।

(ङ) 'ब्रज-माधुरी-सार'। श्री वियोगी हरि द्वारा संपादित एवं हिंदी साहित्य संमेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित।

(च) 'श्री व्यास-वाणी' अखिल भारतवर्षीय श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृंदावन द्वारा संवत् १९९१ में प्रथम बार प्रकाशित।

(छ) 'श्री व्यास-वाणी'। आचार्य श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी वृंदावन द्वारा संवत् १९९४ में प्रकाशित प्रथम संस्करण।

इन प्रतियों के अतिरिक्त अन्य हस्तलिखित वर्षोत्सव तथा कीर्तन-संग्रह
वल्लुभाई छगनलाल देसाई, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित) से भी सहायता ली है।

श्री व्यास-वाणी की अन्य प्रतियों में संकलित कतिपय रचनाएँ, जिनका
के समुचित समर्थन प्राप्त नहीं हुआ, एक अलग परिशिष्ट में दी गई है। जीवन-
रित्र संबंधी एवं अन्य सिद्धांतों को स्थापित करने में उक्त प्रतियों के अतिरिक्त
प्रकाशित हस्तलिखित प्रतियों का भी सुलभता के अनुसार उपयोग किया गया है—

भूमिका

★

हिंदी भक्ति साहित्य के विशाल भवन की आधार-शिला तो निर्गुणोपासक संत कवियों की लोकोपकारी रचनाओं के पुष्ट धरातल पर ही स्थापित हुई है, किंतु उसे यह भव्य रूप प्रदान करने का श्रेय सगुणोपासक भक्त कवियों के आनंददायक काव्य को है। इस कमनीय काव्यामृत की कृष्ण-भक्ति धारा ने व्रजभाषा कवियों के भावोद्यानों को ऐसी संजीवनी प्रदान की है, जिससे वे शताब्दियों तक विनाशक वातावरण के प्रतिकूल प्रहारों को सहन करते हुए भी आज तक अपनी अनुपम रूप-छटा के साथ लहलहा रहे हैं!

वृंदावन का कृष्ण-भक्ति साहित्य—

व्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवियों के शिरोमणि महात्मा सूरदास हैं, जिनकी भक्तिरसपूर्ण रचनाओं ने गायकों के कला-प्रदर्शन के गीतों, वैष्णव मंदिरों के कीर्तनों और हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों की पाठ्य पुस्तकों को गौरव और प्रतिष्ठा प्रदान की है। सूरदास के अतिरिक्त वल्लभ संप्रदायी अष्टछाप आदि के अन्य कवियों से भी अब हिंदी संसार भली भाँति परिचित हो चुका है; किंतु वृंदावन स्थित जिन अन्य वैष्णव संप्रदायों—निंबार्क, माध्व, चैतन्य, राधावल्लभीय और हरिदासी आदि—द्वारा हिंदी के कृष्ण-भक्ति साहित्य का प्रायः तीन-चौथाई भाग निर्मित हुआ है, उनके भक्त कवियों के जीवन-वृत्तांत और काव्य-महत्व से हिंदी के विद्वान भी अभी पूर्णतया परिचित नहीं हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में भी इसीलिए उनकी गौरव-गरिमा का यथार्थ मूल्यांकन नहीं हो पाया है।

हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि—

वैष्णव धर्म के पुनरुत्थान और पुनर्जागरण का महान् कार्य मध्य युग में जिन वैष्णव आचार्यों द्वारा हुआ, उनमें से प्रायः सभी के प्रधान केन्द्र वृंदावन में थे और उनमें से अधिकांश ने व्रजभाषा-काव्य के माध्यम द्वारा अपनी विमल 'वाणी' से अधिकारी भक्तों को भक्ति रस का वरदान दिया है। इन आचार्यों में रामानुज, विष्णुस्वामी और मध्व के संप्रदायों का अधिकांश साहित्य संस्कृत में है, किंतु उनके अनुयायियों द्वारा व्रजभाषा में रचा हुआ कृष्ण-भक्ति साहित्य भी उपलब्ध है। चैतन्य संप्रदाय का अधिकांश साहित्य संस्कृत और बंगला भाषाओं में है, किंतु उनके कतिपय अनुयायियों ने व्रजभाषा में भी भक्तिपूर्ण रचनाएँ की हैं। वल्लभ संप्रदाय और निंबार्क संप्रदाय के सिद्धांत ग्रंथ संस्कृत में हैं, किंतु उनके अनेक आचार्यों और उनके अगणित अनुयायी भक्तों का विशाल भक्ति-साहित्य व्रजभाषा में रचा गया है। **हित हरिवंश और हरिदास स्वामी** का स्वयं अपना तथा उनके सांप्रदायिक आचार्यों

व्यास जी का वृंदावन-आगमन—

जिस समय ब्रज के भक्त कवियों का अनुपम काव्य-सौरभ वहाँ के सहज मनोरम वातावरण को अभूतपूर्व रूप से सुवासित करते हुए विभिन्न स्थानों के भक्त जनों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था, उसी समय ओरछा के राज्यगुरु विद्वद्वर हरिराम जी व्यास अपनी जन्मभूमि से वृंदावन जाने के लिए अत्यंत लालायित थे।

व्यास जी का जन्म मार्गशीर्ष कृ० ५ मंगलवार सं० १५६७ वि० को ओरछा (बुंदेलखंड) के एक संभ्रान्त सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम सुमोखन शुक्ल था। वे माध्व संप्रदाय के अनुयायी, ओरछा के प्रतिष्ठित नागरिक और वहाँ के राजवंश के गुरु थे। व्यास जी अपने समय के प्रकांड पंडित और धुरंधर विद्वान होने के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थी भी थे। उनको विद्वानों से शास्त्रार्थ कर उनको पराजित करने और उन पर अपनी विद्वता की धाक जमाने की धुन सवार थी। न मालूम किस संस्कार से व्यास जी अपने आरंभिक जीवन में शुष्क वेदांती एवं वाचाल तार्किक हो गये थे, किंतु यह उनका ऊपरी आवरण था। उनके अंतस्तल में माधुर्य भक्ति की निर्मल धारा विद्यमान थी, जिसके प्रखर प्रवाह ने शीघ्र ही उनके ऊपरी आवरण को धो दिया। फलतः व्यास जी थोथे शास्त्रार्थ एवं व्यर्थ के वाद-विवाद को छोड़कर भक्ति मार्ग के सच्चे पथिक बन गये। जन्मभूमि, धन-वैभव और घर-बार आदि सर्वस्व का परित्याग कर वे अकिंचन भिक्षुक के रूप में वृंदावन आ बसे और हित हरिवंश और हरिदास प्रभृति सिद्ध महात्माओं के सत्संग में रह कर वृंदावन-रस-माधुरी का आस्वादन करने लगे।

दीक्षा-गुरु संबंधी मतभेद—

व्यास जी के जीवन विषयक इस महान् परिवर्तन और उनके दीक्षा-गुरु के संबंध में प्राचीन समय से ही कई मत चले आ रहे हैं, जिन्होंने आजकल एक विवाद का रूप धारण कर लिया है। एक मत तो यह है कि व्यास जी ने अपने पिता सुमोखन शुक्ल से माध्व संप्रदाय की दीक्षा प्राप्त की थी, किंतु उनके संशयों की निवृत्ति और माधुर्य भक्ति की प्रेरणा उनके पिता के दीक्षा-गुरु माध्व संप्रदायी सन्यासी माधवदास के उपदेश से हुई थी। जब उनकी भक्ति का झुकाव सखी भाव की उपासना की ओर विशेष रूप से हुआ, तब अपनी आंतरिक प्रेरणा से अथवा संत नवलदास द्वारा हित जी का एक पद सुन कर वे माधुर्य भक्ति के केन्द्र वृंदावन में आ गये और हित हरिवंश और हरिदास स्वामी के सत्संग में रहने लगे। दूसरा अधिक प्रचलित मत यह है कि हित हरिवंश जी की ख्याति सुन कर व्यास जी ने वृंदावन आकर उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए कहा, किंतु उनका एक पद सुन कर वे स्वयं उनके उनके शिष्य हो गये† ।

---

† यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहि कौनें सचु पायौ

लेखक को किसी पक्ष का आग्रही समझना ठीक नहीं है। उन्होंने निष्पक्ष भाव से इस विषय का स्वस्थ विवेचन किया है।

दीक्षा-गुरु का विवाद इसलिए व्यर्थ है कि इसमें हित जी और व्यास जी के पारस्परिक संबंधों में कोई न्यूनाधिकता नहीं आती है। व्यास जी ने अनेक पदों में हित जी के प्रति गुरु जैसी श्रद्धा प्रकट की है; अतः यदि हित जी व्यास जी के दीक्षा-गुरु सिद्ध नहीं भी होते हैं, तो इसमें हित जी के महत्व की न्यूनता और व्यास जी के महत्व की वृद्धि नहीं होती है।

दीक्षा-गुरु संबंधी समस्त उपलब्ध सामग्री की आलोचनात्मक विवेचना करने से ज्ञात होता है कि व्यास जी के पिता सुमोखन शुक्ल ने चैतन्य महाप्रभु के गुरु-भाई माधवदास नामक संन्यासी से माध्व संप्रदाय की दीक्षा प्राप्त की थी और व्यास जी ने अपने बाल्य काल में अपने पिता से उसी संप्रदाय की दीक्षा ली थी। इस प्रकार स्वयं व्यास जी माधवदास के शिष्य न होते हुए भी उनकी शिष्य-परंपरा में आते हैं। इस ग्रंथ में व्यास जी कृत एक संस्कृत रचना 'नवरत्न' का उल्लेख किया गया है, जिसे इस ग्रंथ के लेखक ने इसकी रचना के समय तक स्वयं नहीं देखा था, किंतु मुझे इसे देखने का अब अवसर मिला है। यदि यह ग्रंथ व्यास जी कृत है, तो इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने को माध्व संप्रदाय की गुरु-परंपरा के अंतर्गत माना है। बाल्य काल में माध्व संप्रदाय की दीक्षा लेने पर भी बाद में हित हरिवंश द्वारा प्रचलित सखी भाव की माधुर्य भक्ति के प्रति व्यास जी का विशेष आकर्षण हो गया और उन्होंने राधावल्लभीय उपासना-पद्धति स्वीकार कर ली। यही कारण है कि व्यास-वाणी में माध्व संप्रदायी द्वैतवादी दार्शनिक तत्वों के साथ-साथ राधावल्लभीय उपासना के तत्व विशेष रूप से उपलब्ध होते हैं।

आजकल इस विषय पर कुछ संकीर्ण साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विचार किया जाता है, किंतु व्यास जी के समय में भक्ति मार्ग का अनुसरण करने वाले भक्तों की मनोवृत्ति अत्यंत उदार थी। वे सांप्रदायिक भेद-भाव से रहित होकर समस्त वैष्णव भक्तों में समान रूप से श्रद्धा रखते थे।

व्यास जी चाहे स्वयं हित हरिवंश जी के शिष्य न हुए हों, किंतु ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने अपने एक पुत्र को हित जी के पुत्र वनचंद्र जी से दीक्षा दिलाई थी। उनके दूसरे पुत्र किशोरदास का हरिदास स्वामी से दीक्षित होना प्रसिद्ध ही है। इससे ज्ञात होता है कि व्यास जी को सखी भाव के सभी संप्रदायों के प्रति समान रूप से श्रद्धा थी। व्यास जी के वंशजों में आज तक माध्व, राधावल्लभीय और हरिदासी तीनों संप्रदायों की दीक्षा प्रचलित है। ऐसी दशा में व्यास जी के दीक्षा-गुरु संबंधी विवाद का अब अंत हो जाना आवश्यक है

हरित्रयी—

वृंदावन में स्थायी रूप से रहने पर व्यास जी की दिनचर्या के मुख्य कार्य अपने आराध्य नवल किशोर जू की सखी भाव से अर्चना करना, भक्तों की सेवा करना और ब्रज-रस का वर्णन करना था। इस कार्यक्रम की पूर्ति के लिए, उनके सहयोगी और सहायकों में हित हरिवंश और हरिदास स्वामी मुख्य थे। वृंदावन के इन तीनों भक्त कवियों के पारस्परिक सौहार्द और समान विश्वास के कारण अनेक कवियों और लेखकों ने उनका साथ-साथ नामोल्लेख किया है। हरिवंश, हरिदास और हरिराम व्यास के नामों के आरंभिक शब्द 'हरि' को लेकर इस ग्रंथ के लेखक ने 'हरित्रयी' की एक मौलिक कल्पना की है। महाप्रभु वल्लभ संप्रदायी आठ सुप्रसिद्ध कीर्तनकारों की मंडली 'अष्टछाप' के नाम से प्रसिद्ध है। वृंदावन के अनन्य रसिकों की यह त्रयी मंडली भले ही अष्टछाप के समान प्रसिद्ध न रही हो, किंतु अपनी धार्मिक मान्यता, उपासना-पद्धति और रहन-सहन की समानता के कारण उसे भी एक मंडली के रूप में समझना सर्वथा उचित ही है। स्वोपासक अनन्य रसिकों की इस मंडली को 'रसिकत्रयी' भी कहा जा सकता है।

व्यास जी का महत्व—

व्यास जी अपने समय के परम भक्त, सिद्ध महात्मा और रसिक स्वामी महानुभाव थे। 'सुई नाहिं, धर सपनेहि नाहीं। दूँदहु कुधाह ऐसे सन्यासी'—की लोकोक्ति के विरुद्ध वे अपने कुटुंब-परिवार, पुत्र-कलत्र, राजकीय प्रतिष्ठा और विपुल धन-वैभव का परित्याग कर एक निर्धन भिक्षुक की तरह वृंदावन में आकर रहने लगे थे। फिर ओरछा-नरेश महाराज मधुकर शाह के स्वयं आग्रह करने पर भी ओरछा वापिस नहीं गये। सांसारिक प्रलोभनों से सर्वथा मुक्त होकर विरक्त भाव से जीवन व्यतीत करना कोई साधारण बात नहीं है। इस प्रकार का आचरण तो बिरले ही संत-महात्माओं में मिलता है। इससे व्यास जी का महत्व स्वयंसिद्ध है किंतु त्यागपूर्ण जीवन और भक्ति-भावना से भी अधिक उनके महत्व का कारण उनकी अमर 'वाणी' है। भक्त-कवि 'भीखमदास' ने व्यास-वाणी की वंदना करते हुए इसके यथार्थ स्वरूप का कथन किया है। उन्होंने इसे लोक-वेद के भेदों से पृथक् और विधि-निषेध का नाश करने वाली बतलाया है। उन्होंने इस 'वाणी' को विमुख-भंजन के लिए अमोघ शक्ति कहा है, और अनन्य रसिकों के लिए सुख-संतोषप्रद बतलाया है†।

'व्यास-वाणी' में जहाँ ब्रज के भक्त कवियों की भाँति राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ाओं का रसपूर्ण वर्णन हुआ है, वहाँ संत कवियों की तरह अनुभव जन्य लोकोपदेश भी दिया गया है। भक्तों की साधना प्रायः अंतर्मुखी होती है, इसलिए भक्ति-

† द्वितीय खंड के आरंभ में व्यास वाणी की महिमा', पृष्ठ १६०

काव्य की रचना भी भक्तों ने विशेष रूप से स्वांतः सुख के लिए की है; किंतु संतों की वाणी में लोकोपकार की भावना अधिक रहती है । व्यास जी की रचनाओं में संत-काव्य और भक्ति-काव्य दोनों के गुण विद्यमान हैं और वे दोनों के समन्वय के सुदृढ आधार भी हैं । इस प्रकार व्यास जी का महत्व अन्य भक्त कवियों से अधिक हो जाता है ।

व्यास-वाणी—

प्रस्तुत ग्रंथ में संकलित व्यास जी की समस्त उपलब्ध रचनाएँ 'व्यास-वाणी' के अंतर्गत ६ परिच्छेदों में विभाजित हैं । इन परिच्छेदों का क्रम और नाम निम्न हैं—

१. सिद्धांत, २. शृंगार-रस-विहार, ३. समय के पद,
४. ब्रज-लीला, ५. रास-पंचाध्यायी और ६. साखी ।

विषयानुसार विभाजन करने से सिद्धांत के पद और साखी के दोहे प्रायः एक ही विषय से संबंधित हैं, अतः इनको साथ-साथ रखना अधिक समीचीन होता । व्यास-वाणी की अब तक जितनी भी प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, इनमें साखी के दोहे सिद्धांत के पदों के साथ ही साथ मिलते हैं । इस प्रकार के दोहों का पृथक संकलन 'व्यास जी की चौरासी' के नाम से भी उपलब्ध होता है ।

'साखी' और 'सिद्धांत' दोनों में गुरु-महिमा, साधु-स्तुति और भक्त-प्रशंसा के साथ ही साथ ढोंगी गुरु, कपटी साधु और झूठे भक्तों की कड़ी निंदा की गई है। व्यास जी ने जहाँ भक्तों के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त की है, वहाँ वैष्णव धर्म के विरोधी शाक्त आदि दुराचारी साधकों की तीव्र भर्त्सना भी है । इस विषय में उक्त 'साखी' कबीर की रचनाओं से मिलती हुई ज्ञात होती है । व्यास जी की साखी में कुछ दोहे ऐसे भी हैं, जो साधारण परिवर्तन के साथ कबीर-वचनावली में भी प्राप्त होते हैं । साखी की रचना कबीर आदि संत कवियों के काव्य की विशेषता है । भक्त कवियों में इस प्रकार की रचना के लिए व्यास जी कदाचित अपवाद हैं । हरि-भक्ति से विमुख और दुराचारी जनों की अत्यंत कटु शब्दों में तीव्र निंदा कबीर के पश्चात् यदि किसी भक्त कवि ने की है, तो वह केवल व्यास जी ने ही की है ।

ओरछा से वृंदावन जाने पर व्यास जी हरि-भक्तों की सेवा और रसेश्वरी राधिका जी के प्रेमानंद में मग्न होकर भक्तिपूर्ण शृंगार के पदों की रचना किया करते थे । उस समय उन्हें अपनी पूर्व मनोवृत्ति के विरुद्ध किसी की निंदा-स्तुति से कोई प्रयोजन न था । व्यास जी ने स्वयं कहा है—

रसिक अनन्य हमारी जाति ।×
......'व्यास' न देत असीस-सराप ॥६२॥

इस प्रकार की रचनाएँ व्यास-वाणी के द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम परिच्छेदों में संकलित हैं । ये रचनाएँ शृंगार और शांत रसों की हैं । ये विषय व्यास जी को अत्यंत प्रिय थे, अतः इनके संबंध की रचनाएँ भी अत्यंत सरस, भावपूर्ण

पूर्व की कृति ज्ञात होते हैं। इस प्रकार की रचना का समय सं० १६०० के आस-पास समझा जा सकता है।

अंत में व्यास जी के हृदय में वृंदावन-वास की लालसा इतनी बढ़ गई, कि उनका ओरछा में रहना असंभव हो गया। वे सर्वस्व परित्याग कर सं० १६१२ के लगभग स्थायी रूप से ओरछा छोड कर वृंदावन में रहने लगे। इस ग्रंथ के लेखक ने अनुमान किया है कि सं० १५९१ के लगभग वे एक बार पहले भी वृंदावन जा चुके थे। वृंदावन में स्थायी रूप से रहने पर उन्होंने व्रज-रस और राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ा संबंधी शृंगार रस के पदों की रचना की। इस प्रकार की रचनाएँ उनके अंत समय तक होती रहीं, अतः इनका रचना-काल सं० १६०० से १६६९ तक समझा जा सकता है।

व्यास जी को संतों और भक्तों की सेवा और उनके सत्संग में अत्यंत आनंद का अनुभव होता था। ऐसा ज्ञात होता है कि अपने अंतिम काल में उनको उस आनंद से वंचित होना पड़ा। कारण यह था कि उनके अनेक जीवन-साथी और इष्ट मित्र उनके सामने ही इस संसार से चल बसे थे, जिनके वियोग में वे बड़े दुखी रहा करते थे। उनके ऐसे कई पद† उपलब्ध हैं, जिनमें उनकी उस समय की मानसिक वेदना व्यक्त हुई है।

इन पदों में स्वर्गीय भक्तों के नामोल्लेख से महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है। इससे जहाँ व्यास जी के देहावसान-काल का निर्णय होता है, वहाँ उक्त भक्तों के अंतिम समय की सीमा भी निर्धारित होती है। व्यास जी कृत एक ऐसा पद भी उपलब्ध है, जिसके अंतिम चरण से उनके अंत काल का बोध होता है। इस ग्रंथ के लेखक ने व्यास जी के देहावसान-काल का निर्णय करते समय इस पद का कदाचित इसलिए उपयोग नहीं किया, कि इसके संदर्भ में किसी निश्चित काल का संकेत नहीं मिलता है। फिर भी यह पद व्यास जी की अंतिम रचना होने की संभावना के कारण महत्वपूर्ण है। इस पद का कुछ अंश इस प्रकार है—

बेद भागवत स्याम बतायौ। ×
जहाँ भक्त सब जात, तहाँ तें अजहूँ कोऊ न आयौ।
'व्यास'हिं बिदा करौ करुना करि, समाचार लै आयौ ॥२५९॥

यद्यपि व्यास-वाणी का अधिकांश भाग शृंगार रस से संबंधित है, जो अपनी भक्ति-भावना और काव्य-कुशलता के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण भी है, तथापि इसमें शृंगारपूर्ण भक्ति-काव्य की साधारण परिपाटी का ही अनुसरण किया गया है। किंतु सिद्धांत के पदों और साखी के दोहों में कतिपय विषय ऐसे भी हैं, जिन पर व्यास जी के व्यक्तित्व की छाप विशेष रूप से अंकित हुई है। इन विषयों का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है।

---

† साधु विरह के पद, सं० २३ से २७ तक

उपस्थित होती है। इसलिए समस्त कामनाओं का उपभोग करना आवश्यक है ताकि चित्त की चञ्चलता और उसका क्षोभ दूर होकर अपेक्षित सिद्धि शीघ्र प्राप्त हो सके! इसी मत की पुष्टि में 'गुह्य समाज तंत्र' में लिखा है—'शीघ्र सिद्धि प्राप्त करने का सरल उपाय कठिन नियमों का पालन नहीं है, वरन् समस्त कामनाओं का उपभोग करना है।*

इस प्रकार धार्मिक साधना में विषय-भोगों का प्रवेश हुआ, जिनके कारण उक्त पंथों ने नाना प्रकार के दुराचरणों को अपना लिया। उनके वे दुराचार सात्विक प्रकृति के सदाचारी संतों और वैष्णव भक्तों को असहनीय हुए। उन्होंने उनका बल पूर्वक विरोध किया। कबीर के कितने ही दोहों में शाक्तों की निंदा और वैष्णवों की प्रशंसा की गई है। उन्होंने कहा है—

चंदन की कुटकी भली, नाँ बंबूर की अबरॉउ।
वैस्नो की छपरी भली, नाँ सापत का बड गॉउ ॥१॥
कबीर धनि ते सुंदरी, जिनि जाया वैस्नो पूत।
राम सुमरि निरभै हुवा, सब जग गया अऊत ॥७॥
सापत बॉभण मति मिलै, वैस्नौ मिलै चँडाल।
अंक माल दे भेटिये, मानो मिले गोपाल† ॥६॥

कबीर शाक्तों के इतने विरुद्ध थे कि उन्होंने उनको कुत्ता और सूअर तक कहने में संकोच नहीं किया है—

साकत सुनहा दूनो भाई। एक नींदै एक भौंकत जाई ॥*
साकत ते सूकर भला, सूचा राखै गॉव।
बूड़ा साकत बापुड़ा, बैसि समरणी नॉव ॥

व्यास वाणी में भी शाक्तों के लिए अत्यंत कटु शब्दों का प्रयोग हुआ है। व्यास जी के शाक्त-विरोधी होने का एक विशेष कारण भी है। जिन दिनों वे अपनी जन्म-भूमि ओरछा में थे, उन दिनों वहाँ पर शैव-शाक्त आदि वैष्णव विरोधी तत्वों का प्राबल्य था। व्यास जी का घराना परंपरा से वैष्णव मतावलंबी था। व्यास जी स्वयं आस्तिक वैष्णव ही नहीं, वरन् राधा-कृष्ण के अनन्य उपासक भी थे। ऐसा ज्ञात होता है कि व्यास जी के कुटुंब-परिवार के कतिपय व्यक्ति चाहे शाक्त न रहे हों, किंतु व्यास जी के समान अनन्य वैष्णव नहीं थे। तत्कालीन ओरछा नरेश मधुकरशाह ... भारतीचंद संभवतः शाक्त ही था। जब व्यास जी की पुत्री के विवाह का आयोजन हुआ, तो व्यास जी इस अवसर पर अपने इष्टदेव की पूजा और साधुओं तथा भक्तों

---

† कबीर ग्रंथावली (ना० प्र० सभा) पृ० ५२–५३
* „ („) प्रस्तावना पृ० १७

जहाँ उन्होंने सच्चे भक्तों की अत्यधिक प्रशंसा की है, वहाँ तामसी वृत्ति के ढोंगी भक्तों की भरपूर निंदा भी की है‡। उनका मत है कि जब तक वासनाएँ विद्यमान हैं, तब तक घर छोड़ कर वृंदावन-वास करना वृथा है। उन्होंने कनक-कामिनी में अनुरक्त माला-तिलकधारी ढोंगी भक्तों की खूब खिल्ली उड़ाई है*।

वे सच्चे भक्तों के आगमन पर अपार सुख और हरि-विमुखों के आने पर घोर दुःख का अनुभव करते थे। उनका मत था कि भक्त के आने से करोड़ों तीर्थों में स्नान करने से भी अधिक सुख होता है और हरि-विमुखों के आने पर साँप-बीछुओं के काटने से भी अधिक पीड़ा होती है$।

हरि-भक्ति की तुलना में जनेऊ और जाति की हीनता—

उच्च वर्ण के हिंदुओं को जनेऊ और जाति का बड़ा अभिमान होता है; किंतु व्यास जी उच्च कुल के ब्राह्मण होते हुए भी इससे मुक्त थे। वे हरि-भक्ति की तुलना में जनेऊ और जाति को महत्त्वशून्य ही नहीं, वरन् व्यर्थ भी समझते थे। उन्होंने हरि-भक्ति के बिना जनेऊ को यम का फंदा बतलाया है†। व्यास जी के विषय में यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने रास में राधिका जी के स्वरूप का नूपुर टूट जाने पर उसे अपना जनेऊ तोड़ कर बाँध दिया था।

उन्होंने उच्च जातीयता का मिथ्या अभिमान छोड़ कर भगवान् की सच्ची भक्ति करने का उपदेश दिया है। उन्होंने एक हरिभक्त भंगी को भक्ति रहित लाखों पंडितों और करोड़ों कुलीनों से बढ़ कर कहा है। उन्होंने बतलाया है कि ब्राह्मण अपनी कुलीनता के अभिमान में भक्ति नहीं कर पाते हैं। वे स्वयं भूले हुए और सोये हुए हैं, किन्तु वे दूसरों को मार्ग दिखलाने और जाग्रत करने की धृष्टता करते हैं§।

विषय-वासना और कनक-कामिनी का त्याग—

भक्त कवियों की प्रतीकात्मक शृंगारिक रचनाओं से अपरिचित व्यक्तियों को कभी-कभी उनमें विषय-वासना की गंध आने लगती है। यह इसलिए होता है कि वे लोग इन महात्माओं की उपासना-पद्धति और धार्मिक मान्यताओं के मर्म को भली भाँति नहीं समझ पाते हैं। जो भक्त-कवि समस्त सांसारिक विषय-भोगों का परित्याग कर विरक्त भाव से जीवन व्यतीत करते थे, उनके द्वारा रचित राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ा संबंधी प्रतीकात्मक शृंगारिक रचनाओं से लौकिक विषय-

---

‡ सिद्धांत के पद, सं० १२८, १२६, १४०

* ,, ,, सं० १६६, २८०, २६४

$,, ,, सं० १२३, १२४, १४६

† ,, ,, सं० १०४, २१४

§ साखी के दोहे, सं० २०, २१; सिद्धांत के पद, सं० २१३

स्वान प्रसाद छुइ गयौ, कौवा गयौ बिटारि ।
दोऊ पावन 'व्यास' कें, कह भागौत विचारि ॥६५॥
'व्यास' रसिक जन ते बड़े, ब्रज तजि अनत न जाँय ।
बृंदावन के स्वपच लौं, जूठनि माँगें खाँय ॥२४॥
'व्यास' मिठाई विप्र की, तामैं लागै आग ।
बृंदावन के स्वपच की, जूठनि खैये माँग ॥२५॥

हरि-भक्ति और महाप्रसाद में छूआछूत का परित्याग कर व्यास जी ने प्रचलित सामाजिक नियमों के विरुद्ध जो क्रांतिकारी मार्ग ग्रहण किया था, उसके कारण रूढ़ि-पंथियों द्वारा उनको अपमान और तिरस्कार भी सहन करना पड़ा; किंतु वे अपने मार्ग से तनिक भी विचलित नहीं हुए । जब लोगों ने उनके सामने ब्राह्मणत्व और धर्माधर्म की दुहाई दी, तब व्यास जी ने निर्भीकता से कहा—

'व्यास' हि ब्राह्मन जिन गनौ, हरि-भक्तन कौ दास ।
राधावल्लभ कारनैं, सह्यौ जगत - उपहास ॥२६॥
जासों लोग अधर्म कहत है, सोई धर्म है मेरौ ।
लोग दहिनें मारग लाग्यौ, होंब चलत हौं डेरौ ।×
जिनकी ये सब छोति करत हैं, तिनही कौ हौं चेरौ ॥२३०॥

उच्चादर्श की बात करना बड़ा सरल है, किंतु उसे व्यवहार में लाना विरले ही महापुरुषों से संभव है । ध्रुवदास जी ने व्यास जी के संबंध में ठीक ही कहा है—

कहनी करनी करि गयौ, एक व्यास इहि काल ।
लोक-वेद तजिकें भजे, श्री राधावल्लभ लाल ॥
प्रेम मगन नहिं गन्यौ कछु, बरनाबरन-विचार ।
सबनि मध्य पायौ प्रगट, लै प्रसाद रस-सार ॥

प्रस्तुत ग्रंथ—

अंत में इस ग्रंथ की रचना और इसके संपादन के संबंध में भी दो शब्द कहने हैं । मेरे द्वारा संपादित 'ब्रज-साहित्य माला' में नायिकाभेद और षट्ऋतु विषयक रीति कालीन ग्रंथों के अतिरिक्त कई भक्ति कालीन ग्रंथ भी प्रकाशित हुए हैं, किंतु वे अष्टछाप, विशेष कर सूरदास, से संबंधित हैं । ब्रजभाषा भक्ति-साहित्य में सूरदासादि अष्टछापी कवियों के पश्चात् वृंदावन के भक्त कवियों का ही सर्वोपरि महत्व है; किंतु खेद है, उनसे संबंधित सर्वांगपूर्ण ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए । मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी कि हित हरिवंश, हरिदास स्वामी और श्री हरिराम व्यास के जीवन-वृत्तांत और काव्य-संकलन संबंधी ग्रंथ प्रस्तुत किये जावें । रीवा निवासी श्री वासुदेव जी गोस्वामी से यह सूचना प्राप्त कर मुझे स्वभावतः ही अत्यंत

विषय-सूची

प्रथम खंड

जीवन-वृत्तांत और काव्य-समीक्षा

★

प्रथम अध्याय : युग परिचय

द्वितीय अध्याय : अध्ययन के सूत्र

तृतीय अध्याय : जीवन-चरित्र

चतुर्थ अध्याय : व्यवहार

पंचम अध्याय : चमत्कार

षष्ठ अध्याय : संप्रदाय

सप्तम अध्याय : नृत्य और संगीत

अष्टम अध्याय : काव्य

नवम अध्याय : अन्य प्रासंगिक विवेचन

द्वितीय खंड

वाणी-संकलन

★

प्रथम परिच्छेद : सिद्धांत

द्वितीय परिच्छेद : शृंगार-रस-विहार

तृतीय परिच्छेद : समय के पद

चतुर्थ परिच्छेद : ब्रज-लीला

षष्ठ परिच्छेद : साखी

परिशिष्ट

चित्र-सूची

★

सहायक ग्रंथों की सूची

★

दी के हस्तलिखित ग्रंथ—

१. श्री व्यास जी की वाणी (विभिन्न नामों से उपलब्ध) लिपिकाल संवत् १८८३, १८८७, १८८८, १८९४, १८९६, १९१४, १९६३ तथा दो प्रतियों का लिपिकाल अज्ञात। विशेष विवरण प्राक्कथन में।

*२. नाभादास : भक्तमाल

*३. प्रियादास : भक्तमाल पर भक्ति-रस-बोधिनी टीका

४. भगवत रसिक : वाणी

*५. भगवत मुदित: सेवक-चरित्र तथा रसिक–अनन्य–माल

६. उत्तमदास: रसिक-अनन्य-माल (हितपरिचयी) खंडित प्रति.

*७. श्री व्यास-जन्मोत्सव की बधाई, संग्रह, लिपिकाल संवत् १९४२

*८. गुरु-शिष्य-वंशावली

९. श्री हित हरिवंश जी की बधाई

१०. हंसराज बख्शी : सनेह सागर; लिपिकाल १८९३

दी के प्रकाशित ग्रंथ—

१. श्री व्यास-वाणी, अ० भा० श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृंदावन द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण; सं० १९९१

२. श्री व्यास-वाणी; श्री हरिराम 'व्यास' वंशोद्भव आचार्य श्रीराधा-किशोर गोस्वामी द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण, संवत् १९९४

३. वियोगी हरि : ब्रजमाधुरी सार

*४. प्रतीतराय लक्ष्मणसिंह : श्री लोकेन्द्र ब्रजोत्सव

*५. ध्रुवदास : भक्त-नामावली

*६. माताप्रसाद गुप्त : तुलसी संदर्भ

७. वेनीमाधव दास : मूल गोसांई चरित

८. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास

९. रामकुमार वर्मा : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

१०. परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की संत-परंपरा

११. प्रभुदयाल मीतल : अष्टछाप-परिचय

१२. द्वारकादास परीख व प्रभुदयाल मीतल : सूर-निर्णय

१३. रामरतन भटनागर : हिन्दी भक्ति-काव्य

१४. ब्रजरत्नदास द्वारा अनुवादित : मआसिरुलउमरा

१५. दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय

१६ शिवशंकर मिश्र भारतवर्ष का धार्मिक इतिहास

*१७. रीवा नरेश महाराज रघुराजसिंह : भक्त माला (राम-रसिकाव-

१८. भक्त-सौरभ, गीताप्रेस

१९. गोपालप्रसाद शर्मा : श्री हित-चरित्र

२०. चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस, मथुरा)

२१. चौरासी वैष्णवन की वार्ता (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई)

२२. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई)

२३. गोस्वामी तुलसीदास : कवितावली

२४. श्री स्वामी जी : दर्शन शास्त्र संग्रह

२५. गौरीशंकर द्विवेदी : बुंदेल-वैभव

२६. सूरसागर (श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई)

२७. पद्मावती 'शबनम': मीरा एक अध्ययन

२८. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (ना०प्र० सभा, काशी)

२९. कल्याण मासिक पत्र का भक्त-चरितांक

संस्कृत—

जयदेव : गीतगोविंदम्

गुजराती—

१. श्री हित-सुधासागर

[बं]गला—

१. पुलिनविहारी दत्त : वृंदावन-कथा

२. लालदास : भक्तमाल

[अं]ग्रेजी—

1. Elliot & Dowson ; History of India, as told by it[s] own Historians.
2. Shri Ram Sharma : Religious Policy of Mughals
3. Orchha State Gazetteer
4. Panna State Gazetteer
5. Reports on the Search of Hindi Manuscripts for the years 1905, 1906-08, 1909-11, 1912-14, 19,7-19, 1920-22, 1923-25.
6. Sir George A. Grierson B. A., B. C. S. The Modern Vernacular Literature of Hindustan.
7. Maurice Vinternitz, Ph. D. : A History of Indian Literature translated from the original German by Mrs. S. Ketkar
8. Shakti Sangam Tantra (Preface written by Binayatosh Bhattacharya).
9. Gazetteer of Mathura.
10. F. S. Growse B. C. S. : Mathura District Memoir.

---

* इन ग्रंथों का सम्बंधी विवेचन अध्ययन के सूत्र नामक प्रसंग में देखिये

प्रथम खंड

जीवन-वृत्तांत और काव्य-समीक्षा

व्यास जी के संबंध में—

काहू के आराध्य मच्छ, कच्छ, सूकर, नरहरि।
बावन, परसाधरन, सेतुबंधनहु सैल करि॥
एकन कें यह रीति, नेम नवधा सौं लाएँ।
सुकल समोखन-सुवन, अच्युत गोत्री जु लड़ाएँ॥
नौगुनो तोरि नूपुर गुह्यौ, महत सभा मधि रास के।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के॥

—नाभादास

बर किसोर दोउ लाड़िले, नवल प्रिया नव पीय।
प्रगट देखियतु जगत में, रसिक व्यास के हीय॥
कहनी, करनी करि गयौ, एक व्यास इहि काल।
लोक वेद तजिकैं भजे, राधावल्लभ लाल॥
प्रेम मगन नहिं गन्यौ कछु, बरनाबरन विचार।
सबनि मध्य पायौ प्रगट, लै प्रसाद रस-सार॥

—ध्रुवदास

व्यास भक्त से भक्त हैं, संतन अति सुख देत।
मन कर, तन कर, बचन कर, परे बिपिन के रेत॥

—ललितमोहन दे।

निंबारक मत विदित, प्रेम कौ सारहिं जान्यौ।
जुगल केलि रस-रीति, भलैं करि इन पहिचान्यौ॥
सखी भाव अति चाव, महल के नित अधिकारी।
पिय हू सों बढ़ि हेत, करत जिन पै निज प्यारी॥
जग दान चलायौ भक्ति कौ, ब्रज सरवर जल जलज खिलि।
जान्यौ बृंदावन-रूप, हरिदास, व्यास, हरिबंस मिलि॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भक्त-सिरोमनि व्यास, ओरछा नगर निवासी।
श्री हरिबंस प्रसंस सिष्य, हित-धाम बिलासी॥
अनुरागी रस सनौ, रँगीलौ राधा-पी कौ।
बिधि-निषेध सब त्यागि, पान किये घूँट अमी कौ॥
राधावल्लभ सेइ, निगम की कानि न राखी।
ब्रज बिहार पद गाय, कही अति साँची साखी॥
रसिकानन्य अनन्य व्यास, जय आनँद-रासी।
श्री ब्रजचंद-चकोर, राधिका-चरन-उपासी॥

—वियोगी हरि

महात्मा श्री हरिराम जी व्यास

★

१५६७ वि०, मार्गशीर्ष कृ० ५, देहावसान : सं० १६६९ के लगभग.
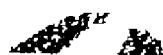
भक्त-कवि व्यास जी

प्रथम अध्याय

युग-परिचय

★

१. व्यासकालीन राजनैतिक परिस्थिति—

मलखान सिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र रुद्रप्रताप संवत् १५५८ में बुंदेलखंड के राज सिंहासन पर बैठे। उस समय बुंदेलखंड की राजधानी झाँसी से तीस मील उत्तर की ओर स्थित गढ़ कुंडार नामक नगरी थी। भारत साम्राज्य उस समय लोदी वंश से शासित हो रहा था। संवत् १५४६ से १५७४ तक सिकंदर लोदी के राजत्व काल के पश्चात् इब्राहीम लोदी का शासन प्रारंभ हुआ। संवत् १५८३ में इब्राहीम लोदी को पराजित कर बाबर ने मुगल साम्राज्य की नींव भारतवर्ष में डाली।

विदेशियों के आक्रमण तो सैकड़ों वर्षों से प्रारंभ हो ही चुके थे। इससे देश में अशांति का वातावरण उपस्थित रहता था। बाबर के भारत पर आक्रमण एवं इतिहास प्रसिद्ध पानीपत के प्रथम युद्ध (संवत् १५८३ वि.) में जो गड़बड़ी फैली, उसमें बुंदेलखंड नरेश रुद्रप्रताप ने अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार करने का मौका पाया। वैसे तो उन्हें पहिले ही सिकंदर और इब्राहीम लोदी से भी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी थीं, किंतु उस समय जो देशव्यापी हलचल हुई, उससे अपनी सीमाओं को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें बहुत सतर्क रहना पड़ता था। शासन-प्रबंध में उन्हें अपने ज्येष्ठ पुत्र भारतीचंद का पूर्ण सहयोग था ही। संवत् १५८७ वि० में बाबर की मृत्यु हो गई और दिल्ली के राजसिंहासन पर हुमायूं आसीन हुआ। महाराज रुद्रप्रताप उसी वर्ष ओरछा होकर निकले। पुण्यसलिला वेत्रवती के तट पर स्थित इस नगरी ने अपने रूप-लावण्य से उन्हें मोहित किया। वहाँ की प्राकृतिक शोभा तथा तत्कालीन राजनैतिक हलचलों को ध्यान में रखकर घने वन में स्थित उस नगरी को उन्होंने बुंदेलखंड

के विशाल राज्य की राजधानी बनाने का संकल्प किया। वैशाख सुदी १३ संवत् १५८८ वि० को शुभ मुहूर्त में ओरछा को बुंदेलखंड की राजधानी निश्चित करके एक राजभवन के निर्माण का भी आरम्भ हुआ।†

महाराज रुद्रप्रताप जैसे ही वीर थे, वैसे ही धर्मात्मा भी थे। उनके साथ उनके दूसरे पुत्र मधुकरशाह विशेष रूप से रहा करते थे। इस कारण महाराज रुद्रप्रताप के साथ भ्रमण करने से उन्हें भी उस समय के अनेक साधु-संतों के दर्शन करने तथा उपदेश सुनने का विशेष अवसर मिला। संवत् १५८८ वि० में एक सिंह के पंजों से गौ को बचाने में रुद्रप्रताप का स्वर्गवास हो गया। यद्यपि उन्होंने सिंह को मार कर गौ की रक्षा कर ली, तथापि सिंह द्वारा उन पर किये गये भयंकर आघातों से उनके प्राण न बच सके।

महाराज रुद्रप्रताप के नौ पुत्र थे। उनमें से ज्येष्ठ पुत्र श्री भारतीचंद बुंदेलखंड के राज सिंहासन पर संवत् १५८८ में आसीन हुए। इसी समय शेरशाह सूरी का अभ्युदय हुआ। संवत् १५९६ में मुगल सेना को उसने परास्त किया और हुमायूं को हार कर भागना पड़ा।

जिस राजभवन की नींव संवत् १५८८ वि० में महाराज रुद्रप्रताप द्वारा ओरछा में डाली गई थी, वह १५९६ वि० में पूर्ण रूप से तैयार हो गया। उधर शेरशाह की दृष्टि भी बुंदेलखंड पर थी, अतः गढ़ कुंडार से राज्य के वे सब विभाग ओरछा में भेज दिये गये, जो भवनों की असुविधा से अब तक वहाँ न जा सके थे।

राजा भारतीचंद को भी बुंदेलखंड की रक्षा के लिए शेरशाह के पुत्र इस्लामशाह से लड़ाई लड़नी पड़ी।‡ शेरशाह की मृत्यु के उपरांत दिल्ली के राजसिंहासन पर संवत् १६०२ से १६०९ तक इस्लामशाह ने राज्य किया और उसके पश्चात् मुहम्मद आदिलशाह तथा सिकंदरशाह हुए, जिनको परास्त कर संवत् १६१२ में हुमायूं ने पुनः दिल्ली का

† देखिये 'ओरछा गजेटियर', पृष्ठ १७

‡ भरतखंड मंडन भए, तिनके भारतीचंद।
देख रसातल जात जिन, फेरयो ज्यों हरिचंद ॥१९॥
सेरसाह असलेम के, उर साली समसेर।
एक चतुर्मुख ही नयौ, वाकौ सिर विधि फेर ॥२०॥

—कवीन्द्र केशवदास कृत 'कविप्रिया', पृष्ठ ६

सिंहासन प्राप्त कर लिया। लगभग ६ माह पश्चात् ही उसी संवत् में हुमायूं का देहांत हो जाने के कारण १४ वर्ष की अल्पावस्था में ही अकबर भारत के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ।

उधर संवत् १६११ वि० में महाराज भारतीचंद की भी मृत्यु हो गई। उनके कोई संतान न थी, अतः उनकी मृत्यु के उपरांत उनके छोटे भाई मधुकरशाह ओरछे के राजसिंहासन पर आसीन हुए।

मधुकरशाह को मुगल सम्राट की शाही सेना का भी कई बार सामना करना पड़ा। इन लड़ाइयों में मधुकरशाह के पुत्र होरिलराव तथा रतनसेन भी मारे गये। विरक्ति भाव अधिक बढ़ जाने के कारण महाराज मधुकरशाह ने अपने जीवन काल में ही वैशाख शुक्ला ३ संवत् १६५० को अपने ज्येष्ठ पुत्र रामशाह का राज्याभिषेक कर दिया। यह उनके अन्य पुत्र वीरसिंहदेव को रुचिकर न हुआ। उन्हें बड़ोनी (दतिया जिला) जागीर में दी गई। उसी वर्ष संवत् १६५० को आश्विन सुदी ११ को मधुकरशाह का स्वर्गवास हो गया। रामशाह ने शांति पूर्वक ही शासन करना चाहा, किन्तु पारिवारिक एकता के अभाव में वह संभव न था। उनके भाइयों ने ही राज्य के कितने स्थानों को अपने व्यक्तिगत अधिकार में ले लिया। सबसे अधिक विरोध था वीरसिंहदेव का। सम्राट अकबर भी वीरसिंहदेव के व्यवहार और कार्यों से रुष्ट थे।

सम्राट अकबर की हिंदुओं के साथ तुष्टीकरण की धार्मिक नीति थी, जिसे विदेशी मुसलमान पसंद न करते थे। उन्होंने शाहजादा सलीम को उल्टी-सीधी बातों से बहकाकर उसके द्वारा एक विद्रोह खड़ा कर दिया, जिससे सम्राट और शाहजादे में मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया। सलीम को संदेह था कि प्रधान मंत्री अबुलफजल उसके विरुद्ध बादशाह के कान भर कर उसको उत्तराधिकार से वंचित करना चाहता है। इस कारण उसने अबुलफजल को मरवा डालने का विचार किया।

वीरसिंह ने इसका बीड़ा उठाया। शाहजादा सलीम ने भी उन्हें वचन दिया कि अनुकूल अवसर पर वे इसका प्रत्युपकार करेंगे। सं० १६५६ (१२ अगस्त सन् १६०२ ई०) में वीरसिंह ने अबुलफजल को मार डाला। इस समाचार से अकबर को बड़ा दुःख हुआ। उसने वीरसिंह को पकड़ने के लिए एक सेना भेजी तथा राजा रामशाह को भी उस कार्य में सहायता करने के लिए आज्ञा दी। बुंदेलखंड के घने जंगलों में वीरसिंह छुप गये और इधर उधर अज्ञात रूप से रहने लगे। सं० १६६२ में

अकबर की मृत्यु हो जाने पर सलीम भारत-सम्राट हुआ। उसने जहाँगीर की उपाधि धारण की और वीरसिंह को इच्छानुसार शीघ्र ही सं० १६६२ में उन्हें ओरछे के राजसिंहासन पर बैठाया। रामशाह ने इसका निष्फल विरोध किया। सम्राट ने रामशाह को चंदेरी और बानपुर का राज्य, जो उस समय मुगल साम्राज्य का ही भाग था, दे दिया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अकबर और सलीम (जहाँगीर) में प्रेम-भाव नष्ट हो चुका था। जहाँगीर का ज्येष्ठ पुत्र खुसरो भी अकबर के जीवनकाल में ही इस बात के लिए प्रयत्न कर चुका था कि वह उसका उत्तराधिकारी बने। इस कारण अब उसे भय हुआ कि कहीं जहाँगीर उससे बदला न ले। अतएव जहाँगीर के सिंहासन पर बैठते ही वह मार्ग में लूट मार करता हुआ मथुरा से होकर पंजाब की ओर भागा। उसने नगरों को उजाड़ा और लोगों को तरह तरह के कष्ट पहुँचाये, किंतु उस विद्रोह का शीघ्र ही दमन कर दिया गया। सं० १६८४ तक जहाँगीर ने शासन किया।

जहाँगीर की मृत्यु के ३-४ माह पूर्व ही वीरसिंह का भी देहांत हो चुका था। उन्होंने मथुरा के विश्रामघाट पर ८१ मन सोने की तुला का दान किया था। यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने माघ सुदी ५ सं० १६७४ को एक ही मुहूर्त में ५२ भवन आदिकों की नींव डलवाई थी†। उनमें केशवदेवजी का मंदिर* मथुरा, जहाँगीर महल ओरछा, पुराना महल दतिया आदि मुख्य हैं। महमूद गजनवी ने सं० १०७४ में २० दिन तक मथुरा और पास के ग्रामों को नष्ट-भ्रष्ट किया। उसी प्रकार सुल्तान सिकंदर लोदी ने सं० १५५७ में मथुरा को पूरी तरह बर्बाद किया था। सं० १७२६ में औरंगजेब द्वारा मथुरा, वृंदावन तथा अन्य धार्मिक स्थानों के देवालयों का भयंकर विध्वंस हुआ। धार्मिक विद्वेष के इस कुफल से बचाने के लिए उस समय के धर्मप्रिय हिन्दू नरेश यहाँ की सिद्ध और प्रसिद्ध देव-मूर्तियाँ अपने राज्यों में ले गये और वहाँ उनके मंदिर बनवाये।

---

† देखिये 'ओरछा स्टेट गजेटियर', पृष्ठ २१

* तेतीस लाख रुपया व्यय करके यह मंदिर बना था, जो सं० १७२६ में औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता का शिकार हुआ।

—'The Religious policy of the Mughals'
By Shri Shri Ram Sharma

२. धार्मिक वातावरण—

शाक्त संप्रदाय की सृष्टि तो वैदिक काल ही में हो चुकी थी, किंतु इसकी तंत्रोक्त उपासना में वैदिक उपासना से भिन्नता आ गई। भिन्न-भिन्न आचारों के कारण शाक्त सात श्रेणियों में विभक्त है। भगवती को संतुष्ट करने के लिए पशुबलि इस संप्रदाय मे अधिक प्रचलित है। इनमें वामाचारियों के समुदाय ने सबसे अधिक उग्रता धारण की और उसके द्वारा कुछ इस प्रकार के आचारों का प्रचार हुआ, जो पवित्र नहीं कहे जा सकते थे। जैन और बौद्ध धर्मों में नियमों की कठोरता, योग-साधना और काया-कष्ट का आधिक्य था। विष्णुस्वामी ने इन दोनों से भिन्न एक ऐसे धर्म की आवश्यकता अनुभव की, जिसमें न काया-कष्ट हो, न भ्रष्टाचार। उन्होंने विष्णु के नाम-स्मरण को मोक्ष का साधन बतलाया। उनका उपदेश ब्राह्मणों तक ही सीमित था, अतः उनके संप्रदाय का प्रचार अधिक न हो पाया।

संवत् ८४५ वि० की वैशाख शुक्ला ५ को स्वामी श्री शंकराचार्य जी का जन्म हुआ। उस समय बौद्ध धर्म का अधिक प्रचार था। उन्होंने शास्त्रार्थ मे बौद्धों को परास्त कर अद्वैत सिद्धांत का प्रतिपादन किया। साधारण जन समाज में अद्वैत मार्ग को पूर्ण रूप से समझने की अक्षमता जान कर स्वामी शंकराचार्य ने ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हुए भी कर्म और भक्ति द्वारा ईश्वरोपासना का उपदेश दिया और वैदिक धर्म रक्षा की। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, भगवत् गीता और दशोपनिषद् आदि पर ब्रह्मविद्या प्रतिपादक भाष्यों की रचना की। उनके उपदेश से वर्ण व्यवस्था का दृढ़ संगठन हुआ और बौद्ध धर्म लुप्तप्राय हो गया। उनके पश्चात् उनके शिष्यों ने उपदेश देने का काम चालू रक्खा, परंतु इसमें पीछे से कितने ही पंथ हो गये, जो अब तक चले आते हैं।

शंकराचार्य के समय में विष्णुस्वामी की गद्दी पर बिल्वमंगल थे, जिन्हें संवत् ८६६ मे शंकराचार्य के किसी शिष्य ने शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था। तब से वैष्णव संप्रदाय क्षीण होने लगा तथा शंकराचार्य और उनके शिष्यों के उद्योग से शांकर संप्रदाय की उन्नति होने लगी।

स्वामी रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत किंवा श्री संप्रदाय की स्थापना कर वैष्णव संप्रदाय का जीर्णोद्धार किया। उन्होंने जीवात्मा और परमात्मा में भेद बतलाया। ब्रह्म को अद्वैत मानते हुए भी वे उसे

केवल नहीं, किंतु विशिष्ट मानते थे। अद्वैत मत में ब्रह्म को ज्ञान रूपी और जगत को मायामय किंवा अज्ञान रूपी गिना है। ज्ञान सत्ता में अज्ञान का होना असंभव बताकर रामानुज ने अद्वैत को विशिष्ट रूप में स्वीकार किया है। अवतारों को उन्होंने अपरूप कह कर राम-कृष्ण की आराधना का उपदेश करते हुए कृष्ण को भी पूज्य माना है। यह संप्रदाय भक्तिप्रधान है। उनकी सहज पूजा-विधि में अनेकों स्त्री-पुरुष आकर्षित हुए और उन्होंने उनके संप्रदाय को स्वीकार किया। दक्षिण भारत में इस संप्रदाय का विशेष प्रचार हुआ। श्री शंकराचार्य ने सनातन धर्म को प्रतिष्ठित किया था, शास्त्रों के प्रति श्रद्धा जागृत कर दी थी, किंतु शास्त्रीय आचार की ठीक प्रतिष्ठा होकर हिंदू धर्म का पुनरुद्धार श्री रामानुज आचार्य द्वारा ही पूर्ण हुआ।

श्री रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में श्री राघवानंद थे, जिन्होंने रामानंद को दीक्षा दी थी। रामानंद का जन्म संवत् १३५६ में प्रयाग में हुआ था। उन्होंने रामानुजाचार्य की भाँति दीक्षा केवल ब्राह्मणों तक ही सीमिति न रख कर उसका अधिकारी प्रत्येक स्त्री-पुरुष को माना। उनके दार्शनिक सिद्धांतों का आधार विशिष्टाद्वैत की मूल बातों में ही निहित है, परंतु मान्यताओं के विचार से रामानुजीय 'श्री संप्रदाय' और रामानंदीय 'रामावत संप्रदाय' में ऐसे भेद हैं, जिनके कारण रामावत संप्रदाय विरक्त लोगों का एक अलग ही स्वतंत्र संप्रदाय माना जाने लगा। श्रीरामानुजाचार्य के श्री संप्रदाय में अष्टाक्षरीय नारायण मंत्र का उपदेश किया जाता है, जब कि रामानंदी संप्रदाय में षडक्षरीय राममंत्र की दीक्षा होती है। श्री संप्रदाय के उपास्य देव क्षीरसागर के शेषशायी चतुर्भुज भगवान विष्णु में साधारण जनता श्रद्धा के भाव तो प्रकट कर सकती थी, किंतु वह उन्हें अपनी पहुँच से दूर ही समझती थी। रामानंदी वैरागी संप्रदाय के पूज्य देव श्रीराम हुए, जो अपने लौकिक स्वरूप, वेश, चरित्र, और अपूर्व मानवीय गुणों के कारण भक्तों को अधिक निकट प्रतीत हुए और वे उनमें जटिल सेवा विधियों को छोड़ कर भक्ति भावना से सरल प्रेम का सजीव अनुभव कर सके। इस कारण इस संप्रदाय का उत्तर भारत में बहुत जल्दी प्रचार हो गया। उसमें सभी वर्णों के स्त्री-पुरुष दीक्षित हुए। पद्मावती (स्त्री), सुरसुरानंद, पीपा जी क्षत्रिय, कबीर जुलाहा, सेना नाई, धना जाट तथा रैदास चमार आदि इनके कृपापात्र शिष्यों में विशेष

प्रसिद्ध हैं। आज असंख्य वैरागी इस संप्रदाय के अनुयायी हैं। निस्संदेह उस संकटपूर्ण समय में देश, धर्म और आर्य जाति की रक्षा करने के लिए स्वामी रामनंद जैसे शक्तिशाली उदार विचार के दिव्य महापुरुष की आवश्यकता थी। उत्तर भारत में उनके संप्रदाय का अधिक प्रचार हुआ। उस समय मुसलमानों के आक्रमण भारत पर कभी के प्रारंभ हो चुके थे और वे बलात् अपने धर्म का प्रसार करना चाहते थे। इस कारण हिंदू-मुसलमानों में बड़ा विद्वेष था। इस भेद-भाव को दूर करने और दोनों में ऐक्य स्थापित करने में कितने ही मत-प्रवर्तक उस समय से प्रयत्नशील होते रहे। इनमें कबीरदास जी सर्व प्रथम हैं। उन्होंने सूफियों की प्रेम-साधना और नाथ पंथी योगियों के शब्द मार्ग, कुंडलिनी, जागरण आदि का समन्वय किया। वे मूर्ति-पूजा को नहीं मानते थे। रामानंद जी के कुछ अन्य शिष्यों द्वारा प्रचारित मत-मतांतर भी विभिन्न, जातियों में प्रचलित हुए।

हैदराबाद राज्यांतर्गत वेदर नामक ग्राम में सं० ११७१ विक्रमी में निम्बार्क संप्रदाय के संस्थापक श्री निम्बार्काचार्य जी का जन्म हुआ था। उन दिनों भारत में जैन धर्म का अधिक प्रचार बढ़ रहा था। उन्होंने उसका खंडन कर देवालयों में राधा-कृष्ण की मूर्तियाँ स्थापित कर उनकी पूजा का उपदेश दिया। उन्होंने जीव को ईश्वर के आधीन तथा जगत् को भी सत्य माना। तात्विक रूप से उनका सिद्धांत द्वैताद्वैत कहलाया। उन्होंने श्रीमद्भागवत को ही परमप्रमाण स्वीकार किया। उनके शिष्य केशव भट्ट के अनुयायी विरक्त होते है और हरिव्यास देव के अनुयायी गृहस्थ होते है, जो हरिव्यासी संप्रदाय के भी कहे जाते हैं।

महाराष्ट्र में नामदेव दर्जी ने सगुण उपासना द्वारा चमत्कार दिखलाया। उनका जन्म सं० १३२७ और मृत्यु सं० १४०७ माना जाता है। पंढरपुर के विठोबा विष्णु भगवान् के मंदिर में भगवद्भजन करते हुए वे अपने दिन बिताते थे। उनकी अनेकों अलौकिक कथाओं का उल्लेख भक्तमाल में आता है। पहिले उन्होंने किसी से दीक्षा ग्रहण नहीं की और अपने आप भगवान की भक्ति में लीन रहने लगे, किंतु बाद में एक, नाथपंथी कनफटे के वे शिष्य हो गये थे। उनके समय में मुसलमान महाराष्ट्र में आ चुके थे। अतः गुरु से दीक्षा प्राप्त करने के उपरांत ज्ञान-चर्चा द्वारा वे हिंदू और में से भेद-भाव हटाने वाले विचारों का संकेत करने लगे थे

विक्रम सं. १२५४ की माघ शुक्ला सप्तमी को मद्रास के मंगलूर जिले के उडुपी क्षेत्र से कुछ दूर बेल्लिग्राम में श्री मध्वाचार्य का जन्म हुआ। उन्होंने स्थान-स्थान पर शास्त्रार्थ करके भक्ति मार्ग की स्थापना की। वे जीव की मुक्ति ज्ञान से न मान कर केवल भगवत प्रसाद से मानते थे। इनका द्वैत-सिद्धांत शांकर मत से ठीक विपरीत सा हो गया। आचार्य मध्व ने जीव की नित्य पृथक् सत्ता का प्रतिपादन किया, जिसमें उपासना, शास्त्र, परलोक, कर्म आदि सब का पोषण हुआ। भागवत मत के लगभग सभी अन्य सिद्धांत कुछ विलक्षणता से मध्वमत में माने जाते हैं। बंगाल के चैतन्य देव भी इसी सिद्धांत के मानने वाले थे। उनका आविर्भाव काल विक्रम संवत् १५४२ और गोलोक वास सं० १५९० माना जाता है। वे श्रीमद्भागवत को ही ब्रह्मसूत्र का भाष्य मानते थे। वे गौरांग महाप्रभु के नाम से प्रसिद्ध हुए। कीर्तन करते-करते वे प्रेमोन्मत्त हो उठते थे। श्री चैतन्य के शिष्य श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी और श्री जीव गोस्वामी ने उनके उपदेशों के अनुरूप ग्रंथों का निर्माण किया। श्री महाप्रभु ने भक्ति तथा श्री कृष्ण-कीर्तन की जो धारा प्रवाहित की, वह आज भी अनेक जीवों को पावन कर रही है।

वैशाख कृष्ण ११ सं० १५३५ विक्रमी को श्री वल्लभाचार्य जी का जन्म हुआ। ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही काशी में माधवेन्द्र पुरी से उन्होंने शास्त्राध्ययन पूर्ण कर लिया था। वहाँ से वे गोकुल चले गये और फिर कुछ समय बाद दक्षिण भारत में भ्रमणार्थ गये। उन दिनों विजयनगर के राजा कृष्णदेव की सभा में अद्वैतवादी विद्वानों, शैवों, शाक्तों और वैष्णव मत के आचार्यों में शास्त्रार्थ हो रहा था। उन्होंने वैष्णव पक्ष में अपने विपक्षियों को शास्त्रार्थ द्वारा पराजित करने में बड़ा योग दिया और विष्णुस्वामी के उच्छिन्न मत की पुनः प्रतिष्ठा की। उन्होंने परंपरागत धर्म सिद्धांतों में अपने विचारों को सम्मिलित कर पुष्टिमार्ग की स्थापना की और अपनी गद्दी गोकुल में रक्खी। वे शुद्धाद्वैत सिद्धांत के प्रतिपादक हुए। इनके अनुसार कार्य-कारण रूप जगत् ब्रह्म ही है। वह न मायिक है और न भगवान से भिन्न। वल्लभ-संप्रदाय में श्री कृष्ण के बाल स्वरूप की प्रधान उपासना है।

आषाढ़ शुक्ला ३ संवत् १५८७ को श्री वल्लभाचार्य जी का गोलोक वास हो गया। तदनंतर उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी उनके उत्तराधिकारी हुए किंतु वे कुछ ही दिनों जीवित रहे और उनके निधन

के कुछ समय पश्चात् श्री वल्लभाचार्य जी के द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ जी ने पुष्टिमार्ग की गद्दी ग्रहण की। उन्होंने श्री वल्लभाचार्य के सिद्धांतों पर भाष्य लिखा तथा उनके और अपने शिष्य वर्ग में से आठ उत्तम कवियों को चुन कर अष्टछाप की स्थापना की। अष्टछाप के इन कवियों में सूरदास, परमानंददास और नंददास मुख्य हैं।

इधर मुसलमान सूफी फकीरों की प्रेममार्गी शाखा विरह को प्रधानता देती आ रही थी। वियोगी होना और अपने प्रियतम की खोज में भटकने का गौरव सूफियों ने प्रकट किया। उन्होंने ईश्वर के विरह को ही भक्त की प्रधान संपत्ति माना और विरह को दुर्लभ वस्तु कहा—

'कोटि माहिं बिरला जग कोई। जाहि सरीर विरह दुख होई॥'

सूफी संतों ने कहानी और काव्यों द्वारा अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। ऐसे ही समय में हरित्रयी (अर्थात्—श्री हरिवंश जी गोस्वामी, श्री हरिदास जी स्वामी और श्री हरिराम जी व्यास) ने राधाकृष्ण के संयोग को प्रधानता देकर मिलन-सुख-सर्वस्व के सिद्धांत पर उपासना को केन्द्रित कर रसमय साहित्य का सृजन किया। उन्होंने सखी-भाव से राधिका जी की उपासना की, जिनकी कृपा से कृष्ण का प्रसाद मिल सकता है। विषय विमोहित जीव काम को प्रेम मान कर पाप-पंक में फँस जाते हैं। प्रेम दिव्य स्वर्गीय सुधा है, जिसके रसास्वादन का अनुभव उन्होंने किया। यथार्थ में यही दिव्य प्रेम काम का नाश कर सकता है। यह उपासना गोपियों के प्रेमादर्श पर प्रचलित हुई, इस कारण इसमें रास-लीला का भी समावेश हुआ। वृंदावन धाम की महिमा का उन्हें अनुभव हुआ। भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र अपनी उत्तरार्ध भक्तमाल में लिखते हैं—

निंबारक मत बिदित, प्रेम कौ सारहिं जान्यौ।
जुगल केलि-रस रीति, भलै इनकर पहिचान्यौ॥
सखी-भाव अति चाव, महल के नित अधिकारी।
पिय हू सों बढ़ि हेत, करत जिन पै निज प्यारी॥
जग दान चलायौ भक्ति कौ, ब्रज सरवर जल जलज खिलि।
जान्यौ बृंदाबन रूप 'हरिदास, व्यास, हरिबंस' मिलि॥

परम ज्ञानी उद्धव ने भी गोपियों से प्रेम की दीक्षा लेकर गोपी-भाव ग्रहण किया था। गोपियों के मन, प्राण सब कुछ श्री कृष्ण के हैं। वे श्रीकृष्ण के सिवा अन्य किसी को नहीं जानतीं। उनका जीवन श्रीकृष्ण-सुख के लिए है। माधुर्य-भाव की इस अनन्य उपासना में केवल श्रीकृष्ण (ब्रह्म) को पुरुष और समस्त सृष्टि को स्त्री माना गया है।

इस संबंध में उसी काल का एक आख्यान बहुत ही प्रसिद्ध है वृंदावन के जीव गोस्वामी किसी स्त्री का मुख नहीं देखते थे। अकस्मात् मीराबाई जब वृंदावन गई और वे गोस्वामीजी से भेंट करने पहुँचीं, तो उक्त कारण से जीव गोस्वामी ने उनसे मिलना स्वीकार नहीं किया। मीराबाई ने उनके पास यह प्रश्न भेजा कि क्या श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कोई और पुरुष भी है? यदि नहीं, तो एक स्त्री को दूसरी स्त्री से मिलने में क्या संकोच है? इस प्रश्न का जीव गोस्वामी से उत्तर न बन पड़ा और वे शीघ्र ही मीराबाई से मिलने के लिए बाहर आ गये। मीराबाई कांता भाव से श्रीकृष्ण की पूजा करती थीं।

स्वामी हरिदास जी लगभग में २५ वर्ष की अवस्था में वृंदावन आये। युगल-स्वरूप के उपासक और निकुंज-लीला के प्रेमी श्री श्यामा जी के ठाकुर श्री कुंजविहारी जी हैं। ये ब्रज के अन्य स्थानों में संबंधित कृष्ण की अपेक्षा वृंदावन विहारी की आराधना करते थे, क्यों कि श्रीकृष्ण की लीलाओं में ब्रज के अन्य स्थानों में माता-पिता आदि के संयोग से प्रिया और प्रियतम में कुछ समय के लिए वियोग रहता है। इस प्रकार की भावना से माधुर्य रस में वे पगे थे। प्रसिद्ध गायक तानसेन के गुरु यही थे और बादशाह अकबर वेश बदल कर उनका संगीत सुनने आया था।

श्री हितहरिवंशजी सं० १५९०† में वृंदावन आये। श्री राधावल्लभ जी की मूर्ति वहाँ स्थापित कर उन्होंने श्री हितराधावल्लभीय संप्रदाय की स्थापना किया। स्वकीया-परकीया, विरह-मिलन एवं स्व-पर-भेद रहित नित्य विहार रस ही हितहरिवंश जी का इष्ट तत्व है।

यद्यपि श्रीहरिराम व्यासजी द्वारा भी हरिव्यासी संप्रदाय का स्थापित होना कहा जाता है, तथापि लेखक की सम्मति के अनुसार उन्होंने कोई निज का संप्रदाय नहीं चलाया। इस विषय का विवेचन इसी पुस्तक में 'भ्रांतियों का निराकरण' नामक प्रसंग में किया गया है।

उस समय के कृष्ण पूजा के संप्रदाय-प्रवर्तकों ने केवल साधन अथवा भक्ति और पूजा-विधि पर ही अधिक बल दिया, दार्शनिक सिद्धांत पक्ष में उन्होंने संकेत मात्र ही किया था। अखिल भारतीय श्री हितराधा-वल्लभीय वैष्णव महासभा वृंदावन द्वारा प्रकाशित व्यास-वाणी की प्रस्तावना में तथा श्रीहित सुधासागर (गुजराती) की विज्ञप्ति में श्रीहिताचार्य का सिद्धांत 'सिद्धाद्वैत' लिखा गया है। संप्रदाय प्रवर्तक अथवा उनके

---

† कोई कोई उनका वृंदावन आगमन काल सं० १५६५ वि० मानते हैं

समकालीन भक्तों और अनुयायियों द्वारा सांप्रदायिक दार्शनिक सिद्धांतों पर विवेचनात्मक ग्रंथ न होने के कारण इस वाद का स्पष्टीकरण नहीं होता‡ और यही कारण है कि ऐसे संप्रदायों को कभी-कभी उनके पूर्ववर्ती अनुरूप दार्शनिक सिद्धांतों के अंतर्गत ही मान लिया जाता है।

विक्रम की १६ वीं और १७ वीं शताब्दी में भारत पर मुसलमानों का शासन था, तथा इतने अधिक धर्म और मत-मतांतरों का यहाँ प्रचलन था कि उनका सूक्ष्म परिचय देना भी असंभव सा है। किंतु उस समय को वैष्णव धर्म और हिंदी साहित्य के सृजन की दृष्टि से देखने पर स्वर्ण युग कहा जा सकता है। वृंदावन में अनेकों भक्तों ने अपनी उपासना के द्वारा मानव हृदय पर अधिकार किया। उनकी साधना का एक अंग पद-रचना भी हो गया। इससे उनकी वाणी के द्वारा हिंदी साहित्य की भी अपार श्री-वृद्धि हुई।

यद्यपि जन साधारण को संस्कृत का ज्ञान न था, तब भी पहिले के धर्म-प्रचारक अपने सिद्धांतों के प्रतिपादन में ग्रंथों की रचना संस्कृत में ही करते चले आते थे। हिंदी भाषा में ग्रंथ लिखना उस समय के विद्वान अपने स्वाभिमान के विरुद्ध समझते थे†। इससे जन साधारण में

‡ रीवा नरेश महाराजा विश्वनाथसिंह (राज्यकाल सं० १८९० से सं० १९११ तक) द्वारा किये गये वेदांत सूत्र पर राधावल्लभीय भाष्य लेखक ने रीवा नरेश के सरस्वती भंडार (बस्ता नं० १४,पुस्तक संख्या ५१) में देखा है। पुष्पिका में 'राजाबहादुर' शब्द के प्रयोग से इसका रचना काल सं० १८९० के पूर्व का सिद्ध होता है। २३३ पत्र संख्या (लगभग ५८०० श्लोक) के कलेवर के इस ग्रंथ पर इस विषय के विद्वानों का ध्यान आकर्षित होना चाहिये। इस ग्रंथ की सं० १९०४ में लिपिबद्ध एक प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है—'इति श्रीमद्भगवतावतार वेदार्थ निर्णायक श्रीमद् वेद-वेदांताचार्य श्रीमद्वेदव्यास कृत वेदांत सूत्राणां सिद्धि श्री महाराजधिराज श्री महाराजा श्री राजा श्री राजाबहादुर श्री सीतारामचंद्र कृपापात्राधिकारी श्री विश्वनाथसिंह जू देव कृत श्री राधावल्लभीयमत प्रकाशक भाष्ये चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थ पादः ४ चतुर्थाध्यायश्च सिद्धः (ज्येष्ठ शुक्ल ९ स १९०४) ।'

† हिंदी साहित्य के आचार्य महाकवि केशवदास जी ने कविप्रिया (रचनाकाल सं० १६५८ वि०) में अपने लिए भाषा कवि होने में हीनता व्यक्त की है—

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास ।
भाषा-कवि भो मंदमति, तेहि कुल केसवदास ॥

उनके सिद्धांतों का पूर्ण रूप से प्रचार नहीं हो पाता था। किंतु इस युग के वैष्णव संतों ने मधुर गेय पदों द्वारा आनंदकंद श्रीकृष्ण और उनकी आल्हादिनी शक्ति श्री राधिका जी की रूप-माधुरी का गान कर जनता को अपनी ओर आकृष्ट किया। उन्होंने अपने सिद्धांत और उपदेशों को भी पदों और दोहों आदि स्मरणीय छंदों में तत्कालीन लोक भाषा में ही प्रकट किया।

गीत-गोविंद के रचयिता महाकवि जयदेव द्वारा प्रेम संगीत की जिस सरिता का उद्गम १२वीं शताब्दी में प्रकट हुआ था, उसमें रस-मग्न कर देने के लिए १६ वीं और १७ वीं शताब्दी के भक्त कवियों ने सब कुछ छोड़कर प्रेम नदी के प्रवाह को बढ़ाने में अपने मधुर गीतों द्वारा पूर्ण योग दिया। इन भक्तों ने प्रेम तत्व का बड़े विस्तार के साथ निरूपण किया और वे स्वयं उसमें इतने मग्न हो गये कि उनको संसार की किसी अन्य स्थिति का ध्यान ही न रहा। इसका प्रधान कारण था भक्ति के आलंबन के लिए श्री कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति का चुनाव।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के उपासक भक्त उनके मर्यादित चरित्रों के चित्रण में आदर्श और अनुकरणीय व्यवहार की लीलाओं का गान कर चरित्र-निर्माण की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करते थे। महाकवि तुलसीदास उनमें शिरोमणि हैं।

किंतु जहाँ कृष्ण-भक्ति शाखा के भक्त कवियों पर आचार्य रामचंद्र जी शुक्ल आदि द्वारा साधारणतया यह दोषारोपण किया गया है कि वे अपने रंग में मस्त रहने वाले जीव थे, तुलसीदास के समान लोक संग्रह का भाव उनमें न था†, वहाँ श्री हरिराम जी व्यास के लिए उन्होंने लिखा है कि 'इनकी रचना परिमाण में भी बहुत विस्तृत है और विषय भेद के विचार से भी अधिकांश कृष्ण भक्तों की अपेक्षा व्यापक है। ये श्री कृष्ण की बाल लीला और शृंगार लीला में लीन रहने पर भी बीच बीच में संसार पर भी दृष्टि डाला करते थे। इन्होंने तुलसीदास जी के समान खलों, पाखंडियों आदि का भी स्मरण किया है और रस गान के अतिरिक्त तत्व निरूपण में भी ये प्रवृत्त हुए हैं‡।

† हिंदी साहित्य का इतिहास (शुक्ल) पृष्ठ १६४

‡ हिंदी साहित्य का इतिहास (शुक्ल) पृष्ठ १६०

३. सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति—

तेरहवीं शताब्दी से भारत पर मुसलमानों का शासन प्रारंभ हो गया था। उन्होंने राज सत्ता के बल पर अपने धर्म का प्रचार किया। हिंदुओं के मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ तथा उन्हें बलात् अथवा भौतिक सुविधाओं एवं प्रलोभनों से अपने धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य कर उन्होंने अपने धर्मानुयायियों की संख्या में तो वृद्धि की, किंतु वे नये मुसलमान अपनी हिंदू रीति-रिवाजों पर पूर्ववत् चलते रहे। हिंदुओं पर इस प्रकार के अत्याचारों ने शासक और शासित में प्रेम भाव ही उत्पन्न न होने दिया। विवशता के पाश में फँसे हुए उन निस्सहाय प्राणियों को केवल भगवान् का भरोसा था। वे मंदिरों में उनके उत्सव के गीत गाकर आनंद तो मना लेते थे, पर हृदय में उत्साह और गौरव को स्थान न था।

मुगलों का साम्राज्य स्थापित होने पर कुछ समय के लिए यह धर्मांधता कम हो गई। काव्य, संगीत, ललित कलाओं की उन्नति होने लगी। विलास की ओर भी जन-रुचि बढ़ी। उसे रोकने के लिए तत्कालीन नेता और आचार्यों को सतर्क होना पड़ा।

मुसलमानों में जाति-पाँति का बंधन न था। किंतु हिंदुओं में व्यवसाय और स्थान के आधार पर जो जातियाँ रूढ़िगत बन गई थीं, उन्होंने अपना-अपना एक ऐसा संगठित रूप धारण कर लिया था कि उससे किसी व्यक्ति का बहिष्कृत कर दिया जाना ही कठिनतम दंड था†। अपनी ही जाति एवं उपजाति के अंतर्गत विवाह संबंध की परिधि थी, और बाल विवाह की प्रणाली प्रचलित थी। सती-प्रथा पर समाज को गौरव था। उत्तरी भारत के गृहस्थ लोग नंगे सिर बाहर जाना असभ्यता मानते थे। कन्या की अपेक्षा पुत्र-जन्म पर विशेष आनंदोत्सव किया जाता था।

प्रतिष्ठित मुसलमानों के घर पर्दा की प्रथा के अनुकरण तथा सत्ताधारियों द्वारा बलात् सतीत्व नष्ट कर देने की आशंका से बचने के लिए हिंदुओं में भी पर्दा प्रथा आ घुसी।

ब्राह्मणों का प्रभाव कम नहीं हुआ था। त्यागी ब्राह्मण सिले हुए वस्त्र व्यवहार में नहीं लाते थे। उनके प्रति जनता की श्रद्धा थी। पंद्रहवीं

---

† "सब तें कठिन जाति अपमाना।"

—गोस्वामी तुलसीदास

और सोलहवीं शताब्दी में भारत में मुगल साम्राज्य के स्थापित हो जाने पर हिंदुओं को कुछ शांति मिली। उनकी सामाजिक व्यवस्था में कोई अंतर नहीं आया। अकबर के समय में जिन्होंने इस्लाम को स्वीकार किया, उन्होंने भय से नहीं, वरन अधिकांशतः भौतिक उन्नति की आशा और प्रलोभन से। विलासता के प्रति आकर्षण भी एक इसका एक कारण बना।

४. साहित्यिक वायु-मंडल—

भक्ति-काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना गया है। संतों की निर्गुण ब्रह्मोपासना तथा भक्तों की साकार पूजा ने जिस साहित्य का निर्माण किया, उससे धर्म, दर्शन, काव्य एवं लोक-जीवन सभी पुष्ट हुए। भक्ति के साथ-साथ काव्य-कला की महत्वपूर्ण निधि उसी काल में एकत्रित हुई। अनपढ़ व्यक्ति और महान दार्शनिक तत्ववेत्ता सभी भक्ति और तत्संबंधी काव्य में केवल रसलीन ही नहीं हुए, वरन उन्होंने स्वयं उसकी वृद्धि में यथा शक्ति योग दिया।

नामदेव, कबीर और रैदास आदि की संत-वाणी, कुतबन और मलिक मुहम्मद जायसी आदि सूफी कवियों की प्रेम-गाथाओं को बड़े चाव से सुना गया था। १६ वीं और १७ वीं शताब्दी में गोस्वामी तुलसीदास जी जैसे रामभक्ति-काव्य के आदर्श प्रणेता, सूरदास आदि कृष्ण-प्रेम संगीत के साहित्य-सागर साकार उपासना के भावों में भक्तों को आनंदित करने लगे। हिंदी के प्रेमियों को अभी तक उस युग के पूरे साहित्य का आवश्यक परिचय ही नहीं हो पाया है। सांप्रदायिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत सामुदायिक रूप में उस युग की 'अष्टछाप' नाम से एक व्यवस्थित मंडली की सूचना तो मिलती है, किंतु यह भी अनुमान किया जा सकता है कि एक दूसरे के अधिक निकट संपर्क में रहने वाले भक्त कवियों की भी स्वाभाविक रूप से संगठित कुछ ऐसी मंडलियाँ रही होंगी, जिनकी गोष्ठियों से समय को साहित्य-सृजन के लिए प्रेरणा मिली। भक्ति, संगीत और काव्य के अधिकारी तीन प्रमुख महात्माओं की मंडली का, जिसे हम 'हरित्रयी' कह सकते हैं, उसी समय आविर्भाव हुआ था।

५. हरित्रयी—

गीत गोविंद के प्रणेता भक्त कवि जयदेव ने जिस संगीत लहरी को विक्रम की १२ वीं शताब्दी में उठाया था, उसकी गूँज ब्रजभाषा कवियों द्वारा ४-५ सौ वर्ष के अनंतर प्रतिध्वनित हुई। १६ वीं शताब्दी में श्री ने पुष्टि मार्ग की स्थापना की, और अपने संप्रदाय में

श्री कृष्ण के बाल स्वरूप की उपासना को प्रधान रूप से प्रतिष्ठित किया। उनके शिष्यों में कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास अच्छे कवि और संगीतज्ञ थे। श्री वल्लभाचार्य जी के परमधाम गमन के उपरांत संवत् १६०२ में उनके पुत्र गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी ने श्रीनाथ जी की आठ झाँकियों में नियमित कीर्तन के लिए उक्त चार कवियों में अपने चार शिष्य कवि और सम्मिलित कर अष्टछाप की स्थापना की†। अष्टछाप के उन कवियों ने हिंदी साहित्य को रस पूर्ण बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया, किंतु अष्टछाप के वे सदस्य मनोनीत थे।

पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त कृष्णोपासना के अन्य संप्रदाय वाले ऐसे कितने ही भक्त कवि थे, जिनकी काव्य-रचना के लिए हिंदी साहित्य चिर ऋणी रहेगा। जिस प्रकार अष्टछाप की एक व्यवस्थित मंडली निर्धारित कर दी गई थी, वैसी योजना अन्य संप्रदायों में प्रकट रूप से नहीं पाई जाती, तथापि श्री ठाकुर जी की सेवा और उत्सवों में गायन के लिए सभी संप्रदायों के भक्त कवि अपने मधुर स्वरों में पद-गान करते थे। कृष्ण भक्ति साहित्य के उन प्रणेताओं में हरिवंश गोस्वामी, हरिराम व्यास, हरिदास स्वामी, ध्रुवदास, गदाधर भट्ट, श्री भट्ट, सूरदास मदनमोहन एवं मीराबाई आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री हित हरिवंशजी गोस्वामी कृष्ण की वंशी के अवतार माने जाते हैं। उनकी सरस एवं प्रौढ़ पद रचना है भी बड़ी मधुर और हृदय को आनंदित कर देने वाली। उनके काव्य से पता चलता है संगीत पर भी उनका अच्छा अधिकार था। उन्होंने श्री कृष्णोपासना की एकमात्र माधुर्य भक्ति को बताने वाला श्री हित राधावल्लभीय मार्ग को प्रकाशित किया तथा अपने समय के कवियों को राधा को प्रधानता देने वाले साहित्य के सृजन में प्रोत्साहित किया। उनके अनेक शिष्य हुए, जिन्होंने उनके सिद्धांतों के अनुसार विचारधारा को व्यक्त कर मधुर साहित्य के विस्तार को बढ़ाया।

उस समय कृष्ण-पूजा के सभी संप्रदायों में श्रीमद् भागवत के अनुसार माधुर्य भाव की उपासना का समावेश हो चुका था, तथापि यह मानना होगा कि राधा को उपासना क्षेत्र में श्रीकृष्ण से अधिक महत्व देने वाले विचारों का प्रचार उन्होंने ही सम्यक् रीति से किया एवं साहित्यकारों और भक्तों को इस प्रकार के साहित्य-सृजन के लिए प्रोत्साहित किया।

---

† 'अष्टछाप परिचय' पृष्ठ ३४

वल्लभाचार्य जी द्वारा भी मधुर भक्ति को पुष्टिमार्ग में मान्य तो कहा गया था, किंतु उनकी प्रधान उपास्य बालकृष्ण की ही थी। अतएव अष्टछाप के कवियों पर तत्कालीन माधुर्य साहित्य के लिए हरिवंश का भी कुछ प्रभाव स्वीकार करना पड़ेगा।

वल्लभ संप्रदायी वार्ताओं में पुष्टिमार्गीय भक्तों के चरित्र गौरव पूर्ण रीति से कहे गये हैं। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में भी हितहरिवंश जी एवं हरिदास जी आदि द्वारा अष्टछाप के वयोवृद्ध कवि कुंभनदास को राधा संबंधी पद-गान के लिए सम्मानित किये जाने की सूचना प्राप्त होती है†।

महात्मा हरिदास स्वामी स्वयं एक उच्च कोटि के कवि थे, किंतु उससे भी अधिक वे थे संगीतज्ञ। अकबरी दरबार का सर्वश्रेष्ठ गायक

---

† "और एक समय वृन्दावन के संत महंत कुंभनदास जी सों मिलिबे को श्री गिरिराज पे आये। सो यातें आये जो जानें, जो इनसों श्री नाथ जी साक्षात बोलत हैं। और कुंभनदास जी श्री स्वामिनी जी को बधाई गावत हैं, तासों इनसों मिलि के पूछें जो श्री स्वामिनी जी को वर्नन कछू किये हैं। देखें जो कुंभनदास जी कैसो वर्नन करत हैं? सो यह विचार के हरिवंस, हरिदास प्रधान महंत-स्वामी आय कुंभनदास जी सों मिलि के पूछे जो कुंभनदास जी तुमने युगल स्वरूप के कीर्तन किये हैं, सो हमने तिहारे कीर्तन बहोत सुने, परि कोई श्री स्वामिनी जी को कीर्तन नाहीं सुन्यो, तासों आप कृपा करिके कोई पद श्री स्वामिनी जी को सुनावो। तब कुंभनदास जी ने श्री स्वामिनी जी को एक पद करिके उनको सुनायो पद— राग रामकली—'कुँवरि राधिके! तुव सकल सौभाग्य सींवा, या वदन पर कोटि सत चंद वारि डारौं।' यह पद कुंभनदास जी ने गायो सो सुनिके श्रीवृंदावन के संत महंत बहोत प्रसन्न भये। और कहे जो हमने श्री स्वामिनी जी के पद बहोत किये हैं। तामें चंद्रमा आदि की उपमा दीनी ही है। और कुंभनदास जी ने तो सत-कोटि चंद्रमा वारि डारे हैं। तासों कुंभनदास जी की श्री स्वामिनी जी आगे जगत में कोऊ उपमा देवे योग्य नाहीं [दीसत] सो या प्रकार अद्भुत स्वरूप को वर्नन किये हैं। ता पाछें कुंभनदास जी सों बिदा होय कें फिरि वृंदावन में आये। सो ये कुंभनदास जी किसोर भावना, लीला रस में मग्न रहते। सो ऐसे कृपापात्र भगवदीय हैं।"

—चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस, मथुरा) के अंतर्गत
अष्टछाप की वार्ता पृष्ठ ७४—७५

तानसेन के यह संगीत गुरु थे। उनके संगीत की कीर्ति सुनकर अकबर बादशाह का भेष बदल कर तानसेन के साथ उनके दर्शनार्थ आना बड़ी प्रसिद्ध घटना है। वे अत्यंत निस्पृह और सिद्ध भक्त प्रसिद्ध हैं। माधुर्य-भाव की उपासना को लेकर उन्होंने भी साधना का एक मार्ग प्रदर्शित किया, जो बाद में हरिदासी संप्रदाय कहलाया।

स्वामी हरिदास जी ने बड़े उत्कृष्ट भावों से पूर्ण पदों को लिखा। उनके पद राग-रागिनियों की संगीत लहरी के द्वारा झंकृत हुए थे।

हरिराम व्यास ने किसी संप्रदाय की स्थापना तो नहीं की, किंतु अपने आदर्श आचरण द्वारा रसिकानन्य धर्म की रीति को पुष्ट बनाया। उन्होंने अपने संगीतमय काव्य से न केवल उपासना और सद्व्यवहार की शिक्षा दी, वरन् हिंदी साहित्य की वृद्धि करने में एक महत्वपूर्ण योग दिया। लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत उनका काव्य मर्यादा और माधुर्य का साथ-साथ निर्वाह करता है। एक ओर तो वे राधाकृष्ण की विहार लीला का आनंद लेते हैं और दूसरी ओर संसार के दोषों को भी दूर करने में संलग्न हैं। भाषा, भाव और कला की दृष्टि से भी उनका काव्य प्रौढ़ है। उनकी शिष्य परंपरा में भी अनेकों कवि हुए, जिन्होंने हिंदी साहित्य की श्री वृद्धि की।

व्यास जी को रास लीला से विशेष प्रेम था और वृंदावन में रासोत्सव की योजनाओं में उनका मुख्य स्थान था। इस प्रकार नाट्य, संगीत, नृत्य, काव्य आदि ललित कलाओं के वे ज्ञाता थे। उनके देव नामक एक शिष्य ने 'देव माया प्रपंच नाटक' की रचना की, जो ६ अंकों में समाप्त हुआ†। हिंदी के नाटकों में कदाचित् यह सर्व प्रथम नाटक है।

व्यास-वाणी में एक पद है, जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा ललिता सखी से मानिनी राधा को मनाने के लिए निवेदन किया गया है। इस कथन में राधा और कृष्ण के मिलन से उनके तीन भक्तों को आनंद प्राप्ति का सुंदर संकेत है—

> ललिता ! राधाहिं नैंकु मनाइ दै।
> मेरे तीन जाचकनि, पाँच पदारथ बेगि गनाइ दै॥

ये 'तीन जाचक' हैं कौन ? निस्संदेह हरिवंश गोस्वामी, हरिदास स्वामी और स्वयं हरिराम व्यास, जिनकी वाणी के कितने ही पदों में

† खोज रिपोर्ट १९०४ ई०, सूचना संख्या ७५.

पूर्वोक्त दोनों भक्ताचार्यों के व्यक्तित्व, संगीत और भक्ति-भाव का स्मरण किया गया है। इससे प्रकट है कि रसिकों की यह 'हरित्रयी' सामूहिक रूप से भक्ति, काव्य और संगीत की मधुर प्रेरणा दे रही थी। गुरु-शिष्य वंशावली में भक्ति को प्रकट करने के लिए इन तीनों महात्माओं के अवतार धारण करने की बात लिखी है—

आयसु सीस जु धार कैं, कल रूप यह कीन।
हरिवंशी, हरिदास जी, प्रगटे व्यास प्रवीन॥

'लोकेन्द्र ब्रजोत्सव' में भी तीन रसिक में इन्हीं तीन भक्तों का अभिप्राय स्पष्ट किया गया है—

इक दिन गए रास मंडल में, रसिक तीन ही संगहि।
श्री स्वामी हरिदास, दूसरे हित हरिवंश उमंगहि॥
तीजे व्यास सुवन, जिन पाये स्याम किसोर बिहारे।
देखी रहस, भयौ सुख अद्भुत, करुणासिंधु निहारे॥

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने इन्हीं तीन भक्तों की उपासना-साम्य को प्रकट करते हुए कहा है कि—

जग दान चलायौ भक्ति कौ, ब्रज रसमय गत अगम लिखि।
जान्यौ वृंदावन रस हरिदास, व्यास, हरिवंश रसिक॥

—उत्तरार्द्ध भक्तमाल

भगवत रसिक ने अपनी 'भक्त-नामावली' में इन्हें एक ही क्रम से स्मरण किया है। नाभादास जी की 'भक्त माल' में भी उक्त तीनों भक्तों के परिचयात्मक स्वतंत्र छप्पय एक ही क्रम में लिखे गये हैं। इस प्रकार के अन्य ग्रंथों में भी हम यही संकेत पाते हैं कि माधुर्य-भाव की प्रचारिका इस 'हरित्रयी' में एक स्वाभाविक मेल था तथा इसके द्वारा भक्ति काव्य में महत्वपूर्ण साहित्य की वृद्धि हुई। हरित्रयी के सदस्य अपने समय के सर्वोत्कृष्ट कवि और संगीतज्ञों में से थे। उपर्युक्त 'अष्टछाप' और 'हरित्रयी' के वर्गों के अतिरिक्त अन्य भक्त कवि भी व्यक्तिगत रूप से साहित्य कोष को सरस रचनाओं से भर रहे थे।

द्वितीय अध्याय

अध्ययन के सूत्र

★

यों तो प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में कितने ही ग्रंथों से सहायता ली गई है, परंतु इस अध्याय में केवल उन ग्रंथों के परिचय दिये गये है, जो या तो बहुत प्राचीन और अप्रकाशित है या व्यास जी संबंधी चर्चा उनमें किसी न किसी महत्वपूर्ण विषय पर प्राप्त होती है। कहना न होगा कि ऐसे ग्रंथो के रचना-काल की सम्यक् जानकारी उनमें दिये गये साक्ष्य के मूल्य को अंकित करने में अपना प्रमुख स्थान रखती है। इसी ध्येय से इन ग्रंथों के रचना-काल पर भी विचार प्रकट किये गये हैं।

साथ ही ग्रंथ की मान्यता के संबंध में भी प्रसंग वश जो सामग्री दृष्टि में आ पड़ी है, उसकी भी थोड़ी-बहुत चर्चा यथा स्थान कर दी गई है।

१. भक्तमाल (श्री नाभादास कृत)—

श्री नाभादास जी रामानंदी संप्रदाय के वैष्णव थे। उनका वास्तविक नाम नारायणदास था और वे जाति के डोम थे। उन्होंने भक्तमाल में १९७ छप्पय भक्तों के चरित्र वर्णन में लिखे हैं[१]। यद्यपि भक्तमाल में उसके रचनाकाल का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, तथापि खोज रिपोर्ट सन् १९१७-१९ की सूचना संख्या ११७ में इस ग्रंथ का रचना-काल संवत १६५२ लिखा गया है। आचार्य रामचंद्र जी शुक्ल भी इसका रचना-काल संवत १६४२ के पश्चात् मानते हैं[२] और लिखते हैं कि श्री नाभादास जी संवत् १६५७ के लगभग वर्तमान थे, तथा गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु[३] के बहुत पीछे तक जीवित रहे। अतः श्री नाभादास जी श्री व्यास जी के समकालीन थे और अपने जीवन के उत्तर-काल में वृंदावन में रहते थे।

[१] ये छप्पय संख्या एक निजी प्राचीन हस्तलिखित प्रति के अनुसार है

जी के तृतीय पुत्र श्री गोपीनाथ जी का शिष्य लिखा है, तथा श्री हित ध्रुवदास जी को संवत् १६०० में अपने गुरुदेव श्री गोपीनाथ जी की आज्ञा से श्री देवबननगर (देवबंध) से श्री वृंदावन धाम आकर निवास करना प्रकट किया है। किंतु उस लेख में सं० १६०० का निर्देश किस आधार पर है यह नहीं बतलाया गया। ध्रुवदासजी के असली नाम का भी पता नहीं है। यह कहा जाता है कि उनमें पांच वर्ष की अवस्था में ही भगवद्भक्ति के प्रति लगन उत्पन्न हो गई थी और तभी उन्होंने घर छोड़ दिया था। अल्पायु से ही इस वैराग्य के कारण उनका ध्रुवदास नाम पड़ा। यदि इस किंवदंती के साथ उक्त सं० १६०० का मिलान किया जावे तो उनका जन्म सं० १५९५ के लगभग बैठता है।

श्री वियोगी हरि जी उनका जन्म सं० १६५० के लगभग अनुमान करते हैं†, किंतु यह असंभव है, क्यों कि श्री ध्रुवदास जी ने अपने रसानंद नामक ग्रंथ में उसका रचना काल यही संवत् १६५० स्पष्ट रूप से प्रकट किया है§—

"रसानंद याकौ नाम कहावै। कहत सुनत आनंद रस पावै॥
संवत् सौ षोडस पंचासा। बरनत जस ध्रुव जुगल विलासा* ॥"

श्री ध्रुवदासजी ने ४२ ग्रंथों के अतिरिक्त फुटकर पद्य भी लिखे जो उनकी पद्यावली के नाम से श्री बयालीस लीला के परिशिष्ट रूप में संकलित किये गये हैं। उनके केवल पाँच ही ग्रंथों में रचना काल का संवत् उपलब्ध है, अतः शेष ३७ ग्रंथों में से कुछ तो अवश्य ही रसानन्द के पूर्व लिखे गये होंगे।

रसानंद की १८१ वीं चौपाई में श्री ध्रुवदास जी ने लिखा है कि "यह रस तौ मन ही में राख्यो। भक्ति हीन सों कबहूँ न भाष्यो॥" इस प्रकार का उल्लेख एक वयस्क और अनुभव पुरुष से ही अपेक्षित है। इससे यह परिणाम निकलता है कि रसानंद लीला की सं० १६५० में रचना के पूर्व श्री ध्रुवदास जी ने काफी समय तक रचनाभ्यास किया था। इसके साथ ही उनके दूसरे ग्रंथ "रहस्य-मंजरी" के रचना-काल

---

† ब्रजमाधुरी सार, पृष्ठ १५९-१६०

§ खोज रिपोर्ट सन् १९०९-११ में भी श्री ध्रुवदास जी कृत रसानंद का रचना काल संवत् १६५० सूचित किया गया है।

* बयालीस लीला में संकलित 'रसानंद लीला' पृ० २९६ से उद्धृत

सं० १६६८ पर दृष्टि रखते हुए उनका जन्म संवत् १५६५ के पूर्व अनुमान करने में संकोच होता है, क्यों कि इस अनु "रहस्य-मंजरी" उनकी १०३ वर्ष की आयु में लिखी गई र है, जो साधारणतया कठिन है। फिर भी रचना-काल के इन प्रा और वर्णन की प्रौढ़ता के कारण उनका जन्म सं० १६१० वि० मानना ही होगा।

जिन पाँच ग्रंथों में रचना-काल का उल्लेख मिलता संबंधित उद्धरण† नीचे दिये जाते हैं—

१—रसानंद (संवत् १६५०)

रसानंद याको नाम कहावै । कहत सुनत आनंद रस
संवत् सौ षोडस पचासा । बरनत जस ध्रुव जुगल विल

२—प्रेमवाली (संवत् १६७१)

हित ध्रुव मह्ई प्रेमावली, सुनत जुगल दम्पति ।
सोलह मैं इकहत्तरा, श्री वृंदावन माहिं ॥

इस दोहा से ध्रुवदास जी का वृंदावन में निवास होता है।

३—सभा मंडल (संवत् १६८१)

मंडल सभा सिंगार, सोलह सै इक्यासिया ।
सकल रसनि को सार, हित ध्रुव बरनै मधा मति ॥

४—श्री वृंदावन सत* (संवत् १६८६)

सोलह सै छ्यासिया, पून्यौ अगहन मास ।
यह प्रबंध पूरन भयौ, सुनत होत अघ नास ॥

५—रहस्य मंजरी‡ (संवत् १६९८)

सहस्र मैं है उन अरु अगहन पछि उज्यार ।
दो चौपाई कही ध्रुव, इकसत ऊपर चार ॥

---

† ये सभी उद्धरण बयालीस लीला से लिये गये हैं।

* खोज रिपोर्ट सन् १९०९-११ में 'श्री वृंदावन सत' का रचना-१६८२ प्रकट किया गया है। लेखक के संग्रहालय में प्राचीन दो प्रतियाँ इस ग्रंथ की हैं। उनमें से एक प्रति के अनुसार सं० १६५७ तथा दूसरी के अनुसार सं० १६५८ वि० है।

‡ 'रहस्य मंजरी' का रचना-काल खोज रिपोर्ट सन् १९०९-११ प्रकट किया गया है

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि श्री ध्रुवदासजी का कविता-काल संवत १६५० से लेकर संवत् १६६८ के समय तक से कम नहीं है। साधारणतया १६३० विक्रमी से १७०० तक उनका कविता-काल माना ही जाना चाहिए और इस प्रकार उनका निधन-काल संवत् १७०० के लगभग आता है, जो 'रहस्य मंजरी' के रचना-काल संवत् १६६८ के दो वर्ष उपरांत अनुमानित किया गया है। श्री रामचंद्र शुक्ल ध्रुवदास जी के विषय में लिखते हैं—

'ये हित हरिवंश जी के शिष्य स्वप्न में हुए थे। इसके अतिरिक्त इनका कुछ जीवन-वृत्त नहीं प्राप्त हुआ है। ये अधिकतर वृंदावन मे ही रहा करते थे। इनकी रचना बहुत ही विस्तृत है। नाभा जी के भक्त-माल के अनुकरण पर इन्होंने भक्त नामावली लिखी है, जिसमें अपने समय तक के भक्तो का उल्लेख किया है। इनकी कई पुस्तकों में संवत् दिये हैं, जैसे सभामंडली १६८१, वृंदावनसत १६८६ और रसमंजरी १६९८. अतः इनका रचना काल १६६० से १७०० तक माना जा सकता है* ।'

ज्ञात होता है कि रसानंद लीला के रचना-काल की सूचना न होने के कारण ही आचार्य शुक्ल जी ने इनका रचना-काल संवत १६६० से १७०० तक अनुमान किया है, जो उपयुक्त नहीं है।

श्री वियोगी हरि के मत से श्री ध्रुवदास जी ने अपनी भक्त-नामावली मे सं० १७३५ तक के भक्तों का वर्णन किया है और इस आधार पर वे उनका गोलोक वास संवत १७४० के लगभग मानते हैं। किंतु ऊपर लिखे गये तर्क के आधार पर उनका जन्म संवत् १५६५ वि० के लगभग मान लेने पर उनका निधन-काल भी सं० १७०० वि० के लगभग ही मानना ठीक होगा। इन अनुमानों पर भी उनकी आयु १०५ वर्ष हो जाती है। जिन भक्तों की प्रसिद्धि श्री वियोगी हरि जी के अनुसार १७३५ मे हुई, उनकी भक्ति का ज्ञान श्री ध्रुवदास जी को प्रारंभिक अवस्था में ही हो गया होगा, और तभी भक्त-नामावली में उनके नामों का समावेश कर दिया गया होगा। इससे इतना अवश्य प्रकट होता है कि भक्त-नामावली श्री ध्रुवदास जी द्वारा लिखे गये ग्रंथों मे अंतिम काल की रचनाओं में से एक है। जिन ग्रंथों मे संवत दिये गये हैं, उनमें सबसे अंतिम रचना-काल संवत १६६८ है। अतः उक्त विवेचन के अनुसार इसी संवत् के लगभग भक्त नामावली के रचना-काल का अनुमान करना चाहिए।

---

* हिंदी साहित्य का इतिहास (शुक्ल) पृष्ठ १६४

श्री पद्मावती शबनम द्वारा रचित "मीरा, एक अध्ययन" नामक पुस्तक में श्री भक्तनामावली का रचना-काल संवत् १६८८ वि० माना गया है$, किन्तु ऐसा प्रकट करने का उसमें कोई आधार नहीं बतलाया गया। श्री वृंदावन-आगमन के समय से श्री ध्रुवदास जी श्री हित जी महाराज के ही स्थान पर रहे और वहीं उन्होंने शरीर त्याग किया†। प्राचीन ग्रंथों में ऐसा लेख मिलता है कि श्री हित जी जब वृंदावन आये तो उनको मंदिर और निवास आदि के लिए भूमि देने के लिए ब्रजवासियों ने एक तीर कमान देकर यह कहा कि जहाँ तक आपका तीर जाय, उतनी भूमि आप ले लें। वह तीर चीर घाट तक गया‡। इससे श्री ध्रुवदास जी का चीर घाट के आसपास ही रहना प्रकट होता है, और श्री व्यास जी भी चीरघाट पर रहते थे, जिसका उल्लेख स्वयं उन्होंने अपनी वाणी में किया है*।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ध्रुवदास जी व्यास जी के न केवल समकालीन कवि और महात्मा थे, वरन् वे व्यास जी के बहुत ही निकट संपर्क में रहते थे, जिसके कारण उनकी श्री व्यास जी के विषय में प्रकट की गई सम्मति उत्तम कोटि का प्रमाण स्वीकार करने योग्य है।

३. रसिक अनन्य माल (भगवत् मुदित जी कृत)—

हस्त लिखित हिंदी पुस्तकों की खोज रिपोर्ट सन् १९०९-११ में नोटिस संख्या ७३ (सी) पर भगवत मुदित जी कृत रसिक अनन्य माल की

$ देखिये 'मीरा, एक अध्ययन' (लोक सेवक प्रकाशन, बनारस) पृष्ठ ७२ तथा पृ० २१८

† "ध्रुवदास जी महाराज इस ग्रंथ के परिपूर्ण होने पर श्री रासमंडल में, जहाँ श्री हितहरिवंश चंद्र महाप्रभु जी महाराज की नाट्यलीला मूर्ति विराजमान है......बाईं ओर के वृक्ष में वह महात्मा भी सम्पुट लीन हुए हैं।" —भूमिका श्री ब्यालीस लीला

‡ इतही पुराने भवन तें, चीर घाट लौं आनि।
जहँ लौं सर पहुँची तहां, मंडल कुंज प्रधान॥
—"रसिक अनन्य माल" उत्तमदास कृत।

* नंद वृषभान के हम नाट। ×
बड़ौ बंस हरिवंस 'व्यास' कौ बास चीर के घाट॥

सूचना दी गई है। खोज में प्राप्त इस ग्रंथ का लिपिकाल संवत् १८७४ है, और उसमें ग्रंथ के रचना-काल का कोई संकेत नहीं है। किंतु उक्त खोज रिपोर्ट मे रसिक अनन्य माल के जो उद्धरण दिये गये हैं, वे श्री भगवत मुदित जी कृत 'रसिक अनन्य माल' के न होकर उत्तमदास जी द्वारा रचित दूसरी 'रसिक अनन्य माल' के हैं†। इतना अवश्य है कि भगवत मुदित जी ने भी एक 'रसिक अनन्य माल' नामक ग्रंथ की रचना की थी तथा उसमें श्री हित हरिवंश जी और उनके शिष्यों के चरित्रों का वर्णन है। नाम और विषय की एकता के कारण खोज रिपोर्ट में इस संबंध में दी गई सूचना में यह भ्रम हुआ ज्ञात होता है। अस्तु। खोज रिपोर्ट सन् १९०९-११ के नोटिस संख्या २३ (बी) पर 'सेवक चरित्र' नामक ग्रंथ की सूचना है, जिसके प्रारंभिक अंश के उद्धरण में "अथ श्री सेवक जू कौ चरित्र लिख्यते। श्री भगवत मुदित जू कृत।" लिखा है। इसी ग्रंथ की पुष्पिका है—'इति श्री रसिक अनन्य माल मध्ये श्री भगवत मुदित जू सेवक चरित्र वर्णन।'

इसके अतिरिक्त रीवा नरेश के पुस्तकालय 'सरस्वती भंडार' में एक हस्तलिखित सचित्र 'सेवक वाणी की रसमोहनी टीका' की प्रति (पुस्तक संख्या ३-४९) देखने का सौभाग्य लेखक को प्राप्त हुआ। इस प्रति के प्रारंभ में ही श्री भगवत मुदित जी कृत सेवक चरित्र का वर्णन समाप्त होता है। उस स्थान पर समाप्ति इस प्रकार अंकित है— "इति श्री रसिक अनन्य मालायां श्री भगवत मुदित जी कृत सेवक चरित्र संपूर्ण।"

उक्त दोनों सेवक चरित्र एक से ही हैं तथा प्रतियाँ प्राचीन हैं। इससे भगवत मुदित जी कृत 'रसिक अनन्य माल' नामक ग्रंथ की रचना भी सिद्ध है। प्रस्तुत निबंध में श्री भगवत मुदित जी कृत 'रसिक अनन्य-माल' पर ही विचार करना अभिप्रेत है*।

---

† उत्तमदास जी द्वारा रचित 'रसिक अनन्य माल' की एक खंडित प्राचीन हस्त लिखित प्रति लेखक के निजी संग्रह में है। इस ग्रंथ का रचना-काल संवत् १७८६ के लगभग कहा जाता है। इस ग्रंथ से खोज रिपोर्ट में लिये गये प्रारंभिक उद्धरण का मिलान होता है।

* इस ग्रंथ की संवत् १७८६ के लिपिकाल की एक प्रति बाबा श्री बैजनाथ जी वृंदावन के पास सुरक्षित बतलाई जाती है। लेखक को एक नवीन हस्त लिखित प्रति बाबा श्री नित्यप्यारीशरण जी वृंदावन के समीप देखने का सौभाग्य मिला है

श्री नाभादास जी ने अपनी भक्तमाल‡ में भगवत मुदित जी पर भी एक छप्पय लिखा है, जो इस प्रकार है—

कुंजबिहारी केलि सदा अभ्यंतर सारैं।
दंपति सहज सनेह प्रीति परमिति परचारैं॥
अनन्य भजन रसरीति पुष्ट मारग करि देखी।
बिधि निषेध बल त्यागि पागि रति हृदय बिसेखी॥
माधव सुत संमत रसिक, तिलक दाम धरि सेव लिय।
भगवत मुदित उदार जस, रस रसना आस्वाद किय॥

भगवत मुदित जी सूबा के दीवान थे। उनकी एक रचना-प्रबोधानंद सरस्वती के 'श्री वृंदावन महिमामृत' के एक शतक का संस्कृत से ब्रजभाषा में पद्यानुवाद, प्रकाशित भी हो चुकी है।† इसकी पुष्पिका में भगवत मुदित जी ने अपनी टीका का संवत १७०७ विक्रमी का इस प्रकार उल्लेख किया है—

"संवत् दस पै सात सौं, अरु सात बरस हैं आन।
चैत मास में चतुरवर, भाषा किनी बखान॥"

इससे भगवत मुदित का रचना-काल संवत् १७०७ के आस-पास प्रत्यक्ष ही है। नाभा जी की भक्तमाल में उनका उल्लेख और संवत् १७०७ के प्राप्त इस रचना-काल से यह कहा जा सकता है कि भगवत मुदित जी व्यास जी के समकालीन थे। प्रियादास जी की भक्तमाल टीका से इनका वृंदावन में निवास करना भी प्रकट है।

'रसिक अनन्यमाल' के मंगलाचरण में श्री कृष्ण चैतन्य को प्रणाम किया गया है—

"प्रणवौं श्री चैतन्य वर, नित्यानंद स्वरूप।
श्री हरिवंस प्रताप बल, बरनौं कथा अनूप॥"

---

‡ रचना-काल संवत् १६४२ वि० के लगभग।

† वंशीदास कामा वाले द्वारा प्रकाशित।

‡ खोज रिपोर्ट सन् १९१२–१४ नोटिस संख्या २१ में भी श्री भगवत मुदित कृत वृंदावन शतक की सूचना और संवत् १७०७ रचना-काल प्रकट किया गया है। खोज रिपोर्ट में वर्णित इस ग्रंथ का लिपिकाल संवत् १८१८ वि० है

जे आए हरिवंस पथ, सिद्ध भए जु अनन्य ।
भगवत तिनकी परिचई, बरनौं होहुं सुधन्य ॥

श्री व्यास जी का चरित्र वर्णन भी श्री कृष्ण चैतन्य की वंदना से आरंभ होता है—

"प्रणऊँ श्री चैतन्य, सकल सुखन की रास ।
व्यास चरित गायौ चहौं, होत हिए उल्लास ॥"

इससे प्रकट है कि वे गौडीय संप्रदाय के उपासक थे तथा उनकी श्रद्धा श्री हित हरिवंश जी में भी अधिक थी। ऊपर लिखे गये वृत्तांत से उनका व्यास जी के समकालीन होने का प्रमाण मिलता है।

४. चौरासी वैष्णवन की वार्ता—

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' नामक ग्रंथ ब्रजभाषा गद्य में लिखा गया है। इसके रचयिता श्री वल्लभाचार्य के पौत्र और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चौथे पुत्र श्री गोकुलनाथ जी (संवत् १६०८ से संवत् १६९७) कहे जाते हैं। श्री प्रभुदयाल जी मीतल के मतानुसार यह वार्ता वर्तमान रूप में गोकुलनाथ जी के पौत्र हरिराय जी (संवत् १६४७—१७७२) के द्वारा लिखी गई है और उसका मूलरूप वे प्रवचन हैं, जो गोकुलनाथ जी द्वारा कथित हुए थे†। इसी से ये वार्ताएँ गोकुलनाथ जी द्वारा रचित कही जाती हैं। इससे प्रकट है कि वार्ताकार व्यास जी के समकालीन भी थे।

वार्ता में वल्लभाचार्यजी के शिष्यों का वृत्तांत दिया हुआ है। उनके शिष्यों में से चार कवि सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास और कुंभनदास ब्रजभाषा के प्रसिद्ध अष्टछाप में सम्मिलित हैं। उन चार कवियों में से प्रथम तीन के गोलोक-वास पर व्यास जी ने अपने पदों में विरह की भावना प्रकट की है।

५. भक्तमाल की रस-बोधिनी टीका—

श्री नाभादास जी की भक्तमाल पर संवत् १७६९ विक्रमी में प्रियादास जी ने कवित्तों में एक टीका लिखी, जिसमें नाभादास जी द्वारा वर्णित संतों के चरित्रों का अधिक स्पष्टीकरण करने के प्रयत्न के साथ-साथ उन्हीं संतों के अन्य चरित्रों के वर्णन का भी समावेश किया गया है।

---

† देखिये 'अष्टछाप परिचय', पृष्ठ ८८—८९

गया है, उसका लिपिकाल वि० संवत् १८६० है। अतः इस सोरठा-दोहा का रचनाकाल अनिवार्य रूप से संवत् १८६० के पूर्व का ही सिद्ध होता है। ये सोरठा और दोहा श्री व्यास जन्मोत्सव की जन्म बधाई में इन पंक्तियों के लेखक को भी प्राप्त हुए हैं। राजकीय पुस्तकालय दतिया, तथा निजी संग्रहालय में श्री व्यास जन्मोत्सव की बधाइयों की जो हस्तलिखित प्रतियाँ मुझे देखने को मिली है, उनमें लिपिकाल अभी तक केवल एक ही प्रति में उपलब्ध है। इस ग्रंथ मे आरंभ से पत्र ४६ तक तो श्री व्यास जन्मोत्सव की बधाई है, और तदनंतर पृष्ठ ३११ तक वर्षोत्सव के पद लिखे गये हैं। पृष्ठ ३११ पर दी गई पुष्पिका इस प्रकार है—

"मिती माहु कृष्ण ७ भौम संवत् १६४२ शकः १८०७ मुकाम दिलीप नगर, लिख्यतं पं० श्री तिगुनाइक नन्ने जू जो बांचे सुनै ताको निल्य सीताराम। पोथी पं० श्री गुसाईं बानपुर वारे‡ कन्हैयालाल जू की श्री जानकी वल्लभाय नमः राम।"

ग्रंथ के मंगलाचरण में श्री व्यास वाणी का ही एक पद "जै जै श्री सुकलवंस उदित भयौ" दिया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें २६ गीत और हैं, जो निम्नांकित कवियों की रचनाएँ है—

१.	प्रेमदास	१२ गीत	४, ५, ६, ७, ८, १०, १४, १६, १६, २०, २१, २७,
२.	कन्हैयालाल	३ गीत	१५, १७, १८,
३.	हित हरिलाल	२ गीत	२४, २६,
४.	किशोरदास	२ गीत	६, ३३,
५.	रामकिशोर	१ गीत	१२,
६.	दुलारेलाल	१ गीत	१३,
७.	हित गुपाल	१ गीत	२३,
८.	व्रजजीवन	१ गीत	२५,
६.	वल्लभदास	१ गीत	२,

‡ लेखक के पूर्वज प० मदनमोहन गोस्वामी दलीपनगर, वर्तमान दतिया, में संवत् १६१५ विक्रमी से बानपुर में आये थे। अतः वे और उनके वंशज दतिया में बानपुर वाले गुसांई के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्हीं पं० मदनमोहन गोस्वामी के पुत्र का नाम कन्हैयालाल गोस्वामी था, जो पद-रचना मे अपना उपनाम 'कन्हर' प्रयोग करते थे

१०. धीरज अलि- १ गीत ३,
११. गरीबदास १ गीत १२.

विचाराधीन जिस सोरठा और दोहा का उद्धरण श्री हित राधावल्लभीय महासभा वृंदावन द्वारा प्रकाशित व्यास वाणी के वक्तव्य में दिया गया है, उसका उल्लेख श्री व्यास जन्मोत्सव की बधाई में भी आया है। उस बधाई में ५४ छंद हैं, जिनमें से संबंधित अंश उद्धृत किये जाते हैं—

सुकुल कुल गाढ़ो श्री हरिदास ।
अनुभव रस सुख पुंज जग सौ कर जगे प्रकास ॥ १ ॥
बंदौं श्री गुरु-राधिका-कृष्ण चरन सिर नाइ ।
व्यास जन्म वरनन करन, सुभ कवि मति उपजाइ ॥ २ ॥

सुभ मन पंकज भान, मनसिज मद प्रभु भजन ।
तो मंगल में आन, प्रगट भए श्री व्यास जी ॥ ३८ ॥
मानत यदि की धन्यता, यार जग्न मह होत ।
स्वाभाविक अनुकूल है, कीनी विधि संजोग ॥ ३९ ॥

जनम बधाई गाइ कै, पूरी मन की आस ।
'जुगल' 'प्रेम' रस सिंधु में, लीन होइ सब 'दास' ॥ ५३ ॥

संभवत: उक्त ५३ वें छंद में प्रयुक्त जुगल शब्द से ही कथित वक्तव्य में उक्त गीत को जुगलकिशोर की रचना बताई गई है। किन्तु मेरे विचार से इस गीत के रचयिता का नाम प्रेमदास है। प्रेम और दास दोनों शब्द भी इस ५३ वें छंद में प्रयुक्त हैं।

अपने इस मत की पुष्टि के लिए हमें उक्त बधाइयों में उपलब्ध ऐसे ही अन्य गीतों में कवि के उपनाम देने की शैली को सूक्ष्मता पूर्वक देखना पड़ेगा। अत: व्यास जन्मोत्सव की बधाई में संकलित गीतों में से उद्धरण उपस्थित किये जाते हैं —

१. श्री 'प्रेम' प्रभु पद में परासन किसी बरनत 'दास' ।
२. बरनन कीनी यथा मति 'जुगल' 'प्रेम' प्रभु 'दास' ॥ (पृष्ठ १६)
३. 'जुगल' चरन में 'प्रेम' चलन नित । (पृष्ठ १६)
४. 'प्रेमदास' तन लै बलाइ कर भरि अंजुरी बरसाइ ॥ (पृष्ठ १७)
५. 'प्रेम' सहित देखिकर दू सुनि भरी पुन कै गोद । (पृष्ठ १९)
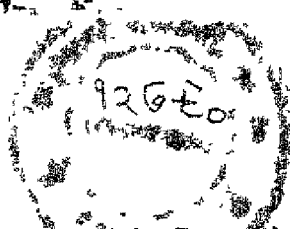
६. व्यासवंस अवतंस 'प्रेम' 'प्रभुदास' यही जिय जाँचै ॥
'जुगल' चरन रति रहै निरंतर, संतन में मन राँचै ॥ (पृष्ठ ६)
७. 'जुगल' 'प्रेम' रस सिंधु में मीन होइ तब 'दास' । (पृष्ठ १४)
८. यह जु बधाई मनभाई मैं परम 'प्रेम' सुख पावौं ॥ (पृष्ठ १५)
९. व्यास वंस अवतंस 'प्रेम' प्रभु 'दास' उमग जस गावै । (पृष्ठ २१)
१०. 'जुगल' 'प्रेम' कौ वारिधि उमगौ ॥ (पृष्ठ ३०)
११. श्री ब्रजपति जस नाम सुमिर नित 'प्रेम' बधाई पाई जू ॥ (पृष्ठ ३३)
१२. 'दास प्रेम' सुत व्यास सुजस युत रीझ बधाई पावै । (पृष्ठ ४६)

इन पदों के छाप वाले उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने 'प्रेम' शब्द का सभी पदों में प्रयोग किया है तथा 'दास' शब्द को भी अधिकतर स्थान दिया ही है। छंद की गति को ध्यान में रख कर 'प्रेम' और 'दास' एक साथ न आ सकने के कारण 'प्रेम प्रभुदास' आदि प्रकार से नाम प्रयुक्त हुआ है। 'जुगल' का प्रयोग आराध्यदेव के लिए हुआ है, जिसका स्पष्टीकरण तीसरे और छटवें उद्धरणों से हो ही जाता है।

चौथे उद्धरण में तो 'प्रेमदास' नाम बिल्कुल स्पष्ट है। इसी प्रकार बारहवाँ उद्धरण भी 'प्रेमदास' ही नाम प्रकट करता है। इससे हित राधावल्लभीय महासभा द्वारा प्रकाशित व्यास वाणी के वक्तव्य में व्यास जी की जन्म तिथि प्रकट करने वाले सोरठा और दोहा कथित युगलकिशोर के रचित न होकर प्रेमदास की रचना निश्चित होते हैं। प्रेमदास जी के विषय में कुछ विशेष पता तो नहीं चलता, किंतु उनके ही पदों के अंत:साक्ष्य † से यह सिद्ध है कि वे व्यासवंशी गोस्वामी थे।

नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९०६–०८ की खोज रिपोर्ट में 'हरिवंश चौरासी की टीका और अरिल्लें' नामक ग्रंथों के रचयिता एक प्रेमदास का संवत् १७९१ के लगभग वर्तमान रहना प्रकट किया गया है। संभव है कि श्री व्यास जन्मोत्सव की बधाई में संकलित बारह गीतों के, जिनमें विचाराधीन सोरठा और दोहा भी सम्मिलित हैं, रचयिता यही प्रेमदास हों, जो श्री हितहरिवंश जी के मतानुयायी थे।

---

† "व्यास वंस अवतंस प्रेम प्रभु दास यही जिय जाँचै ।" तथा—
"व्यास वंस अवतंस प्रेम प्रभु दास उमग जस गावै ।"

प्रेमदास जी द्वारा रची गई बधाइयों के अतिरिक्त जिन अन्य बधाइयों से व्यास जी के जीवन-चरित्र संबंधी ऐतिहासिक सूचनाओं की पुष्टि होती है, उनमें गरीबदास, वल्लभदास, धीरजलाल, रामकिशोर, दुलारेलाल और हित हरिलाल जी के नाम उल्लेखनीय हैं।

गरीबदास—वे व्यास जी की चौथी पीढ़ी में बड़े भक्त कवि थे। उनके संबंध में एक यह अलौकिक घटना कही है कि जब वे राधाष्टमी को बरसाने में गये और वहाँ प्रेम से जन्म बधाई गाई तो उन्हें श्री स्वामिनी जी ने ही ग्वालिनी का वेष धारण कर पँजीरी का प्रसाद दिया था। एक पद में उन्होंने लिखा भी है कि 'गरीबदास कों दई पँजीरी।'

वल्लभदास—वे व्यासवंशीय गोस्वामी सिंहमन जी के पुत्र थे। व्यास जी से ५ वीं पीढ़ी में होने के कारण उनका आविर्भाव-काल संवत १७२५ के आस-पास माना जा सकता है।

धीरजलाल—व्यासवंशीय गोस्वामी श्री हीरालाल जी के वे पुत्र थे। वे श्री वृंदावन में ही रहते थे। संवत् १८७६ के पश्चात् और संवत् १८८६ के पूर्व उनका स्वर्गवास हुआ। वे व्यास जी से ८ वीं पीढ़ी में थे।

रामकिशोर—वे उक्त धीरजलाल जी के भाई सदासुख जी के पुत्र थे और संवत् १८७३ में वर्तमान थे।

दुलारेलाल—सखी संप्रदाय के वैष्णव भक्त थे।

हित हरिलाल—खोज रिपोर्ट सन् १९०६-०८ के नोटिस संख्या १५९ पर उनका उल्लेख है। उसमें उनका संवत् १६८७ के लगभग वर्तमान होना बताया गया है। खोज रिपोर्ट में उन्हें श्री हितहरिवंश जी के पुत्र और ध्रुवदास जी के गुरु होना भी लिखा है, जो ठीक नहीं है।

७. निजमत सिद्धांत (श्री महंत किशोरीदास कृत) —

स्वामी हरिदास जी की शिष्य परंपरा में विराजमान श्री पीताम्बर देव जू के कृपापात्र महंत किशोरीदास जी ने इसकी रचना की थी। पीताम्बर देव जी के बड़े गुरु-भ्राता ललितकिशोरी जी के शिष्य ललितमोहनी दास जी का जन्म संवत् १७८० में हुआ था ‡। अतः इसी के

‡ ललित मोहनी प्रभा सोहनी, आश्विन सुदि दसमी कौं।
किये प्रकास सरद जनु चंद्रम, बरसायौ सु अमी कौं ॥ ×
संवत् सत्रह सै सु असी कौं, अति प्रमोद कौ दानी ॥

लिखत सूचना सहचरिशरण कृत

अतः पुस्तक का रचना-काल संवत १६१५ से संवत १६४२ के बीच का लगभग १६२६ सिद्ध है। संवत १६४७ विक्रमी की लिखी हुई एक 'भगवत रसिक की वाणी' की प्रति में भी लिपिकार का नाम 'प्रः अयोध्या प्रसाद कुडरा' मिला है। अतएव 'गुरु-शिष्य-वंशावली' के रचयिता का नाम अयोध्या प्रसाद नहीं हो सकता। इस कारण उसके कर्त्ता का नाम अज्ञात रह जाता है।

इस 'गुरु शिष्य वंशावली' में लगभग ५०० नाम आये हैं। दोहा और सोरठा छंदों का ही इनमें प्रयोग किया गया है। पिंगल की दृष्टि से छंदों में अशुद्धियाँ बहुत अधिक हैं। वंशावली लिखने का अभिप्राय उस समय के दतिया राज्य के प्रधान मंत्री गोस्वामी श्री गरीबदास की कृपा-भिलाषा ही प्रकट होती है, क्यों कि उनको व्यास जी की वंशावली में प्रकट करने के पश्चात रचयिता ने उनके पुत्र होने की कामना प्रकट की है तथा उनका वंश वर्णन करने के लिए पुस्तक में रिक्त स्थान भी छोड़ा गया है। इसी प्रकार श्री राधालाल, श्री कमलेश और श्री कमलापति के नामोल्लेख करने के पश्चात उनकी संतति कामना करते हुए पुस्तक में वर्णन करने के लिए रिक्त स्थान छोड़ा गया है।

इस ग्रंथ में व्यास वंशवृक्ष की कई शाखाओं में व्यास जी से १६ वीं और २० वीं पीढ़ी तक के नाम दिये गये हैं, जब कि श्री हरिराम व्यास के प्रसिद्ध शिष्य श्री महाराज मधुकर शाह के वंशज श्री महाराज भवानीसिंह का वर्णन उनकी १२ वर्ष की आयु का है, और जब कि उनके पुत्र श्री गोविंदसिंह का जन्म नहीं हुआ था। श्री भवानी सिंह, महाराज मधुकर शाह के वंश की १२ वीं पीढ़ी में थे। अतः गुरु और शिष्य की पीढ़ियों की संख्या में इतनी अधिक विषमता होना भी संदेहजनक है।

संवत् १६४७ विक्रमी की वसंत पंचमी को कायस्थ कुलोद्भव कवि प्रतीतराय लक्ष्मणसिंह ने 'श्री लोकेन्द्र ब्रजोत्सव' नामक एक बृहद् ग्रंथ की रचना प्रारंभ की। इस ग्रंथ के प्रारंभ में श्री गरीबदास गोस्वामी जी की जो वंश परंपरा वर्णित की गई है, वह 'गुरु शिष्य वंशावली' में

---

† ग्रंथ के प्रारंभ में 'श्री गोपाल जू' लिखा है। गोस्वामी गरीबदास जी के निजी श्री ठाकुर जी का नाम भी 'गोपाल जी' है। अतएव यह अनुमान करना तर्क विहीन न होगा कि उक्त ग्रंथ की रचना गोस्वामी गरीबदास के आश्रय में हुई थी

वर्णित वंश-परंपरा से भिन्न है। 'गुरु-शिष्य-वंशावली' की रचना के लगभग १८ वर्ष पश्चात् लिखे गये एक ही आश्रय और स्थान के दो कवियों में इस महान् भिन्नता का यही अर्थ लगाया जा सकता है कि 'गुरु-शिष्य-वंशावली' का वंश-विवरण तथा अन्य चरित्र वर्णन परवर्ती लेखक को पूर्णतः ग्राह्य न थे। यद्यपि 'गुरु-शिष्य-वंशावली' का उद्देश्य तो यह नहीं प्रतीत होता, तब भी इसमें व्यास जी के जीवन चरित्र संबंधी प्रचलित कथाएँ थोड़े हेर-फेर से दी गई हैं। वंशावली में वर्णित लगभग ५०० नामों के अखंड तारतम्य और किसी सूत्र का उल्लेख न होने से यही मानना पड़ेगा कि रचयिता ने किंवदंतियों के आधार पर निजी जानकारी के साथ कुछ कल्पना को मिलाकर इस ग्रंथ का सृजन किया है।

१०. श्री लोकेन्द्र ब्रजोत्सव—

इस ग्रंथ की रचना वसंत पंचमी संवत् १६४७ को कायस्थ कुलोद्भव कवि प्रवीन राय द्वारा प्रारंभ होकर भादों सुदि ३ संवत् १६४८ को समाप्त हुई। ग्रंथ का मूल विषय तत्कालीन दतिया नरेश श्री भवानीसिंह जू देव की संवत् १६४७ विक्रमी में की गई ब्रज यात्रा और चित्रकूट यात्रा का वर्णन है। ग्रंथ ५६४२ श्लोकों के कलेवर का है। कवि की वर्णन शैली और विषयों के समावेश से उसकी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है।

तत्कालीन दतिया राज्य के प्रधान मंत्री गोस्वामी गरीबदास के आदेश से इसकी रचना हुई थी, जिसकी स्वीकृति महाराजा भवानीसिंह द्वारा भी दी गई थी और पुरस्कार स्वरूप २०० बीघा भूमि तथा ४००० रुपया कवि को भेंट किये गये थे*।

इस ग्रंथ में व्यास जी की वंशावली का भी वर्णन किया गया है, जिसके अंतर्गत उक्त गोस्वामी गरीबदास जी के पूर्वज द्वारकादास जी के दतिया आने का भी गौरवपूर्ण उल्लेख† इस प्रकार किया गया है—

तनय सिहमन के ब्रजभूषण दूजे वल्लभदासा।
जिनके दास शिरोमणि दूजे भये 'द्वारकादासा'॥
रचे पंच पद नित्य नवीने हरि अर्पित सुख पाई।
काहू समय सु निकसे घर से दतिया के ढिग आई॥१८२॥

---

* देखिये, पृष्ठ २१३, लोकेन्द्र ब्रजोत्सव।

† देखिये, पृष्ठ १६, लोकेन्द्र ब्रजोत्सव

ग्राम बाजनी ताल निकट सुख धाम कछुक दिन कीनों ।
करत टहल श्री जी की निसिदिन गावत राग प्रवीनों ॥
कहूँ तहाँ ही गुनी आइ कोउ दिल्लीपति के खासे ।
सुन कर गान जाइ निज प्रभु सों बचन सबै परकासे ॥१८४॥

'ह्वै उतकंठित साह' सुमन मैं तब सुखपाल पठाई ।
'दलपति राय नृपति सों भाषौ' दीजें उन्हें बुलाई ॥
पहुंची आइ पालकी तब तहू दयौ उत्तर नत लीजै ।
चाकर हम अपने मालिक के गवन कौन विधि कीजै ॥१८५॥

इतने बीच सुग्रह कों आये दलपति राय नृपाला ।
गये द्वारकादास निकट कह दतिया चलिय कृपाला ॥
देख प्रतीति प्रीति भूपति की दतिया नगर सु आये ।
मुरलीधर अरु दास जु हरिजन पुत्र युगल तिन जाये ॥१८६॥

सारांश यह कि उनकी गान कला की प्रशंसा से प्रभावित होकर दिल्लीपति बादशाह ने दतिया नरेश राजा दलपतिराय से द्वारकादास जी को अपने पास बुलाने के लिए कहा। बादशाह के उस निमंत्रण को द्वारकादास जी ने अस्वीकार कर दिया। किंतु जब दतिया नरेश दलपतिराय स्वयं ही उनके पास गये और उन्होंने उनसे दतिया चलने के लिए प्रेमपूर्वक आग्रह किया, तो वे उनके साथ दतिया चले आये।

उक्त प्रसंग में दिल्लीपति बादशाह से किसका अभिप्राय है, यह देखने की आवश्यकता पड़ती है। दतिया में दलपतिराय का राज्य संवत् १७४० (सन् १६८३ ई०) से संवत १७६४ (१७०७ ई०) तक रहा‡। इस पूरे काल में दिल्ली के सिंहासन पर औरंगजेब रहा है, जो संगीत और हिंदू भक्तों का कट्टर विरोधी था। उसने किसी भक्त और गायक को उसकी गान विद्या के कारण इतना सम्मान दिया होगा, इसे इतिहास स्वीकार नहीं कर सकता। अतएव उक्त वर्णन कोरी कवि कल्पना ज्ञात होता है।

इस वंशावली में वल्लभदास जी के दो पुत्र कहे गये हैं, एक शिरोमणिदास और दूसरे द्वारकादास। किंतु व्यासवंशीय इन्हीं वल्लभदास जी के वंशज चरखारी राज्य के राजगुरु रहे हैं और उनकी वंशावली में वल्लभदास के पुत्र हीरानंद का नाम पाया जाता है। 'लोकेन्द्र

‡ देखिये, 'दतिया स्टेट गजेटियर', पृष्ठ ६७

व्रजोत्सव' के वर्णन में इन हीरानंद का नामोल्लेख ही नहीं किया गया है। किंतु इस विषय की विशेष आलोचना करना अभिप्रेत न होने से इस पर अधिक प्रकाश नहीं डाला जा रहा है[1]।

'लोकेन्द्र व्रजोत्सव' में श्री व्यास जी के चरित्र का भी वर्णन किया गया है। ग्रंथकार ने अपनी ५२ वर्ष की अवस्था में इस ग्रंथ को लिखा था तथा उसके पूर्वज दतिया, पन्ना, ओरछा और टीकमगढ़ में रहते रहे हैं। इन स्थानों में श्री व्यास जी के चरित्रों की चर्चा घर-घर में वंश परंपरा से रक्षित होने के कारण उनका ज्ञान ग्रंथकार को होना स्वाभाविक है।

---

[1] चरखारी नरेश श्री गंगासिंह जी ने संवत् १९७१ में 'तुरंग मंगल शालिहोत्र' नामक एक वृहत् ग्रंथ की रचना की, जो संवत् १९७२ में छप भी चुका है। इस ग्रंथ के प्रारंभ में रचयिता ने अपने गुरु वंश का वर्णन किया है, जिसमें से संबंधित उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

तिन सुत भगवत दास भे, भये सिंहमन तासु।
तिनके बल्लभदास सुत, नवनितराय सु आसु ॥१६॥
हीरानंद तिनकें भये, तिन सुत नंदकिशोर।
कृष्णलाल तिनके सुवन, श्यामलदास बहोर ॥१७॥
सुत श्री श्यामलदास के, श्री हरिभजन सनाम।
भूपति गंगासिंह के, श्री गुरु आनंद धाम १८

तृतीय अध्याय

जीवन-चरित्र

★

१. जन्म और माता-पिता—

(१) *जन्म-तिथि*—श्री हरिराम जी व्यास की जयंती वृंदावन, दतिया, झाँसी आदि कितने ही स्थानों में प्रति वर्ष मार्गशीर्ष कृष्णा ५ को मनाई जाती है। जयंती का यह उत्सव श्री व्यास पंचमी के नाम से विख्यात है।

'श्री व्यास जू की जन्म बधाई' में जो बधाइयाँ दी गई हैं, उनमें यही जन्मतिथि स्पष्ट रूप से पाई जाती है, जिसे निम्न लिखित उद्धरण व्यक्त करेंगे—

मारग में रस रंग रह्यौ, प्रगटे श्री हरिराम।
मानों मारग प्रेम कौ, प्रगट कियौ विश्राम॥
कृष्ण पक्ष की पंचमी, मंगल जुत बुधवार।
कृष्ण पक्ष की सहचरी, प्रकटी सुकुल कुमार॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ १६)

मारग मास विराजै, कृष्ण पक्ष छवि छाजै।
पंचमी तिथि राजै, सकल दुःख भाजै॥बर्द॥
बुधवार यह जोग सकल अनुकूल हैं॥

—गरीबदास कृत (पृष्ठ २६)

नवयौ मास जब आयौ, जुगल सुख पायौ।
सखिन मन भायौ, आनंद बधायौ॥अहो॥
मारग बदि बुधवार, तिथी पाँचै रुचिर,
तिहि छिन दाई बुलाई, मुदित मन आई।
अधिक छवि छाई, फुलेल लगाई॥अहो॥
अरुनोदय सुभ घरी, लाल प्रगटित भये॥

कृत (पृष्ठ २७)

सुभ सत पंद्रह जान, सरसठ ता ऊपर अधिक ।
ता संवत में आन, प्रगट भये श्री व्यास जी ॥२८॥
मारग वदि की पंचमी, बार लग्न ग्रह योग ।
स्वाभाविक अनुकूल हैं, कीनौं बिधि संजोग ॥२६॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ १२)

राजकीय पुस्तकालय, दतिया में सुरक्षित 'व्यास जू की जन्म-बधाई' (पुस्तक संख्या ११५८) एवं 'श्री व्यासोत्सव की बधाई' (पुस्तक संख्या ७०४) नामक हस्तलिखित पोथियों में अंतिम उद्धरण वाली बधाई में प्राप्त 'सरसठ' शब्द को स्पष्ट रूप से काट कर 'सत्तर' में परिणत किया गया है, जिससे इन दोनों पोथियों में व्यास जी के जन्म संवत् १५६७ के स्थान पर १५७० के परिवर्तित उल्लेख प्राप्त होते हैं। साथ ही अन्य बधाइयों में उक्त तिथि को मंगलवार या बुधवार होने की सूचना भी मिलती है। डा० माताप्रसाद जी गुप्त की गणना के अनुसार संवत् १५७० की मार्गशीर्ष कृष्णा ५ को बृहस्पतिवार था। अतएव ज्योतिष गणना के अनुसार जन्म संवत् १५७० सर्वथा अग्राह्य सिद्ध होता है। प्रेमदास जी ने व्यासजी का जन्म मंगलवार को होना लिखा है—

मारग असित पंचमी, सुभ दिन मंगल लग्न मुहूरत राज ।

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ २१)

डा० माताप्रसाद जी गुप्त ने लेखक की प्रार्थना पर संवत् १५६७ की मार्गशीर्ष कृष्णा ५ का गणित विस्तार पूर्वक करके यह बतलाया है कि संवत् १५६७ में उक्त तिथि मंगलवार को तीन घड़ी दिन चढ़े तक रही, अतएव इस तिथि-बार की साम्यता की पुष्टि गणित द्वारा भी हो जाती है।

दुलारेलाल कृत बधाई के उद्धृत अंश में 'अरुनोदय सुभ घरी लाल प्रगटित भये' तथा प्रेमदास कृत एक अन्य बधाई से भी यह संकेत मिलता है कि व्यास जी का जन्म अरुणोदय काल में हुआ था।

श्री द्विजरानी देवि देविका, तिनकी कूख सिरानी ।
जनु जग जानी सहज अपूरब, पूरब दिस मन मानी ॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ २१)

यह अरुनोदय अर्थात् उषा-काल (किंवा ब्राह्म मुहूर्त) बुधवार के सूर्योदय होने से ठीक पूर्व का समय होने के कारण मंगलवार के अंतिम प्रहर का भाग है, किंतु व्यवहार में वह बुधवार का उषाकाल अथवा अरुणोदय समय कहा जाता है। इसी प्रकार व्यावहारिक रूप में मंगल-वार का अरुणोदय काल से सोमवार की समाप्ति का ब्राह्म मुहूर्त लिया

जा सकता था . इस भ्रांति को दूर करने के लिये प्रेमदास जी ने व्यास जी के जन्म समय को 'मंगल जुत बुधवार' कहकर भी प्रकट किया प्रतीत होता है। ऐसा अनुमान है कि परवर्ती बधाई-कार इस पदांश का अर्थ 'आनंद पूर्ण बुधवार' समझ कर अपनी बधाइयों में व्यास जी का जन्म दिवस 'बुधवार' ही लिखने लगे।

अखिल भारतवर्षीय श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृंदावन द्वारा संवत् १९९१ में प्रकाशित श्री व्यास-वाणी के 'वक्तव्य' में श्री व्यास जी का जन्म समय संवत् १५६७ वि० की मार्गशीर्ष वदी पंचमी को प्रकट करने वाले उक्त दोनों छंद एक हस्तलिखित प्रति से, जिसको वैष्णव श्री नवनदास जी, कुशस्थली ने वि० संवत् १८६० में लिख कर पूरी की थी, उद्धृत किये हैं। इस उद्धरण में भी पाठ 'सरसठ' ही है, अतः राजकीय पुस्तकालय दतिया की दोनों प्रतियों में 'सरसठ' के स्थान पर किये गये 'सत्तर' का संशोधन प्रक्षिप्त और अनधिकृत है।

व्यासवंशीय आचार्य श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी, वृंदावन द्वारा प्रकाशित श्री व्यास-वाणी में आचार्य श्री लाड़िलीकिशोर गोस्वामी के 'प्राक्कथन' में भी यही जन्म तिथि और संवत् प्रकट किया गया है। 'शक्ति संगम तंत्र' की भूमिका में श्री विनयतोष भट्टाचार्य जी ने व्यास जी का जन्म सन् १५१० ई० (अर्थात् संवत् १५६७ वि०) में लिखा है‡।

संवत् १६१२ में ४५ वर्ष की अवस्था में व्यास जी के वृंदावन जाने का उल्लेख करने वाले जो लेख उपलब्ध हुए हैं, उन्हें देखने से भी जन्म संवत् १५६७ की पुष्टि होती है। मुख्य लेख ये हैं—

(१) लेखक को एक वंशवृक्ष अपने ही घर के पुराने बस्तों में मिला है, जिसमें व्यास जी से नीचे १०-११ पीढ़ियाँ दी गई हैं। इस आधार पर उस वंशवृक्ष को संवत् १८७५ वि० के पूर्व का माना जाना चाहिये। लेखन शैली और कागज भी इस अनुमान का समर्थन करते हैं। इस वंशवृक्ष के शीर्षक में लिखा है—"व्यास जू के वंश वर्णन की। सवत् १६१२ में व्यास जू वृंदावन गए, अवस्था ४५, सुकल समोखन के २९ श्री नृसिंह जू।"

---

‡ Hari Ram Shukla, the founder of Harivyasi Sect of the Vaishnava School belonged to Bundelkhand and was born in the year 1510 A. D

—Preface to Shakti Sangam Tantra, (Gaekwad Oriental Series Vol. LXI.)

(२) श्री लोकेन्द्र ब्रजोत्सव (पृष्ठ १५) में लिखा है—

पैंतालीस बरषैं गई, वृथा जगत सनमान।
तबहीं यह दोहा पढ़ौ, भरी भक्ति विज्ञान॥
व्यास बड़ाई जगत की, कूकर की पहिचान।
प्रीति करें तन चाट है, बैर करे तन हान॥
सोरा सौ बारा संवत में, आए ब्रज सुख लीनों।
रसिक सभा में पायौ आदर, हरिगुन गाइ प्रवीनों॥

(३) जार्ज ए० ग्रियर्सन ने व्यास जी का सन १५५५ ई० में ४५ वर्ष की अवस्था में वृंदावन जाना लिखा है ‡।

(४) डाक्टर रामकुमार वर्मा भी 'हिंदी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ ७१७ में लिखते हैं कि ४५ वर्ष की अवस्था (संवत् १६१२) में व्यास जी ओरछा छोड़ कर वृंदावन गये।

अतएव श्री व्यास जी का जन्म मार्गशीर्ष कृष्णा ५ बुधवार संवत् १५६७ वि० के दिन अरुणोदय के समय भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों और सूत्रों से संकलित सूचनाओं के आधार पर निर्विवाद सिद्ध होता है। ज्योतिष गणना के अनुसार उक्त तिथि को बुधवार भी था।

(२) *पिता*—व्यास जी के पिता का नाम समोखन शुक्ल था। इसका प्रमाण नाभादास जी की भक्तमाल है, जिसमें व्यास जी के परिचय वाले छप्पय में उन्हें 'सुकुल समोखन सुअन' लिखा गया है। अपने पदों में पिता को अभिप्रेत करने के लिए व्यास जी ने 'सुकुल' शब्द का ही प्रयोग किया है †। सामाजिक दृष्टिकोण से पिता को नाम से संबोधित करना संस्कृति के अनुकूल न था। 'कल्याण' के संत अंक में उन्हें 'सुखोमणि' लिखा गया है। 'समोखन' शब्द को संस्कृत रूप देने की दृष्टि से ऐसा किया गया प्रतीत होता है। उपलब्ध वंशावली में भी व्यास जी के पिता का नाम समोखन ही दृष्टिगोचर हुआ है। 'गुरु-शिष्य-वंशावली' में व्यास जी के पिता का नाम 'समोखन व्यास' लिखा गया है—

‡ Byas Swami alias Hari Ram Sukl of Urchha, in Bundelkhand. In the year 1555 A. D., when he was forty five years of age, he settled in Brindaban.

—The Modern Vernacular Literature of Hindustan, Page 28.
(Asiatic Society, Calcutta.)

† 'जो हौं सत्य सुकुल को जायौ' (व्यासवाणी)

प्रगटे देव समान, तासु पुत्र एकहि भये।
पुंज नयोनिध जान, नाम समोखन व्यास यह॥

व्यास जन्मोत्सव की बधाई से भी व्यास जी के पिता का नाम समोखन शुक्ल ही प्रकट किया गया है—

श्री समोखन सुकल पूजत, विप्र बरन मनाइ।
कहियं जु जाको भाग-फल, सब जन्मपत्र बनाइ॥
यह सोधि कें सब विप्र बोले, सुनहु श्री महाराज!
करिहं जु जग में 'भक्ति पुग्न', भयौ भक्तन राज॥
सबे "शास्त्र-पुरान-वक्ता व्यास पदवी" पाइ।
'भक्त भूषन शिष्य करि, गोस्वामी बंस कहाय॥'
सदा युगलकिशोर चर्चिन पात्र सेव दिखाइ।
गाइ हैं प्रभु चरित बहुविध, सकल भक्त रिझाइ॥
नाम है हरिराम, इक सुख गुन गने नहि जाइ।
विष्णु-परिकर आइ प्रगटो, धन्य तुम धन माइ॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ ८)

रहे विसाखा सहर, ओड़छे दास हमारौ।
सुकल समोखन नाम, विप्रवर यह व्रत धारौ॥ ३२॥
उत्तम तुम प्रिय होय, सोइ सुत दीजियें।
मैं दीनों वर सहा, कहा अब कीजियें॥ ३३॥
तबहिं विसाखा जोर हस्त, प्रभु आगें आई।
जो कछु आयसु भयौ, सोई करि हौं सुखदाई॥ ३४॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ १२)

(३) जन्म-स्थान—अंतिम उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमदास जी के वर्णन के अनुसार व्यास जी के पिता सुकल समोखन व्यास जी के जन्म समय के पूर्व ही ओरछा में ही रहते थे। जैसा पहिले कहा जा चुका है, व्यास जी के जन्म के ६० वर्ष पश्चात् सं० १५८ में महाराजा रुद्रप्रताप ने ओरछा को राजधानी के लिए चुना था। कि इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि इसके पूर्व ओरछे का कोई इतिहास ही न था। महाकवि चंद वरदाई ने रासो में 'महोबा खंड' के अंतर्गत ओरछा समयो † का वर्णन किया है। इस प्रकार ओरछा की प्राचीन

† देखिये, खोज रिपोर्ट, १९०६-०८, नोटिस १४६ (ओ)

बारहवीं शताब्दी विक्रमी के पूर्व की होने का उल्लेख मिलता है। व्यास जी ओरछे के ही प्रसिद्ध रहे हैं। जार्ज ए० ग्रियर्सन ने भी उन्हें ओरछा का लिखा है §। एक प्राचीन चित्र पर भी 'श्री हरिराम व्यास जू ओरछे के' लिखा हुआ उपलब्ध है *। यही सूचना अखिल भारतीय श्री हित राधावल्लभीय महासभा वृंदावन से प्रकाशित 'व्यास वाणी' की प्रस्तावना में भी प्राप्य है, किंतु इसमें ओरछा के इतिहास और भूगोल संबंधी सूचनाएँ भ्रमपूर्ण हैं।

भारत के मानचित्र पर अक्षांश २५° २१' उत्तर तथा देशांतर ७८° ४२' पूर्व पर ओरछा नगरी स्थित है। जी० आई० पी० रेलवे की झाँसी से मानिकपुर की ओर जाने वाली लाइन पर ओरछा पहिला ही स्टेशन है। आचार्य श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी वृंदावन द्वारा प्रकाशित 'व्यास वाणी' के प्राक्कथन में भी बुंदेलखंड की तत्कालीन ‡ राजधानी ओरछा को ही जन्म स्थान माना है। अतएव व्यास जी का जन्म स्थान ओरछा ही निश्चित रहता है।

(४) माता—व्यास वाणी (श्री राधाकिशोर गोस्वामी द्वारा प्रकाशित) के प्राक्कथन में व्यास जी की माता का नामोल्लेख 'पद्मावती' किया गया है। यह नाम किस आधार पर उक्त निबंध में लिखा गया है, इसका कोई सूत्र नहीं बतलाया गया। संभव है व्यास वाणी के पद 'पद्मावती पति पद सरनम्' का आधार लेकर ऐसा किया गया हो। किंतु उक्त पद में पद्मावती से अभिप्राय 'गीत-गोविंद' के प्रणेता भक्त कवि जयदेव की धर्मपत्नी से है।

व्यास जन्मोत्सव की कई बधाईयों में व्यास जी की माता का नाम देविका या देविका देवी पाया जाता है—

कृष्ण पक्ष की पंचमी, मंगल जुत बुधवार।
कृष्ण पक्ष की सहचरी, प्रगटी सुकुल कुमार॥

---

§ 'Modern Vernacular Literature of Hindustan' P 28

* इसी चित्र की प्रतिकृति इस ग्रंथ में संलग्न है। मूल चित्र ग्रंथ-लेखक के ठाकुर श्री नंदकिशोर जी के मंदिर में पूजार्थ सम्मानित है। 'कल्याण' के भक्त-चरितांक में भी यही चित्र प्रकाशित हुआ है।

‡ व्यास जी के जन्म संवत् १५६७ के समय ओरछा नगरी बुंदेलखंड की राजधानी न थी

मनो देव की 'देविका', वल्ली सुकुल अनूप ।
अवतारी जेहि कूख मे, हरीराम फल रूप ॥ ×

श्री गुरु आयुस पाइ के, भक्त चरन रज आस ।
बरनन कीनौ यथा मति, जुगल प्रेम प्रभुदास ॥
—प्रेमदास कृत (पृष्ठ १५–१६)

श्री द्विजरानी देवि देविका, तिनकी कूख सिरानी ।
जनु जग जानी सहज अपूरब, पूरब दिस मन भानी ॥ ×

जुगल विहार अहार नित्य, सुखसार रूप यह साजै ।
उदित उदार सुकल कुल दीपक, लखि कलि-कलमष भाजै ॥
व्यास बंस अवतंस प्रेम, प्रभुदास उमग जग गावै ।
परम सुहाई, सब मनभाई, रुचिर बधाई पावै ॥
—प्रेमदास कृत (पृष्ठ २१)

प्रिय सहचरि मनभाई, परम सुखदाई,
हरि आयस पाई, भवन सुभ आई । —वही

देवि देविका कूख प्रगट भई आइकें ॥ १ ॥
—गरीबदास कृत (पृष्ठ २२)

धन्य देविका कूख यह ।
—रामकिशोर कृत (पृष्ठ २४)

धन्य देविका कूख अमित आनंदनिधि ।
—दुलारेलाल कृत (पृष्ठ २७)

भाग भरी देविका जू लाल कों झुलावै ॥
—हित हरिलाल कृत (पृष्ठ ३८)

'गुरु-शिष्य-वंशावली' में तो यहाँ तक लिखा हुआ है कि शुकल समोखन का विवाह चीमरी ग्राम निवासी ब्रह्मदास ब्राह्मण की देविका नाम्नी कन्या से हुआ था। यद्यपि 'गुरु-शिष्य वंशावली' में दिये गये विवाह संबंधी वृत्तांतों की परीक्षा नहीं की गई है, तो भी उसमें व्यास जी की माता का नाम देविका ही प्रकट किया गया है, जो व्यास जन्मोत्सव की बधाई में उल्लिखित सूचनाओं से साम्य रखता है।

२. नाम, आस्पद और उपाधि—

(१) नाम—हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज रिपोर्ट सन् १९१७–१९ की नोटिस संख्या २०४ में व्यास जी का नाम मोहनदास

लिखा गया है, जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है‡। श्री व्यास जी का पूर्व नाम हरिराम था, जिसका प्रमाण उनके एक पद के अंतःसाक्ष्य से भी प्राप्त होता है। वह पद इस प्रकार है—

प्रिय के हिय तें तू न टरति री । ×
हँसि 'हरिराम व्यास' की स्वामिनि लालहिं अंक भरत री ॥

किंतु यह महानुभाव 'व्यास जी' के नाम से ही इतने अधिक प्रसिद्ध हो गये थे, कि अधिकांश लेखकों ने केवल उनकी उपाधि या उपनाम 'व्यास' से ही उनका उल्लेख किया है। श्री नाभादास जी की भक्तमाल, श्री ध्रुवदास जी की भक्त नामावली, चौरासी वैष्णवन की वार्ता आदि अनेक प्राचीन ग्रंथों मे भी इनका वर्णन केवल 'व्यास' के नाम से ही मिलता है। लोकेन्द्र ब्रजोत्सव, गुरु शिष्य वंशावली, तुरंग मंगल तथा अनेकों वंशावलियों में इनका नाम हरिराम व्यास लिखा पाया जाता है। व्यास जी के एक प्राचीन एवं प्रामाणिक चित्र में भी यही नाम अंकित मिला है।

गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित भक्त सौरभ तथा रीवा नरेश महाराज रघुराजसिंह की रामरसिकावली आदि ग्रंथों में इन्हें 'व्यासदास' के नाम से लिखा गया है। अपने पदों में व्यास जी ने छाप के रूप में व्यासदास नाम का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है। निस्संदेह इनका नाम हरिराम था।

(२) *आस्पद*—श्री हरिराम जी संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। श्री मद्भागवत और पुराणों के वक्ता होने के कारण ही प्रथम वे 'व्यास' उपाधि से विभूषित हुए। तदनंतर इसी 'व्यास' उपाधि को उन्होंने कविता

‡ Vyas Mohan Das was a devotee of Radha Ballabhi sect and lived at Orchha. While at Brindaban, he founded a new sect called Hari-Vyasa. The only work of his, that has been found, is Vyas ki Bani.

खोज रिपोर्ट का उक्त उल्लेख अशुद्ध है। खोजकर्ता एक ही जिल्द में योजित दो पृथक ग्रंथों को भूल से एक ही रचयिता के समझ बैठे। एक ग्रंथ है 'व्यास की बानी' और दूसरा 'सनेहलीला'। प्रथम ग्रंथ में व्यास उपनाम और दूसरे में 'लीला गोकुल गाँव की, गोपीकृष्ण सनेह। जन मोहन जो गावही, सो पावै नर देह' आदि दोहों से रचयिता का नाम मोहनदास लेकर और उसके साथ व्यास जी द्वारा हरिव्यासी सम्प्रदाय को स्थापित करने की प्रचलित भ्रांतिपूर्ण धारणा को मिलाकर ही खोज रिपोर्ट में उक्त अशुद्ध उल्लेख किया गया है

के लिए उपनाम रूप में स्वीकार कर लिया। इससे इनका यह उपनाम ही विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया। सनाढ्य ब्राह्मणों में व्यास नाम की एक अल्ल भी है। सौन्दर्य सागर† में श्री राधालाल गोस्वामी ने कवि वंश वर्णन करते हुए लिखा है कि कृष्णदास व्यास के एक मात्र पुत्र रेवाशर्म थोड़ी आयु पाकर मर गये। तब उन्होंने अपनी कन्या के पुत्र सुकुल समोखन को गोद लिया। इन्हीं सुकुल समोखन के पुत्र हरिराम व्यास और परशुराम हुए। इस प्रकार श्री राधालाल जी गोस्वामी हरिराम व्यास को सनाढ्यों की 'व्यास' अल्ल का प्रकट करते हुए से प्रतीत होते हैं।

व्यास जी ने अपनी वाणी में कितने ही स्थानों पर अपने पिता का उल्लेख किया है और उन्हें शुक्ल ही कहा है‡। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हरिराम के साथ लगा हुआ 'व्यास' अल्ल या आस्पद न होकर उपनाम या उपाधि मात्र है, तथा उनका अल्ल 'शुक्ल' ही है। यदि व्यास जी के पिता समोखन जी शुक्ल के कुल से 'व्यास' अल्ल धारी कुल में गोद गये होते तो हरिराम जी अपने को 'व्यास' ही लिखते, 'शुक्ल' न लिखते। 'गुरु शिष्य वंशावली' में सुकल समोखन को रेवा शर्म के पुत्र बतलाये गये हैं तथा उनका नाम समोखन व्यास* लिखा है। इसका कारण उस समय में शुक्ल समोखन को पौराणिक वृत्ति का होना माना जा सकता है। सुकुल समोखन तथा उनके पूर्वज भी पुराणवक्ता होने के कारण व्यास उपाधि से विभूषित रहे हैं। इसके उल्लेख भी कई प्राप्त होते हैं। व्यास वंशीय अन्य गोस्वामी जनों के द्वारा रचित पदों में भी इनका शुक्ल वंश में जन्म लेना लिखा है। उन पदों के उद्धरण व्यास जन्मोत्सव की बधाई से दिये जाते हैं—

जय जय श्री गुरु व्यास सुकल कुल अवतर।

—बल्लभदास कृत (पृष्ठ २)

---

† देखिये संवत् १६८१ बसंतलाल गोस्वामी मुंबादेवी, मुंबई द्वारा प्रकाशित सौन्दर्य सागर, पृष्ठ ६४—६५.

‡ १. जो हौं सत्य सुकुल को जायो। (व्यासवाणी)

२. पहिले भक्तन के मन निर्मल। ×

जिन्हें सेइ वृंदावन पायौ व्यास सुकल जन्म फल॥ (व्यासवाणी)

* प्रगटे देव समान, तासु पुत्र एकहिं भये।

पुत्र सपोनिधि जान, नाम समोखन व्यास यह

नमो नमो जय श्री गुरु व्यास ।
सुकल बंस ससि सरद प्रकास ॥

—धीरजअलि कृत (पृष्ठ २)

व्यास जी के समकालीन नाभादास जी ने भी व्यास जी को 'सुकुल समोखन सुवन' लिखा है। विदेशी विद्वानों ने भी इनको शुक्ल ही लिखा है‡। लोकेन्द्र ब्रजोत्सव में शुक्ल वंश में उत्पन्न श्री हरिराम जी को 'व्यास' उपाधि से विभूषित होने का यही कारण भी प्रगट किया है कि पुराण वक्ता होने से वे व्यास जी कहलाये, और यही सूचना 'व्यास जू के बंस वर्णन' पत्र में दी गई है।

(२) *उपाधि*—इसी प्रकार 'गोस्वामी' या 'गुसाईं' की उपाधि भी है, जो दीक्षा गुरु को संबोधित करने में प्रयुक्त होती रही है§। श्री व्यासोत्सव की जन्म बधाई में भी इस आशय के पद हैं कि पुराण वक्ता होने के कारण श्री हरिराम जी शुक्ल व्यास कहलाये तथा शिष्य बनाने के कारण वे गोस्वामी कहलाये। बधाई में यह विवेचन श्री व्यासजी के जन्म के समय उनके पिता समोखन शुक्ल का अन्य ब्राह्मणों से व्यास जी के ग्रहादिकों के फल के विषय में वार्तालाप के रूप में प्रकट किया गया है—

---

‡ George A Grierson, in his book "Modern vernacular Literature of Hindustan" writes as follows :—
Byas Swami, alias Hari Ram Sukl of Urchha in Bundelkhand fl. 1555 A. D.

§ आए स्वयं सिद्ध सरजू तें, रामचंद्र जन-पालक ।
तहाँ भए हैं सुकल समोखन, हैं सनाढ्य सब लायक ॥
तिनके तनय भए युग सुंदर, परसुराम है एका ।
दूजे हरीराम को जानो, देखे शास्त्र अनेका ॥
हरीराम सों मधुकर सा ने, सुने पुरान अटारा ।
पदवी दई 'व्यास' की तिनकों, अति ही कर सतकारा ॥
दीक्षा मंत्र हतौ इन हू कों, गोस्वामी पद दीनों ।
भए 'गुसाईं' व्यासदास, नृप नित चरणोदक लीनों ॥

—लोकेन्द्र ब्रजोत्सव, पृष्ठ १४

श्री समोखन सकल पूछन, विप्र चरन मनाइ ।
कहिये जु जाको भाव फल, सब जन्मपत्र बनाइ ॥११॥
सब सोधिकैं सब विप्र बोले, सुनहु श्री महाराज !
करिहैं जु जग में भक्ति पूरन, भयौ भक्तन राज ॥१२॥
सर्व सास्त्र-पुरान-बचना, व्यास पदवी पाइ ।
भवन भूपन सिष्य करि, गोस्वामि बंस कहाइ ॥१४॥
नाम है हरिराम, इक मुख गुन गनै नहिं जाइ ।
विष्णु-परिकर आइ प्रगटौ धन्य तुम्ह धन माइ ॥१५॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ ४)

उक्त बधाई में व्यास जी का पूरा नाम हरिराम भी प्रकट हुआ है। व्यास जी ने अपनी वाणी में मंत्रोपदेश करने वाले गुरुओं को 'गुसाईं' पर्यायवाची शब्द से संकेत किया है* । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'गोस्वामी' कोई स्वतंत्र अल्ल न होकर मंत्रोपदेश करने वाले वैष्णव गुरुओं की एक उपाधि विशेष है। इस प्रकार कितने ही विभिन्न गुरु वंश गोस्वामी उपाधि अपने नाम के साथ धारण करते चले आ रहे हैं‡ । व्यास जी की वंश परंपरा में उत्पन्न व्यासवंशी गोस्वामी कहलाते हैं, किंतु उनकी वास्तविक अल्ल 'शुक्ल' है। व्यास जी सनाढ्य ब्राह्मण थे, जिसकी पुष्टि उनके वंशजों तथा व्यास-वाणी में वर्णित श्री राधाकृष्ण की विवाह लीला में सनाढ्य ब्राह्मण समुदाय में प्रचलित विवाह प्रणाली के अनुसार वर्णन से भी होती है† ।

---

* धर्म दुरयौ कलि दई दिखाई। ×
उपदेसन को गुरू गुसाईं, आचरनै अधमाई ॥ (व्यास वाणी)

‡ गोसाईं उपाधि के अधिकारी वे ही साधु माने जाते हैं, जो कतिपय विशिष्ट संप्रदायों में दीक्षित होते हैं। ऐसे संप्रदाय गिनती के पाँच हैं—वृंदावनी, गौड़ीय, गोकुलस्थ, राधावल्लभी और दशनामी। (देखिये श्री माताप्रसाद जी गुप्त द्वारा रचित 'तुलसी संदर्भ' में 'तुलसीदास नाम के साथ लगे हुए गोसाईं शब्द का रहस्य।' शीर्षक निबंध)

† सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने इन्हें भ्रमवश 'गौड़ ब्राह्मण' लिखा है। देखिये 'दी माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान।' (पृष्ठ २८)

ओरछा में व्यास जी के उपास्य ठाकुर जी का प्राचीन मंदिर
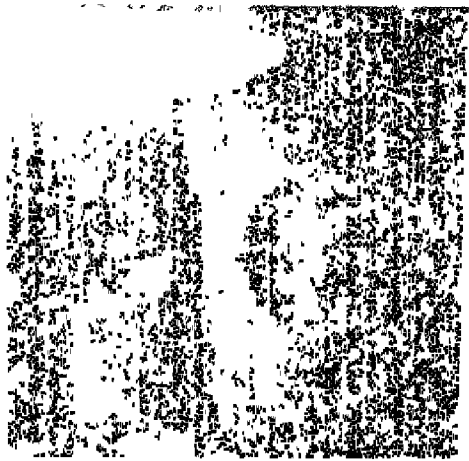
ओरछा में व्यास जी की प्राचीन हवेली

३. खेरा और परिवार—

(१) खेरा—महर्षि वेदव्यास जी की वंश-परंपरा में उत्पन्न देवमणि नामक एक महापुरुष ने ब्रजमंडल में जमुना तट से एक मील की दूरी पर स्थित पिप्पल नामक स्थान पर तपस्या की और सिद्धि प्राप्त हो जाने पर विवाहोपरांत पूर्ववत् पुनः कालरी में ही गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। देवमणि से आठवीं पीढ़ी नीचे व्यास जी के पिता सुकुल समोखन हुए। उन्होंने पिप्पल खेरे को पुनः आबाद किया†।

श्री व्यास जन्मोत्सव की एक बधाई में भी समोखन जी के पिप्पल खेरे से संबंधित होने की चर्चा की गई है—

> बड़े हमारे प्रथम ही, आए आय विवाह।
> पिप्पल खेर में तबहि, लीनों दान प्रवाह॥
>
> —रामकिशोर कृत (पृष्ठ २८)

मोरम जी के प्रेषित की वहाँ से व्यास वंशवृक्ष की ली गई एक प्रतिलिपि में भी 'खेरो पीपरी, महर मथुरा' लिखा है। बधाई के उद्धरण से अनुमान होता है कि पिप्पल अथवा पीपरी में पहुँचने के उपरांत समोखन जी का विवाह भी वहीं हुआ। 'गुरु शिष्य वंशावली', में सुकुल समोखन द्वारा विंध्यवासिनी देवी की तपस्या करने का उल्लेख किया गया है, जिससे उनका पिप्पल खेरे को छोड़ना भी अभिप्रेत है।

कोटा राज्य की स्यानपुर निज़ामत के एक दीवानी मुकद्दमा में 'व्यास वंशी राजगुरु गुसांईयों' का एक कुर्सीनामा पेश हुआ था*। उसमें दी गई एक टिप्पणी के अनुसार समोखन जी शुक्ल के पितामह पुरुषोत्तम व्यास ने तुंगारण्य‡ में वेत्रवती के तट पर तपस्या की थी। इससे समोखन जी के पूर्वजों का ओरछा में वेत्रवती के तट पर तपस्या करते हुए वहीं स्थायी रूप से निवास करना प्रकट होता है।

किसी दृढ़ आधार के अभाव में इस विषय पर निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। व्यास जी ने तो अपनी वाणी में खेरा 'बरसाना' लिखा है, किंतु उस पद में इस प्रकार की समस्त सूचनाएँ अनन्यता की द्योतक हैं, न कि ऐतिहासिक तथ्य की—

---

† 'गुरु शिष्य वंशावली' के आधार पर।

* देखिये, मिसिल नंबरी ५०४।६।१४२ सं० ८३ मरजुआ २८।१।१६२६ फैसला २०।८।१६२७।

‡ केशवदास ओरछे के आस-पास तीस कोस, तुंगारण्य नाम वन को अजीत है।'
—कविप्रिया, प्रभाव ७, छंद ७

रसिक अनन्य हमारी जाति ।

कुल देवी राधा, बरसानो खेरो, ब्रजवासिन सों पाँति ॥

अस्तु । इतनी संभावना मानकर कि व्यास जी के कोई पूर्वज ब्रज के पिंगल नामक ग्राम से ओरछा आये थे, हमें संतोष करना पड़ेगा ।

(२) *भाई*—श्री नवलकिशोरजी विद्यार्थी ने 'भक्त श्री व्यासदास जी' शीर्षक चरित्र में हरिराम व्यास को सुमोखन शुक्ल का इकलौता पुत्र लिखा है†, जो ठीक नहीं ।

अन्य कितनी ही वंशावलियों में सुमोखन जी शुक्ल के दो पुत्र हरिराम और परशुराम लिखे गये हैं‡ । इन वंशावलियों में उक्त दोनों के उल्लेख में क्रम भेद पाये जाते हैं । 'गुरु शिष्य वंशावली' में हरिराम को ही समोखन जी का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है—

जेठे हैं हरिराम, देव अस तिन सों कहे ।

हैं दोउ एक समान, परसराम लौरे कहे ॥४०॥

व्यास जी के पद के अंतर्साक्ष्य से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यास जी अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे । वह पद इस प्रकार है—

मनहिं नचावै विषय-वासना क्यों हिरदै हरि आवै ।

लहुरो भैया करि विरोध औरनि पै कोंहि हंसावै ॥

(३) *बहिन*—एक पद में व्यास जी ने बहिनी और बेटा को संबोधित करके लिखा है‡ । यद्यपि बहिनी संबोधन अन्य स्त्रियों के प्रति भी हो सकता है, किंतु इसके साथ 'भाई' न होकर 'बेटा' शब्द की सन्निधि इस बात के द्योतक हैं कि इन प्रयोगों से परिवार की ही बहिन अभिप्रेत है ।

(४) *पुत्री*—एक दूसरे पद से व्यास जी के एक कन्या होने का भी साक्ष्य मिलता है* । भक्तमाल की प्रियादास जी कृत टीका के ३६१ वें कवित्त में व्यास जी की सुता के विवाह की एक घटना का वर्णन भी किया गया है । पुत्रों को संकेत कर उन्होंने कई पद लिखे हैं$ ।

† देखिये, 'भक्त-सौरभ' पृष्ठ १ (गीता प्रेस, गोरखपुर)

‡ देखिये, 'गुरु शिष्य वंशावली', 'लोकेन्द्र ब्रजोत्सव', 'व्यास जू का वंश वर्णन पत्र' आदि ।

‡ बहिनी बेटा हरिकों न तजियै ।

* मरै वे जिन मेरे घर गनेस पुजायौ । ×

'व्यासदास' कन्या पेटहिं क्यों न मरी, अनन्य धर्म में दाग लगायौ

$ सब्बु सुत सोंपे स्याम सिताहि

(५) *पुत्र*—वंशावलियों में श्री व्यास जी के तीन पुत्र पाये जाते हैं। प्रियादास कृत भक्तिरस-बोधिनी टीका (रचनाकाल संवत् १७६९) के ३६४ वें कवित्त में भी व्यास जी के तीन पुत्र होने की सूचना दी गई है तथा उनमें से एक का नाम श्री किशोरदास होना प्रकट किया गया है। शेष दो पुत्रों के नाम उसमें नहीं प्रकट किये गये।

किशोरदास के अतिरिक्त व्यास जी के अन्य दो पुत्रों के नाम सौंदर्य सागर पृष्ठ १७ में गोपालदास तथा श्यामदास लिखे गये हैं। श्री छोटेलाल जी गोस्वामी, दतिया द्वारा संगृहीत वंशवृक्ष के एक अर्वाचीन पत्र में भी यही उल्लेख है। किंतु सौंदर्य सागर के रचयिता श्री राधालाल जी गोस्वामी के द्वारा ही निश्चित रूप से मान्य एक हस्तलिखित वंशवृक्ष में लेखक ने गोपालदास तथा श्यामदास के स्थान पर रासदास तथा विलासदास नामांकित किये हैं। अन्य और भी जितने वंशवृक्ष विभिन्न स्थानों पर उपलब्ध हुए हैं, उनमें व्यास जी के तीन पुत्रों के नाम रासदास, विलासदास तथा किशोरदास लिखे पाये गये हैं। परीक्षित वंशवृक्षों में से प्राचीनतम पत्र का लिपिकाल संवत् १८७४ के लगभग प्रमाणित हुआ है। 'गुरु शिष्य वंशावली' के अनुसार रासदास, विलासदास मझले पुत्र और किशोरदास छोटे पुत्र थे।

(६) *पत्नी*—आचार्य श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी द्वारा प्रकाशित व्यासवाणी के प्राक्कथन में लिखा है कि 'योग्य अवस्था में एक सुकुलीन ब्राह्मण की पुत्री श्री सुशीला जी के साथ श्री व्यास जी का पाणिग्रहण हुआ।' पता नहीं 'सुशीला' नाम की यह सूचना किस आधार पर दी गई है। 'भक्त सौरभ' में एक सुशीला कन्या से व्यास जी का विवाह कर देना लिखा है, जिसमें 'सुशीला' शब्द संज्ञा न होकर विशेषण के रूप में है। 'गुरु शिष्य वंशावली' में व्यास जी का विवाह बरसाने निवासी दयाराम जी की सुपुत्री गोपी नाम्नी कन्या के साथ होना तथा दयाराम को श्री वृषभानु जी के पुरोहित का वंशज बताया गया है। 'गुरु शिष्य वंशावली' में दी गई विवाह संबंधी सूचनाओं की प्रामाणिकता के संबंध में इतना कहा जा सकता है कि इस वंशावली में प्रकट व्यास जी की माता का नाम 'देविका' व्यास जन्मोत्सव की विभिन्न कवियों द्वारा रचित कई बधाइयों में पाया गया है। अतएव व्यास जी की पत्नी का नाम 'गोपी' कदाचित् किसी आधार पर ही 'गुरु शिष्य वंशावली' में लिखा गया होगा। 'व्यास वाणी' के प्रसंगों से ज्ञात होता है कि जिन उपदेशों को व्यास जी ने

अपनी पत्नी के प्रति कहा है, उनमें कहीं-कहीं उन्हें वैष्णवदासी करके संबोधित किया है, किंतु यह उनका वास्तविक नाम नहीं है—

"बिनती सुनिये वैष्णवदासी।"

(७) निष्कर्ष—उक्त विवेचन से व्यास जी के परिवार में पत्नी[1], एक छोटा भाई, बहिन, पुत्री तथा तीन पुत्रों के होने की सूचना मिलती है।

४. पूर्वज—

'गुरु-शिष्य वंशावली' में लिखा है कि जमुना तट पर स्थित कालपी नगरी में पराशर मुनि द्वारा सत्यवती के गर्भ से अजय शर्मा का जन्म हुआ था। यही अजय शर्मा वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हुए। वेदव्यास जी की वंश-परंपरा में उत्पन्न देवमणि नामक एक महापुरुष ने ब्रजमंडल में तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की। देवमणि से लेकर हरिराम व्यास तक वंशावली के नाम और उनके विवाह संबंधी एवं जो कुछ अन्य सूचनाएँ उक्त ग्रंथ में दी गई हैं, वे इस प्रकार हैं—

देवमणि—ब्रजमंडल के पिप्पल ग्राम में तपस्या की। विवाहोपरांत कालपी में रहे।

कोक—गढ़ौली ग्राम निवासी देवदत्त ब्राह्मण की सुता से विवाह हुआ।

मारकंड व्यास—वन कुंज में बसे। मुहेरी निवासी जनि शर्मा की पुत्री से विवाह हुआ।

सुमन व्यास—अविवाहित रहे तथा अपने अनुज के पुत्र को गोद लिया।

उदयभान व्यास—गढ़ौली ग्राम निवासी पंडित राम की कन्या उन्हें व्याही गई।

देवनारायण व्यास—मधुपुरी निवासी हरिशर्मा ब्राह्मण की कन्या व्याही गई।

भोज व्यास[2]—गोवर्धन वासी दयादास की कन्या से विवाह हुआ।

---

[1] वृंदावन कथा (बंगला) में पृष्ठ १४२ पर व्यास जी की पत्नी द्वारा पद-रचना की भी सूचना दी गई है।

[2] 'सौन्दर्य-सागर' तथा एक साधारण वंशावली में भोज व्यास के पिता का नाम पुरुषोत्तम व्यास लिखा है। उन वंशावलियों में व्यास पुरुषोत्तम के ऊपर की पीढ़ियाँ या तो हैं नहीं, या संदिग्ध रूप से वर्णित हैं

रेवा शर्मा—मधुपुरी निवासी दुर्गेश जी की कन्या से विवाह हुआ।

सुकल समोखन—पीपरी निवासी अमरदास जी की देविका नामक कन्या से उनका विवाह हुआ। उन्होंने पिपल ग्राम को पुनः आबाद किया।

हरिराम व्यास—श्री वृषभानु जी के पुरोहित की वंश परंपरा में उत्पन्न बरसाना निवासी दयाराम जी की गोपी नाम्नी कन्या से उनका विवाह हुआ।

उक्त वंशावली में वर्णित हरिराम व्यास जी के पूर्वजों के नाम ऊपर की तीन पीढ़ी अर्थात् भोज व्यास तक अन्य दो वंशावलियों से किसी न किसी प्रकार समर्थित हैं। हरिराम व्यास की माता का नाम देविका होने का उल्लेख भी 'व्यास जन्मोत्सव की बधाई' में मिलता है। उसमें सुकल समोखन के साथ पिपल खेरे का लगाव भी मिलता है। शेष सूचनाओं के समर्थन अन्यत्र नहीं मिले। जिन आधारों पर समर्थन प्राप्त हुए हैं, वे भी निश्चयात्मक रूप से प्रामाणिक नहीं कहे जा सकते। अतएव इतनी पुरानी ऐसी पूर्ण सूचनाओं को कहाँ तक ग्रहण किया जाय, यह नहीं कहा जा सकता। विवाह संबंध की जो सूचनाएँ ऊपर दी गई हैं, उनके अतिरिक्त वंशावली में आये हुए लगभग ५०० नामों में से वे औरों के विषय में नहीं दी गई हैं।

५. शिक्षा—

व्यास जन्मोत्सव की बधाइयों से प्रकट होता है कि व्यास जी ने समस्त शास्त्रों और पुराणों का अध्ययन किया था‡। उनकी वाणी में

† कहीं-कहीं यह नाम रेसर्म या रेसरमन रूप में लिखा गया है। उनके पिता का भोज व्यास नाम होने की पुष्टि श्री बाबूलाल जी गोस्वामी दतिया के सौजन्य से दृष्ट एक वंशावली से हुई है। सौंदर्य सागर में रेवा शर्म के पिता का नाम कृष्णदास व्यास, जो भोज व्यास के भाई थे, लिखा है। रेवा शर्म की मृत्यु अल्पायु में मानकर कृष्णदास व्यास द्वारा अपनी कन्या के पुत्र सुकल समोखन को गोद लेने का वहाँ उल्लेख किया गया है। किंतु सोरम जी के प्रोहित की बही से नकल की गई एक वंशावली के आधार पर 'रेशर्म' के समोखन, अर्जुन और बंदीजन नामक तीन पुत्र हुए थे। अतएव 'गुरु शिष्य वंशावली' की नामादिकों की सूचनाएँ किसी सीमा तक ठीक प्रतीत होती हैं।

‡ सर्व —बक्ता, 'व्यास' पदवी पाय
मक्त भूषन सिष्य कर, गोस्वामि वस कहाय

व्यक्त दार्शनिक विचारों से पता चलता है, कि वे वेदांत के प्रकांड पंडित थे। वाणी की काव्य-कला, और रागमाला में वर्णित भारतीय नाद के शास्त्रीय विवेचन से उनका काव्य और संगीत पर अधिकारपूर्ण ज्ञान का प्रमाण आज भी उपलब्ध है। परन्तु व्यास जी की शिक्षा कहाँ और किसके द्वारा हुई इसके संबंध में सूचनाएँ अप्राप्य हैं। साधारणतया यही प्रतीत होता है कि उन्होंने ओरछा में ही शिक्षा प्राप्त की। वे बड़े ही प्रसिद्ध शास्त्रार्थी पंडित हुए और अपनी विद्या की धाक जमाने के लिए उन्होंने अनेकों प्रसिद्ध विद्वानों को परास्त किया था।

६. दीक्षा गुरु—

(१) *प्रचलित मत*—व्यास जी द्वारा हितहरिवंश जी का शिष्यत्व ग्रहण करने की एक मनोरंजक कथा का बहुत प्रचार है। इस कथा का उल्लेख करने वाले ग्रंथों में प्राचीनतम रचना जो उपलब्ध है, वह है संवत् १८०७ वि० में वर्तमान भगवत मुदित जी कृत 'रसिक-अनन्यमाल'। इस ग्रंथ में लिखा है कि ओरछा में संत नवलदास जी से व्यास जी ने हरिवंश जी का यह पद सुना—

आजु अति राजत दंपति भोर।
सुरत रंग के रस में भीने, नागर नवलकिशोर॥
अंसनि पर भुज दिए विलोकत, इंदु बदन विवि ओर।
करत पान रस मत्त परस्पर, लोचन त्रिषित चकोर॥
छूटी लटनि लाल मन करष्यौ, ये याके चित चोर।
परिरंभन चुंबन मिलि गावत, सुर मंदर कल घोर॥
पग डगमगत चलत बन बिहरत, रुचिर कुंज घन खोर।
जै श्री हित हरिवंस, लाल ललना मिलि हियौ सिरावत मोर॥

पद के लालित्य और प्रेम की अलौकिक छटा से व्यास जी मुग्ध हो गये। उनका मन संतों की शरण में जाने के लिए उतावला पहिले से ही हो रहा था। फिर क्या था, 'भगवत दुख बिसर्यौ सुनत, नवल वचन सुख सीर। संसै सूलरु भ्रम नस्यौ, निरमल भयौ सरीर।' अब उनकी उत्कंठा श्रीहित जी को गुरु करने के लिए हो गई। वे नवलदास जी के साथ वृंदावन आये†। उस समय श्री हित हरिवंश जी राधावल्लभ जी

---

† कार्तिक लगत वृंदावन आए। नवल रसिक संग लिए सुहाए॥

—रसिक अनन्य माल

के भोग के लिए अमनियाँ सिद्ध कर रहे थे। व्यास जी ने उसी समय उनसे वार्त्तालाप करना चाहा। आग्रह देख श्री हित जी ने चूल्हे पर से बर्तन उतार कर नीचे रख दिया और तब वे बात करने को उद्यत हुए। यह देख कर व्यास जी ने कहा कि रसोई और बातचीत तो साथ-साथ चल सकती थी। क्यों कि—

"करिबौ-धरिबौ कर कौ धर्म। कहिबौ-सुनिबौ मुख-श्रुति मर्म॥"

—रसिक अनन्य माल।

इसका उत्तर हित जी ने एक पद में दिया, वह यह है—

यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहि कौनैं सचु पायौ।
जहँ तहँ बिपति जार जुवती लौं, प्रगट पिंगला गायौ॥
द्वै तुरंग पर जोर चढ़त हठि, परत कौन पै धायौ।
कहिधौ कौन अंक पर राखै, जो गनिका सुत जायौ॥
जै श्री हित हरिवंश प्रपंच बंच सब, काल ब्याल कौ खायौ।
यह जिय जानि स्याम-स्यामा-पद-कमल संग सिर नायौ॥

इस उपदेश को सुनते ही व्यास जी ने शिष्य बनने की अभिलाषा प्रकट की ‡। तब हित जी ने—

श्रद्धा लखि निज मंत्र सुनायौ। भयौ व्यास के मन कौ भायौ॥

—रसिक अनन्य माल ('भक्त सौरभ' से उद्धृत)

---

‡ To indicate the fervour of his passionate love for his divine mistress Harivans assumed the title of Hit ji and is popularly better known by his name than by the one, which he received from his parents. His most famous disciple was Vyas ji of Orchha, whom various legends are reported. On his first visit to the Swami, he found him busy in cooking, but at once propounded some knotty theological problem. The sage without any hesitation solved the difficulty, but first threw away the whole of the food he had prepared with the remark that no man could attend properly to two things at once. Vyas was so struck by this procidure, that he then and there enrolled himself as his disciple

Mathura District Memoir Page 199

भगवत मुदित जी कृत 'सेवक चरित्र'‡ में भी ऐसा लिखा है कि गौड़ देशांतर्गत गढ़ा ग्राम के निवासी चतुर्भुजदास और सेवक जी जब दीक्षा लेने का विचार कर रहे थे, तब उनके गम्भीर कुछ रसिक उपासकों की मंडली आई और उसने उन्हें श्री हित हरिवंश जी की प्रशंसा सुनाई तथा यह भी बतलाया कि नवलदास जी के साथ व्यास जी भी श्री हित जी के पास पहुँच गये हैं। व्यास जी जैसे प्रसिद्ध पंडित के विषय में उस चर्चा को सुन कर चतुर्भुजदास और सेवक जी में श्री हित जी के प्रति विश्वास बढ़ गया।

अब 'रसिक अनन्य-माल' में जो हित जी को व्यास जी द्वारा दीक्षा ग्रहण करना लिखा है, उसका काल इसी ग्रंथ के अन्य प्रसंग को दृष्टि में रखते हुए क्या ठहरता है, इस पर भी दृष्टि डालना आवश्यक हो जाता है*। कार्तिक शुक्ला १३ संवत् १५९० वि० को श्री हित हरिवंश जी वृंदावन आये थे†। 'रसिक-अनन्य माल' में वर्णित श्री पूरनदास और परमानंददास के वार्तालाप की इस चौपाई से कि—"यह जु एक मन को पद गायौ। व्यासहि कह्यौ सु अर्थ बतायौ॥" से यह लक्षित होता है कि व्यास जी को राजा परमानंददास जी से पूर्व ही दीक्षा मिल चुकी थी। इस वार्तालाप के अनिश्चित कालोपरांत संवत् १५९२ की भादों सुदी ९ को परमानंददास जी को स्वप्न द्वारा दीक्षा प्राप्त हुई‡। इस प्रकार इस वर्णन से व्यास जी को कार्तिक शुक्ल १३ संवत् १५९० से भादों सुदी ९ संवत् १५९२ के बीच किसी समय दीक्षा देने का काल ठहरता है। व्यास जी के चरित्र में लिखा है कि—"कार्तिक लगत वृंदावन आये। नवल रसिक

---

‡ रीवा नरेश के सरस्वती भंडार में 'सेवक वाणी' सचित्र रस मोहिनी टीका के प्रारंभ में भगवत मुदित जी कृत सेवक चरित्र संलग्न है। बस्ता नं० ३, पुस्तक नं० ४९।

* गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'भक्त-सौरभ' में दिये गये व्यासदासजी के चरित्र में दीक्षा काल संवत् १६०० वि० के लगभग कार्तिक मास इंगित किया गया है। यह चरित्र भी 'रसिक अनन्यमाल' के आधार पर लिखा गया है।

† इस तिथि के विषय में मतभेद है। बहुत से विद्वान संवत् १५६५ के पूर्व श्री हिताचार्य का वृंदावन में आगमन प्रकट करते हैं।

‡ पंद्रह सै बानवै भादों सुद। नवमी दीक्षा लई भई मुद॥

—रसिक (परमानन्ददास जी का चरित्र)

लगे लिए मुहूर्त ।" उपरोक्त दोनों सीमाओं में कार्तिक मास संवत् १५८० और १५८१ में ही संभव हो सकता है। संवत् १५८० के कार्तिक की समाप्ति के समय तो स्वयं हित जी ही वृंदावन आये†। अतः 'कार्तिक लगत' वाला प्रकाश सं० १५८१ के कार्तिक के लिए ही उपयुक्त बैठता है।

इस विवेचन के अनुसार 'रसिक अनन्यमाल' के आधार पर व्यास जी का हित हरिवंश जी से दीक्षा लेना और उसका काल कार्तिक संवत् १५८१ प्रकट होता है। किंतु यहाँ पर स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि 'रसिक अनन्यमाल' में व्यास जी का दीक्षा-काल उनके ही प्रसंग में नहीं दिया गया है, तथा ग्रंथ का उद्देश्य किसी प्रामाणिक इतिहास लिखने का न होकर श्री हित हरिवंश जी की महिमा का कथन मात्र था। अतएव यह भी संभव है कि पूर्वापर प्रसंग पर ध्यान न देकर श्री हिताचार्य के होने वाले शिष्यों के चरित्रों में व्यास जी जैसे उद्भट विद्वान् की चर्चा कर दी गई हो।

आचार्य श्री रामचंद्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा तथा श्री वियोगी हरि* आदि विद्वानों ने तो ओरछा नरेश महाराज मधुकर शाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यास जी का सं० १६२२ के लगभग श्री हित हरिवंश जी का शिष्यत्व ग्रहण करने का काल प्रकट किया है। किंतु इन लेखक महानुभावों ने यह नहीं बतलाया कि उनकी इस सूचना का आधार क्या है। बहिर्साक्ष्य के आधार पर किसी सूचना को स्वीकार कर लेने के पूर्व हमें अंतर्साक्ष्य की समीक्षा कर लेना है।

(२) *उक्त मत के कथित अंतर्साक्ष्य की समीक्षा*—अखिल भारतवर्षीय श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा वृंदावन द्वारा प्रकाशित श्री व्यास वाणी की प्रस्तावना में उदाहरण रूप से कुछ प्राचीन

---

† श्री हित जी का वृंदावन आगमन काल 'श्री हित चरित्र' एवं 'श्री हित सुधासागर' के 'विज्ञान' के अनुसार कार्तिक शुक्ला १३ संवत् १५९१ माना जाता है।

* श्री वियोगी हरि जी ने वीरसिंह देव द्वारा अकबर के विश्वासपात्र मंत्री अबुलफजल के वध की घटना के पश्चात् व्यास जी का ओरछा से वृंदावन जाना तथा महाराजा मधुकर शाह द्वारा उन्हें मनाने और उनका वृंदावन न छोड़ने का उल्लेख किया है। किंतु अबुलफजल का वध संवत् १६५९ में हुआ था, जिसके ९ वर्ष पूर्व ही मधुकर शाह का देहांत हो चुका था। अतएव इस वर्णन की ऐतिहासिक संगति नहीं है। —देखिये 'ब्रज माधुरी सार' पृष्ठ ६४

एवं अर्वाचीन ग्रंथों का नामोल्लेख करते हुए उनमें व्यास जी के जीवन पर प्रकाश डालने वाले वृत्तांत तथा निश्चित रूप से श्री हित हरिवंशाचार्य महाप्रभु के प्रिय शिष्यों में व्यास जी की गणना किये जाने का उल्लेख है। इसमें व्यास जी द्वारा श्री हिताचार्य का शिष्यत्व ग्रहण करने की वह प्रचलित कथा तो है ही, जिसमें 'यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहु कौनै सचु पायौ' वाले श्री हित जी के पद का प्रसंग आता है; साथ ही व्यास जी की तथाकथित रचनाओं के कुछ ऐसे उद्धरण दिये गये हैं, जिनके द्वारा व्यास जी श्री हित जी के शिष्य सिद्ध होते हैं। इन उद्धरणों की विवेचना नीचे दी जाती है—

प्यारी श्री वृंदावन की धूर।
राधे जू रानी, मोहन राजा, राज सदा भरपूर॥
कनक कलस करुआ महमूदी, मारग ब्रज कमलन की चूर।
व्यासहि 'गुरु हरिवंश' बनाई, अपनी जीवन मूर॥

—व्यास वाणी (राधावल्लभीय) पृष्ठ ३.

उक्त पद यथावत् उसी व्यास वाणी (राधावल्लभीय) के मूल भाग में भी नहीं है, जिसकी प्रस्तावना में वह उद्धृत किया गया है। 'प्यारी श्री वृंदावन की धूर' के स्थायी का कोई पद प्रकाशित व्यास वाणी की दोनों प्रतियों में मुझे नहीं मिला। हाँ, यही पद भिन्न स्थायी और थोड़े से पाठांतर के साथ सभी प्रतियों में इस प्रकार उपलब्ध होता है—

सदा मिर्यो मुहरैं मेरैं, श्री वृंदावन की धूरि।
जहाँ राधा रानी, मोहन राजा, राज रह्यौ भरिपूर॥
कनक कलस करुआ महमूदी, मारग ब्रज कमलनि की चूरि।
'व्यासहि' हित हरिवंश बनाई, अपनी जीवन मूरि॥

—व्यास वाणी (राधावल्लभीय) पृष्ठ ६

उक्त पद से स्पष्ट होगा कि जहाँ व्यास वाणी के मूल में 'हित हरिवंश' है, वहाँ प्रस्तावना में 'गुरु हरिवंश' उद्धृत किया गया है। व्यास वाणी की विभिन्न प्रतियों में उक्त पद में 'हरिवंश' के साथ पूर्ववर्ती शब्द इस प्रकार पाये जाते हैं—

(क) हित हरिवंश—१. व्यास वाणी (राधावल्लभी) पृ० ६
२. व्यास वाणी (लिखित सं० १८६४) पृष्ठ ४
३. व्यास वाणी (लिखित सं० १८८८) पृष्ठ ३
४. व्यास वाणी (लिखित सं० १६६३)
हिंदी साहित्य संमेलन में सुरक्षित ग्रंथ संख्या २१३६-१३५३, पद संख्या ११

(ख) श्री हरिवंश—१. व्यास वाणी (श्री राधाकिशोर गोस्वामी) पृ. ३०
२. व्यास वाणी (लिखित सं० १८८६) हिंदी साहित्य संमेलन में सुरक्षित ग्रंथ संख्या २१३३-१३५२, पृष्ठ ५६ पद ४.

यद्यपि 'हितहरिवंश' अथवा 'श्री हरिवंश' पाठ ग्रहण करने पर 'हरिवंश' के साथ 'गुरु' शब्द का प्रयोग नहीं रह जाता, तथापि व्यास जी के द्वारा यह स्वीकार किया जाना इस पद से भी सिद्ध है कि उन्हें श्री हित हरिवंश जी ने अपने जीवन के मूल तत्व को बतलाया था।

(२) इस संबंध में दूसरा उद्धरण है—

अब हम वृंदावन धन पायौ ।
सरन सरन राधे मन दीनौ, 'श्री हरिवंश' बतायौ ॥
सोयौ हुतौ विषय मंदिर में, 'हित गुरु टेर' जगायौ ।
अब तौ व्यास विहार बिलोकत, सुक नारद मुनि गायौ ॥

इसके दूसरे चरण में जहाँ 'श्री हरिवंश बतायौ' है, वहाँ मूल ग्रंथ में इसके विपरीत 'मोहनलाल रिझायौ' पाठ है, जो अन्य प्रकाशित तथा प्रयुक्त हस्त लिखित प्रतियों से समर्थित है। अतः 'श्री हरिवंश बतायौ' पाठ प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। फिर एक ही छंद में पास-पास दो बार हित जी के नाम का प्रयोग भी उपयुक्त नहीं है। तीसरे चरण का 'हित गुरु टेर जगायौ' पाठ केवल व्यास वाणी (राधावल्लभीय पृष्ठ ८४) से तो मिलता है, किंतु अन्य प्रयुक्त व्यास वाणियों में यह पाठ नहीं पाया जाता। तीनों प्रतियों अर्थात् व्यास वाणी (श्री राधाकिशोर गोस्वामी, पृष्ठ ७२) लिखित १८६४ वि० पृष्ठ १ तथा लिखित १८८८ पृष्ठ ५५ के अनुसार 'श्री गुरु टेरि जगायौ' पाठ है, अतः 'गुरु' के साथ 'हित' शब्द की सन्निधि सिद्ध नहीं होती है।

(३) प्रस्तावना के तीसरे उद्धरण का दोहा—

राधावल्लभ इष्ट लह्यौ, 'गुरू मिले हरिवंश' ।
व्यास बास बनराज कौ, करि छोड्यौ सब संस ॥

न तो व्यास वाणी (राधावल्लभीय) के मूल भाग में ही पाया जाता है और न व्यास वाणी की अन्य प्रयुक्त प्रतियों में ही यह है। अतएव जब तक यह व्यास जी की कृति सिद्ध न हो, इसे क्षेपक मानना होगा

इस प्रकार समस्त उद्धरणों की समीक्षा से यह प्रकट होता है कि या तो व्यास वाणी के ही सर्वमान्य अंग नहीं हैं, अथवा उनमें परिवर्तन हुआ है, जिसमें श्री हित हरिवंश जी के नाम के साथ 'गुरु' का प्रयोग दृष्टिगोचर हो सके। आश्चर्य की बात तो यह है कि उद्धरण व्यास वाणी की उसी प्रति के अनुसार भी खरे नहीं जिसकी प्रस्तावना में उनका प्रयोग हुआ है।

अ० भा० श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा वृंदावन प्रकाशित व्यास वाणी में निम्न लिखित पद तथा दोहा ऐसे हैं जो हिताचार्य के प्रति व्यास जी का शिष्यत्व प्रकट करते हैं, किन्तु इन्हें भी प्रयुक्त व्यास वाणी की प्रकाशित एवं लिखित अन्य प्रतियों में नहीं पाये जाते—

(१)

जय जय श्री हरिवंश, हंस हंसिनि लीला रति।
जय जय श्री हरिवंश, भक्ति में जाकी दृढ़ मति॥
जय जय श्री हरिवंश, रटत श्री राधा राधा।
जय जय श्री हरिवंश, सुमिरि नासे भव बाधा॥
व्यास आस (हित) हरिवंस की, सु जय जय श्री हरिवंश।
चरन सरन मोहीं सदा, रसिक प्रसंस प्रसंस॥

(२)

एक पकौरी सब जग लूट्यौ।
जप, तप, व्रत, संजम करि हारे, नेकु नहीं मन टूट्यौ॥
माया रचित प्रपंच कुटुंबी, मोह-जाल सब छूट्यौ।
व्यास गुरु (हित) हरिवंस कृपा तें, बसिबनराज प्रेम-रस लूट्यौ॥

(३)

व्यास भक्ति कौ फल लह्यौ (श्री) वृंदावन की धूरि।
हित हरिवंस प्रताप तें, पाई जीवन मूरि॥

(४)

कोटि-कोटि एकादसी, महा प्रसाद कौ अंस।
व्यासहिं यह परतीति है, जिनके गुरु हरिवंस॥

अतएव जहाँ व्यास जी के गुरु निर्णय करने का संबंध है, इन पदों का साक्ष्य रूप में प्रयोग न करना ही साधारणतया ठीक होगा; जब तक कि इनको व्यास जी की रचना होना निर्विवाद रूपेण स्वीकार न किया जाय।

(३) *एक शंका*—श्री हरिराम व्यास वंशोद्भव आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी द्वारा प्रकाशित व्यास वाणी में श्री लाड़िलीकिशोर जी गोस्वामी की ओर से प्रस्तुत प्राक्कथन में व्यास जी को हित जी का शिष्य स्वीकार न करके उन्हें उनके पिता समोखन जी शुक्ल द्वारा ही दीक्षा दिया जाना प्रकट किया गया है। इसमें बतलाया गया है कि एक ओर तो श्री व्यास वाणी में ऐसे अनेक पद हैं, जिसमें श्री हरिदास जी तथा श्री हरिवंश जी के प्रति व्यास जी ने सखा भाव प्रदर्शित किया है तथा दूसरी ओर व्यास वाणी के मंगलाचरण तथा अन्य स्थलों पर भी गुरु रूप से व्यास जी द्वारा उनके पिता सुकुल जी का उल्लेख हुआ है। यह शंका भी उत्पन्न की गई है कि जब ओरछा ही में श्री नवलकिशोर जी व्यास जी को प्रकट हो गये थे, तब आप्तकाम व्यास जी को श्री हिताचार्य जी की दीक्षा की क्या आवश्यकता थी!

(४) *प्रचार*—इस संबंध में एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि विशिष्ट महात्माओं और विद्वानों को अपने प्रांत, संप्रदाय, जाति आदि को प्रकट करने और तत्संबंधी साहित्य सृजन करने की परिपाटी सैकड़ों वर्षों से चली आ रही है, जिसके कारण इतिहास के सही रूप का निर्णय करना कठिन हुआ है। श्री महंत किशोरदास जी द्वारा रचित ग्रंथ 'निजमत सिद्धांत' (संवत् १९६८ में प्रकाशित) के अवसान खंड पृष्ठ १२९ पर यह वर्णन है कि जयगोपाल और उदयचंद बनियाँ पहिले हित कुल के बड़े सेवक थे, परंतु बाद में वे टट्टीस्थान के रसिकदेव जी के शिष्य हो गये थे। इससे तत्कालीन श्री हित सेवाधिकारी रूपलाल जी क्रुद्ध हुए और उन्होंने आगरे वाले हरिजी बनियाँ से एक पोथी 'रसिकमाल' की लिखाई, जिसमें हरिदास स्वामी को हित जी का शिष्य† बताया और उसकी अनेक प्रतिलिपियाँ सेवकों के पास भिजवाईं। इस अपराध से हरिजी गलत कुष्ट से ग्रसित हुआ। वह रसिकदेव की शरण आया और अपना गुप्त अपराध कह कर प्रकट किया।

इस कथा के दुहराने का केवल इतना ही उद्देश्य है कि संप्रदायवाद की संकीर्णता से इस प्रकार के शिष्यत्व का प्रचार अथवा उसकी

---

† उत्तमदास कृत (सं० १७८९ के लगभग) 'रसिक अनन्य माल' (हित परिचई) में भी लेखक को स्वामी हरिदास जी के प्रसंग में यही उल्लेख मिला है, यथा—

तब प्रगटे श्री कुंजबिहारी। पुष्ट सरीर बंक छवि न्यारी॥
श्री हित जी के मत अनुसार। सेवत निरतत नित्य बिहार॥ इत्यादि।

असान्यता के संबंध की दलबंदियों के कारण वास्तविकता का पर्दा तोड़ने में व्यर्थ की उलझनें उत्पन्न हो गई हैं। अतएव व्यास वाणी के अन्तर्साक्ष्य को ही हमें अधिक निकट से देखकर उसका उचित उपयोग करना होगा।

(५) *व्यास जी के गुरु संबंधी विचार*—व्यास जी की विचार-धारा से प्रकट होता है कि वे एक ही गुरु में दृढ़ विश्वास रखने वाले थे। किसी संप्रदाय विशेष में आर्थिक लाभ की दृष्टि से लोगों को प्रविष्ट होते देख वे उनकी हँसी उड़ाते थे—

दिन द्वै लोग अनन्य कहायौ।
धन लगि नट कौ भेष काछि कै, फिरि पाँचनि मे आयौ॥
'सिगरे बिगरे अगनित गुरु करि', सब कौ जूठौ खायौ।
इत व्यौहार, न उत परमारथ, बीचहि जनम गमायौ॥
खौं खांदी ऊसर बैबे कौं, चांढ़ मैस ली मांड़ मुल्यायौ।
'गनिका कौ सुत पितहि पिंड दै, काकौ नाम लिवायौ॥
अंधरहि नाँचि दिखायौ जैसें, बहरहि गाइ सुनायौ।
चढ़ि कागद की नाव नदी कहि, काहू पार न पायौ॥
प्रीति न होहि बिना परतीतिहि, सब संसार नचायौ।
सहज भक्ति बिनु 'व्यास' आस करि, घर ही मांझ मुसायौ॥

उक्त पद में 'गनिका कौ सुत पितहि पिंड दै काकौ नाम लिवायौ' के द्वारा यह व्यंजना की गई है कि जिस प्रकार गणिका के पुत्र को उसके पिता का निश्चय न रहने के कारण पिंड दान में पिता के नाम कथन में भ्रम बना रहता है, वही दशा उन व्यक्तियों की रहती है, जो दृढ़ सिद्धांत के न होकर एक गुरु पर विश्वास नहीं कर पाते। इसी से तो अगणित गुरुओं से दीक्षा लेने को उन्होंने बिगड़ने का कारण माना है।

एक ही गुरु की सेवा और सत्संग से वे स्वपच के लिए भी मोक्ष सरल मानते थे। गुरु और गोपाल को समान मान कर वे भगवत्प्राप्ति के लिए गुरु की कृपा होना अनिवार्य कहते थे। एक गुरु में दृढ़ श्रद्धा न रखने वाले को उन्होंने 'गणिका सुत' के उदाहरण से व्यक्त किया है। वही उदाहरण इस विषय पर लिखे गये इस पद में दुहराया गया है—

जैसें गुरु तैसे गोपाल।
हरि तौ तब ही मिलि हैं, जब हीं श्री गुरु होहिं कृपाल॥×
सत संगति गुरु की सेवा करि, सुपचहि करत निहाल
'व्यासदास' खिजियै गुरु जुग-जुग, मिटत नहीं उर-साल॥

(६) *गुरु सुकुल समोखन*—व्यास वाणी के मंगलाचरण में जो वंदना की गई है, उसमें गुरु के लिए 'सुकल' का प्रयोग मिलता है। यथा—

'बंदे श्री सुकल पद पंकजन'

इससे व्यास जी के गुरु 'सुकुल' होने का प्रमाण मिलता है। पहिले बतलाया जा चुका है कि व्यास जी ने 'सुकल' आस्पदीय कुल में जन्म लिया था। व्यासवंशी गोस्वामियों में अद्यावधि अपने पिता से ही दीक्षा-मंत्र प्राप्त करने की परंपरागत प्रथा चली आती है। इससे भी यही प्रकट होता है कि व्यास जी ने अपने पिता से दीक्षा मंत्र प्राप्त किया था। व्यास वाणी के अन्य ऐसे स्थलों पर जहाँ गुरु वंदना की गई है, वहाँ 'गुरु सुकुल' का ही उल्लेख मिला है।

व्यास वाणी दो भागों में विभक्त है—प्रथम 'सिद्धांत' और द्वितीय 'शृंगार रस'। 'सिद्धांत भाग' का मंगलाचरण ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। 'शृंगार रस भाग में श्री गुरुमंगल विषयक जो पद है, उसमें कई बार 'गुरु सुकुल' का उल्लेख हुआ है। यथा—

जय जय 'श्री गुरु सुकल' बंस उदित भयौ।
ऊग्यौ है जस भान तिमिर जग कौ गयौ॥×
जय जय श्री गुरु सुकुल भक्ति हित अवतरे।
कर्म ज्ञान कों छाँड़ि प्रेम पथ अनुसरे॥×
जय जय श्री गुरु सुकल सहचरी प्रिया की।
सदा बसें नव कुंज चाह लखि पिया की॥×
जय जय श्री गुरु सुकल मोहि सर्बसु दयौ।
उरझि प्राननि प्रान निवारत सुख हयौ॥×

इसमें भी 'सुकुल' का गुरु होना स्पष्ट है। इतना ही नहीं बल्कि 'जय जय श्री गुरु सुकल सहचरी प्रिया की' से स्पष्ट हो जाता है कि सखी भाव की जो उपासना-पद्धति व्यास जी ने ग्रहण की, उसे उन्होंने मूल रूप में अपने पिता सुकल जी से प्राप्त की थी।

इसके अनंतर मंगलाचरण का दूसरा पद देखिये—

बंदे श्री राधा-रमनमुदार'।
श्री गुरु सुकल सहचरी ध्याऊँ, दंपति-सुख-रस-सार'॥×

इसमें भी श्री गुरु सुकल को सहचरी कह कर सखी भाव की उपासना में उन्हीं से दीक्षित होने का संकेत किया गया है। यहाँ पर यह

संदेह उपस्थित किया जा सकता है कि व्यास जी के पिता के अतिरिक्त भी तो अन्य सुकल † का अभिप्राय हो सकता है। परंतु हमारी इस शंका का समाधान भी अंतर्साक्ष्य से ही हो जाता है। व्यास जी ने कहा है कि हमारे घर की भक्ति में कमी आ गई। इस घर में भक्ति विरोधी पुत्र-पौत्रों के जन्म लेने से सर्वस्व ही बिगड़ गया, क्योंकि अभक्त पुत्र पिता के लिए घातक होता है। भक्तों का विरोध होने से ही मेरे गुरु सुकल की भी मृत्यु हुई। सतयुग स्वरूप उन्हीं श्री सुकल की मैं भी संतान हूँ। आदि।" इस प्रकार से जिस पद में उन्होंने गुरु के साथ 'सत्य सुकल' * शब्द का प्रयोग किया है, उसी में उपलब्ध पूर्वापर प्रसंग से उन्हीं गुरु सुकल का व्यास जी के पिता होना भी प्रकट हो रहा है। पूरा पद इस प्रकार है—

हमारे घर की भक्ति घटी।
उपजे नाती-पूत बहिर्मुख, बिगरी सबै गठी ॥
सुत जो भक्त न भयौ, तौ पिता की गरौ कटी।
भक्त विमुख भए मम गुरु सत्य सुकलहू सौं जु ठटी † ॥

---

† सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'दी माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' में (पृष्ठ २६ पर) भ्रमवश 'शुक्ल' आस्पदीय कुल में ही हित हरिवंश का जन्म होना लिखा है। किंतु हित जी 'मिश्र' थे, जैसा की सेवक-वाणी में स्पष्ट रूप से लिखा उपलब्ध है।

‡ सुकल समोखन के छोटे पुत्र व्यास जी के विरोधी थे, जिसका उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है—

"मनहिं नचावें विषय वासना क्यों हिरदै हरि आवै। ५
लहुरौ भैया करि विरोध औरनि पै मोहि हँसावै ॥"

* 'गुरु शिष्य वंशावली' में लिखा है कि समोखन जी शुक्ल अपने आदर्श सत्य व्यवहार के कारण सत्य सुकल के उपनाम से प्रसिद्ध थे। यद्यपि व्यास वाणी में अन्य स्थलों पर भी जैसे "जो हौं सत्य सुकल कौ जायौ" 'सत्य सुकल' का प्रयोग हुआ है, किंतु वहाँ सत्य शब्द विशेषण का भी काम करता है। अतएव यह निश्चयता के साथ नहीं कहा जा सकता, कि यहाँ सत्य संज्ञा है या विशेषण।

† घर में गणेश पूजन के कारण मानी हुई मृत्यु का एक उल्लेख व्यास जी की साखी में भी है—

"रसिक अनन्य कहाय कैं, पूजै गृह गननेस।
'व्यास' क्यों न तिनके सदन, यम गन करैं प्रवेस ॥"

ता सतयुग तें हौं कलिजुग उपज्यौ, काम क्रोध कपटी ।
माला तिलक दंभ कों मेरें हरि नाम सीस पटी ॥
कृष्ण नचाएँ तृष्णा के मैं कीनी आरभटी ।
किहि कारन हरि 'व्यासहि' दीन्हीं, बृंदावनहिं तटी ॥(व्या० २८८)

अतएव हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि व्यास जी ने अपने पिता समोखन जी शुक्ल से ही दीक्षा-मंत्र प्राप्त किया था।

(७) *श्री माधवदास में श्रद्धा*—पुलिनविहारी दत्त जी ने व्यास जी को 'श्री माधव' नामक एक सन्यासी से मंत्रोपदेश पाना लिखा है §। अन्य बंगाली लेखक भी इसकी पुष्टि करते हैं । लालदास कृत भक्तमाल में भी व्यास जी को माध्व संप्रदाय में श्री माधव द्वारा दीक्षित किया जाना लिखा है †। व्यास जी के स्वरचित 'नवरत्न' नामक संस्कृत ग्रंथ में 'माधव' के करुणापात्र होने का व्यास जी द्वारा ही वर्णन किया जाना कहा जाता है। किंतु लेखक को 'नवरत्न' की कोई प्रति देखने को उपलब्ध नहीं हुई। व्यास जी के पिता सुकल समोखन जी उक्त 'माधव जी' के शिष्य माने जाते हैं *, और सुकल समोखन द्वारा व्यास जी के दीक्षित होने पर 'श्री माधव जी' की शिष्य-परंपरा में व्यास जी आ ही जाते हैं। माधवदास जी द्वारा व्यास जी के संदेह दूर होने का उल्लेख उनके एक पद से भी प्राप्त है, जो इस प्रकार है—

---

§ "बुंदेलखंड अंतर्गत ओरछा वा कच्र्चा ग्रामे हरिराम व्यास नामे एक जन ब्राह्मण वास करितेन। तिनि माधवेन्द्र पुरीर शिष्य श्री माधव नामक एक जन सन्यासीर निकट मंत्र ग्रहण करिया वैष्णव धर्मे दीक्षित हईयाछिलेन।"

—'वृंदावन कथा', एकादश परिच्छेद, (बंगला) पृष्ठ १३६

† "श्री मन्माधवेन्द्र पुरी गोस्वामीर ।
शिष्य श्री माधव नाम शिष्य शांतधीर ॥
ताँर शिष्य श्रील हरिराम ये गोसाइ ।
अतएव तार वंश माध्वी संप्रदाइ ॥
श्रीमन् व्यास कृष्ण वैष्णव सेवन ।
विने नाहिं भाय जाति कुटुंब भोजन ॥

—लालदास कृत 'भक्तमाल' (बंगला) पृष्ठ ७२१

* देखिये, आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी द्वारा प्रकाशित व्यास वाणी के प्राक्कथन, पृष्ठ ५

श्री माधवदास-सरन में आयौ ।
हौं अजान ज्यों नारद ध्रुव सौ, कृपा करी संदेह भगायौ ॥
जिनहिं चाहि गुरु सुकल तज्यौ, वा फिर के दरसन पायौ ।
मो सिर हाथ धरौ करुना करि, प्रेमभक्ति-फल पायौ ॥
हरिवंसी, हरिदासी सौं मिलि, कुंज-केलि-रस गाय सुनायौ ।
गुरु,हरि, साधु, नाम, बन, जमुना, महाप्रसाद रसालय भायौ ॥
जातें सहज प्रिया-प्रीतम बस, कलजुग वृथा गँवायौ ।
मनसा, बाचा और कर्मना, 'व्यास' हि स्याम बतायौ ॥ (१४)

उक्त पद से प्रकट होता है कि व्यास जी की माधवदास जी में पूर्ण आदर-भावना थी और व्यास जी के कतिपय संदेहों का उन्होंने निवारण किया था। इतने कथन के साथ ही वे इसी पद में 'गुरु सुकल' कह कर स्थिति को स्पष्ट कर देते हैं। हरिवंश जी और हरिदास जी से मिल कर कुंज-केलि-रस का गान करना आदि कथन भी इस पद में मिल जाते हैं। अतएव माधवदास जी के प्रति प्रकट की गई शरणापन्नता उनमें श्रद्धा भाव तो सिद्ध करती है, दीक्षा ग्रहण का भाव नहीं, क्यों कि 'संदेह भगायौ' पदांश से यह प्रकट है कि उन्होंने अपनी शंकाओं के उचित समाधान ही उनसे प्राप्त किये थे। माधवदास जी के शिष्य व्यास जी के पिता एवं गुरु सुकल समोखन थे, इस कारण उक्त प्रसंग स्वाभाविक है।

जैसा प्रकट किया जा चुका है, श्री माधवदास सन्यासी थे। व्यास जी सन्यासी से भक्ति की दीक्षा लेना ही पसंद न करते थे। उनके इस पद से यह स्पष्ट है—

गुरु गोविंद एक समान । ×
सन्यासी पै मंत्र सुनत हैं, ते पल भक्त कहावत ॥
गुरु गाड़े चेला लै बारैं, दोऊ पंथ नूतन भये ।
उत संन्यास न इतहिं भक्ति फल, सख नर बीचहि बीच गये ॥(व्या० १)

ऐसी दशा में व्यास जी का माधवदास जी से दीक्षा लेना प्रकट नहीं होता, यद्यपि वे उनकी शिष्य-परंपरा में आते हैं।

(म) वृद्धावस्था में गुरु का नाम-संकेत—व्यास वाणी की श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी द्वारा प्रकाशित प्रति में महाप्रसाद की स्तुति के पद 'हमारी जीवन मूरि प्रसाद' का अंतिम चरण है 'श्री गुरु सुकल प्रताप व्यास यह रस पायो अनहाद।' संवत् १८६४ की हस्त लिखित प्रति

आदि अंत अरु मध्य में, गहि रसिकन की रीति ।
संत सबै गुरुदेव हैं, व्यासहिं यह परतीति ॥

किंतु वे भक्ति का उपदेश न तो संन्यासियों से ही और न कर्मकांडी गृहस्थों से ही लेना पसंद करते थे। उनका प्रेम रसिक भक्तों से था। जहाँ एक ओर वे कहते हैं कि 'सन्यासी पै मंत्र सुनत हैं, ते कत भक्त कहावत', वहाँ दूसरी ओर उनके वचन हैं—

कर्मठ गुरु सकल जग बाँध्यौ करम-धरम उरझाए ।
काका-बाबा घर गुरु कीनें, घर ही कान फुकाए ॥ ×
प्रभुता रहत न तन के नाते. कोटिक ग्रंथ सुनाए ।
बड़े कुलीन विद्या अभिमानी, सुता-पिता लपटाए ॥(व्या० २८८)

घर ही में दीक्षा लेने से शरीर-संबंध के कारण मोहवश गुरु का उपयुक्त सम्मान न होने तथा उनकी उचित सेवा न करने से भक्ति नहीं आ पाती। गुरु का आदर्श ही उनके सामने यह था—

'सोई गुरु जो साधु मिलावै'।

(१०) *हित हरिवंश और हरिदास जी से श्रद्धा-भाव*—व्यास वाणी में श्री हित हरिवंश जी तथा स्वामी श्री हरिदास जी का नाम बहुत बार आता है। जहाँ शब्द योजना की कोमलता के कारण श्री हिताचार्य जी वंशी के अवतार माने गये, वहाँ अपने संगीत की अद्वितीय साधना के फल स्वरूप तानसेन के संगीत-गुरु स्वामी हरिदास जी आज तक संत-शिरोमणि प्रसिद्ध हैं। उपासना क्षेत्र में भी वे ललिता सखी के अवतार माने जाते हैं। उन अनन्य रसिकों से व्यास जी विशेष प्रभावित थे। इस ध्वनि को प्रकट करने वाले कई पद उनकी वाणी में मिलते हैं।

व्यास जी की रासपंचाध्यायी से यह प्रकट होता है कि यद्यपि उनके गुरु तो श्री सुकल समोखन जी थे, जिनकी कृपा से उन्होंने भक्ति भागवत को समझने की क्षमता प्राप्त की, तथापि वे श्री हित हरिवंश और श्री हरिदास जी के पद-चिह्नों पर चलने की कामना और उन दोनों महात्माओं को प्राप्त धाम में ही निवास करने की याचना अपनी आराध्य देवी राधारानी से करते रहे—

कह्यौ भागवत सुक अनुराग, कैसैं समुझै बिनु बड़भाग ।
श्री गुरु सुकल कृपा करी ॥ ×
हरिवंशी हरिदासी जहाँ, मोहि करुना करि राखौ तहाँ ।
नित्य विहार अधार दै । (७१६)

इससे प्रकट होता है कि श्री हित हरिवंश जी और स्वामी श्री हरिदास जी ने जिस पथ को ग्रहण किया था, उसी पर व्यास जी चले जा रहे थे। अपने समय के वे दोनों बड़े ही प्रभावशाली महात्मा थे और माधुर्य भाव की निकुंज उपासना को प्रधानता देकर वे नवीन संप्रदायों के प्रवर्तक हुए। श्री हितहरिवंश जी की विद्वत्ता, सरस पद-रचना और उपासना पद्धति का इन पर प्रभाव पड़ा अवश्य ही प्रतीत होता है, जिसके कारण वे उनको सद्गुरु† के रूप में सन्मान देते हुए दिखाई पड़ते हैं। श्री हिताचार्य के तिरोधान पर कहे गये विरह के पद में व्यास जी ने उनकी रसिकता, श्री राधिका जी से प्रेम, रचना-चातुर्य और उनके वृंदावन माधुर्य के वर्णन की स्मृति कर चिंता प्रकट करते हुए उन्हें सरस रीति को चलाने वाला माना है—

हुतौ रस रसिकनि कौ आधार।
बिनु हरिवंशहिं सरस रीति कौ कापै चलि है भार॥ (व्या०२४)

श्री हित जी की स्तुति में उन्होंने लिखा था—

नमो नमो जै श्री हरिवंश।
रसिक अनन्य, बेनु-कुल-मंडन, लीला-मानसरोवर-हंस॥
नमो जयति-जै श्री वृंदावन सहज माधुरी रास बिलास प्रसंस।
आगम निगम अगोचर, श्री राधे चरन सरोज 'व्यास' अवतंस॥ (१०)

(१०) *श्री हित हरिवंश जी द्वारा पथ-प्रदर्शन*—व्यास जी की साखी के अनेकों दोहों से स्पष्ट रूप से लक्षित हो जाता है कि वे श्री हित जी में सबसे अधिक श्रद्धा भाव रखते थे। उनको वे सद्गुरु मानते थे—

उपदेस्यौ रसिकन प्रथम, तब पाये हरिवंश।
जब हरिवंश कृपा करी, मिटे 'व्यास' के संस॥
मोह मया के फंद बहु 'व्यास' हिं लीनों घेरि।
श्री हरिवंश कृपा करी, लीनों मोकों टेरि॥
श्री हरिवंश कृपा बिना, निमिष नहीं कहुँ ठौर।
'व्यासदास' की स्वामिनी, प्रगटी सब सिरमौर॥
स्वामिनि प्रगटी सुख भयौ, सुर पुहपन बरषाय।
हित हरिवंश प्रताप, वे मिले निसान बजाय॥

---

† दीक्षा-गुरु के अतिरिक्त साधना में जिन अनुभव लब्ध महात्माओं की सहायता ली जाती है, उन्हें सद्गुरु कहते हैं। सद्गुरु की योग्यता पर ही शिष्य की सफलता निर्भर है उचित मार्ग न पाकर साधक पथभ्रष्ट भी हो सकता है

'व्यास' आस हरिवंश की तिनकी के बडभाग ।
वृंदावन की कुंज में सदा रहत अनुराग ॥
राधावल्लभ 'व्यास' को इष्टमित्र, गुरुदेव ।
श्री हरिवंश प्रगट कियो, कुंज महल रस भेव ॥

(१२) *श्री हरिदास स्वामी का प्रभाव*—स्वामी श्री हरिदास जी के प्रति भी वे विशेष श्रद्धा रखते थे और उनकी अनन्यता पर मुग्ध थे। उनके पदों में स्वामी श्री हरिदास जी का नामोल्लेख लगभग सभी स्थलों पर श्री हित हरिवंश जी के पश्चात् हुआ है। जितने अधिक स्थलों पर व्यास जी ने उक्त दोनों महात्माओं का नामोल्लेख किया है, उतना अन्य किसी का नहीं। इससे प्रकट है कि श्री हरिदास जी की उपासना, काव्य और सबसे अधिक उनके संगीत का इन पर अच्छा प्रभाव था। टट्टी स्थान के साम्प्रदायिक ग्रंथों में भी व्यास जी की चर्चा बहुत आती है। इस प्रकार के एक ग्रंथ 'निजमत-सिद्धांत' में व्यास जी के द्वारा स्वामी हरिदास जी को सद्गुरु मानने[1] का भी प्रसंग कई स्थलों पर आया है। व्यास जी ने उनकी स्तुति में लिखा था—

अनन्य नृपति श्री स्वामी हरिदास ।
श्री कुंजबिहारी सेंए बिनु जिन, छिन न करी काहू की आस ॥ (व्या. वा. १२)

अनेकों साधुओं के विरह में कहे गये उनके एक पद का स्थायी चरण है—'विहारहि स्वामी बिनु को गावै'। इससे पता लगता है कि वे उनके गान पर विशेष मुग्ध थे, जो स्वाभाविक ही है। क्यों कि एक ओर तो संगीत के शास्त्रीय विद्वान व्यास जी और दूसरी ओर तानसेन के संगीत गुरु संसार प्रसिद्ध स्वामी श्री हरिदास जी।

(१३) *विवेचना*—अन्य कितने ही साधुओं में व्यास जी ने अपनी श्रद्धा प्रदर्शित की है। वास्तव में वे संत मात्र में गुरु-भावना रखते थे, किंतु श्री हित हरिवंश जी में उनकी सद्गुरु भावना अत्यधिक थी। स्वामी हरिदास जी में भी उनकी श्रद्धा थी। उनके दीक्षा गुरु उनके पिता समोखन जी सुकल ही थे, जिनकी उन्होंने अपनी वाणी के पदों में प्रसंगानुसार कितने ही स्थलों पर वंदना की है।

अपने पिता द्वारा दीक्षित सखी भाव की उपासना के उपदेश पर वे चलते रहे। सखी भाव की उपासना का केन्द्र वृंदावन था, जहाँ से

---

[1] श्री स्वामी हरिदास की लखी व्यास जु रीति ।
ता दिन सद्गुरु मान धरि, उपजी अधिक प्रतीति (निजमत सिद्धांतसार)

हित हरिवंश जी, स्वामी हरिदास जी एवं चैतन्य संप्रदायी साधुओं द्वारा इस उपासना-पद्धति का विशेष रूप से प्रचार किया जा रहा था। यह सत्संग व्यास जी को कदाचित संवत् १५६१ से उपलब्ध हुआ और हित हरिवंश जी की विद्वता, काव्य-रचना एवं भजन-रीति का तभी से उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे उन्हें गुरुवत् ही मानने लगे।

व्यास जी और हित जी की उपासना-पद्धति में समानता थी ही तथा हित हरिवंश जी वृंदावन में श्री राधावल्लभ जी को प्रतिष्ठित कर सखी भाव की प्रधान उपासना राधावल्लभीय संप्रदाय के नाम से प्रचारित कर रहे थे। इन परिस्थितियों में समान विचार वाले सभी महात्माओं को अपने उद्देश्य की सफलता के लिए एक भाव से आचरण करना स्वाभाविक था।

हित हरिवंश जी की महिमा को वर्णन करने वाले चरित्रों में व्यास जी को उनका शिष्य प्रकट किया जाता है, जिसका प्राचीनतम प्राप्त उल्लेख भगवत मुदित (संवत् १७०७ में वर्तमान) की 'रसिक अनन्य माल' में पाया जाता है। 'रसिक अनन्य माल' के अनुसार व्यास जी का हित हरिवंश जी से दीक्षा ग्रहण करना तथा पूर्वापर प्रसंगों की संगति से उसका काल संवत् १५६१ बैठता है, जिसकी व्यास वाणी के 'गुरु सुकल' के अनेकों उल्लेखों से केवल इतनी संगति बैठती है कि जहाँ व्यास जी अपने पिता को गुरु रूप में स्मरण करते हैं, वहाँ हरिवंश जी तथा हरिदास जी में भी अपार आदर भाव प्रकट करने लगते हैं। वृद्धावस्था में लिखे गये पद में भी व्यास जी ने 'सुकल' के लिए 'गुरु' शब्द का प्रयोग किया है। यदि व्यास जी संवत् १५६१ में, जब कि उनकी अवस्था २४ वर्ष की थी, हित हरिवंश जी से दीक्षा ले चुके होते, तो निश्चय ही वे 'गुरु सुकल' न लिखते, क्यों कि हित हरिवंश जी 'सुकल' नहीं थे, 'मिश्र' थे[1]। इस कारण भगवत मुदित जी की रसिक अनन्य माल का वर्णन ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में स्वीकार करने के लिए संकोच होता है।

---

[1] 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पृष्ठ १८० देखिये। हिताचार्य की गद्दी पर सुशोभित उनके वंशज गोस्वामिगण 'मिश्र' होना समर्थित करते है। श्री हित हरिवंश जी के बाल चरित्र के वर्णन में उत्तमदास जी ने अपनी 'रसिक अनन्य माल' (हित परिचर्या, पृष्ठ ४) में उन्हें मिश्र लिखा है—

मिश्र बाग में कूप निहारो। तामें द्विभुज सरूप हमारो ॥

(१४) *हित हरिवंश जी का निधन-काल*—व्यास जी की वृंदावन जाने की उत्कंठा संवत् १६१२ तथा उसके अत्यंत निकट पूर्व में बहुत प्रबल थी। 'कब मिलिहैं वे सखी-सहेली, हरिबंशी हरिदासी' एवं 'अब न और कछु करने, रहने हैं वृंदावन। मिलिहैं हित ललितादिक दासी, रास में गावत सुनि मन।' आदि जैसे कथनयुक्त पद उसी समय ओरछा में की हुई उनकी रचनाएँ हैं। हरिवंश जी जैसे प्रसिद्ध महात्मा के निधन की सूचना वृंदावन से बुंदेलखंड की राजधानी ओरछा में, जहाँ साधु-संतों का आवागमन सदैव ही बना रहता था, पहुँचने के लिए अधिक समय की आवश्यकता न थी। फलतः संवत् १६०९ में हित जी का निधन होना मान लेने पर उस घटना की व्यास जी के उक्त वर्णन से संगति नहीं मिलती। हित जी के निधन पर व्यास जी द्वारा कहे गये विरह के पद में 'जिन बिनु दिन-छिन सत जुग बीतत सहज रूप आगार †' आदि कथन में जिस प्रकार के भावोद्गार हैं, उनसे उस समय व्यास जी का हित जी के समीप ही वृंदावन में होना प्रकट होता है, जो सं० १६१२ के पूर्व संभव नहीं है। हिंदी साहित्य के इतिहासकार भी श्री हिताचार्य का संवत् १६०९ में निधन नहीं मानते और अपने मत की पुष्टि में लिखते हैं कि ओरछा नरेश महाराज मधुकर शाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यास जी संवत् १६२२ के लगभग आपके शिष्य हुए थे ‡। इस सूचना के आधार का पता लेखक के यथेष्ट पूछताछ एवं अन्य प्रयत्न करने पर भी न लग सका। फिर भी हित हरिवंश जी की कुंज-लाभ-तिथि लेखक के विचार से भी संवत् १६०९ के कई वर्षों बाद ठहरती है। क्यों कि वृद्धावस्था में रचित व्यास जी के एक पद से उक्त संवत् के बाद भी हित हरिवंश जी की उपस्थिति प्रकट होती है। वह पद है—

राधे जू अरु नवल स्यामघन, विहरत बन-उपबन वृंदावन।×
हरिवंशी हरिदासी बोली, नहि सहचरि समाज कोऊ जन।
'व्यासदासि' आगे ही ठाढ़ी, मुख निरखत बीते तीनों पन॥ (५६१)

'बीते तीनों पन' का कथन निस्संदेह रूप से व्यास जी द्वारा संवत् १६०९ के बहुत बाद का होना चाहिये, क्यों कि उस समय तो वे

† पद—"हुतौ रस रसिकन कौ आधार।" (व्या० २४)

‡ देखिये, शुक्ल जी के 'हिंदी साहित्य का इतिहास', डा० रामकुमार वर्मा के 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' तथा श्री वियोगी हरि के 'ब्रज माधुरी सार' में 'हित हरिवंश' का परिचय।

केवल ४० वर्ष के ही थे। इससे उस अवस्था में उनसे तीसरा पन अर्थात् वृद्धावस्था के बीत जाने का आत्मोल्लेख करने की आशा न करनी चाहिये। संवत् १६२० के पश्चात् हित हरिवंश जी की उपस्थिति अवश्य ही रही होगी, क्यों कि उस समय व्यास जी की अवस्था ५५ वर्ष की ही थी और हित हरिवंश जी के सन्मुख व्यास जी का 'मुख निरखत बीते तीनों पन' वाला कथन अपनी ५५ वर्ष से अधिक ही अवस्था में अनुमानित होता है। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों के उक्त वर्णन का आधार कुछ भी रहा हो, किंतु संवत् १६२२ में हित जी की उपस्थिति व्यास वाणी के साक्ष्य से भी प्रकट हो जाती है। उक्त वर्णन में भी हित हरिवंश जी तथा हरिदास जी की ओर से भी व्यास जी अपने लिए 'सहचरि' संबोधन का प्रयोग करते हैं, तथा नम्रता युक्त शब्दों से 'व्यासदासि' कह कर उत्तर देते हैं। तात्पर्य यह है कि व्यास जी के वृद्धावस्था मे रचित उक्त पद से भी हरिवंश जी एवं हरिदास जी के साथ परस्पर वैसी ही आदर-भावना व्यक्त होती है, जो उनकी संवत् १६१२ के पूर्व में रचित पदों मे पाई जाती है।

(१५) *समन्वय*—इस विवेचना से प्रतीत होता है कि सं० १५९१ के लगभग जब कि राधावल्लभीय संप्रदाय का प्रचार तेजी पर था, व्यास जी प्रथम बार वृंदावन आये। उनके हृदय में भक्ति का अंकुर पहिले ही उत्पन्न हो चुका था। हित जी से मिलने के समय उनके "यह जु एक मन बहुत ठौर करि···" पद का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे सब विषयों की चिंता छोड़ कर भक्ति की ओर एकाग्रता से लग गये। वे वृंदावन एवं अन्य तीर्थों की यात्रा कर ८–९ वर्षों में घर लौटे और ओरछा में ही अपने पिता द्वारा दीक्षित युगल मंत्र की साधना में लीन हो गये। वहाँ उन्हें हित जी के आदर्श ने और भी दृढ़ बना दिया।

पिता एवं गुरु सुकल समोखन की मृत्यु के उपरांत संवत् १६१२ में वे वृंदावन गये और अनन्य रसिक मंडली में सम्मिलित होकर युगलकिशोर की उपासना प्रेम भाव से करने लगे। हित हरिवंश जी एक संप्रदाय के प्रवर्तक थे। उनके नित प्रति बढ़ते हुए शिष्यों के समुदाय से रहने वाले व्यास जी भी उनमें गुरुवत् श्रद्धा रखते थे। साधना मार्ग में वे व्यास जी के सहायक थे ही, कदाचित् इन्हीं परिस्थितियों में हित जी की महिमा-वर्णन करने वालों ने व्यास जी को उनसे दीक्षा लेना भी लिख दिया।

व्यास जी के दीक्षा-गुरु उनके पिता सुकुल समोखन थे और हित हरिवंश जी उनके सद्गुरु थे, जिनके उपदेश ने व्यास जी को भक्ति की ओर एकाग्र किया था। वृंदावन में स्थायी रूप से निवास कर लेने पर उन्हें अपनी साधना में हित हरिवंश जी से विशेष सहायता प्राप्त हुई। साखी के दोहों और कुछ पदों में इस प्रकार के संकेत मिलते भी हैं, जो समुचित स्थानों पर प्रकट कर दिये गये हैं।

हित हरिवंश जी में उक्त प्रकार की गुरु-भावना होने के उल्लेख प्राप्त होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने हित जी से मंत्रोपदेश भी प्राप्त किया था। वृद्धावस्था में रचित व्यास जी के पदों में भी पारस्परिक समान प्रेमभाव सा ही प्रकट हो रहा है। ऐसी स्थिति में हरिवंश जी को व्यास जी का प्रधान सद्गुरु ही मानना होगा। उनके दीक्षा गुरु सुकल ही रहे। राधावल्लभीय उपासना में केवल माधुर्य भाव की अनन्य साधना बताई गई है। इस संप्रदाय की अनन्यता के आदर्शानुसार कदाचित् उन्होंने 'साँचे साधु जु रामानंद' वाला पद, जिसमें 'रामानंद संप्रदाय' के साधुओं की प्रशंसा की गई है और जिस पद के प्रसंगों का वर्णन करने के लिए कोई तात्कालिक घटना भी उस समय नहीं थी, न लिखा होता। यह पद भी व्यास जी की वृद्धावस्था की रचना है और उसी में वर्णित हित हरिवंश जी के बिना अपने जीवन पर क्षोभ के उल्लेख से वह निस्संदेह रूप से हित जी के देहांत के पश्चात् ही लिखी हुई सिद्ध होती है। इसी प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ में गोस्वामी तुलसीदास जी का संकेत प्रसंग में दिया गया व्यास जी का 'करो भैया साधुन ही सों संग' वाला पद संवत् १६२५ के पूर्व की रचना नहीं हो सकती।

व्यास जी का राधावल्लभीय संप्रदाय के प्रचार में पूरा सहयोग था। ज्ञात होता है कि एक ही दीक्षा-गुरु में अटल श्रद्धा रखने के विचार से उन्होंने हित जी से दीक्षा तो ग्रहण नहीं की, परंतु उनकी प्रतिपादित माधुर्य भक्ति उन्हें मान्य हुई। कहा जाता है कि उन्होंने अपने तिलक में भी माध्व, राधावल्लभीय और हरिदासी संप्रदायों की विशिष्टताओं के द्योतक बिंदु एवं रूपों का भी समावेश किया था। व्यासवंशी गोस्वामियों में अपने पिता अथवा परिवार के काका आदि गुरु जन से ही दीक्षा ग्रहण करने की परंपरागत प्रथा प्रचलित होने पर भी व्यास जी के वंशजों में माध्व, राधावल्लभीय और हरिदासी संप्रदायों की उपासनाएँ प्रचलित हैं‡, जो व्यास जी की उक्त प्रकार की भावनाओं की ओर संकेत करती हैं।

‡ 'माधुर्य उपासना के संप्रदायों में समान श्रद्धा' शीर्षक लेख अन्यत्र देखिये।

७. भक्ति का उदय—

युवावस्था के प्रारंभ में ही व्यास जी ने अनेकों प्रसिद्ध पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था। दिग्विजय करने के लिए वे जहाँ कहीं किसी पंडित की प्रसिद्धि सुनते, वहीं जा पहुँचते और उससे शास्त्रार्थ कर अपनी विद्या की यश-पताका फहराते। इसी आकांक्षा को लिए हुए वे काशी जी पहुँचे। शास्त्र-चर्चा में वहाँ भी उनकी उत्कृष्टता रही। कहा जाता है कि श्रावण मास में बड़े विधि-विधान से उन्होंने विश्वनाथ जी का अभिषेक कराया। उसी रात उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक वृद्ध ब्राह्मण उनसे कह रहा है कि 'विद्या की पूर्णता तो भगवत् भक्ति में है। कृष्ण की प्रधान सखी विशाखा जी के तुम अवतार हो। इससे विद्या का विवाद छोड़ कर भक्ति का प्रचार करो। यही तुम्हारा कर्तव्य है†।'

चर्म चक्षु खुलते ही व्यास जी के ज्ञान चक्षु भी खुल गये। उन्होंने स्वप्न के उस आदेश पर बड़ी गंभीरता के साथ विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि काशी में तो सदाशिव की ही सब माया है। उन्हीं का यह उपदेश है। धन्य हो, प्रभु ! जो निद्रा से तुमने मुझे जगा दिया। तुरंत ही उन्होंने ओरछा को प्रस्थान किया और वे भक्ति-भावना से श्री राधा-नंदकिशोर की आराधना में लग गये। भक्तों के चरित्र गाना, श्रीमद्भागवत की कथा कहना और भक्ति की श्रेष्ठता का प्रचार करना ही उनकी मुख्य दिनचर्या हो गई।

जो व्यास जी शास्त्रार्थ में विजयी होने में अपना गौरव समझते थे, वे अब अनुभव करने लगे कि वाद-विवाद के लिए ही विद्या पढ़ना व्यर्थ है। उसका उपयोग तो 'भक्ति का रसास्वादन करना' होना चाहिए—

वादि सुख स्वाद, ये काज पंडित पढ़त।
स्याम जस, भक्ति रस, कहे नहिं भागवत,
कहा कनक-कामिनि विषै निसिदिन रढ़त ॥ (व्या० वा० २०७)

उस समय वे तीर्थाटन करने के लिए उत्सुक थे। व्रज की सुधि तो उन्हें सदैव ही रहती थी। वे सत्संग में अपना समय बिताते थे। जो

---

† व्यास जी के विविध चरित्र-लेखों में इसी प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। व्यास वाणी में साधुओं की स्तुति में जिन नामों के उल्लेख हैं, उनमें से अधिकांश संत हैं, जिनका काशी में प्रधान केन्द्र रहा था। उन संतों की महिमा व्यास जी ने काशी में विशेष रूप से सुनी होगी इससे उनका काशी जाना प्रकट होता है

साधु ओरछा में आते, उनका सत्कार करते। इसी अवसर पर श्री हित हरिवंश जी के शिष्य संत नवलदास जी भी ओरछा पहुँचे और व्यास जी के अतिथि हुए‡।

८. तीर्थ-यात्रा और पर्यटन —

(१) *काशी*—व्यास जी की काशी यात्रा के पूर्वोक्त उल्लेख से पाया जाता है कि वह यात्रा तीर्थाटन की दृष्टि से न होकर शास्त्रार्थ करने के निमित्त की गई थी। उस यात्रा ने व्यास जी की मनोवृत्ति में आश्चर्यजनक परिवर्तन कर दिया। शास्त्रार्थी पंडित के स्थान पर अब वे भक्त थे।

(२) *वृंदावन*—संत नवलदास के साथ व्यास जी के प्रथम बार वृंदावन जाने का समय संभवतः संवत् १५९१ का कार्तिक मास था†।

(३) *जगदीश और व्रज*—'गुरु शिष्य वंशावली' में व्यास जी की जगदीश-यात्रा करने जाने की भी सूचना दी गई है तथा यह भी प्रकट किया गया है कि वहाँ उन्होंने माधवदास जी से मंत्र लिया और उन्हें अपना गुरु बनाया। यह वही भक्त माधवदास जी थे, जिन्होंने जगदीश

---

‡ ओरछे के राजगुरु श्री व्यास जी बड़े भारी पंडित और स्मार्तधर्मावलंबी थे। उनके चरित्र में लिखा है कि साक्षात् शिव जी उनसे प्रसन्न हो गये थे; इसी से श्री हित जी के परम कृपापात्र नवलदास जी से उनका सत्संग हो गया था।

—'श्री हित चरित्र' पृष्ठ ५०

† 'कल्याण' के भक्त-चरितांक पृष्ठ ३७९ पर 'श्री व्यास दास जी' शीर्षक भक्त चरित्र में यह काल संवत् १५९१ का कार्तिक मास प्रकट किया गया है। 'कल्याण' संपादक श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार के मतानुसार उक्त भक्त चरित्र में मेरे 'अनन्य रसिक श्री हरिराम व्यास' शीर्षक एक विस्तृत निबंध की कुछ प्रधान बातें दी गई है। इस निबंध में मैंने व्यास जी का ओरछा से प्रथम बार वृंदावन जाने का यही समय प्रकट किया था। गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'भक्त सौरभ' में 'भक्त श्री व्यासदास जी' के जीवन चरित्र में इस यात्रा का काल वि० संवत् १६०० के लगभग कार्तिक मास लिखा गया है। इससे प्रकट होता है कि 'कल्याण' में श्री 'व्यासदास जी' शीर्षक भक्त चरित्र के संपादक को मेरे द्वारा प्रकट किया गया वृंदावन-यात्रा का काल संवत् १५९१ मान्य हुआ है, क्यों कि उक्त लेख में अन्य प्रसंग 'भक्त सौरभ' के अनुसार दिये गये हैं। जिस तर्क पर यह समय निश्चय किया गया था, उसका विवेचन इसी पुस्तक के 'दीक्षा गुरु' प्रसंग में दिया गया है।

की सेवा करके उन्हें प्रसन्न कर लिया था। वाणी में उपलब्ध मथुरा, वृंदावन, गोकुल, बरसाना, रावल, गोवर्धन आदि ब्रज के स्थानों के उल्लेख और वर्णनों से यह तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि उन्होंने ब्रज-भूमि के स्थानों में काफी भ्रमण किया था।

(४) *भ्रमण*—ऐसी जनश्रुति है कि उन्होंने चारों धाम की यात्रा की थी। उनके विस्तृत पर्यटन करने का संकेत वाणी के इस पद से भी प्राप्त है—

हरि सों कीजै प्रीति निबाह ।
कपट किए नागर नट आनत, सबके मन की डाहि ॥
मैं फिरि देख्यौ लोक चतुर्दस, निरस घर-घर आहि । (व्या०२०५)

(५) *द्वारका*—चौरासी वैष्णवन की वार्ता में व्यास जी द्वारा मीराबाई के घर पर जाने का उल्लेख है। अनुमान होता है कि व्यास जी उस समय साधुओं के एक दल के साथ द्वारका की यात्रा में मीराबाई के घर मेड़ता होते हुए गये होंगे।

(६) *चारों धाम*—श्री वृंदावन-महिमा के प्रसंग में सब तीर्थ और धामों में फिर आने का व्यास जी ने साधारण रूप से उल्लेख किया है—

देखौ श्री वृंदाविपिन प्रभाइ ।
सब तीरथ धामनि फिर आवत, देखत उपजत भाइ ॥ (व्या०५६)

९. मीराबाई से भेंट—

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में दी गई कृष्णदास अधिकारी की वार्ता के अंतर्गत व्यास जी का उल्लेख पाया जाता है। उक्त वार्ता के प्रथम प्रसंग से निम्नलिखित उद्धरण दिया जाता है—

"सो वे कृष्णदास शूद्र एक बेर द्वारिका गये हुते। सो श्री रणछोर जी के दर्शन करिकें तहाँ ते चले। सो आवत मीराबाई के गाँव* आयौ। सो वे कृष्णदास मीराबाई के घर गये। तहाँ हरिवंश व्यास आदि दे विशेष सब वैष्णव हुते। सो काहू कों आये आठ दिन, काहू कों आये दश दिन, काहू कों आये पन्द्रह दिन भये हुते। तिनकी विदा न भई हुती। और कृष्णदास नें तो आवत ही कही जो हूँ तो चलूँगो। तब मीराबाई ने कही जा बैठो। तब कितनेक महोर श्रीनाथ जी को देन लागी। सो

---

* मीराबाई का पीहर 'मेड़ता' नामक ग्राम था, जिसका कि उन्होंने अपने कई पदों में उल्लेख किया है। यथा 'पीहर मेड़ता छोड़ा अपना' आदि।

कृष्णदास नें न लीनी और कह्यौ जो तू श्री आचार्य जी महाप्रभून की सेवक नाहीं होत ताते तेरी भेंट हम हाथ तें छूवेंगे नाहीं। सो ऐसें कहि के कृष्णदास उहाँ ते उठि चले। सो जब आगे आये तब एक वैष्णव ने कह्यौ जो तुमने श्रीनाथ जी की भेंट नाहीं लीनी। तब कृष्णदास ने कह्यौ जो भेंट की कहा है परि मीराबाई के यहाँ जितने सेवक बैठे हुते तिन सबन की नाँक नीची करिके भेंट फेरी है इतने इकठौर कहाँ मिलते। यह हू जानैंगे जो एक बेर शूद्र श्री आचार्य जी महाप्रभून को सेवक आयौ हुतो ताने भेंट न लीनी तो तिनके गुरु की कहा बात होयगी।"

उक्त प्रसंग में 'हरिवंश व्यास आदि' में हरिवंश की सन्निधि के कारण 'व्यास' से निर्विवाद रूपेण हमारे चरित्र-नायक हरिराम व्यास ही अभिप्रेत हैं। यद्यपि वार्ता-कार का उद्देश्य श्री वल्लभाचार्य के शिष्यों का गौरव बढ़ाना था, तथापि इससे इतनी सूचना तो प्राप्त होती है कि व्यास जी सुप्रसिद्ध मीराबाई के गाँव में उनके अतिथि हुए थे तथा कृष्णदास अधिकारी ने उन पर अपना प्रभाव जमाने का प्रयत्न किया था‡। वार्ता में मीराबाई के घर पर एकत्रित हुए वैष्णवों को विदाई के लिए १०-१५ दिन तक प्रतीक्षा के रूप में ठहरे रहने का उल्लेख किया गया है। व्यास जी ने भी अपने एक पद में विदाई की दृष्टि से आये हुए भक्त रूप धारी भिखारियों की हँसी उड़ाई है। देखिये—

भक्त ठाड़े भूपनि के द्वार।
उफकत, फूलत, पोरियन डरपत, गाय-बजाय सुनावत तार।
कहियो धाय धवाइन ओहित, हमहि गुदरबी स्वार।
छिन-छिन करत विदा की बिनती, उपजत कोटि बिकार॥ (व्या०१३१)

उक्त पद के तीसरे चरण में धाय द्वारा भी विदा के लिए सिफारिश कराने के उल्लेख से अनुमान किया जा सकता है कि इस पद रचना के लिए किसी रानी से विदाई (धन) चाहने वाले भक्त वेश धारियों की दशा को देख कर ही व्यास जी की वाणी से वह प्रस्फुटित हुआ हो, क्यों कि धाय स्त्री होती है और विदाई के लिए स्त्रियों द्वारा संदेश भेजने का प्रसंग मीराबाई आदि के प्रति अधिक उपयुक्त हो सकता है। कहने

\+ देखिये, 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' पृष्ठ ३४२ (बंबई संस्करण)

‡ साधुओं के विरह में कहे गये पद में व्यास जी ने कृष्णदास का नामोल्लेख करते हुए उनके निधन पर इस प्रकार शोक प्रकट किया है—

'कृष्णदास बिन गिरधर जू कौ को अब लाड़ लड़ावै।' (व्या० २६)

का तात्पर्य यह है कि वार्ता के उद्धृत प्रसंग में विदाई के लिए ठहरे हुए वैष्णवों की जिस दशा का संकेत किया गया है, वही दशा व्यास जी के उक्त पद में भी बड़े सुंदर ढंग से वर्णित है।

अब हमें विचार यह करना है कि उक्त घटना का काल क्या है। मीरा की भक्ति का प्रकाश उनके पति भोजराज की मृत्यु के पश्चात् हुआ। भोजराज की मृत्यु संवत् १५८० के लगभग मानी जाती है। श्री व्यासजी प्रथम बार संवत् १५९१ विक्रमी में वृंदावन आये। उस समय से पूर्व उनका श्री हित जी से मिलने का कोई प्रसंग ही नहीं आता। अत. मीराबाई के घर* उक्त दोनों संतों के जाने का समय संवत् १५९१ के पूर्व नहीं हो सकता।

'मीरा, एक अध्ययन' नामक पुस्तक के पृष्ठ ७० पर सुश्री पद्मावती 'शबनम' लिखती हैं कि "विक्रमी संवत् १५९० या उससे कुछ पूर्व मेवाड़ को त्याग कर मीरा मेड़ता रहने लगी। मेड़ता का वातावरण मीरा के बहुत अनुकूल पड़ा, तथापि राजनैतिक कठिनाइयों के उपस्थित होने के कारण मीरा वहाँ शांति पूर्वक न रह सकी और विक्रमी संवत् १५९५ के लगभग मेड़ता को भी छोड़ वृंदावन की ओर चल पड़ी। फिर एक दिन वि० संवत् १६०० के लगभग तीर्थ-यात्रा के हेतु वृंदावन से भी द्वारका की ओर चल पड़ती है।"

इसके अनुसार व्यास जी के मीराबाई के घर मेड़ता मे आतिथ्य का काल संवत् १५९१ वि० से संवत् १५९५ वि० के बीच ठहरता है, क्यों कि सं० १५९५ के लगभग मेड़ता को इस प्रकार अंतिम बार छोड़ने पर पुनः मीराबाई को अपने घर वापस लौट आने का कोई उल्लेख ही उपलब्ध नहीं होता।

मीराबाई के पति के सौतेले भाई राणा विक्रमादित्य चित्तौड़ की राजगद्दी पर संवत् १५८८ वि० से संवत् १५९३ वि० तक रहे। अपने जीवन काल में वे मीरा की भक्ति साधना में सर्वदा बाधाएँ डालते रहे। साधुओं का सत्संग करने में अड़चनें पैदा करने के लिए वे अनेक उपाय करते रहे। इससे मीराबाई के घर मेड़ता मे भी साधुओं का इतना जमघट संवत् १५९३ के पश्चात् ही अनुमान करना चाहिये। अतः श्री व्यास जी का मीराबाई के यहाँ अतिथि होने का समय वि० संवत् १५९४ के लगभग ठहरता है।

† हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ६६६

* मेड़ता

१०. एक बार फिर ओरछा में—

व्यास जी के वृंदावन निवास के लिए उत्कंठा सूचक कितने ही पदों से यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि उनकी रचना के पूर्व वे वृंदावन के दर्शन कर चुके थे और वहाँ के साधुओं से उनका परिचय भी था। उस समय व्यास जी के हृदय में वैराग्य के भाव प्रकट होकर वृंदावन के प्रति प्रेम बढ़ा रहे थे। वे वृंदावन जाकर वहीं बस जाना चाहते थे। उस कार्य से वे विमुखों पर वृंदावन की महिमा का प्रभाव उत्पन्न कर उनकी हँसी उड़ाते हुए देखना चाहते थे—

वृंदावन कबहिं बसाइ हौं।
कर करवा, हरवा गुंजनि कौ, कटि कौपीन कसाइ हौं॥
घर, घरनी, करनी कुल की तें, सो मन कबहिं खसाइ हौं।
नाक सकोरि बिडारि बदन, सब निकुलनि कबहिं हँसाइ हौं॥ (२५७)

इससे प्रकट होता है कि ब्रज तथा अन्य तीर्थों की यात्रा और पर्यटन करने के पश्चात् व्यास जी एक बार पुनः ओरछा में आकर रहे। ऐसा अनुमान होता है कि लगभग ८ वर्ष भ्रमण करने के उपरांत संवत् १६०० के आस-पास व्यास जी ओरछा वापस आ गये थे और भक्ति-भावना से भगवान की पूजा करते हुए गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे थे।

११. वेष-भूषा—

(१) *चित्र*—व्यास जी का जो चित्र इस पुस्तक में दिया गया है, वह उस प्राचीन चित्र की प्रतिकृति है, जो लेखक के देवालय में परंपरा से पूजित है। मधुकर शाह के वंशज बानपुर नरेश मर्दनसिंह के परिवार के साथ आये हुए व्यासवंशी गोस्वामी मदनमोहन के साथ सं० १९१४ के राजविद्रोह के समय यह चित्र बानपुर से दतिया आया था और तब से यहाँ भी पूर्ववत् उसकी पूजा का क्रम चलता चला आ रहा है। निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इस चित्र का निर्माण-काल क्या है, किंतु इतना अवश्य है कि वह संवत् १९१४ के बहुत अधिक पहिले का बना है।

'कल्याण' के भक्त-चरितांक में पृष्ठ ४०० के सन्मुख 'भक्त श्री व्यासदास जी' के नाम से प्रकाशित चित्र भी उपरोक्त चित्र की प्रतिलिपि है। इस चित्र के देखने से वृंदावन जैसा स्थान और मुगल कालीन समय का आभास तो मिलता ही है, साथ ही व्यास जी की उन मान्यताओं का

भी इसमें समावेश पाया जाता है, जिनके लिए व्यास जी अधिक प्रसिद्ध रहे। नाभादास जी ने 'उत्कर्ष तिलक अरु दाम को, भक्त इष्ट अति व्यास के' कह कर व्यास जी को तिलक और माला की उत्कर्षता को बढ़ाने वाला तथा भक्तों का प्रेमी माना है।

(२) *माला और तिलक*—व्यास जी ने स्वयं माला और तिलक धारण करने के प्रभावपूर्ण उपदेश दिये †। उनके एक पद से प्रकट होता है कि वे स्वयं भी वृंदावन की रज (गोपी चंदन) का तिलक, छाप और श्याम बिंदुली लगाते थे एवं माला धारण करते थे। वह पद है—

मोहिं वृंदावन रज सों काज ।
माला, मुद्रा, श्याम बिंदुनी, तिलक हमारौ साज ॥ (व्या० ८३)

इसी प्रकार का संकेत इस पद से भी मिलता है—

अब हमहूँ से भक्त कहावत ।
माला तिलक स्वांग धरि, हरि कौ नाम बेचि धन लावत ॥ (व्या० २८०)

(३) *वस्त्र*—उस समय धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ ब्राह्मण बिना सिले वस्त्र पहिनते थे, इस कारण उनका पहिनावा धोती और पगड़ी था। संभ्रांत घर के व्यक्ति शरीर पर अंगोछी भी ओढ़ लेते थे। खंडिता नायिका जैसे एक वर्णन में व्यास जी ने श्रीकृष्ण के अन्य किसी भी वस्त्राभूषण का उल्लेख न कर 'पगिया' का लटकना भर कहा है, जिससे प्रकट होता है कि 'पगड़ी' की ओर उनका विशेष ध्यान था। देखिये—

आजु पिय ! राति न तुम कछु सोये । ×
लटकीने सिर पगिया, लट बिगलत, सुंदर स्वांग सँजोये ॥ (व्या० ७३२)

उक्त विवेचनों के अनुरूप तत्व प्रस्तुत चित्र में उपलब्ध हैं। इस कारण इसे व्यास जी का प्रामाणिक चित्र माना जा सकता है।

श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी वृंदावन द्वारा प्रकाशित व्यास-वाणी में श्री हरिराम व्यास जी का एक रंगीन चित्र है। उसमें व्यास जी की वेश-भूषा के अनुरूप चित्रण तो है, किंतु पृष्ठभूमि से काल का संकेत नहीं होता। उस चित्र की मूल प्रति का परिचय और दर्शन प्रयत्न करने पर भी लेखक को उपलब्ध न हो सका। अतएव उसकी प्राचीनता के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता। दतिया में राधालाल जी गोस्वामी के घर भी व्यास जी का एक चित्र है।

† 'जो तू माला-तिलक धरै' पद देखिये। (व्या० २१८)

(४) *करुआ*—वृंदावन में व्यास जी की समाधि पर जलपूर्ण मिट्टी का करुआ रक्खा जाता है। उनकी वाणी में भी 'कर लै करुआ कुंज सहायक' जैसे उल्लेखों से प्रकट होता है कि वैराग्य लेने पर वे मिट्टी का करुआ उपयोग में लाते थे।

(५) *पदत्राण*—उनके इस कथन से कि 'कोटि मुकति सुख होत, गोखरू जबै गड़ैं तरवाहिं' पता चलता है कि वे जूता नहीं पहिनते थे।

१२. वैराग्य—

(१) *राज्य संबंध से वितृष्णा*—महाराजा भारतीचंद के राजत्वकाल में संवत् १५९६ वि० में बुंदेलखंड की राजधानी का गढ़कुंडार से ओरछा को स्थानांतरण हुआ *। राजधानी के बन जाने से ओरछा का शांत वातावरण वैभव में परिवर्तित होने लगा। व्यास जी ने स्वयं एक वैभवशाली संपन्न घर में जन्म लिया था, किंतु उनके स्वभाव में वैराग्य था। भगवान की भक्ति और उपासना में उनका समय जाता था।

जब से व्यास जी वृंदावन से लौट कर ओरछा आये थे (संवत् १६०० के लगभग) तभी से उनकी पुनः वृंदावन जाने की लालसा नित प्रति बढ़ती जाती थी। वे अपने भगवान् से प्रार्थना करने लगे कि वे उनके मन में श्री वृंदावन में ही निवास करने की प्रेरणा उत्पन्न करें—

हम कब होहिंगे ब्रजवासी।
ठाकुर नंदकिसोर हमारे, ठकुराइन राधा सी॥
सखी-सहेली कब मिलिहैं वे, हरिबंसी-हरिदासी।
बंसीवट की सीतल छैयाँ, सुभग नदी जमुना सी॥
जाकी वैभव करत लालसा, कर मीडत कमला सी।
इतनी आस 'व्यास' की पुजवौ, वृंदाविपिन-विलासी॥ (व्या० २५६)

राजा भारतीचंद कदाचित शाक्त थे। उनमें व्यास जी के प्रति श्रद्धा नहीं थी। राजसी ऐश्वर्य में लीन वे व्यास जी को पंडित के नाते अपने राज दरबार का एक सभासद बनाए रखना चाहते थे। परंतु ऐसी संगति का निर्वाह व्यास जी से कब हो सकता था। वे कहने लगे—

---

* देखिये, 'ओरछा स्टेट गजैटियर' पृष्ठ १८

मन भए तजिगे राजा-संगति ।
श्यामहिं भूलवत दाम-काम बस, इन बातनि जैहै पति ।
विषयनि के उर क्यों आवत हरि, पोच भई तेरी मति ।।
सुख कत साधन करत अभागे, निसि-दिन दुख पावत अति ।
'व्यास' निरास भये बिनु, भगति बिना न कहूँ गति ।।(व्या० ११६)

(२) अनन्योपासना में बाधा—उनका मन तो वृंदावन जाने के लिए पहिले से ही विह्वल हो रहा था । ओरछा में भी वे राधा कृष्ण की अनन्य उपासना में लीन रहते थे । अपने आराध्य देव श्री राधा नंदकिशोर में ही वे सब देवताओं को निहित जानते थे । अपनी कन्या के विवाह में गणेश के स्थान पर वे राधाकृष्ण की ही पूजा करना चाहते थे । लोक रीति के विरुद्ध व्यास जी के इस आग्रह को किसी ने भी स्वीकार नहीं किया और उनकी प्रबल इच्छा के विरुद्ध प्रचलित रीति के अनुसार गणेश पूजन किया गया । व्यास जी ने इसे अपना अपमान माना । उन्होंने उन्हें शाप दिया, जिन्होंने उनके घर में गणेश पूजन कराने में उनकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक यह कार्य कराया था—

मरें वे जिन मेरे घर गनेस पुजायौ ।
जे पदार्थ संतन के काजें, ते सारे सकतन नें खायौ ।।
'व्यासदास' कन्या पेटहि क्यों न मरी, अनन्य धर्म में दाग लगायौ ।। (२८६)

व्यास जी के एक अन्य पद से यह प्रतीत होता है कि उनके घर पर गणेश पूजन कराने में जिन-जिन लोगों ने व्यास जी के विरुद्ध बल का प्रयोग किया था, उन्हें उस घटना के बाद ही उसका अनिष्टकारी फल भोगना पड़ा । इस पद के निम्नलिखित अंशों पर विचार करने से प्रगट होता है कि व्यास जी के कोप का जिन पर प्रधान लक्ष्य था, उनका वंश आगे नहीं चला—

तौ मेरो पत साँचौ करि हरि, तुम दारुन दुख पायौ ।।
मो अनन्य के मंदिर में, जिन थापि गनेस पुजायौ ।
तिनकौ वंस वेगि हरि तोरहु, गाइ गूह जिन खायौ ।।
तिहिं मेरौ अपमान कियौ, जिहिं काल हुँकारि बुलायौ ।
जिनकौ खोज न रहौ कहाँ हरि, जिहिं हरि परस छुड़ायौ ।।
जो मैं कह्यौ सोई हरि कीनौं, यह परचौ जग पायौ ।
'व्यास' जु बुवै लुनैगौ दुख-सुख, यह मत वेद बतायौ ।।
(व्यास वाणी, पृष्ठ २९०)

कोप-भाजन का स्पष्ट नामोल्लेख न होने तथा इस परिस्थिति को ध्यान में रखने से कि ओरछा नरेश भारतीचंद के लिए यह प्रसिद्ध है कि शापित होने के कारण† उनका वंश नहीं चला था एवं उनकी मृत्यु सं० १६११ में हुई थी, लेखक का यह अनुमान है कि राजा भारतीचन्द ने गणेश पूजन कराने में व्यास जी के विरुद्ध राज-सत्ता का प्रयोग किया था। व्यास जी के छोटे भाई भी उनका विरोध करते थे और हमी उत्तने थे‡। किंतु उनके वंश चलने के उल्लेख प्राप्त हैं।

(३) *वृंदावन-गमन*—इस प्रकार व्यास जी के लिए ओरछा का वातावरण प्रतिकूल ही होता गया। संवत् १६१२ वि० में वे वृंदावन चले गये*। उस समय ओरछा के राजा थे प्रसिद्ध भक्त मधुकर शाह, जो व्यास जी के परम प्रिय शिष्य थे। व्यास जी का ओरछा छोड़ना उन्हें रुचिकर न हुआ। कहते हैं कि पहिले उन्होंने अपने मंत्री को व्यास जी के लिवा लाने को भेजा, किंतु वह प्रयत्न निष्फल हुआ। तब वे स्वयं ही व्यास जी को ओरछा वापस लाने के लिए वृंदावन गये। किंतु व्यास जी अब वृंदावन छोड़ कर अन्यत्र नहीं जाना चाहते थे, अतएव उन्होंने राजा मधुकर शाह§ को समझा बुझाकर वापस कर दिया। प्रियादास जी लिखते हैं कि व्यास जी को वृंदावन छोड़ कर अन्यत्र जाने की बात से ही चिढ़ उत्पन्न हो गई थी—

आए गृह-त्याग वृंदावन अनुराग करि,
गयौ हियौ पाग होइ न्यारौ तासौं खीजिये।
राजा लैन आयौ पै जाइगौ न भायौ,
श्री किसोर उरझायौ मन सेवा मति भीजिये॥
—भक्ति रस बोधिनी टीका (कवित्त संख्या ३५६)

---

† तिन्हें साप हुव सिद्ध कौ, चलौ न तातैं बंस।
तब भ्राता मधुसाह में, नृपति मुकुट अवतंस॥ (ओरछा प्रशोत्सव, पृष्ठ २०)

‡ मर्नाहिं नचावैं विषय वासना क्यों हिरदै हरि आवैं।×
'लहुरौ भैया करि विरोध औरनि पै मोहि हँसावैं॥'

* Byas swami alias Hari Ram Sukl of Urchha in Bundelkhand. In the year 1555 A. D. when he was forty five years of age, he settled in Brindaban

(The Modern Vernacular literature of Hindustan).

§ व्यास वाणी के कई पदों में मधुकर शाह का नामोल्लेख है, जिससे प्रकट होता है कि वे व्यास जी के पूर्ण कृपापात्र थे।

वृंदावन न छोड़ने का भाव व्यास जी के इस पद में भी है—

सुधारयौ हरि मेरो परलोक ।
श्री वृंदावन में कीन्हों दीन्हों हरि अपनौ निज ओक ॥
माला कौं मौं हेत कियौ हरि, जानि आपनौ तोक ।
चरन धूरि मेरे सिर मेली, और सबन दे रोक ॥
ते नर राक्षस, कूकर, गदहा, ऊँट, वृषभ, गज, बोक ।
'व्यास' जु वृंदावन तजि भटकत, ता सिर पनही ठोक ॥ (व्या० २३६)

वृंदावन पहुँचने के पूर्व भी व्यास जी भक्ति में इतने विह्वल हो जाते थे कि उसमें तन्मय होकर अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ वे नृत्य करते थे। उनमें भक्तों के प्रति अपार श्रद्धा थी। भक्तों की जूठन उनके लिए प्रसाद थी। किंतु उनके इस अलौकिक प्रेम को ओरछा निवासी उस समय न परख सके और व्यास जी पर अनेकों दोषों का आरोपण किया गया*, जिसके फलस्वरूप उन्हें ओरछा त्याग देना पड़ा। उनके निम्न-लिखित वचन उसी स्थिति को प्रकट करते हैं—

मोसों पतित न अनत समाइ ।
याही तें मैं वृंदावन कौं, सरन गह्यौ है आइ ॥
बहुतनि सों मैं हित करि देख्यौ, अनत न कहूँ खटाइ ।
कपटि छाँड़ि मैं भक्ति कराई, दारा सुतनि नचाइ ॥
भक्त पुजाये लीला करि, सब ही की जूंठनि खाइ ।
ता ऊपर खिर्चे सब मो सों, कोटि कलंक लगाइ ॥
अजहू दाँत पन्हैया गहि, तिनहू के चाटौ पाइ ।
तौ न तिन्हें परतीत 'व्यास' की, सत छाँड़े पत जाइ ॥ (व्या. २८१)

तब उनमें पूर्ण वैराग्य भर चुका था। वे जाति-पाँति के सब बंधनों को त्याग कर आशीर्वाद तथा शाप देने वाली दोनों शैलियों से दूर हो चुके थे। कृष्ण नाम की माला जपना और वृंदावन में वास करना ही उनकी वृत्ति थी, जैसा वे स्वयं कहते हैं—

---

* कहते हैं कि ओरछा में व्यास जी ने अपने ठाकुर जी का शरदोत्सव किया था। उस उत्सव में जब वे सपत्नीक नृत्य में मग्न हो रहे थे, तब उनके प्रिय शिष्य ओरछा नरेश महाराजा मधुकर शाह भी श्री ठाकुर जी के सन्मुख नृत्य करने लगे। जन साधारण को उनका यह व्यवहार राजकुलोचित प्रतीत न हुआ। भय वश लोग उनसे तो कुछ कह न सके, किंतु व्यास जी को वे अनेक प्रकार के दोष देने लगे। इसका चमत्कारपूर्ण वर्णन कई ग्रंथों में पाया जाता है

रसिक अनन्य हमारी जाति।
कुलदेवी राधा, बरसानौ खेरौ, ब्रजबासिन सौं पाँति॥
गोत गोपाल, जनेऊ माला, सिखा सिखंडि, हरिमंदिर भाल।
हरि गुन नाम बेद धुनि सुनियत, मूँज पखावज, कुस करताल॥
साखा जमुना, हरिलीला षट् कर्म, प्रसाद प्रानधन रास।
सेवा बिधि-निषेध, जड़ संगनि, बृत्ति सदा बृंदावन बास॥
सुमृत भागवत, कृष्ण नाम संध्या, तर्पन गायत्री जाप।
बंसी रिषि, जजमान कल्पतरु, 'व्यास' न देत असीस-सराप॥ (९३)

वृंदावन के प्रति प्रेम और धाम की महिमा को प्रकट करने वाले जैसे सरस पद व्यास जी ने कहे हैं, वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं। देखिये—

भाँति-भाँति वृंदावन की भरनि।
अधिक कोटि बैकुंठ लोक तैं, सुक-नारद मुनि बर्नन॥ (व्या० ८०)

तथा

रुचत मोहि वृंदावन को साग।
कंद-मूल, फल-फूल जीविका, मैं पाई बड़ भाग॥ (व्या० ८१)

१२. आराध्य देव श्री युगलकिशोर जी—

ब्रजवासी होने की उत्कंठा सूचक पद में व्यास जी ने गाया था—

हम कब होहिंगे ब्रजबासी।
ठाकुर नंदकिसोर हमारे, ठकुराइन राधा सी॥ (व्या०२५६)

अब वे ब्रजवासी हो गये और वहाँ अपने श्री विग्रह को प्रतिष्ठित कर चुके, तब वे अपने ठाकुर जी का परिचय इस प्रकार प्रकट करते हैं, जिससे न केवल 'श्री युगलकिशोर जी' के नाम की ही सूचना मिलती है, वरन् व्यास जी की उपासना-पद्धति पर भी पूरा प्रकाश पड़ता है—

नंद वृषभान के दोऊ बारे।
वृंदावन की सोभा संपति, रति-सुख के रखवारे॥
गोरी राधा, कान्ह साँवरे, नख-सिख अंग लुभारे।
बोलत, हसत, चलत, चितवत, छबि बरनत कबिकुल हारे॥
धीर समीर तीर जमुना के, कुंज कुटीर सँवारे।
बिबिध बिहारहिं बिहरत दोऊ, सहज स्वरूप सिंगारे॥
रसिक अनन्य मंडली मंडन, प्रानन हूँ तैं प्यारे।
जुगलकिसोर 'व्यास' के ठाकुर, लोक-बेद तैं न्यारे॥ (व्या० ६१५)

व्यास जी द्वारा रचित श्री युगलकिशोर जी की आरती का पद इस प्रकार है—

आरती कीजै जुगलकिशोर की।
नख-सिख अंग बलैया लीजै, साँझ दुपहरी भोर की॥
मगन परे नागरि नट अद्भुत, चितवनि चंचल कोर की।
'व्यास दासि' लाजे नैननि फबि रही, अंचल चंचल छोर की॥

(व्या० वा० ४०१)

व्यास जी ने वृंदावन में श्री युगलकिशोर जी का एक सुंदर तथा विशाल मंदिर बनवाया था। यह मंदिर लाल पत्थर का था†। उसके भग्नावशेष अब भी पुरानी कला का स्मरण दिलाने के लिए व्यास घेरा वृंदावन में विद्यमान हैं।

युगलकिशोर जी की इस मूर्ति का प्रादुर्भाव माघ शुक्ला ११ संवत् १६२० के दिन वृंदावन में हुआ था‡। आजकल यह मूर्ति पन्ना विंध्यप्रदेश में प्रतिष्ठित है*।

वृंदावन से पन्ना में इस मूर्ति के आने का काल कुछ लोग औरंगजेब द्वारा वृंदावन के मंदिरों पर आक्रमण का समय बतलाते हैं। किंतु यह दो दृष्टियों से ठीक नहीं है। एक तो औरंगजेब द्वारा ब्रज पर आक्रमण के समय (संवत् १७२६) तक प्रसिद्ध वीर छत्रसाल का अभ्युदय ही नहीं हुआ था, जिनके आधार पर यह कल्पना की जाती है, और दूसरे संवत् १७६५ वि० के बाद तक श्री युगलकिशोर जी का वृंदावन धाम में विराजमान रहने का एक कथन भी उपलब्ध है। श्री भगवत रसिक जी (जन्म संवत् १७९५ के लगभग‡) ने वृंदावन की प्रसिद्ध सात देव-मूर्तियों का वर्णन किया है और उनमें व्यास जी के श्री युगलकिशोर जी का भी उल्लेख है। वृंदावन में निवास करने के लिए आकर्षण का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

---

† इस मंदिर के ऊपरी हिस्से में ईंटों का बना हुआ गोल गुम्बज था तथा सामने जगमोहन और रासमंडल लाल पत्थर के बने हुए थे।

—वृंदावन कथा (बंगला) पृष्ठ १४०

‡ देखिये 'व्यास वाणी' का प्राक्कथन, पृष्ठ २३

* पन्ना में जे जुगलकिशोरा। पूजैं तिन्हैं व्यास उठि भोरा॥

—राम-रसिकावली, पृष्ठ ७७०

‡ हिंदी साहित्य का इतिहास (शुक्ल), पृष्ठ २११

प्रथम सरस गोविंद, रूप के प्रान-पियारे।
दूजे मोहन मदन, सनातन सुनि उर धारे॥
तीजे गोपीनाथ, मधु मुनि नेह लगाये।
चौथे राधारमन, भट्ट गोपाल लड़ाये॥
पाँचे हित हरिवंश, हिये बस वल्लभ राधा।
छटयें जुगलकिशोर, व्यास सुख दियौ अगाधा॥
सातें श्री हरिदास के, कुंजबिहारी हैं तहाँ।
'भगवत रसिक' अनन्य मिलि, वास करहु निशिदिन जहाँ†॥

अतएव यवन उत्पीड़न के समय श्री युगलकिशोर जी का वृंदावन से आगमन का संबंध, औरंगजेब के काल में नहीं हो सकता। लेखक का अनुमान है कि मुसलमानों द्वारा ब्रज पर अत्याचार की जनश्रुति के आधार पर औरंगजेब का समय कल्पित कर लिया गया है। यवन उत्पीड़न की जनश्रुति के सहारे यह अनुमान किया जा सकता है कि संवत् १८१४ में जब अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण द्वारा मथुरा वृंदावन का भयंकर विध्वंस हुआ, उसी समय इन श्री मूर्तियों को वृंदावन से लाया गया होगा। इस अनुमान की पुष्टि इस कारण और भी हो जाती है कि युगलकिशोर जी का मंदिर पन्ना में महाराजा हिंदुपत ने बनवाया था‡। वे पन्ना के राज सिंहासन पर संवत् १८१५ से संवत् १८३३ तक रहे। कहा जाता है कि वृंदावन से यह मूर्ति पहिले जैतपुर§ में आई और वहाँ से फिर पन्ना‡।

इससे प्रकट है कि व्यास जी बड़े प्रेम भाव से श्री राधाकृष्ण की मूर्ति की पूजा करते थे और उनके पूज्य देव का नाम था युगलकिशोर।

---

† श्री भगवतरसिक की बानी की हस्तलिखित प्रति (लिपिकाल संवत् १९४७) के पृष्ठ ३२ से उद्धृत।

‡ देखिये, 'पन्ना स्टेट गजेटियर', पृष्ठ १७४

§ सन् १८५७ के राज-विद्रोह के फल स्वरूप जैतपुर राज्य ब्रिटिश भारत में लीन कर लिया गया था।

‡ पन्ना नगर में श्री युगलकिशोर जी का विशाल मंदिर है। इसके अतिरिक्त वहाँ के राजमहलों में पूजित नन्दकिशोर जी भी व्यास जी द्वारा अर्चित ठाकुर जी कहे जाते हैं।

ज्ञान-घेरा, वृंदावन में व्यास जी के उपास्य देव

श्री युगलकिशोर जी का प्राचीन मंदिर

१४. अकबर बादशाह का मिलन—

'गुरु शिष्य वंशावली' में चमत्कारपूर्ण रीति से वर्णित एक घटना में अकबर का व्यास जी से मिलना अभिप्रेत है। अकबर का तानसेन के साथ वृंदावन में व्यास जी के परम स्नेही स्वामी हरिदास के दर्शन करना प्रसिद्ध ही है। अतएव उस यात्रा में उसका व्यास जी से मिलना भी ठीक जचता है। विशेष कर इसलिए और भी कि व्यास जी और स्वामी हरिदास जी की अभिन्न प्रीति थी, तथा अकबर के पूरे राजत्व काल में व्यास जी वृंदावन में ही रहे।

अकबर की धार्मिक जिज्ञासा तथा उदार वृत्ति दीन इलाही मत के चलाने (अर्थात् संवत् १६३२ वि०*) समय से पूर्व बहुत प्रबल थी। उस समय वह तत्व को समझने के लिए संतों और भक्तों से अधिक मिलता था तथा उनके प्रवचनों को बड़ी उत्सुकता पूर्वक सुनता था। उसी समय में वह अजमेर बहुधा जाया करता था। अपने राजत्व काल के १९ वे, २० वे तथा २१ वे वर्ष में (संवत् १६३१ से १६३३ तक) प्रति वर्ष वह आगरा से अजमेर गया†।

किंतु एक तो अकबर के मथुरा वृंदावन जाने के समय में बहुत मतभेद है और दूसरे 'गुरु शिष्य वंशावली' के उल्लेखों को पूर्णतया प्रामाणिक नहीं माना गया है, इस कारण इस घटना और समय पर पूर्ण रीति से कुछ नहीं कहा जा सकता। मथुरा गजैटियर में अकबर का संवत १६२७ में वृंदावन के गोस्वामियों से भेट करने का उल्लेख है। संभव है उसी समय अकबर व्यास जी से भी मिला हो‡।

---

* अकबर ने सन् १५७५ (संवत् १६३२) मे दीन इलाही मत की स्थापना की थी। (देखिये भारत का धार्मिक इतिहास, पृष्ठ ३१०)

† अकबरनामा 'नवलकिशोर प्रेस लखनऊ' फारसी के अनुसार।

‡ Indeed in 1570 (=1727 V S.) the fame of the Vrindaban Gosains had spread so far abroad that the emperor himself was induced to pay them a visit. Here he was taken blind folded into the secred enclosure of the Nidhiban, the actual Brinda grove to which the town owes its name, and so marvellous a vision was revealed to him that he was fain to acknowledge the place as holy ground. The attendant Rajas expressed a wish to erect a series of buildings more worthy of local divinity and and having attained the cordial support of the sovereign built the four celebrated temples of Govind Deva, Gopi Nath, Jugal Kishore and Madan Mohan in honour of the event *Gazettier of Mutra (Page 191)*

१५. संपत्ति का विभाजन—

(१) *प्रकार*—अपने सामने ही व्यास जी ने अपनी संपत्ति का तीनों पुत्रों में विचित्र प्रकार से विभाजन किया।

उन्होंने उसके तीन† भाग किये—

१. युगलकिशोर जी की सेवा, २. धन, मकान, ३. छाप तिलक, माला।

दो पुत्रों ने क्रमशः श्री युगलकिशोर जी की सेवा और धन-धाम लिये तथा तीसरे श्री किशोरदास जी के हिस्से में माला और तिलक आया। तब श्री व्यास जी ने किशोरदास को स्वामी श्री हरिदास जी का शिष्य कराया‡। प्रियादास जी ने लिखा है—

भये सुत तीन, बाँट निपट नवीन कियौ,
एक ओर सेवा, एक ओर धन धर्यौ है।
तीसरी जु ठौर स्याम बेंदिनी औ छाप धरी,
करी ऐसी रीति, देखि बड़ौ सोच पर्यौ है॥
एक नें रुपया लये, एक ने किसोर जू कौं,
श्री किसोरदास, माल तिलक लै कर्यौ है।
छाप दिये स्वामी हरिदास निज दास कीनों,
वही रास ललितादि गायौ, मन हर्यौ है॥

—भक्तिरस-बोधिनी टीका ३६८

महाराजा रघुराजसिंह ने युगलकिशोर जी की सेवा किशोरदास जी को उक्त विभाजन में मिलना लिखा है—

गयौ साधु सुमिरत जगदीसा। व्यास करन लागे सुत हीसा॥
एक ओर धरि हरि-सेवकाई। एक ओर छापा पधराई॥
एक ओर धरि धन अरु धामा। कह्यौ लेइ जो जाकरि आसा॥
इक धन लियौ, द्वितीय हरि-सेवा। तीजौ लिय छापा मुनि देवा॥
युगलकिसोर लियौ सेवकाई। सो हरिदास सिष्य ह्वै आई॥
विचर्यौ ब्रजमंडल बड़भागी। नाम किसोर नाम-अनुरागी॥

—रामरसिकावली, पृष्ठ ७५१-७५२

---

† एक ठौर श्री युगलकिशोरा। एक ठौर धन धरि एक ठौरा॥
छाप-तिलक माला इक कोनी। बोले व्यास सुतन तें बानी॥

—निज मत सिद्धान्त, मध्यखंड, पृष्ठ ११२

‡ ये स्वामी श्री हरिदास जी के प्रसिद्ध बारह शिष्यों में से एक थे।

किंतु श्री महंत किशोरदास जी कृत 'निजमत सिद्धांत' में किशोरदास जी द्वारा तिलक छाप लेने का वर्णन है। यह ग्रंथ स्वामी हरिदास जी तथा उनके शिष्यों के चरित्र का ही वर्णन करने के निमित्त उसी गद्दी के महंत द्वारा लिखा गया है तथा 'भक्तमाल' की भक्तिरस बोधिनी टीका से भी इसी सूचना का मिलान होता है, अतएव श्री किशोरदास जी द्वारा तिलक और माला को ही पाना माना जाना चाहिये।

व्यास जी ने एक पद में जहाँ आराध्य देव के लिए 'कुंजविहारी', जो श्री स्वामी हरिदास जी के ठाकुर जी का भी नाम है, संज्ञा का प्रयोग किया है, वहाँ माला और तिलक अंगीकार करने के महत्व का भी कथन किया है—

जो तू माला-तिलक धरै ।
तौ या तन मन व्रत की लज्जा, और निबाह करै ॥
करि बहु भाँति भरोसो, हरि कौ भवसागर उतरै ।
मनसा, बाचा और कर्मना, तृन करि गनतु धरै ॥
सती न फिरत घाट ऊपर तें, सिर सिंदूर परै ।
'व्यासदास' की कुंज विहारी, प्रीति न कहूँ बिसरै ॥ (व्या० २१८)

यदि उक्त पद-रचना की पृष्ठभूमि में, वर्णित घटना का प्रभाव हो तो किशोरदास जी द्वारा माला तिलक ग्रहण करने के अंत:साक्ष्य का भी, इससे आभास मिलता है।

(२) *समय*—संपत्ति के विभाजन संबंधी वर्णन में हमें समय के दो संकेत मिलते हैं। श्री युगलकिशोर जी की मूर्ति को एक पुत्र द्वारा प्राप्त करना तथा किशोरदास का स्वामी हरिदास का शिष्य विभाजन के उपरांत ही होना, ऐसे सूत्र हैं, जिनसे हम संपत्ति के विभाजन का काल श्री युगलकिशोर जी के प्रादुर्भाव संवत् १६२० और स्वामी हरिदास जी का देहावसान काल संवत् १६३२ के बीच में मान सकते हैं। इस आधार पर संवत् १६२६ के लगभग संपत्ति का विभाजन किया जाना अनुमानित होता है।

१६. देहांत काल—

(१) *अंतिम सीमा*—श्री ध्रुवदास जी ने, जो व्यास जी के न केवल समकालीन ही थे, वरन् उनके समुदाय में ही वृंदावन में निवास करते थे, 'भक्त-नामावली' में व्यास जी संबंधी २ दोहा लिखे हैं। इस पुस्तक में भी 'भक्त-नामावली' के शीर्षक में श्री ध्रुवदास जी का निधन-

काल सं १७०० के लगभग तथा 'भक्त-नामावली' का रचना-काल संवत् १६९८ वि० के आसपास माना गया है। 'भक्त-नामावली' में लिखे गये व्यास जी संबंधी दोहों से यह निस्संदेह सिद्ध है कि उसकी रचना होने के पूर्व ही व्यास जी का देहांत हो गया था†। अतः यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि संवत् १६९८ के पूर्व व्यास जी ने निकुंजलीला में प्रवेश किया था।

(२) *काल सूचक स्पष्ट उल्लेख*—श्री व्यास जी के जीवन चरित्र संबंधी जितने भी प्रकाशित तथा हस्तलिखित लेख आदि पढ़ने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त हुआ, उनमें से 'गुरु-शिष्य-वंशावली' को छोड़ कर और किसी भी ग्रंथ में उनके देहांत-काल का उल्लेख करने वाली सूचना प्राप्त नहीं हुई। उक्त ग्रंथ में व्यास के देहांत काल का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि शरीर-त्याग करते समय व्यास जी ने यह पद गाया था—

धनि तेरी माता, जिन तू जाई।
ब्रज-नरेस वृषभान धन्य, जिहिं नागरि कुंवरि खिलाई॥
धन्य श्री दामा भैया तेरो, कहत छबीली बाई।
धन्य बरसानौ, हरिपुर हू तें ताकी बहुत बड़ाई॥
धन्य स्याम बड़भागी तेरौ, नागर कुंवर सदाई।
धन्य नंद की रानी जसुदा, जाकी वह कहाई॥
धन्य कुंज सुख पुंजन, बरसत तामें तू सुखदाई।
धन्य पुहुप-साखा-द्रुम-पल्लव, जाकी सेज बनाई॥
धन्य कल्पतरु बंसीबट, धनि वर बिहार रह्यौ छाई।
धनि जमुना जाको जल निर्मल, अचवत सदा अघाई॥
धन्य रास की धरिनी, जिहिं तू रुचि के सदा नचाई।
धन्य बंसीबट जगत प्रसंसी, राधा नाम रटाई॥
धन्य सखी ललितादिक, निसिदिन निरखत केलि सुहाई।
धन्य अनन्य 'व्यास' की रसना, जेहि रस-बीच मचाई॥ (व्या.७६

पश्चात्—*यह पद गाय सुनायकैं, सबन सुनाई बात।*
बेग महल कों जात हौं, करो कृपा अब तात॥
जेठ सुकिल एकादसी, सोमवार दोइ जाम।
सोरहसै नवासी साल में, व्यास पधारे श्री हरिधाम॥

---

† कहनी-करनी करि गयौ, एक व्यास इहिं काल।
लोक-वेद तजिकै भजे, (श्री) राधा

इस प्रकार इस ग्रंथ में व्यास जी की निधन-तिथि सं० १६८६ की जेष्ठ शुक्ला ११ सोमवार प्रकट की गई है तथा समय भी दोपहर का बतलाया गया है। खोज रिपोर्ट सन् १९१२-१४ के पृष्ठ २६० पर व्यासजी का आविर्भाव काल (संवत् १६८५ विक्रमी, सन् १६२८ ई०) के लगभग प्रकट किया गया है।

(३) *दीर्घायु के अंतर्साक्ष्य*—व्यास जी का जन्म संवत् १५६७ में हुआ था। अत: सं० १६८६ में उनका देहांत मानने पर उनकी अवस्था १२२ वर्ष ठहरती है। परंपरागत किंवदंतियों के अनुसार भी व्यास जी दीर्घायु थे। परंतु उनके दीर्घायु प्रसिद्ध होने पर भी बिना निश्चित आयु जाने, १२२ वर्ष की अवस्था मानने के लिए कुछ आधार भी होना चाहिये। व्यास जी ने अपने कितने ही पदों में अपनी वृद्धावस्था के ऐसे संकेत दिये है, जिससे उन्हें दीर्घायु मानने में संदेह नहीं रहता—

देखि सखी खेलत नागरि नट।
अदभुत बात कहत नहिं आवै, क्रीडा करत चढ़े बंसीवट। ×
यह रस 'व्यासदासिहि' न उबीठत, जदपि 'सेत भई सिर की लट' ॥(४४६)

इसी प्रकार—

राधे जू अरु नवल स्याम घन, विहरत बन-उपबन वृंदाबन ।×
'व्यासदासि' आगे ही ठाढ़ी, सुख निरखत बीते तीनों पन ॥ (व्या०५६१)

आयु के ढलने का संकेत उनके इस पद में भी प्राप्त है—

'विहरत राधा कुंज लमी री ।×
यह छवि 'व्यास' सेष-चतुरानन, बरनत वैस खसी री ॥ (व्या० ५८२)

यद्यपि उक्त उद्धरण उनकी दीर्घायु का संकेत करने के लिए सहायक हैं, तथापि 'गुरु-शिष्य-वंशावली' में प्रकट किया गया निधन सं० १६८६ को किसी कसौटी पर कसे बिना ही स्वीकार कर लेना उचित न होगा। ध्रुवदास जी की 'भक्त-नामावली' में किये गये उल्लेख से व्यास जी का निधन उसके रचना-काल सं० १६९८ के लगभग से पूर्व होना निश्चित हो जाता है। 'गुरु-शिष्य वंशावली' से प्राप्त निधन संवत् भी उक्त काल से ९ वर्ष पूर्व का है, फिर भी इससे और भी पूर्व की घटनाओं की परीक्षा करना शेष रह जाता है।

(४) *असंगति*—व्यास जी की समाधि का निर्माण वीरसिंह देव ने कराया था‡। बादशाह जहाँगीर की मृत्यु (२८ अक्टूबर १६२७ ई०) के

‡ देखिये 'लोकेन्द्र ब्रजोत्सव' पृष्ठ २१, २२

तीन-चार मास पूर्व ही सं० १६४८ में वीरसिंह देव का निधन हुआ§। अतएव व्यास जी का देहांत काल सं० १६४८ के पश्चात् नहीं माना जा सकता। तदनुसार 'गुरु-शिष्य-वंशावली' में प्रकट किया गया व्यास जी का देहांत काल सं० १६८९ ऐतिहासिक दृष्टि से मान्य नहीं है।

इस संवत् में ज्येष्ठ शुक्ला ११ को सोमवार भी ज्योतिष गणना के अनुसार नहीं था। अतः हमें प्रस्तुत विषय पर विचार करने के लिए अन्य घटनाओं का आश्रय लेना पड़ेगा।

(५) *उपस्थिति काल*—श्री व्यास जी ने अपने समकालीन कितने ही साधु-संतों के निधन हो जाने पर उनके विरह से जनित हृदयोद्गारों को अपनी वाणी में व्यक्त किया है। इस प्रकार के कितने ही पदों में से एक यह है—

बिहारहि 'स्वामी' बिनु को गावै ।
बिनु 'हरिवंसहि', राधावल्लभ को रसरीति सुनावै ॥
'रूप-सनातन' बिन को वृंदाविपिन माधुरी पावै ।
'कृष्णदास' बिन गिरिधर जू को, को अब लाड़ लड़ावै ॥
'मीराबाई' बिन, को भक्तनि पिता जानि उर लावै ।
स्वारथ परमारथ 'जैमल' बिन, को सब बंधु कहावै ॥
'परमानंददास' बिन, को अब लीला गाइ सुनावै ।
'सूरदास' बिन पद रचना को, कौन कविहि कहि आवै ॥
और सकल साधन बिन, को कलि-काल कटावै ।
'व्यासदास' इन बिनु, को अब तन की तपन बुझावै ॥ (भा० २६)

स्वामी श्री हरिदास जी का निकुंज गमन काल, उन्हीं की शिष्य-परंपरा में दीक्षित महंत किशोरदास जी द्वारा रचित 'निजमत-सिद्धांतसार' में इस प्रकार दिया हुआ है—

संवत् पंद्रा सैं सैंतीसा । भादव प्रिया जन्म तन दीसा ॥
वर्ष पचीस गृहामधि वासा । सतर विरक्त विपिन निवासा ॥
पौन्य थाटि सत वर्ष लौं, इच्छा विग्रह धारि ।
सकल सुवन कौ सार रस, महामधुर विस्तारि ॥

—मध्य खंड, पृष्ठ २८५

उक्त उद्धरण के अनुसार स्वामी श्री हरिदास जी का जन्म संवत् १५३७ और कुंज गमन काल संवत् १६३२ है। 'निजमत सिद्धांतसार' में स्वामी

---

§ देखिये, ओरछा गजेटियर, पृष्ठ २४

रिदास जी के अंतर्धान के समय संवत् १६३२ वि० में श्री व्यास जी एवं उनके पुत्र श्री किशोरदास जी का उनके समीप ही उपस्थित होने का भी उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

> चहुँदिसि द्वादस शिष्य सुहाए। श्रीमत व्यासदास हूँ आए ॥×
> ज्यों दामिनि घन त उदित, उलटि तहाँ मिलि जाय।
> त्यों अपने निज रूप मधि, श्री हरिदास समाय॥

श्री हित हरिवंश जी का कुंजलाभ-काल उनके वंशज गोस्वामी गण संवत् १६०६ मानते हैं*। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार उनका कुंजलाभ-काल संवत् १६२२ से १६४० वि० के बीच में है†। रूप गोस्वामी सनातन गोस्वामी के अनुज थे। उनका जन्म संवत् १५४६ विक्रमी में हुआ था। उन्होंने संवत् १५८२ में 'विदग्ध माधव' और संवत १५९७ में 'हरि-भक्ति-रसामृत' ग्रंथों की रचना की। संवत् १६२० में उनका देहांत हो गया$। सनातन गोस्वामी जी का निधन काल भी संवत् १६२० के ही लगभग अनुमान किया जाता है। श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने अपने ग्रंथ 'अष्टछाप-परिचय' में कृष्णदास का देहावसान संवत १६३६ में होना माना है। 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में डाक्टर रामकुमार जी वर्मा लिखते हैं कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र के कथानानुसार मीरॉ की मृत्यु संवत् १६२० से १६३० तक मानना उचित है। राजस्थान के इतिहासकार मीराबाई की मृत्यु संवत् १६०३ में मानते है। जयमल की मृत्यु इतिहासकारों द्वारा संवत १६२७ में मानी जाती है। परमानन्द दास तथा सूरदास जी के गोलोक वास का समय डा० दीनदयालु जी गुप्त ने अपने 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' नामक ग्रंथ मे १६४० वि० और १६३८-३६ वि० क्रमशः सिद्ध किया है। श्री प्रभुदयाल जी मीतल क्रमशः संवत् १६४१ तथा संवत् १६४० की उक्त घटनाएँ मानते है।

संतों के निधन काल संबंधी इन सूचनाओं से संवत् १६४० के पश्चात् व्यास जी का अस्तित्व निर्विवाद सिद्ध है।

श्री नाभादास जी ने अपनी 'भक्तमाल' में श्री व्यास जी के लिए निम्नलिखित छप्पय कहा है—

---

* श्री हित-सुधा-सागर का विज्ञान भाग (गुजराती संस्करण)

† हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १८०–१८१

$ 'कल्याण' संत अंक, पृष्ठ ४३६

काहू के आराध्य, मच्छ कछ सूकर नरहरि।
बामन परसाधरन, सेतुबंधनहू सैल करि॥
एकन के यह रीति, नेम नवधा सों लायें।
सुकुल समोखन-सुवन, अच्युत गोत्री जु लड़ायें॥
नौगुनी तोरि नूपुर गुह्यौ, महत सभा मधि रास के।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के॥

श्री नाभादास जी का जीवन-काल श्री श्यामसुंदरदास जी के मत से संवत १६४२ से संवत् १६८० तक है†। डाक्टर रामकुमार वर्मा के मत से श्री नाभादास जी का आविर्भाव काल संवत् १६५७ माना जाता है*। श्री रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं—"ये संवत् १६५७ के लगभग वर्तमान थे और गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु के बहुत पीछे तक जीवित रहे। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'भक्तमाल' संवत् १६४२ के पीछे बना‡।"

श्री नाभादास जी द्वारा लिखित व्यास जी के संबंध में उक्त छप्पय से वर्तमान कालिक वर्णन प्रकट होता है। इससे भक्तमाल की रचना के समय§ संवत् १६४२ वि० में उनका जीवित होना आवश्यक है। श्री वियोगीहरि जी लिखते हैं कि व्यास जी का रचना-काल १६१२ से १६५५ तक माना जाता है‡। इस कथन के ध्वन्यात्मक अर्थ से व्यास जी का देहावसान काल संवत् १६५५ प्रकट किया गया प्रतीत होता है। किंतु उक्त सूचना का कोई आधार नहीं बतलाया गया, इससे उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(९) *गोस्वामी तुलसीदास द्वारा परिस्थिति का संकेत*—व्यास जी के समकालीन एवं हिंदी साहित्य के प्राण गोस्वामी तुलसीदास जी का कविता-काल संवत् १६१७ से १६८० विक्रमी तक माना जाता है। उनके 'कवितावली' नामक ग्रंथ में तत्कालीन परिस्थिति को प्रकट करने वाले भी कुछ संकेत हैं—

---

† 'हिंदी भाषा और साहित्य', पृ० ३१५
* हि० सा० का आलोचनात्मक इतिहास, (वर्मा) पृष्ठ ५४०
‡ हि० सा० इतिहास (शुक्ल) पृष्ठ १४३
§ खोज रिपोर्ट सन् १९१७:१९ की नोटिस संख्या ११७
‡ ब्रज माधुरी सार, पृ० ६४

'खेती न किसान को', भिखारी को न भीख, बलि—
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
'जीविका विहीन' लोग सीधमान सोच बस,
कहैं एक एकन सो 'कहाँ जाइ, का करी ?'
बेद हू पुरान कही, लोक हू बिलोकियत,
साँकरे सबै, पै राम रावरे कृपा करी।
'दारिद - दसानन दबाई दुनी' दीन - बंधु !
'दुरित दहन' देखि 'तुलसी' हहा करी ॥९७॥

'खेती न किसान को' पदांश से प्रकट होता है कि देश की यह स्थिति अनावृष्टि आदि कारण से उत्पन्न हुई थी। जीविका विहीन होने से लोग यह न समझ पाते थे कि वे कहाँ जावे और क्या करें। दरिद्रता रूपी रावण के संकट से मुक्ति दिलाने के लिए तुलसीदास जी दीनबंधु राम से प्रार्थना करते थे। पेट के लिए लोग बेटा और बेटी भी बेचने लगे थे और जलवृष्टि के लिए व्याकुल हो गये थे, जिसका उल्लेख कवितावली के कवित्त मे इस प्रकार है—

किसबी, किसान कुल, बनिक, भिखारी, भाट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट ही को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटल गहन गन अहन अखेट की ॥
ऊँचे-नीचे करम, धरम - अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़आगि तें बड़ी है आग पेट की ॥९६॥

अंतिम पंक्ति से यह स्पष्ट है कि जलवृष्टि के लिए लोग कामना करते थे, क्यों कि तुलसीदास जी कहते हैं कि भूख रूपी अग्नि तो केवल एक भगवान् राम रूप श्याम मेघ के द्वारा बुझाई जा सकती है; बादलों से यदि पानी बरस भी जाय, तब भी क्या होने का। इससे उस समय अनावृष्टि का संकेत मिलता है, जिसके फल स्वरूप लोगों को ऊँचे-नीचे कर्म करने पड़े, यहाँ तक कि बेटा और बेटी बेचने की स्थिति आगई। देश की तत्कालीन दीन दशा से प्रभावित होकर कवि ने अपने हृदयोद्‌गार प्रकट किये हैं, अतः इन छंदों के रचना-काल के समय की संकटकालीन परिस्थिति का उनसे बोध होता है।

कवितावली में मीन की सनीचरी[1] और रुद्रबीसी[2] का उल्लेख आता है। अतः उक्त दोनों का मेल ज्योतिष के अनुसार के देखने पर उसके रचना-काल पर प्रकाश पड़ता है। गोस्वामी तुलसीदास जी के समय में मीन की सनीचरी दो बार पड़ी। प्रथम तो चैत्र सुदी सं० १६४० से ज्येष्ठ सं० १६४२ तक और द्वितीय चैत्र सुदी सं० १६६९ से ज्येष्ठ सं० १६७१ तक। किंतु रुद्रबीसी का समय सं० १६६५ से १६८५ तक होने का कारण दूसरी मीन की सनीचरी, जो सं० १६६९ से प्रारंभ हुई, उससे मेल खाती है[3]। 'कवितावली में गोस्वामी तुलसीदास जी के अंतिम समय का निर्देश करने वाले कवित्त भी संगृहीत होने के कारण यह उनकी अंतिम रचना मानी जाती है और अनुमान किया जाता है कि उसका संपादन उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके किसी शिष्य ने किया होगा। उसमें वर्णित स्फुट छंदों की रचना एक ही समय में न होकर एक विस्तृत समय में हुई थी। डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—"कवितावली सम्बद्ध ग्रंथ के रूप में न होकर समय-समय पर लिखे गये कवित्तों के संग्रह रूप में है। यदि बेणीमाधव दास का प्रमाण न माना जावे तो कवितावली के कुछ कवित्तों का रचना-काल सं० १६६९ के लगभग ठहरता ही है[4]। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इसका रचना-काल मोटे तौर पर संवत् १६६५ से १६८० के लगभग माना है[5]। अतएव पूर्वोक्त दोनों कवित्तों में जिस परिस्थिति का आभास मिलता है, वह सं० १६६५ के लगभग या उसके बाद की होगी।

(७) *व्यास-वाणी में समान संकेत*—व्यास जी के एक पद में भी इसी प्रकार की परिस्थिति का आभास मिलता है। अतः यह अनुमान असंगत न होगा कि जिस समय (लगभग १६६५ वि०) गोस्वामी तुलसीदास जी 'कवितावली' के उन कवित्तों का सृजन कर रहे थे, उसी

---

[1] एक तो कराल कलि काल सूल मूल, तामें—
कोढ़ में की खाजु, सो सनीचरी है मीन की।
—कवितावली (उत्तर कांड) १७७

[2] बीसी बिस्वनाथ की, बिषाद बड़ो बारानसी,
बूझिये न ऐसी गति संकर-सहर की!
—कवितावली (उत्तर कांड) १७०

[3] Indian Antiquary vol. XXII page 97.

[4] हि. सा. का आ० इतिहास (वर्मा) पृष्ठ ४४७

[5] तुलसी संदर्भ, पृष्ठ ३७

के आसपास व्यास जी भी उस पद के द्वारा उन्हीं कारणों से अपने जीवन पर क्षोभ प्रकट कर रहे थे। व्यास जी का वह पद निम्नलिखित है—

अब साँचौ ही कलिजुग आयौ।
पूत न कह्यौ पिता कौ मानत, करत आपनौ भायौ॥
बेटी बेचत संक न मानत, दिन-दिन मोल बढ़ायौ।
याही तें बरषा मंद होत है, पुन्य तें पाप सवायौ॥
मथुरा खुदति, कटत वृंदावन, मुनि जन सोच उपायौ।
इतनौ दुख सहिवे के काजे, काहे कौं 'व्यास' जिवायौ॥ (व्या० २६३)

उक्त पद-रचना की पृष्ठ-भूमि में निम्न लिखित स्थिति व्यक्त है—

१—कलियुग का प्रभाव।
२—पुत्रों का पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर मनमानी करना।
३—निर्भय होकर बेटी बेचना। बेटी के अथवा अन्य सामग्री के मूल्य में नितप्रति उत्तरोत्तर वृद्धि।
४—वर्षा की कमी।
५—मथुरा का खुदना और वृंदावन का कटना। तथा—
६—उस समय के जीवन से मृत्यु को श्रेयस्कर समझना।

(८) *ऐतिहासिक समर्थन*—कलियुग के धर्म-विरुद्ध प्रभाव से दुखी होकर सभी संत-महात्माओं ने प्रत्येक समय क्षोभ प्रकट किया है। इसी प्रकार पुत्रों की ओर से पिता की आज्ञा का उल्लंघन भी उपालंभ का कारण बना रहा है। अतएव वर्गीकृत दो स्थितियाँ किसी काल के निर्णय में सहायता प्रदान नहीं करतीं। दिन प्रति मूल्य बढ़ने से अनावृष्टि जन्य परिस्थिति तथा शांति-भंग का अव्यवस्थित युग प्रतिबिंबित होता है। यदि उक्त पद में बेटी बेचने के मूल्य में ही नित्य-प्रति सवाई वृद्धि करने का अर्थ समझा जावे, तो भी यह नीच कर्म मनुष्य उस दशा में करने को उद्यत हुए होंगे, जब उनके प्राणों पर आ बीती होगी। अत्यंत पतितों की बात तो और ही है। अब भारत के राजनैतिक इतिहास का आधार लेकर व्यास जी के इस पद का काल निर्णय करना है। व्यासजी का जन्म सं० १५६७ विक्रमी है। उस समय से लेकर सं० १६८४ के बीच दिल्ली और आगरा के राजसिंहासन पर निम्नलिखित सम्राट हुए हैं—

१. सिकंदर लोदी—संवत् १५४६ से १५७४ तक
२. इब्राहीम लोदी—संवत् १५७४ से १५८३ तक
३. बाबर—संवत् १५८३ से १५८७ तक

४. हुमायूँ—संवत् १५८७ से १५९६ तक
५. शेरशाह सूरी—संवत् १५९६ से १६०२ तक
६. इस्लाम शाह—संवत् १६०२ से १६०९ तक
७. मुहम्मद आदिल शाह } संवत् १६०९ से १६१२ तक
८. तथा सिकंदर शाह
९. हुमायूँ (फिर से लगभग छः माह)—संवत् १६१२ से १६१२
१०. अकबर—संवत् १६१२ से १६६२ तक
११. जहाँगीर—संवत् १६६२ से १६८४ तक

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में सिकंदर लोदी के शासन काल (संवत् १५४६ से १५७४) में ब्रज भूमि की पूरी तरह बर्बादी हुई थी, किंतु उस दुर्घटना का काल संवत् १५५७ है, जब कि व्यास जी का जन्म भी नहीं हुआ था। उसके बाद इब्राहीम लोदी के काल से लेकर हुमायूँ के समय (संवत् १६१२) तक मुगल भारत पर अपना शासन स्थापित कर उसे दृढ़ करने में लगे रहे। उस काल में व्यास जी की अवस्था ४६ वर्ष से अधिक न हुई थी तथा आलोच्य पद में कथित परिस्थिति का कोई प्रसिद्ध उल्लेख इतिहास में नहीं पाया जाता है, अतएव संवत् १६१२ के पश्चात् की ऐतिहासिक घटनाओं पर ही सूक्ष्मता से विचार करना शेष रह जाता है। कहना न होगा कि व्यास जी ओरछा से अंतिम बार संवत् १६१२ में ही वृंदावन आये थे और तब से उन्होंने वृंदावन को नहीं छोड़ा था।

संवत् १६१२ में अकबर का राजत्व-काल आरंभ होता है, जो धार्मिक सहिष्णुता के लिए प्रसिद्ध रहा है। उसके राजत्व काल में ऐसी कोई घटना नहीं मिलती, जिसमें 'मथुरा का खुदना और वृंदावन का कटना' वाले कथन का मिलान किया जा सके। किंतु 'वर्षा मंद होने' का उल्लेख और अनावृष्टि के फल स्वरूप जनता को अनेक प्रकार के कष्टों का प्रामाणिक इतिहास उस समय का उपलब्ध है* ।

* The district (Muttra) was in early days extremely sensitive to the effects of drought, especially in the cis-Jumna tract, and though the extention of irrigation has had the effect of securing a very large portion of it, it by no means enjoys immunity from famines. There are no records of the state of the district during the great calamities of earlier days, such as occurred in 1645, 1631 and 1601, but as in each case Delhi appears to have been a centre of distress, Mathura is certain not to have escaped.
—*Gazetteer of Muttra, Page 50*

अकबरनामा में अकबर के ४१ वें वर्ष के शासन-विवरण का जो लेख है, उसमें प्रकट किया गया है कि 'इस वर्ष वर्षा बहुत ही थोड़ी हुई और चावल का भाव बहुत ही तेज हो गया। दैवी प्रभाव प्रतिकूल हो रहे थे और ज्योतिषी दुर्भिक्ष और मँहगी की भविष्यवाणी कर रहे थे। दयालु हृदयी सम्राट ने अनुभवी अधिकारियों को दीन और कंगालों को प्रतिदिन भोजन देने के लिए सभी दिशाओं मे भेजा*।

अकबर के राजत्व-काल का ४१ वाँ वर्ष संवत् १६५३ विक्रमी था। उसी समय का विवरण 'जब्दुत्तवारीख' में निम्न प्रकार से दिया गया है—

"सन् १००४ हिजरी में समस्त भारतवर्ष भर में वर्षा का अभाव रहा†। और लगातार तीन-चार वर्षों तक एक भयंकर दुर्भिक्ष का कोप रहा। बादशाह ने आज्ञा दी कि सभी नगरों में भिक्षा बाँटी जावे और नवाब फरीद बुखारी ने, जिनको कि भिक्षा बँटने के कार्य पर नियंत्रण और व्यवस्था करने की आज्ञा दी गई थी, जनता के आम दुःख को दूर करने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न किया। राज्य की ओर से भोजन देने की व्यवस्था की गई और दीन जनों की रक्षा के लिए सेना बढ़ाई गई। उस काल की भयंकरता मे एक प्रकार की प्लेग न और भी योग दिया और पूरे घरों और नगरों को खाली कर दिया—कुटियों और ग्रामों का तो कहना ही क्या है! अन्न तथा भयंकर क्षुधा की आवश्यकताओं की कमी के फल स्वरूप मनुष्य ने जो जी में आया, खाया। सड़कें और गलियाँ लाशों से भर गई थीं और उनके हटाने में कोई सहायता नही दी जा सकती‡"।

---

* "Forty first year of the Reign of Akbar.

In this year there was little rain and the price rose high Celestial influences were unprofiteous and those learned in the stars announced dearth and scarcity. The kind hearted Emperor sent experienced Officers in every direction to supply food every day to the poor and destitute." Page 94.

History of India as told by its own Historians, Vol VI (Elliot & Dowson)

† हिजरी सन् १००४=विक्रमी संवत् १६५३

‡ History of India, as told by its own Historians
Vol. VI, Page 193 (Elliot & Dowson)

इससे यह स्पष्ट झलकने लगता है कि 'याही तें बर्षा मंद होत है, पुन्य ते पाप सवायौ' वाली पंक्ति इसी या ऐसी ही अनावृष्टि के पश्चात् की परिस्थिति की प्रतिध्वनि है। जैसा कि उक्त ऐतिहासिक वर्णनों से प्रकट है, यह अनावृष्टि की स्थिति संवत् १६५२ से लेकर लगातार ३-४ वर्षों तक अर्थात् १६५६ तक रही। इतने लंबे अकाल के पश्चात् कई वर्षों तक देश का आर्थिक स्तर गड़बड़ रहा होगा और दीनता के कारण 'बेटी बेचत संक न मानत' वाली स्थिति उत्पन्न हो गई होगी और उसका घृणित रूप उस अनावृष्टि काल के ५-७ वर्ष पश्चात् तो और भी भयंकर परिणाम प्रकट कर चुका होगा।

अतएव उक्त वृत्तांतों और परिस्थितियों से यह कहा जा सकता है कि संवत् १६५२ के पश्चात् के दश वर्षों की दुर्भिक्ष और सामाजिक पतन की दुःखद दुर्दशा से पीड़ित होकर ही श्री व्यास जी ने संवत् १६६३ के लगभग आलोच्य पद की रचना की थी। इस साधार अनुमान की पुष्टि में "वाकयात जहाँगीर" में लिखित एक वृत्तांत बड़ा ही सहायक है। अपने शासन-काल के प्रथम वर्ष की घटनाओं के उल्लेख में जहाँगीर कहता है—

"अनुभव और बुद्धिहीनता के कारण युवकों का साथ देने वाले अज्ञान और अभिमान के वशीभूत होकर खुसरो के मस्तिष्क में उसके बुरे साथियों के प्रोत्साहन से, मेरे राज्यारोहण के प्रथम वर्ष ही में कुछ व्यर्थ के कुविचारों ने जन्म लिया।" 'जब खुसरो मथुरा पहुँचा' उसको हसन खाँ बदख्शी से भेंट हुई, जिसने मेरे पिता से सम्मान पाया था और जो काबुल से मुझसे मिलने के लिए आ रहा था। बदख्शी लोग स्वभाव से ही लड़ाकू और विद्रोही होते हैं और जब खुसरो अपने दो या तीन सौ आदमियों के सहित उनसे जा मिला, तो खुसरो ने उसे अपने आदमियों का सेनापति बना दिया। सड़क पर जो भी आदमी उन्हें मिला, उन्होंने लूटा और उससे उसका घोड़ा या सामान छीन लिया। व्यापारी और यात्री लूट लिये गये और जहाँ कहीं भी ये राजविद्रोही गये, 'वहाँ स्त्री और बालकों की कुशलता न थी।' खुसरो ने स्वयं अपनी आँखों से देखा कि एक उपजाऊ देहात को नष्ट किया और कष्ट दिया जा रहा था और उनकी दुष्टता के कारण लोग मृत्यु को हजार गुना बढ़कर मानने लगे थे।' दीन जनता के पास सिवाय उनमें सम्मिलित हो जाने के और कोई उपाय न था*।"

* Wakaiat-i-Jahangir. Page 291-293 History of India, as told by its own Historians. Vol VI (Elliot & Dowson)

पुनि व्यास-समाधी तह बनाय। इक बाग फुटक्का अब कहाय।
इक रम्य बगीची व्यासदास। वह गई जमुन में चिन्ह पास ॥५९॥
इतने श्री बृंदावन माहीं। हैं अस्थान प्रगट ये आहीं ॥
अब सुनिये मथुरा अस्थाना। मंदिर केसवदेव बखाना ॥५६॥
घाट अक्रूर दिवालौ सुंदर। बनवायौ बिरसिंह पुरंदर ॥६१॥

—लोकेन्द्र ब्रजोत्सव, पृष्ठ २१—२२

'मआसिरुल उमरा' में वीरसिंह देव बुंदेला के वृत्तांत में लिखा है—"दतिया का राजमहल इन्हीं का बनवाया है, जिसके चारों ओर ३४ फुट ऊँची दीवार दी गई है। इसके बनने में लगभग नौ वर्ष लगे थे और ३५ लाख से अधिक रुपये व्यय हुए थे* ।"

(१०) निष्कर्ष—दतिया में यह राजमहल अब भी अच्छी दशा में वर्तमान है और पुराने महल (Old place) के नाम से प्रसिद्ध है। किंतु उस विशाल भवन के किसी भी द्वार में किवाड़ नहीं लगे हैं तथा उसका एक भाग अपूर्ण है। इससे प्रकट होता है कि वीरसिंह देव की मृत्यु होते ही इस पर आगे निर्माण कार्य जारी न रहा। वीरसिंह देव का निधन संवत् १६८४ में हुआ। उस संवत् में से 'मआसिरुल उमरा' में दिया गया ९ वर्ष का निर्माण समय घटा देने पर भवन की नींव डालने का संवत् १६७५ ही निकलता है, जिससे ओरछा स्टेट गजेटियर में दी गई नींव डालने की तिथि माघ सुदी ५ संवत् १६७५ की पुष्टि प्राप्त होती है। उन ५२ भवनादिकों में जिनकी नींव एक ही समय संवत् १६७५ में डाली गई थी, 'व्यास जी की समाधि' की भी गणना है, जिसका उल्लेख 'लोकेन्द्र ब्रजोत्सव' में भी किया गया है। अतएव श्री व्यास जी का निकुंजलीला-प्रवेश माघ सुदी ५ संवत् १६७५ के पूर्व निश्चित होता है।

यह पहले ही प्रकट किया जा चुका है कि व्यास जी संवत् १६६३ के पश्चात् वर्तमान थे। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने संवत् १६६९ के आसपास, जब कि उनकी आयु १०८ वर्ष के लगभग होगी, निकुंज-लीला में प्रवेश किया।

---

* 'मआसिरुल उमरा' (फारसी) का हिंदी अनुवाद, भाग १ पृष्ठ ३६९

नरेश वीरसिंह देव द्वारा निर्मित—
(?)ावन में व्यास जी की समाधि

चतुर्थ अध्याय

व्यवहार

★

१. भक्तों का आदर—

नाभादास जी के शब्दों में व्यास जी के आराध्य 'भक्त' ही थे। उन्होंने 'भक्त इष्ट अति व्यास के' लिखा है। व्यास जी ने अपनी वाणी में भी अनेक स्थलों पर ऐसे पद लिखे हैं, जिनसे उनकी भक्तों के प्रति अपार श्रद्धा प्रकट होती है। यथा—

मेरै भक्त हैं देई देऊ।
भक्तनि जानौ, भक्तनि मानौ, निज जन मोहि बतेऊ ॥×
'व्यासदास' के प्रान जीवन-धन, हरिजन बाल-बड़ेऊ ॥ (व्या०२२)

(१) बरात के स्थान पर साधु-मंडली—भक्तमाल की भक्तिरस-बोधिनी टीका (संवत् १७६९) में श्री प्रियादास जी ने व्यास जी द्वारा साधु-संतों के सत्कार करने के कई आख्यानों को प्रकट किया है। निम्न लिखित कवित्त से ऐसे दो प्रसंग सामने आते हैं—

सुता कौ विवाह भयौ, बड़ौ उत्साह किये,
नाना पकवान सब नीके कै बनाइ हैं।
भक्तनि की सुधि करी, खरी अखरी मति,
भावना करत भोग सुखद लगाइ हैं ॥
आय गये साधू सो बुलाय कही पावो जाय,
पोटनि बँधाई चाउ कुंजनि पठाइ हैं।×

—भक्तिरस-बोधिनी टीका ३६१

व्यास जी की कन्या का विवाह था। बड़े उत्साह के साथ बरात के स्वागत की तैयारियाँ हो रही थीं। अनेक प्रकार की मिठाइयाँ तथा नमकीन व्यंजनों को बनाया गया था। उस पक्वान्न को देख-देख कर व्यास जी का हृदय लालायित हो उठा कि कहीं भक्तों को यह सब भोजन परोसा जाता तो कितना अच्छा होता! उन्होंने श्री ठाकुर जी को ज्यमनियाँ समर्पण किया ही था कि साधुओं की एक मंडली वहाँ होकर निकली। व्यास जी ने तुरंत ही उस साधु मंडली को आमंत्रित कर भोजन कराया तथा जो साधु अपने स्थान पर से न आ सके, पोटली बाँध-बाँध कर

पक्वान्न उनके निवास की कुंजों में भेज दिया। हरिभक्तों के सामने वे अपने नातेदारों के स्वागत की चिन्ता नहीं करते थे।

(२) *विनोद पूर्ण आग्रह*—संतों का सत्संग जिस प्रकार भी हो उन्हें प्राप्त करना अभीष्ट था। प्रियादास जी के उक्त कवित्त के अंतिम चरण के एक पदांश "संत संपुट में चिरिया दै हित सों बसाए हैं" में व्यास जी की विनोद भरी तबियत तथा संत-प्रेम की अनोखी कथा मिलती है। एक संत मंडली जब ब्रज से अन्यत्र जाने लगी और व्यास जी की अनेक विनय पूर्वक आग्रहों को उसने न माना, तब उन्हें एक खेल सूझा। चुपके से उन्होंने साधुओं के ठाकुर जी उठा लिये और उनके स्थान पर उसी संपुट में एक चिड़िया रख दी। ऐसा कर चुकने पर उन्होंने पुनः साधुओं से कहा कि यदि आप हमारी अनुमति के बिना जायेंगे तो आपके ठाकुर जी उड़कर के यहीं आजायेंगे। संत-मंडली को जाना तो था ही, वह चली गई। कुछ दूरी पर जब उन संतों ने स्नान करके पूजार्थ श्री ठाकुर जी के संपुट को ज्योंही खोला* कि उसमें से एक पक्षी वृंदावन की ओर उड़ गया। श्री विग्रह तो वहाँ थे ही नहीं। तब साधुओं को व्यास जी के वचन याद आये। वे वृंदावन की ओर लौट पड़े। उनके पुनः आजाने पर व्यास जी बहुत प्रसन्न हुए और उनके ठाकुर जी उन्हें देकर संतों की सेवा करने लगे।

इस घटना का वर्णन महाराज रघुराजसिंह के शब्दों में इस प्रकार है—

इक दिन साधु बहुत घर आये। सादर तिनको व्यास टिकाये॥
जान लगे, तब बोले व्यासा। ब्रज तजि करहु अनत कत बासा॥
साधु कहे रहिहैं हम नाँहीं। हमरे राम अनत अब जाहीं॥
रमे राम ब्रज महँ कह व्यासा। तदपि साधु नहि टिके अवासा॥
तब तिनको ठाकुर लै लीन्हों। संपुट महं विहंग धरि दीन्हों॥
बहुरि व्यास कह साधुन काहीं। उड़ि ऐहैं ठाकुर ब्रज माहीं॥
साधु जाय कछु दूर नहायौ। खोलत संपुट खग उड़ि आयौ॥
मुरिकें साधु मानि विस्वासा। अचल कियौ तुलसीवन बासा॥

—रामरसिकावली, पृष्ठ ७७१

---

* परंपरागत सूचना के आधार पर यह घटना भतरौंड़ पर हुई कही जाती है। भतरौंड़ वृंदावन से कुछ दूर मथुरा की ओर है।

इस प्रकार साधुओं के सत्संग से व्यास जी को प्रगाढ़ प्रेम था हरि विमुखों से वे दूर भागते थे यदि कहीं उनका संग ऐसे लोगों से पड़ गया तो उन्हें बड़ा दुःख होता था। भगवान् से उन्होंने नम्रतापूर्वक यह प्रार्थना भी की कि उनको हरि-विमुखों को न देखना पड़े—

जो दुख होत बिमुख घर आयें।
ज्यौं कारौ लागै कारी निसि, कोटिक बीछू खायें॥×
वाके दरसन परम मिलत ही, कहत 'व्यास' यो नायें॥ (व्या० १४६)

जैसे हरि-विमुखों से उन्हें दुःख होता था, वैसे ही भक्तों का स्वागत करने में व्यास जी को अपार सुख प्राप्त होता था। वे साधु-मिलन के सामने विश्व की सारी संपत्ति को तुच्छ मानते थे। उनके हृदयोद्‌गार इस बात को प्रकट करने के लिए हमें उपलब्ध हैं—

जो सुख होत भक्त घर आयें।
सो सुख होत नहीं बहु संपति, बाँझहि बेटा जायें॥×
सो सुख होत न रंच 'व्यास' कों, लंक-सुमेरहि पायें॥ (व्या० १५३)

(३) *पंक्ति-भेद का संदेह*—एक दिन संतों की पंक्ति में बैठे हुए व्यास जी भी प्रसाद पा रहे थे और व्यास जी की पत्नी परोस रही थीं। दूध परोसने में दैवयोग से व्यास जी के पात्र में दूध के ऊपर की मलाई एक बारगी ही गिर पड़ी। व्यास जी ने उसे अपनी स्त्री द्वारा पंक्ति-भेद माना और उन्हें साधु-सेवा से अलग कर दिया। संतों ने व्यास जी से उनकी निर्दोषता प्रकट की। उनकी पत्नी ने भी अनेक अनुनय-विनय की और कहा कि मैं किस प्रकार आप को विश्वास दिला सकती हूँ कि यह मलाई मैंने जान बूझ कर आप को नहीं परोसी है। व्यास जी ने विचार किया कि स्त्रियों को आभूषण बहुत प्रिय होते हैं। इससे परीक्षा लेने के लिए उन्होंने कहा कि यदि तुम अपने समस्त आभूषणों को बेचकर साधुओं का भंडारा कर दो तो मुझे विश्वास हो। उन्होंने तुरंत ही वैसा कर दिया। तब व्यास जी ने उन्हें साधु-सेवा करने का अवसर दिया। भक्तमाल के टीकाकार श्री प्रियादास जी ने इस घटना का वर्णन निम्न लिखित कवित्त द्वारा किया है—

संत सुख दैन बैठे संग ही प्रसाद लैन,
परोसत तिया सब भाँतिन प्रवीन है।
दूध बरताइ लै मलाई छिटकाई निज,
खीज उठे जान पति पोषत नवीन है॥

सवा सों छुड़ाइ दई, अति अनमनी भई,
गई भूख, बीत दिन तीन, तन छीन है।
सब समुझावें तव दंड कों मनावें,
अंग-आभरन बेंचि साधु जेंवौ यों अधीन है ॥

—भक्तिरस-बोधिनी टीका ३६०

(४) *आतिथ्य की परीक्षा*—अब व्यास जी की भक्तों के प्रति निष्ठा की कीर्ति फैलने लगी। एक महंत व्यास जी की परीक्षा लेने के विचार से उनके पास गया। संतों की एक भीड़ भी उसके पीछे हो ली। महंत ने व्यास जी से कहा—'मैं बहुत भूखा हूँ'। उस समय व्यास जी ठाकुर जी को प्रसाद अर्पण न कर पाये थे। अतएव उन्होंने उक्त अतिथि महंत से थोड़ा धैर्य धारण करने के लिए प्रार्थना की। महंत जी इसे कब स्वीकार करने वाले थे! चट ही वे व्यास जी को बुरा-भला कहने लगे। किंतु व्यास जी संतों की गालियों का भी आदर करते थे†। महंत के व्यवहार पर ध्यान न देते हुए श्री ठाकुर जी को जल्दी ही अमनियाँ अर्पण कर व्यास जी ने एक पत्तल परोस कर उन अतिथि महंत के सामने रखी और प्रसाद पाने की प्रार्थना की। थोड़ा सा ही खाकर महंत जी ने बचे हुए प्रसाद सहित वह जूठी पत्तल वहीं छोड़ दी और यह कह कर उठ गये कि 'इतनी देर में तो मेरी भूख भी मर गई तथा पेट में दर्द होने लगा।' प्रसाद को व्यास जी ने चुपचाप समेट कर पुनः मस्तक से लगाया और पत्तल में लगे हुए एक-एक कण को निकाल-निकाल कर वे प्रसन्न होकर खाने लगे*। व्यास जी की प्रसाद में इतनी श्रद्धा और भक्ति देख कर परीक्षक महंत गद्गद् हो गये और उनके नेत्रों में आँसू भर आये। इस घटना का वर्णन प्रियादास जी ने इस प्रकार किया है—

गयौ भक्त इष्ट अति सुनिकै महंत एक,
लेन कों परीच्छा आयौ संग संत-भीर है।
भूख कों जतावै, बानी व्यास कों सुनावै,
सुन कही भोग आवै, इहाँ मानों हरिधीर है ॥

---

† 'व्यास' बड़ाई और की, मेरे मन धिक्कार।
संतन की गारी भली, यह मेरौ शृंगार ॥

* ऐसै ही बसियै ब्रज-बीथिनि।
साधुन के पनवारे चुन-चुन, उदर पोषियत सीथिनि ॥ (व्या० १८)

तब न प्रमान करी, संक धरी लै प्रसाद,
ग्रास दोइ-चार उठे, मानों भई पीर है ।
पातरि समेंटि लई, सीत करि मोकों दई,
पावो तुम और, पाव लिए दृग नीर है ॥

—भक्तिरस-बोधिनी २६३

भगवान के भक्तों की जूठन और साधुओं की चरण-रज में अपना प्रगाढ़ प्रेम रखने वाले व्यास जी जाति-पाँति के बंधन को न मान कर भक्ति का आसन बहुत ऊँचा मानने वाले थे । उन्होंने अपनी साखी में कहा है—

'व्यास' कुलीननि कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस ।
स्वपच भक्त की पानहीं, तुलै न तिनकौ सीस ॥

५. प्रसाद की पकौरी—

श्री महाप्रसाद की स्तुति में व्यास जी के रचे हुए निम्नलिखित पद प्राप्त होते हैं—

हमारी जीव नमूरि प्रसाद ।
अतुलित महिमा कहत भागवत, मेटत सब प्रतिवाद ॥ (व्या० २६)

अथवा—*हरि प्रसाद क्यों लेत नारकी ।*
ब्याह-सराध अधम जहँ जूठनि, खात फिरत संसार की ॥ (व्या० ३०)

इन विचारों के अनुसार व्यास जी की 'प्रसाद' में पूरी श्रद्धा थी । पतितों को पावन करने वाले प्रसाद में वे छूतछात का भाव नहीं रखते थे और न भक्ति मे जाति-पाँति का बंधन ही उन्हें स्वीकार था । उनकी साखी में भक्ति के लिए इस प्रकार के उपदेश भरे पड़े हैं—

स्वान प्रसादहि छ्वी गयौ, कौवा गयौ बिटारि ।
दोऊ पावन 'व्यास' के, कह भागौत बिचारि ॥
'व्यास' जाति तजि भक्ति करि, कहत भागवत टेरि ।
जातिहि भक्तिहि ना बनै, ज्यों केरा ढिग वेरि ॥

उपदेश कहने और सुनने में बड़े सुंदर होते हैं,परंतु उन पर चलने वाले बिरले ही महात्मा हो सकते हैं । व्यास जी कोरे उपदेश कथन को ही काम का न मान कर उस पर अनुसरण करने को सार तत्व समझते थे । उन्होंने लिखा है—

'व्यास' न कथनी काम की, करनी हूँ इक सार ।
भक्ति बिना पंडित वृथा, ज्यों खर चंदन भार ॥

परंतु यह भी तो उपदेश ही था। गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में भी 'पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥' एक जनश्रुति के अनुसार व्यास जी की उपदेश और कर्म में समानता की परीक्षा ली जाना प्रचलित है। किंवदंती इस प्रकार है कि वृंदावन में किसी देव-मंदिर से ठाकुर जी का प्रसाद एवं संतों का जूठन लिये एक भंगिन आ रही थी। व्यास जी की प्रसाद में ऐसी अचल निष्ठा थी कि एकादशी के व्रत में भी जब कभी उन्हें प्रसाद मिलता, वे उसको आदर भाव से तभी पा जाते थे। अतएव भंगिन के हाथ से प्रसाद की एक पकौड़ी लेने का प्रस्ताव व्यास जी से किया गया। उन्हें इसमें तनिक भी संकोच न था। यह कार्य उनकी विचार धारा के सर्वथा अनुकूल था। उन्होंने महाप्रसाद को बड़े प्रेम से पा लिया।

यद्यपि व्यास जी से संबंधित बहुत सी कथाएँ उन्होंने लिखी हैं, तथापि उक्त घटना का वर्णन भक्तमाल के प्रसिद्ध टीकाकार प्रियादास जी ने नहीं किया। फिर भी इस प्रकार की कोई घटना घटित होने की प्रबल संभावना है, क्यों कि व्यास-वाणी में ऐसे कथन बहुत मिलते हैं—

'व्यासहि' बामन जिन गनो, हरि-भक्तन कौ दास ।
राधावल्लभ कारनें, सह्यौ जगत-उपहास ॥
मुहरें-सेवा अनत की, मिथ्या भोग बिलास ।
वृंदावन के स्वपच की, जूठनि खैये 'व्यास' ॥
'व्यास' रसिक जन ने बड़े, भज तजि अनत न जाँय ।
वृंदावन के स्वपच लौं, जूठनि माँगें खाँय ॥

जनश्रुति के आधार पर लिखी गई उक्त घटना न्यूनाधिक हेरफेर के साथ 'श्री लोकेन्द्र ब्रजोत्सव' तथा 'वृंदावन कथा' (बंगला पृष्ठ १४०) आदि में दिये गये व्यास जी के चरित्रों में भी वर्णित है‡।

---

‡ ...And in a short space of time conceived such an affection for Brindaban, that he (Vyas ji) was most reluctant to leave it, even to return to his wife and children At last however he forced himself to go, but had not been with them long before he determined that they should themselves disown him, and accordingly he one day in their presence took and ate some food from a Bhangi's hand. After this act of social excommunication, he was allowed to return to Brindaban, where he spent the remainder of his life and where his samadh or tomb, is still to be seen.

—Mathura District Memoir. Page 200

भक्त ध्रुवदास जी के द्वारा व्यास जी संबंधी विचार उक्त अथवा इसी प्रकार की घटना* के आधार पर निर्धारित हुए हैं—

कहनी करनी करि गयौ, एक व्यास इहि काल ।
लोक-बेद तजि कै भजे, श्री राधा-बल्लभलाल ॥
प्रेम मगन नहि गन्यौ कछु, बरनाबरन बिचार ।
सबनि मध्य पायौ प्रगट, लै प्रसाद रस-सार ॥

—भक्त-नामावली

२. कुतर्क का प्रत्युत्तर—

'राम-रसिकावली' में व्यास जी के एक विचित्र व्यवहार का वर्णन है । एक कुतर्की व्यक्ति जो उनका सजातीय था, उनके पास आया । उसने भोजन के समय जल पीने के लिए एक चमड़े का गिलास निकाला । व्यास जी ने उसे चमड़े के पात्र में जल पीने से मना किया । इस पर उस अतिथि ने उत्तर दिया कि यह शरीर ही चमड़े का है !

व्यास जी बोले तो कुछ नहीं, किंतु इसके प्रत्युत्तर मे उन्होंने उसकी पत्तल पर जूता रख दिया ! जब वह इस व्यवहार पर क्रोध करने लगा तो व्यास जी ने पूछा कि क्या जूते का पदार्थ चमड़ा नहीं है ? अपने कुतर्कों का ऐसा उत्तर उसे पहिले कभी नहीं मिला था । वह व्यास जी को मान गया और उनकी सेवा करने लगा । सत्संग से उसमें भगवद्भक्ति का संचार हुआ और वह दृढ़ भक्त बन गया† ।

३. रास-रसिकता—

व्यास जी को राधा-कृष्ण की रास-लीला से विशेष प्रेम था । उनकी उपस्थिति से रास लीला में आनंद और भी अधिक बढ़ जाता था । लीला की आयोजना वे बड़े ही प्रेम और उत्साह से किया करते थे तथा रसिक जनों को आग्रह पूर्वक रास-दर्शन के लिए अनुरोध करना भी उनका कर्तव्य सा हो गया था‡ ।

* व्यास जी के पद 'जूठन जे न भगत की खात' में एक चरण 'स्वपच भक्त कौ माग ग्रहन हरि बॉमन ताहि डरात' से वर्णित घटना के अनुकूल संकेत मिलता है ।

† 'भक्तरस-बोधिनी' टीका के कवित्त सं० ३६१ मे 'द्विज भक्ति लै दृढाई' द्वारा इसी घटना की ओर किया गया संकेत प्रतीत होता है ।

‡ अपने गुरु स्वामी श्री हरिदास जी के नित्यधाम पधारने पर गुरु-विरह से दुखी होकर श्री विट्ठल विपुलदेव जी ने आँखो मे पट्टी बाँध ली थी, किंतु रसिक प्रवर व्यास जी के विशेष आग्रह से वे रास-दर्शन के लिए उपस्थित हुए थे ।

—कल्याण का भक्त-चरितांक, पृ० २६६–२६७

व्यास जी ने स्वयं ही अपने एक पद में लिखा है—

जहाँ न संत तहाँ न भागवत, भक्त सुसील अनंत ।
जहाँ न 'व्यास' तहाँ न रास-रस, वृंदावन कौ मंत ॥

इससे यह प्रकट होता है कि व्यास जी वृंदावन के रसिकों के इस मत से भली भाँति विज्ञ थे कि बिना उनके रास-लीला में आनंद नहीं आता ।

रास-लीला से संबंधित व्यास जी की एक कथा बहुत ही प्रसिद्ध है और उसकी प्रमाणिकता का साक्ष्य भी उनके समकालीन श्री नाभादास जी देते हैं। शरत्पूर्णिमा की चाँदनी रात में रास-क्रीड़ा में नृत्य करती हुई रासेश्वरी श्री राधिका जी का नूपुर टूट गया। नूपुर की मनमोहिनी ध्वनि में सहसा विक्षेप पड़ने से रंग में भंग होने को ही था कि व्यास जी ने तुरंत ही अपना जनेऊ तोड़ कर नूपुर को बाँध दिया* । उन्होंने यह भी कहा कि जिस जनेऊ के भार को उन्होंने जीवन पर्यंत वहन किया है, उसकी सार्थकता आज सिद्ध हुई !

नाभादास जी ने इस घटना को स्पष्ट रूप से भक्तमाल में लिखा है-

नौगुनौ तोरि नूपुर गुह्यौ, महत सभा मधि रास के ।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के ॥

भक्तमाल के टीकाकार श्री प्रियादास जी ने इसकी व्याख्या में लिखा है—

सरद-उज्यारी रास रच्यौ पिय-प्यारी,
तामैं रंग चढ़यौ भारी, कैसे कहिकै सुनाइये ।
प्रिया अति गति लई, बीजुरी सी कौंध गई,
चकचौंधी भई, छबि मंडल में छाइये ॥

---

* रीवा-नरेश श्री रघुराजसिंह जी ने इस घटना का वर्णन चमत्कार पूर्ण रूप से किया है—

इक दिन व्यास करत रह ध्याना । रच्यौ भावना रास महाना ॥
नृत्य करत वृषभान-दुलारी । लिय गत छिन-छिन प्रभा पसारी ॥
नूपुर घुँघरू टूटि गयो जब । व्यास जनेऊ तुरि बाँध्यौ तब ॥
सोइ प्रतच्छ राधा चरन, बँध्यौ जनेऊ ताग ।
देखत में ब्रज लोग सब, गने व्यास बड़ भाग ॥

—'राम-रसिकावली' पृष्ठ ७७१

नूपुर सो टूट छूटि परयौ अनरयौ मन,
तोरिकै जनेऊ करयौ वाही भाँति भाइयै ।
सकल समाज में यों कह्यौ आजु काम आयौ,
ढोयौ है जनम, ताकी बात जिय आइयै ॥२६२॥

यज्ञोपवीत से अधिक महत्व देते थे वे माला को† । व्यास जी ने रास-पंचाध्यायी के अतिरिक्त अन्य कितने ही पदों में रास का सुंदर वर्णन किया है । दो उदाहरण लीजिये—

बन्यौ बन आजु कौ रस रास ।
स्यामा-स्यामहिं नाँचत-गावति, बाढ़यौ बिबिध बिलास ॥ (६२७)

अथवा—

सुघर राधिका प्रवीन बीना, बर रास रच्यौ,
स्याम संग वर सुघंग तरनि-तनया तीरे ।×
गावति अति रंग रह्यौ, मोपै नहि जात कह्यौ,
'व्यास' रस-प्रवाह बह्यौ, निरखि नैन सीरे ॥ (४७२)

---

† गोत गुपाल, जनेऊ माला, सिखा सिखंडि, हरिमंदिर भाल ॥

पंचम अध्याय

चमत्कार

★

लगभग सभी संतों के जीवन-चरित्र में कुछ न कुछ अलौकिक घटनाओं का समावेश पाया जाता है। उनके चरित्र अलौकिक घटनाओं से पूर्ण तो रहे ही हैं, किंतु विभिन्न रुचियों द्वारा उनके वर्णन और कथोपकथन एवं काल की गति के प्रभाव से उनमें चमत्कार की न्यूनाधिकता भी होती रही है।

इस प्रकार की कुछ घटनाओं की एक सीमा तक समीक्षा कर जहाँ उनसे किसी ऐतिहासिक तथ्य का समर्थन हुआ है, उन्हें यथा स्थान प्रकट किया गया है। यहाँ उन कतिपय घटनाओं का उल्लेख किया जा रहा है, जिनका अन्य प्रसंगों में समावेश नहीं हुआ है।

१. व्याधि निवारण—

'गुरु-शिष्य-वंशावली' में लिखा है कि जगन्नाथपुरी जाते हुए व्यास जी को मार्ग में ओरछे से आया हुआ उमेद नामक खिदमतगार मिला, जो कुष्ट रोग से पीड़ित होने के कारण गंगा जी में अपना शरीर अर्पण करने जा रहा था। उन्होंने दया पूर्वक उसे श्री वृंदावन की रज दी, जिससे उसका शरीर तत्काल स्वस्थ हो गया। खिद्‌मतगार ने व्यास जी से वहीं ठहरे रहने की प्रार्थना की, जिससे वह जा कर महाराजा रुद्रप्रताप को वहाँ उनकी शरण में ला सके। आदि, आदि।

राजा रुद्रप्रताप की मृत्यु संवत् १५८७ में ही हो चुकी थी और तब तक व्यास जी के वृंदावन जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। उस समय व्यास जी का ध्यान भक्ति और वृंदावन की रज की अपेक्षा शास्त्रार्थ की ओर अधिक था। अतएव यह घटना इतिहास विरुद्ध है, फलतः कल्पित प्रतीत होती है।

२. स्वर्ण पुष्प—

शरद की निर्मल रजनी में वेत्रवती के तट पर व्यास जी ने ओरछा में रासोत्सव की योजना की। व्यास जी के प्रिय शिष्य ओरछा नरेश महाराजा मधुकर शाह भी उस उत्सव में भाग ले रहे थे। रसिक-शिरोमणि व्यास जी आनंद में नृत्य कर रहे थे। साथ ही प्रेम विभोर भक्त मधुकर शाह भी नाँचने लगे। उत्सव की अलौकिकता देखकर

आकाश से सुमन-वृष्टि होने लगी। पुष्प भूमि पर पड़ते ही स्वर्ण के हो गये$। ओरछा निवासी तथा बुंदेलखंड के भक्त चरित्र प्रेमी, वंश-परंपरा से यह कथा सुनाते आते हैं। 'गुरु शिष्य वंशावली' में भी इस घटना का वर्णन है। वेत्रवती (वेतवा नदी) का वह तट जहाँ वे स्वर्ण पुष्प बरसे कहे जाते हैं, उसी घटना के फल स्वरूप कंचना घाट के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि ओरछा की गद्दी पर राज्याभिषेक के समय महाराजाओं को उन पुष्पों के दर्शन कराये जाते हैं।

रीवा निवासी एवं ओरछा के राजकवि मुंशी रामाधीन खरे ने संवत् १९९२ में ओरछा नरेश को समर्पित 'ओरछा के राजा राम' नामक एक अप्रकाशित खंड काव्य में इस रासोत्सव की तिथि एकादशी प्रकट की है। आगे वे उत्सव की अलौकिक छटा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मँड्यौ रास-मंडल अखंड गुरु-मंदिर में,
तान-राग नीके अति लौने लगे लहरान।
गुरु अरु भूपति के दंपति मँझार हरि,
ठाने रास कौतुक समीर लागे हहरान॥
बजे लागे बीना-बेनु आपही अनूप स्वर,
मधुर अवाज तें मृदंग लागो घहरान।
धीर लागे जोहन, समीर लागे मोहन,
सरीर लागे सोहन, सुचीर लागे फहरान॥
मचौ रास सुखधाम, बृंदावन वह थल भयौ।
तब सुर बृंद ललाम, स्वर्ण सुमन बर्षन लगे॥

३. शालग्राम का श्री विग्रह रूप—

एक महात्मा बृंदावन मे शालग्राम की सेवा करते थे। वहाँ जब झूलों का उत्सव हुआ तो सभी मंदिरों में ठाकुर जी का समयोचित शृंगार हुआ और वे झूला में पधराये गये। श्री शालग्राम जी का भी झूला सजाया गया। दर्शन करते हुए व्यास जी उस मंदिर में पहुँचे, जहाँ श्री शालग्राम जी झूलों में विराजमान थे। अन्य मंदिरों में वे दर्शनों के अनुरूप छवि का वर्णन करने वाले पदों को गा-गाकर सुनाते आ रहे थे। यहाँ भी उनसे श्री शालग्राम जी की उस छवि का वर्णन करने को कहा गया। व्यास जी ने तुरंत ही यह पद सुनाया—

$ इक दिन व्यास दिवाले मैं, निसि करी नृत्य सह राजा।
बरसे पुष्प सुवर्ण सुनभ तें, मन भौ अति सुख-साजा॥
—लोकेन्द्र व्रजोत्सव, पृष्ठ १५.

फूले मेर गडकी-नंदन ।
मानहु भटा कढ़ी में बोरे, अंग लगाए चंदन ॥
हाथ न पाँइ, नैंन नहि नासा, ध्यान करत कछु होत अनंद न ।
जालंधर अरु वृंदा वल्लभ, गावै 'व्यास' कहा कहि वंदन ॥ (२६१)

इस व्यंगात्मक रूप-वर्णन से उपस्थित रसिक मंडली को उस समय जो हँसी आई, किंतु सबको तब आश्चर्य हुआ, जब प्रातः उत्थापन के समय श्री शालग्राम के स्थान पर आनंदकंद श्री कृष्ण-चंद्र जी की मूर्ति पाई गई।

उक्त कथा मैंने अपने पिता जी से सुनी थी। ऐसी ही एक किंवदंती श्री गोपाल भट्ट जी के पूज्य देव श्री राधारमण जी के विषय में इस प्रकार प्रचलित है कि एक समय कोई सेठ बहुत से उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण इनके लिए लाया, पर जब दर्शन किये तो एक बाबा जी के शालग्राम मात्र देखे। उसको बड़ा संताप हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल जब उत्थापन हुआ, तब यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि श्री शालग्राम जी श्री विग्रह रूप में विराजमान है‡।

४. श्री युगलकिशोर जी का प्राकट्य—

'गुरु-शिष्य-वंशावली' में लिखा है कि व्यास जी को एक स्वप्न हुआ, जिसके आधार पर सेवाकुंज के समीप १४ हाथ गहरे में से श्री युगलकिशोर जी की मूर्ति का प्रादुर्भाव हुआ। किंवदंतियों के अनुसार भी किशोरकूप से, जो व्यास जी की समाधि के सामने व्यास घेरे में अब भी वर्तमान है, श्री युगलकिशोर की मूर्ति के प्राकट्य की कथा प्रचलित है। जहाँ भक्त-चरित्र लिखे गये हैं, वहाँ श्री युगलकिशोर जी की पूजा में घटित अलौकिक घटनाओं के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं†।

‡ 'ब्रज की झाँकी' (गीताप्रेस) पृष्ठ ६४

† आजकल यह श्री युगलकिशोर जी पन्ना में पूजित हो रहे हैं। इनकी बीसवीं शताब्दी की अलौकिक घटनाएँ भी यहाँ सुनी जाती हैं। पन्ना से १० मील दूर स्थित बरायछ ग्राम के बाबा हिम्मतदास प्रतिदिन युगलकिशोर जी के दर्शन करने आते थे। बाबा जी की झांझ छीन लेने से चोरों का यकायक अंधा हो जाना, कीर्तन से मंदिर के कपाट अपने आप खुलना तथा बाबा हिम्मतदास का वेश धारण कर श्री युगलकिशोर जी द्वारा हिसाब चुकाना आदि प्रचलित अलौकिक कथाएं बीसवीं शताब्दी की हैं।

—'कल्याण', भक्त-चरितांक, पृष्ठ ५६१

५. मूर्ति का स्वयं पगड़ी बाँधना—

एक समय व्यास जी श्री युगलकिशोर जी को जरकसी पगड़ी बाँधना चाहते थे, किंतु वह श्री ठाकुर जी के चिकने मस्तक पर से बार-बार फिसल जाती थी। कई बार बाँधने पर जब वह उनकी रुचि की न बँध सकी, तो यह कह कर कि "या तो मुझ से बँधवा लो, या आप ही बाँध लो" पगड़ी रख कर व्यास जी मंदिर के बाहर कुंज में चले गये। थोड़ी देर में जब उन्हें पुनः पगड़ी की याद आई तो वे वापिस मंदिर में शीघ्र ही आये। वहाँ पगड़ी को बड़ी सुंदरता से बँधी हुई देख कर श्री ठाकुर जी को ताना देकर कहने लगे कि "ठीक है, मेरी बँधी काहे को पसंद आने लगी* ?"

६. वंशी धारण—

इसी प्रकार की एक दूसरी घटना प्रचलित है कि एक समय वे श्री ठाकुर जी को स्वर्ण की वंशी धारण करा रहे थे। वह वंशी कुछ मोटी थी, इससे श्री विग्रह की अँगुली कुछ छिल गई और रुधिर बहने लगा। व्यास जी ने वंशी को पृथ्वी पर एक ओर पटक कर प्रभु की अंगुली में जल से भिगोकर एक कपड़ा बाँध दिया। दिन भर कुछ न खाया पिया और बड़ा पश्चात्ताप करते रहे। सायंकाल प्रभु ने अपने आप वंशी धारण कर ली, जिसे देख कर व्यास जी अत्यंत आनंदित हुए†। तब से वह वस्त्र आज भी श्री युगलकिशोर जी अंगुली में बाँधे रहते हैं।

---

* चोरा जरकसी, सीस चिकनौं खिसिल जाय,
लेहु जू बँधाय नहिं आप बाँध लीजियै।
गये उठि कुंज, सुधि आई सुख पुंज,
आइ देख्यौ बँध्यौ मंजु, कहि कैसै मोपै रीझियै॥
—भक्तिरस-बोधिनी टीका, २५६

† 'भक्तिरस-बोधिनी टीका के कवित्त संख्या २६१ मे इस घटना का संकेत 'बैसी पहिराई' पदांश द्वारा किया गया है। 'राम-रसिकावली' पृष्ठ ७७० में इस घटना के वर्णन में वंशी का पतला होना तथा बार-बार खिसल जाने के कारण व्यास जी द्वारा उसे धारण न कराने पर स्वयम् ही प्रभु द्वारा धारण कर लेने का उल्लेख है।

निकुंज-सेवा में अनुपस्थिति—

'गुरु शिष्य वंशावली' में लिखा है कि जब बादशाह ने दिल्ली में व्यास जी द्वारा रचित 'व्यास महलन लिऍं पीकदानी'‡ वाला पद सुना, तो उसके हृदय मे व्यास जी से मिलने की भावना उत्पन्न हुई। समय पाकर वह वृंदावन आया और व्यास जी से ही उसने उक्त पद पुनः सुनने के पश्चात् भगवत-वार्ता में सारी रात बिता दी। भगवान् के गुणानुवाद कथन में व्यास जी को भी समय का भान न रहा। प्रातःकाल होते समय बादशाह ने व्यास जी से पूछा कि आज महलों में पीकदानी किसने ली होगी ?

सुनते ही व्यास जी सेवाकुंज की ओर भागे। वहाँ देखा गया कि पानों का उगाल यत्र-तत्र पृथ्वी पर पड़ा हुआ है! तब बादशाह अत्यंत लज्जित हुआ और उसने लाखों रुपया व्यास जी को भेंट करना चाहा, किंतु उन्होंने उस भेंट को अस्वीकार कर यह कहा कि यदि देना ही है तो जो मैं चाहता हूँ वह दो। बादशाह ने कहा कि आप आज्ञा तो करें। तब व्यास जी ने कहा कि मै यही चाहता हूँ कि अब हमसे आप कभी न मिलना।

बादशाह ने व्यास जी को अपने कारण क्षुब्ध जान उनसे क्षमा-याचना की और आग्रह करके वहाँ की लगभग ४० बीघा भूमि रास-विलास के लिए घेरा बनाने के निमित्त भेंट की*।

---

‡ नव कुँवर चक्र-चूड़ा-नृपति-मनि साँवरौ,
राधिका तरुनि - मनि पट्टरानी।
पल न बिछुरत दोऊ, जात नहिं तहाँ कोऊ,
'व्यास' महलन लिएँ पीकदानी॥ (व्या. ७५)

* वृंदावन में व्यास घेरा प्रसिद्ध मुहल्ला और स्थान है।

षष्ठ अध्याय

संप्रदाय

★

१. वैष्णव दर्शन और भक्ति—

(१) चार संप्रदाय—विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी में परंपरागत चार वैष्णव संप्रदाय प्रचलित थे —१. श्री रामानुजाचार्य का श्री संप्रदाय, २. श्री विष्णुस्वामी का रुद्र संप्रदाय, ३. श्री निंबार्काचार्य का सनकादि संप्रदाय और, ४. श्री मध्वाचार्य का ब्रह्म संप्रदाय। आचार्यों ने इन संप्रदायों के दार्शनिक स्वरूपों का संस्कृत में विवेचन कर अपने-अपने वेदांत वादों को प्रतिष्ठित किया था। युग की आवश्यकता और साधारण जनता में संस्कृत भाषा का ज्ञानाभाव देखकर यह आवश्यक हो चला था कि लोकभाषा में सांप्रदायिक साहित्य का सृजन कर तथा शुष्क वेदांतवाद के पचड़ों और विवादों को हटाकर सगुण मार्ग की सरल उपासना में उनके सिद्धांतों को केन्द्रित किया जावे। किंतु जहाँ विद्वान् आचार्य इन आवश्यकताओं का अनुभव करते थे, वहाँ संस्कृत भाषा का मोह छोड़ना भी अनेक कारणों से कठिन था। परंतु राजनैतिक परिस्थितियों ने उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य कर दिया। इस्लाम तथा अन्य विधर्मों के प्रभाव से वैष्णवधर्म की रक्षा करने के लिए तत्कालीन आचार्यों ने प्रचलित संप्रदायों का न केवल लोकभाषा के माध्यम से प्रचार किया, बल्कि परिस्थिति और जन-समुदाय की भावनाओं की अनुकूलता को लेकर प्राचीन मान्यताओं को नए रूप में उपस्थित भी किया। इस जीर्णोद्धार में नवीन संप्रदायों के आविर्भाव की छटा दिखलाई पड़ती है।

स्वामी शंकराचार्य ने अपने अद्वैत दर्शन को प्रस्थानत्रयी के भाष्य से समर्थित किया था और तब से नवीन संप्रदायों के प्रतिष्ठापकों में अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और गीता के आधार पर ही करने की रीति चल पड़ी। जिन धार्मिक संप्रदायों को उक्त प्रकार का आधार नहीं मिला, उन्हें 'पंथ' संज्ञा दी गई।

श्री रामानुजाचार्य के श्री संप्रदाय में लोकाभिरुचि के अनुकूल कुछ उदार तत्वों का समावेश कर श्री रामानंद जी ने राम की साकार उपासना का प्रचार किया। इसी प्रकार १६ वीं शताब्दी में श्री वल्लभाचार्य ने विष्णुस्वामी के संप्रदाय में अपनी मौलिक उपासना-पद्धति का समावेश

कर वल्लभ संप्रदाय के नाम से उनका जीर्णोद्धार किया। यद्यपि इन दोनों संप्रदायों के परवर्ती आचार्यों ने हिंदी भाषा को प्रचार का माध्यम स्वीकार कर उसमें भी कुछ रचनाएँ प्रस्तुत कीं, किंतु उनके शिष्यों द्वारा सांप्रदायिक भावनाएँ काव्य के रूप में प्रकट होकर उनके कार्य में अधिक सहायक हुईं।

श्री हित हरिवंश जी द्वारा निकुंज-बिहार-लीला-रस तथा राधा को प्रधानता देकर राधावल्लभीय नाम से एक नया संप्रदाय खड़ा किया गया, स्वामी हरिदास जी का भी अपना अनन्य उपासना परक राधाकृष्ण की केलि को आराध्य मानकर चलने वाला एक नवीन हरिदासी संप्रदाय प्रचलित हुआ। इन दोनों आचार्यों ने हिंदी भाषा के माध्यम द्वारा अपने सांप्रदायिक सिद्धांतों को व्यक्त किया। श्री चैतन्य महाप्रभु श्री मध्व के अनुयायी थे। उनकी भक्ति-भावना के अनुकूल उपासना गौड़ीय संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुई।

उस समय विष्णु की उपासना के कितने ही मार्ग प्रचलित हो चुके थे और उन सब में माधुर्य रूप को स्थान प्राप्त था। उत्तरी भारत का वातावरण विदेशियों के आक्रमणों से अशांत रहा। इससे भगवान के अवतारों की लीलाभूमि अवध और ब्रज के उत्तरी भारत में होते हुए भी भक्ति का पोषण दक्षिण भारत में ही हुआ। बंगाल में भी भक्ति के विकास को अनुकूल परिस्थिति मिली।

२. धार्मिक नेताओं का उपकार—

आचार्यों द्वारा दार्शनिक सिद्धांतों के विवेचन शास्त्रार्थ और पंडितों के क्षेत्र में ही सीमित रह जाते थे। साधारण श्रेणी के मनुष्यों में उन सिद्धांतों को प्रतिपादित करने वाले एवं तत्कालीन सामाजिक दशा और राजनैतिक प्रभावों का सामना करने के लिए आचार्यों और महात्माओं द्वारा साधना के ऐसे उपदेश आवश्यक हुए, जो मनोवृत्ति का परिष्कार कर धार्मिक भावना को जागृत बनाये रहें। धर्म ने दार्शनिकों का सहारा पाकर जन साधारण को नैतिक पतन से बचाया और उसका स्तर ऊँचा उठाया।

जब विदेशियों के प्रभाव से जनता की मनोवृत्ति विलास प्रिय होने लगी, तो धर्म के नेताओं ने उस रसिकता को भी भगवत्प्रेम की ओर मोड़ दिया। इस प्रकार मनोवृत्ति का विपर्यय कर देने से समाज नैतिक पतन से बच गया।

(३) *भक्ति में राधा का स्थान*—श्रीमद्भागवत में माधुर्य भाव की प्रधानता है। गोपियों का श्री कृष्ण के प्रति अपूर्व प्रेम का परिचय भागवत से मिलता है, किंतु उसमें राधा का स्पष्ट नामोल्लेख नहीं है। एक स्थान पर पूर्व जन्म में कृष्ण की विशेष रूप से आराधना करने के कारण एक गोपी को कृष्ण की अधिक प्रिय होने का वर्णन है। धर्माचार्यों को श्री कृष्ण की परम प्रिया इस गोपी में 'राधा' के वर्णन का संकेत मिला। लोकगीतों तथा संस्कृत काव्यों में राधाकृष्ण की प्रेम-लीलाओं के गान होने लगे। ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का स्पष्ट रूप से वर्णन हुआ है।

निंबार्काचार्य तथा मध्वाचार्य ने दार्शनिक विवेचना के साथ वैष्णव धर्म की उपासना पद्धति में राधा को महत्वपूर्ण स्थान दिया। भक्त कवियों के सरस वर्णन ने माधुर्य भक्ति को पूर्ण रूप से विकसित किया। उन भक्त कवियों में जयदेव का एक विशिष्ट स्थान है, जिनकी न केवल मान्यताओं को ही व्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवियों ने अपनाया, वरन् उनकी अंगीकृत गीत-शैली को भी अपनी कविता में एक प्रमुख स्थान दिया।

पंद्रहवीं शताब्दी तक कृष्ण के साथ राधा की भक्ति का विकास होता हुआ माधुर्य भाव का इतना प्रचार हो चुका था कि राधाकृष्ण की प्रेम-लीला के गान भारत के सभी भागों के भक्त कवियों द्वारा गाये जाने लगे थे। कवियों की सरस उक्तियों ने भक्ति की ओर नया आकर्षण उत्पन्न किया।

सोलहवीं शताब्दी मे वल्लभाचार्य ने भी अपने संप्रदाय में बाल-कृष्ण की उपासना को प्रधान रूप से प्रतिष्ठित किया, किंतु जिन अन्य भावों से उन्होंने उपासना मान्य की, उनमें से माधुर्य को भी एक भाव बतलाया। अष्टछाप के कवियों द्वारा इस संप्रदाय का काव्य के माध्यम द्वारा भी अच्छा प्रचार हुआ। उसी समय निंबार्क मत के प्रचारक कितने ही भक्त महात्मा हुए, जिनमें श्रीभट्ट जी एवं हरिव्यासी शाखा के प्रवर्तक हरिव्यास देव जी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध संगीत-शिरोमणि स्वामी हरिदास जी भी उसी समय हुए, जिन्होंने संगीत और काव्य के माध्यम से माधुर्य भक्ति का प्रचार किया।

कृष्ण चैतन्य की भक्ति में माधुर्य और आवेग को प्रधानता दी गई है। उनके शिष्य रूप, सनातन और जीव गोस्वामी ने संस्कृत में सांप्रदायिक भक्ति ग्रंथों का प्रणयन किया और प्रबोधानंद ने वृंदावन की

रूप-माधुरी और महिमा का वर्णन कर धर्म के प्रति आकर्षण में प्रगाढ़ता की वृद्धि की। गदाधर भट्ट आदि ब्रजभाषा के कवियों ने भी हिंदी का भंडार भरा।

उसी समय हित हरिवंश जी भी वृंदावन में उपस्थित थे। उन्होंने अपने राधावल्लभीय संप्रदाय में राधा के पूर्ण विकसित रूप का निरूपण किया। उनके मतानुसार राधा की अनुकंपा से ही कृष्ण की कृपा मिलती है। अतएव उनके द्वारा राधा की भक्ति का उच्चतम विधान प्रस्तुत हुआ।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवन्नाम के जप और कीर्तन को ही जीवों के उद्धार के लिए मुख्य और सरल उपाय माना तथा राधाभाव को सबसे ऊँचा भाव बतलाया। राधाभाव से उन्होंने स्वयं प्रियतम कृष्ण को पुकारा।

(४) *भक्ति के रूप*—भक्ति के पाँच रूप माने गये हैं—

१. शांत—अपने इष्टदेव के प्रति अनुराग के अतिरिक्त संसार के सब पदार्थों से उदासीनता और वैराग्य रख कर 'शांति' भाव धारण करना।

२. दास्य—इष्टदेव को स्वामी तथा अपने को दीन-हीन समझ कर विनय पूर्वक दीनता प्रकट करते हुए उनसे 'प्रीति' करना।

३. सख्य—गोपों और कृष्ण में जो 'प्रेम' भाव था, उसी के अनुसार आराध्यदेव से संबंध रखना। जिस प्रकार सखा एक दूसरे की गोपनीय लीलाओं को जानते हैं और निस्संकोच भाव से स्वान्तः सुखाय प्रकट भी करते है, वही बात इस रूप की भक्ति में भी पाई जाती है।

४. वात्सल्य—नंद-यशोदा की तरह कृष्ण के प्रति 'स्नेह' भाव रखना।

५. माधुर्य—इस रूप में भगवद्विषयक रति का उत्कृष्ट दाम्पत्य प्रेम के अनुरूप कांत-कांता भाव रहता है। या तो भक्त राधाभाव धारण कर कृष्ण के विरह में कातर स्वर से विह्वल हो जाता है, अथवा राधा-कृष्ण के संयोग और शृंगार की ललित चेष्टाओं एवं कृष्ण-गोपियों की रासादिक क्रीड़ाओं को देखकर आनंद प्राप्त करता है, गोपियों के प्रेम का आदर्श लेकर भक्त भगवान से प्रेम करता है। इस प्रकार की भक्ति-भावना में वह प्रत्येक अवसर पर प्रियतम के निकट बना रहता है। यही रागानुगा भक्ति है। तुलसीदास जी के शब्दों में 'कामिहिं नारि पियारि जिमि, प्रिय लागो मोहिं राम' इस भाव की संक्षिप्त परिभाषा है।

(५) *भक्ति रस*—रसोत्पादक सामग्री होते हुए भी काव्यशास्त्र की परिपाटी में न जाने क्यों भक्ति को स्वतंत्र 'रस' नहीं माना गया है।

देव विषयक रति को साहित्याचार्यों ने 'भाव' संज्ञा दी है भक्ति भाव के वर्णन मुख्यतया शांत रस से संबंध रखते है, किंतु माधुर्य भक्ति मे देव विषयक 'रति' भावना स्थायी होती है, इस कारण उसके वर्णन मे शृंगार रस के अनुरूप तत्व पाये जाते है; वैसे भक्ति और शृंगार में महान् अंतर है। देव विषयक रति भाव को 'भक्ति' कहते हैं, परंतु शृंगार की व्यंजना तो कामी जनों के हृदय में ही उद्भूत हो सकती है।

२. मध्वाचार्य का ब्राह्म संप्रदाय—

(१) *द्वैतवाद और भक्ति*—व्यास जी के दीक्षा गुरु एवं पिता श्री समोखन जी शुक्ल मध्व संप्रदाय के अनुयायी कहे गये हैं†। मध्वाचार्य के पूर्णप्रज्ञ दर्शन में द्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है। उसी की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने भक्ति क्षेत्र में माधुर्य भाव की उपासना का भी उपदेश कर ब्रह्म संप्रदाय को प्रतिष्ठित किया था।

मधुर भाव से भजने वाले भक्त के लिए भगवान की लीलाएँ, शृंगार चेष्टाएँ तथा विविध विलास क्रीड़ाएँ ही गेय हैं। कृष्ण का राधा के प्रति प्रेम उद्दाम मानवीय प्रेम का प्रतीक है। किंतु मध्वाचार्य ने एक मात्र मधुर भावना ही की उपासना का उपदेश नहीं किया था। उन्होंने विष्णु को परमात्मा मान कर उनके अवतारों की पूजा और भक्ति का उपदेश भी दिया था। इन अवतारों में उन्होंने कृष्ण को विशेष स्थान दिया और उनके साथ राधा की पूजा की व्यवस्था देकर माधुर्य भाव की भक्ति का संचार किया। वे नवधा भक्ति के पोषक थे और वैराग्य को अधिक महत्व देते थे। मध्वाचार्य के पहिले निंबार्काचार्य भी राधाकृष्ण की शृंगार उपासना का आभास दे चुके थे। मानव प्रकृति में दाम्पत्य प्रेम का एक अत्यंत आकर्षक भाव है। इस कारण इस भाव की उपासना को अपने पैर जमाने में देर न लगी। सोलहवीं शताब्दी में तो कृष्णोपासक सभी संप्रदायों में शृंगार भाव की पूर्ण रूप से प्रतिष्ठा हो चुकी थी।

(२) *व्यास जी के द्वैतवादी विचार*—व्यास जी के परिचय में नाभादास जी ने जो छप्पय लिखा है, उससे यह आभास मिलता है कि

---

† श्री राधाकिशोर गोस्वामी कृत 'व्यास-वाणी' के प्राक्कथन में श्री समोखन जी को श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु-भाई श्री माधवदास जी का शिष्य लिखा गया है। उक्त 'व्यास-वाणी' में व्यास जी का जो चित्र है, उसमें उन्हें माध्वमत-मार्तंड विशेषण दिया गया है।

व्यास जी उस समुदाय के थे, जिसमें भगवान के किसी भी अवतार की आराधना की जा सकती है तथा जिसमें कोई-कोई नवधा भक्ति का पालन करते हैं, परंतु व्यास जी ने तदनुकूल वैराग्य से प्रेम किया और एक अवसर पर जनेऊ के सूत्र से नूपुर बाँध कर राग प्रेम को प्रकट कर मधुर उपासना का परिचय दिया। उन्होंने तिलक एवं माला का गौरव बढ़ाया और भक्तों को अपना इष्ट समझा। इस परिचय से हमें व्यास जी को मध्वाचार्य के ब्रह्म सम्प्रदायी होने का संकेत मिलता है। क्यों कि ये सब तत्व उस संप्रदाय के अनुकूल है। मध्वाचार्य जी द्वारा प्रचारित द्वैतवाद के दार्शनिक सिद्धांत के प्रति एवं साधना के उपदेशों के अनुकूल विचार हमें व्यास-वाणी से भी उपलब्ध होते है। यथा—

१. प्रकृति, जीव और ब्रह्म नित्य पृथक सत्ताएँ है, जो शाखा चंद्र न्याय के अनुसार भिन्न हैं। सत् जड़ प्रकृति, चित संवित् शक्ति जीव और आनंद परा शक्ति आह्लादिनी अर्थात् राधिका को बतलाया गया है—

'व्यास' जगत में रसिक जन, जैसे द्रुम पर चंद।
सत चित अरु आनंद में, भेद न जानत मंद॥

२. जीव दास है। सेव्य-सेवक भाव का निदर्शन व्यास जी के असंख्य पदों से उपलब्ध होता है। यथा—

कहत सुनत बहुत दिन बीते, भक्ति न मन में आई।
स्याम-कृपा बिनु, साधु-संग बिनु, कहि कौनैं रति पाई॥
हरि मंदिर माला धरि, गुरु करि, जीवनि के दुखदाई।
दया, दीनता, 'दास भाव' बिनु, मिलै न 'व्यास' कन्हाई॥(व्या. १७०

३. जीव का उद्धार भगवत्कृपा के आधीन है, तथा वह कर्म करने एवं फल भोगने में सर्वथा परतंत्र है—

'तृष्णा कृष्ण-कृपा बिनु सबकै।' ×
गह्यौ आसरौ बृंदावन कौ, कट्टर 'व्यास' भयौ है अबकै॥(व्या. १८०)

तथा—

कहा-कहा नहिं सहत सरीर।
स्याम-सरन बिनु, कर्म सहाइ न, जनम-मरन की पीर॥ ×
बिनु अपराध चहूँदिसि बरषत, पिसुन बचन अति तीर।
कृष्ण-कृपा कवची तें उबरें, पोच बढ़ी उर पीर॥ (व्या. ११२

४. जीव की मुक्ति ज्ञान से नहीं, केवल भगवत्प्रसाद से होती है। भक्ति भी बिना कृष्ण की कृपा के प्राप्त नहीं हो सकती—

भक्ति न जनमैं पढ़ें पढ़ायें ।
कृष्ण-कृपा विनु, साधु-संग विनु, कह कुल गाल बजायें ॥ ×
नाऊ, जाट, चमार, जुलाहे, छीपा हरि दुलरायें ।
मत्सर बाढ़्यौ भट्ट-गुसाइन, स्वामी 'व्यास' कहायें ॥ (व्या.२११)

५. वृंदावन में भक्ति का उपभोग करना ही उनके मत में अन्य मुक्तियों की अपेक्षा श्रेयस्कर है--

परम पद कहत कौन सों लोग ।
कोऊ तहाँ तें गयौ न आयौ, ऐसौ सुख-संजोग ॥
मेरे मते साधु है सोई, जहाँ भक्ति रस भोग ।
'व्यास' करत है आस तहाँ की, जहाँ न भय भव-रोग ॥ (व्या. २४८)

६. 'भोग' भोक्ता और भाग्य के विना संभव न होने से यह द्वैतवाद का बोधक है। जीव एवं ब्रह्म में साम्य-बोध भ्रम एवं अपराध है। 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि वाक्यों का अभिप्राय जीव ब्रह्मैक्य बोध में नहीं है, किंतु स्वरूप मात्र में अभेद भावना का उपदेश है। जीव की स्थिति मध्वाचार्य जी ने इस प्रकार मानी है कि 'स्वरूप' और 'बाह्य' दो उपाधियाँ हैं। मुक्ति में बाह्य उपाधि का लय हो जाता है। स्वरूप में उपाधि रहती है। यह समस्त उपाधि नष्ट हो जाय तो प्रतिबिंब की स्थिति कहाँ हो सकती है और स्वरूप नाश के लिए कोई प्रयत्न भी नहीं करता, इसलिए द्वैत में जीव प्रतिबिंब सा है--

'व्यास' चंद आकास में, जल में आभा मंद ।
जलज मंद यह कहत है, जो हम सौं यह चंद ॥

७. संसार से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है--

'व्यास' बिभूका खेत कौ, दुक्ख न काहू देय ।
जो निसंक ह्वै जाय, सो बस्तु घनेरी लेय ॥

८. भक्ति के साधनों से ही जीव मुक्त होता है--

साँची भक्ति और सब झूंठौ ।
पाई नारद स्याम-कृपा तें, ग्यान साधु कौ जूठौ ॥
जिन-जिन कौ सरि काज सँवारयौ, शृंगी रिषि सों रूठौ ।
'व्यास' सुनी कै सुनी सुकदेव, परीक्षत ऊपर तूठौ ॥ (व्या० २२४)

९. ब्रह्म सगुण, सविशेष और स्वतंत्र है—

श्री वृंदावन के राजा स्याम राधिका ताकी रानी ।
तीन पदारथ करत मजूरी, मुक्ति भरति जहँ पानी ॥
करनी धरनी करत जेवरी, घर आवत है ज्ञानी ।
जोगी, जती, तपी, सन्यासी, इन चोरी कै जानी ॥
पनिहाँ वेद पुरान मिलनियाँ कहत सुनत यह बानी ।
घर-घर प्रेम-भक्ति की महिमा, 'व्यास' सबनि पहिचानी ॥ (व्या० ७८)

१०. परम तत्व ब्रह्म भगवान विष्णु हैं। शेष समस्त देव जीव कोटि में हैं—

स्याम धन कौ नाहीं अंत ।
जाकैं कोटि रमा सी दासी, पद सेवत रति-कंत ॥
कोटि-कोटि लंका सुमेरु से, रंकनि हँसि बगसंत ।
सिव,बिरंचि, मघवा, कुबेर, जाके रोमनि के तंत ॥ (व्या० ७३)

कृष्ण उपासकों ने श्री कृष्ण को ही परम तत्व ब्रह्म माना है। उन्होंने नारायण को नित्य विहार का अंशमात्र स्वीकार किया है।

(३) *गुरु एवं पिता के इष्ट देव*—जैसा कहा जा चुका है व्यास जी ने अपने पिता समोखन शुक्ल से ही दीक्षा ली थी। 'गुरु-शिष्य-वंशावली' में समोखन शुक्ल द्वारा विंध्यवासिनी देवी की तपस्या करने का उल्लेख है, जो नितांत भ्रमपूर्ण है, क्यों कि व्यास-वाणी में ऐसे कितने ही प्रसंग हैं, जहाँ शाक्तों के प्रति व्यास जी ने अश्रद्धा ही नहीं, वरन् घृणा प्रकट की है। उनके पिता शुक्ल समोखन यदि शाक्त होते तो व्यास जी या तो शाक्तों के प्रति इस प्रकार के विचार प्रकट न करते, या फिर अपने को योग्य पिता का अयोग्य पुत्र लिख कर दीनता पूर्वक यह भाव प्रदर्शित न करते कि 'ता सतयुग में हौं कलजुग उपज्यौ, काम-क्रोध कपटी'।

'व्यास जू के वंश वर्णन' पत्र* में 'सुकल समोखन कौ इष्ट श्री नृसिंह जू' लिखा है। यह उल्लेख कदाचित् ठीक हो सकता है,क्यों कि एक तो मध्व संप्रदाय में सभी अवतारों को पूज्य माना गया है। दूसरे नाम की स्तुति का एक पद व्यास जी ने 'नरहरि' नाम से ही प्रारंभ किया है—

नरहरि गोबिंद गोपाला ।
दीनानाथ दयानिधि सुंदर, दामोदर नँदलाला ॥ (व्या० ३६)

* इस पत्र का रचना-काल संवत् १८७५ के पूर्व का प्रमाणिक होता है।

इस पद में 'नरहरि' नाम का साधारणतया कोई प्रसंग अनिवार्य नहीं है, तथा व्यास जी की निजी उपासना भी 'नरहरि' भगवान की नहीं थी।

(४) *सखी भाव के उपासकों में सम्मानता सूचक संबोधन*—इधर व्यास-वाणी में सुकल समोखन के जो उल्लेख हैं, उनके साथ इस प्रकार के वर्णन हैं, जिनसे उनकी माधुर्य भाव ही की उपासना प्रकट होती है। इस विपमता का समन्वय हम इस प्रकार कर सकते हैं कि सुकल समोखन की परंपरागत उपासना नृसिंह की रही हो और माधवदास जी के प्रभाव से उन्होंने माध्व मतानुकूल माधुर्य उपासना को महत्व दिया हो। व्यास जी के एक पद† से प्रकट होता है कि उनके गुरु सुकल समोखन की मृत्यु के पश्चात् व्यास जी की शंकाओं का निवारण श्री माधवदास जी ने किया था। माधवदास जी से व्यास जी की दूसरी बार भेंट हुई थी, उस समय तक व्यास जी हित हरिवंश जी और हरिदास जी से मिलकर कुंजकेलि, गुरु, हरि, नाम, वृंदावन, जमुना, महाप्रसाद आदि विषयों पर पद-रचना कर चुके थे। 'व्यास-वाणी' में वृंदावन निवास के लिए उत्कंठा सूचक पदों से प्रकट होता है कि ओरछा में रहते हुए ही उनमें वैराग्य भावना बढ़ती जा रही थी। इन पदों से यह भी सिद्ध होता है कि वे पहिले भी वृंदावन हो आये थे और वहाँ वे श्री हितहरिवंश जी तथा स्वामी श्री हरिदास जी की आराधना-रीति और सखी-भाव की उपासना-पद्धति से विशेष प्रभावित हुए थे, जिसके फलस्वरूप जब वे ओरछा से वृंदावन जाने के लिए उत्सुक हो रहे थे, तब उन्हें उक्त दोनों महात्माओं की सुधि और मिलन की भावना भी प्रबल प्रेरणा दे रही थी—

अब न और कछु करनै, रहनै है वृंदावन।
होनौ होइ सो होइ किनि, दिन-दिन आयु घटति छूटे तन॥
मिलिहैं हित ललितादिक दासी, रास में गावत सुनि मन।×
'व्यास' आस छाँड़हु सब ही की, कृपा करी राधा-नंदनंदन॥(२५८

व्यास-वाणी में ऐसे अनेकों स्थान हैं, जहाँ श्री हित जी और श्री हरिदास जी स्वामी के सखी, सहेली और दासी आदि विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। शब्दों के सामान्य अर्थ में ये विशेषण समता सूचक हैं, किंतु उपासना क्षेत्र में सख्य और दास्य भाव भक्ति के प्रधान रूप हैं। भक्त

---

† देखिये पद 'श्री माधवदास सरन मैं आयौ।'

सखी, सखा, दास या दासी बनना चाहता है, अतएव सखी, सहेली, दासी आदि शब्दों का अर्थ 'सिद्धि को प्राप्त हुए महात्मा' मान कर उनमें सम्मान प्रकट करने वाले संबोधन की भावना सन्निहित मानना चाहिये। व्यासजी जी ने स्वयं अपने पिता एवं गुरु समोखन शुक्ल को कई बार 'सहचरी' लिखा है। यथा—

श्री गुरु सुकुल सहचारी ध्याऊं, दंपति रस सुख-सारं।

तथा—

जय-जय श्री गुरु सुकल सहचरी प्रिया की।

इस कारण व्यास जी की विचारधारा के अनुसार गुरु को सखी रूपा माना गया है। तभी तो सखी भावना की दीक्षा उनसे संभव हो सकती है। अतएव हरिवंश जी और हरिदास जी को 'सखी, सहेली' विशेषण देना उनमें गुरुत्व भावना को ही प्रकट करना है। किंतु व्यास जी ने स्पष्ट रूप से 'सुकुल जी' को अनेकों स्थलों पर अपना गुरु स्वीकार किया है। इससे माधवदास, हरिवंश जी एवं हरिदास जी को उनके सद्‌गुरु ही मानना पड़ेगा।

इसमें संदेह नहीं कि माधुर्य भाव की उपासना के क्षेत्र में हित हरिवंश जी ने एक नवीन एवं सरस धारा का संचार किया। मधुर भाव की उपासना की प्रतिष्ठा तो निंबार्काचार्य और मध्वाचार्य द्वारा हुई ही थी और सखी भावना से इस भाव की ओर भक्तों की संख्या बढ़ती जा रही थी, किंतु श्री कृष्ण की कृपा के लिए राधिका जी का अनुग्रह अनिवार्य मानकर निकुंज-सेवा के अनन्य रसिक मार्ग का पथ-प्रदर्शन करने का श्रेय श्री हिताचार्य जी को है। उन्होंने महाप्रसाद को सर्वस्व बताया और विधि निषेध के सब झगड़ों को हटा कर राधाकृष्ण विहार की अनन्योपासना का एकमात्र उपदेश दिया। इस प्रकार माधुर्य भाव के विशिष्ट अनन्य पथ को उन्होंने अपने हित राधावल्लभीय संप्रदाय के नाम से प्रतिष्ठित किया। उनके सिद्धांत के अनुसार श्री कृष्ण भगवान की कृपा श्री राधिका जी की अनुकंपा के बिना असंभव है। राधाकृष्ण के निकुंज-विहार में दास्य भाव से सेवा करने के लिए सखी रूप से उपासना करना उन्हें मान्य हुआ।

३. साधना पक्ष—

(१) *जयदेव का 'गीत गोविंद'*—व्यास जी ने महाकवि जयदेव को अद्वितीय रसिक स्वीकार किया है। उन्होंने जयदेव का जन्म राधाकृष्ण की विलास-लीला का गान कर जीवों का उद्धार करने के लिए

ही हुआ माना तथा उन्हें माधुर्य उपासना के द्वारा भगवत् साक्षात्कार होना बतलाया। वृंदावन की सरस महिमा का गान करने का श्रेय सर्व प्रथम जयदेव को प्राप्त है और उन्हीं से प्राप्त कर उस मधुर रस का अन्य लोगों ने सबको आस्वादन कराया। राधा के चरणों की उपासना कर उन्होंने कृष्ण को प्रसन्न किया था एवं सब की आशा छोड़ कर श्याम-सुंदर को कुंजों में बुला लिया था। यह है व्यासजी की जयदेव के प्रति भावनाएँ, जो इस पद के द्वारा हमें उपलब्ध हैं—

श्री जयदेव से रसिक न कोई, जिन लीला रस गायौ। ×
'पतित पतत्रे'† मुख निसरत ही, राधा-माधव कौ दरसन पायौ॥
बृंदावन कौ रसमय वैभव, जिननें पहिलें सबनि सुनायौ।
ता पाछैं औरन कछु पायौ, सो रस सबनि चखायौ॥
पद्मावति चरनन कौ चारन, जिहि गोविंद रिझायौ।*
'व्यास' न आस करी काहू की, कुंजन स्याम बुलायौ॥ (६)

इन मान्यताओं को व्यास जी ने भी अपनाया था। हित हरिवंश जी के राधावल्लभीय संप्रदाय की साधना में भी जयदेव के गीत गोविंद के अंतर्गत काव्य रूप से वर्णित मान्यताओं का समावेश पाया जाता है। अतएव व्यास-वाणी में जो विचारधारा प्रकट होती है, वह राधावल्लभीय संप्रदाय में भी समान रूप से पाई जाती है।

(२) *राधावल्लभीय संप्रदाय*—व्यास-वाणी में जहाँ हमें मध्वाचार्य के द्वैतवाद के दार्शनिक तत्व मिलते हैं,वहाँ साधना क्षेत्र में श्री हित हरिवंश

---

† पतित पतत्रे विचलति पत्रे, शंकित भवदुपयानम्।
रचयति शयनं सचकित नयनं, पश्यति तव पंथानम्॥
धीर समीरे यमुना तीरे, वसति वने वनमाली।
गोपी पीन पयोधर मर्दन, चंचल कर युग शाली॥

—गीतगोविंद

व्यास जी के निम्न पद को जयदेव के उक्त गीत से प्रेरणा मिली ज्ञात होती है-
देहि सखी पियहिं प्रान कौ दान।
तू अलि चतुर उदारसिरोमनि, करत कृपनता मान॥ (व्या० वा० ५२१)

* वाग्देवता चरित चित्रित चित्त सद्मा, पद्मावती चरण चारण चक्रवर्ती।
श्री वासुदेव रस केलि कथा समेत मेतं करोति जयदेव कवि प्रबंधम्॥

—गीतगोविंद

जा की मान्यताओं के अनुकूल वर्णन भी पाये जाते हैं। साथ ही वाणी में व्यास जी ने अपने गुरु का नाम 'मुकल' लिखा है, किंतु हित हरिवंश जी के नामोल्लेख करने वाले कितने ही प्रसंगों में उन्होंने कुछ ऐसे उल्लेख किये हैं, जिनसे यह प्रकट होता है कि व्यास जी को अपनी साधना में उनसे सहायता मिली थी। यथा—

व्यासहि हित हरिवंस बताई, अपनी जीवन-मूरि।

तथा—

श्री हरिवंस-कृपा बिना, निमिष नहीं कहुँ ठौर।
'व्यासदास' की स्वामिनी, प्रगटी सब सिरमौर॥

व्यास जी ने एक दोहा में श्री हित जी के आराध्यदेव श्री राधावल्लभ जी को इष्ट, मित्र और गुरुदेव कहा, जो मध्व मतानुकूल कथन है। तथा एक दूसरे दोहा में रसिकों के द्वारा उपदेश पाने पर श्री हरिवंश जी की प्राप्ति और फिर हरिवंश जी की कृपा हो जाने पर संशय दूर होने की बात कही है*। इससे प्रकट है कि पूर्व अंगीकृत उपासना के मार्ग में की शंकाओं के समाधान उन्हें हिताचार्य जी द्वारा उपलब्ध होते थे। यह कहा जा सकता है कि अपने गुरु मुकल जी से दीक्षा लेने के उपरांत जब व्यास जी घर छोड़ कर वृंदावन चले आये, तब यहाँ उन्हें श्री हित जी के सत्संग से बड़ी सहायता मिली।

गौड़ प्रांत (बंगाल) तथा वृंदावन के केन्द्रों से प्रचारित माध्व संप्रदाय को माध्व गौड़ीय या गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय भी कहते हैं, क्यों कि इस संप्रदाय का प्रचार बंगाली महात्माओं द्वारा अधिक विस्तृत रूप से हुआ। हिंदी साहित्य के इतिहास लेखक विद्वानों का मत है कि पहिले व्यास जी गौड़ संप्रदाय के वैष्णव थे†। माध्व और गौड़ संप्रदाय लगभग पर्यायवाची होने के कारण इन विचारों की व्यास-वाणी के अंतःसाक्ष्य से पुष्टि होती है। यद्यपि श्री कृष्णचैतन्य के गौड़ीय संप्रदाय में भी माधुर्य भाव की प्रधान उपासना है, तथापि व्यासजी की माधुर्य भक्ति से उसमें सबसे महत्वपूर्ण अंतर यह है कि चैतन्य द्वारा गौड़ीय उपासना में

---

* उपदेस्यौ रसिकनि प्रथम, तब पाये हरिवंस।
जब हरिवंस कृपा करी, मिटे व्यास के संस॥

† हिंदी साहित्य का इतिहास (शुक्ल), पृष्ठ १८६ तथा
सुकवि-सरोज (गौरीशंकर द्विवेदी), पृष्ठ ५४ आदि।

आवेग की उत्कर्षता के लिए राधिका जी को परकीया भाव से माना गया है और व्यास वाणी में राधिका का स्वकीया रूप में उल्लेख हुआ है जो राधावल्लभीय पद्धति के अधिक निकट है। अब व्यास-वाणी से कुछ वे उद्धरण दिये जाते हैं, जिनमें राधिका जी को स्वकीया होने का उल्लेख स्पष्ट है—

स्यामहि उपमा दीजे काकी।
बृंदावन सौ घर है जाकौ, राधा दुलहिन ताकी ॥×
इहि रस नवधा भक्ति उबीठी, रति भागवत कथा की।
रहन कहन सब ही तें न्यारी 'व्यास' अनन्य सभा की ॥(व्या० ७६)

इस पद से यह भी प्रकट है कि उन्हें पहले नवधाभक्ति ही मान्य थी। मध्व संप्रदाय में नवधाभक्ति का उपदेश है—

रोम-रोम प्रति 'व्यासहि' कोटिक रसना होति,
तौ न बरन्यौ परै 'प्यारी कौ सुहाग'।

तथा—

राधिका मोहन की प्यारी।×
'सुभग सुहाग' प्रेम रंग राची, अँग-अँग स्याम सिंगारी ॥
'व्यास' स्वामिनी के पद-नख पर, बलि-बलि जात रसिक नर-नारी ॥(२७१)

और भी—

श्री वृषभानु-किसोरी। सुंदरि, बृंदावन की रानी जू।
चंदबदन चंपक तन गोरे, 'स्याम-घरनि' जग जानी जू ॥

व्यास जी ने राधाकृष्ण की विवाह-लीला भी एक लंबे पद में लिखी है, जिसमें नंद और वृषभानु के बीच सगाई संबंध की चर्चा से लेकर ब्याह की समस्त लौकिक और वैदिक रीतियों का उल्लेख करते हुए कंकण छोड़ने तक का पूरा वर्णन किया गया है।

व्यास जी के कृष्ण सौभाग्यवती राधिका रानी के प्रेम के आधीन रहने वाले है। उन्हें अपनी हृदयेश्वरी के अनुकूल चलना है। यदि थोड़ी सी भी असावधानी हुई और राधा रूठ गईं, तो कृष्ण को उन्हें मनाने के लिए सब कुछ करना पड़ता है। इस कार्य में उन्हें सखियों की सहायता उपलब्ध हो जाती है। ब्रह्म की तुष्टि के लिए जीव के समस्त व्यवहारों का यह साधना पथ में प्रदर्शन है।

यद्यपि कृष्णोपासना में राधा के लिए महत्वपूर्ण स्थान श्री निंबार्काचार्य और मध्वाचार्य जी प्रतिष्ठित कर चुके थे एवं जयदेव

आदि भक्त कवि 'राधा-माधव' की मधुर विहार-लीला का गान भी कर चुके थे, तथापि राधा की विशेष रूप से आराधना का प्रचार श्री हित जी ने राधावल्लभीय संप्रदाय की स्थापना द्वारा किया। उनके प्रभाव से तत्कालीन भक्त कवियों एवं उनके शिष्यों ने हिंदी साहित्य के भंडार को माधुर्यरस पूर्ण काव्य से भरा है।

निकुंजलीला की उदात्त आराधना में सख्य भाव के लिए पुरुष रूप में सर्वथा और सर्वत्र प्रवेश पाना अधिकांश सुलभ नहीं होता, इस कारण इस उपासना में सखी भाव के प्रति विशेष आकर्षण हुआ। जैसा पहिले कहा जा चुका है, व्यास जी सखी-उपासना को पहिले ही अपना चुके थे। श्री हिताचार्य जी का सत्संग पाकर वह और अधिक पुष्ट हो गई। व्यास-वाणी में ऐसे कथन प्रचुर मात्रा में है, जिनके विषय श्री राधावल्लभीय संप्रदाय के सिद्धांत के अनुसार वर्णित हुए हैं—

यह वृंदावन मेरी संपत्ति।
इह लोक, परलोक वृंदावन मेरी, पुरुषारथ, परमारथ, गथु, गति ॥
जहाँ निकुंज पुंज सुख बिहरत, राधामोहन मोहैं काम-रति।
तहाँ 'व्यास' 'बनिता भयौ चाहत' चारयौ वेद करत मत आगति ॥ (६०)

हरि का गुण-गान करते हुए त्याग और भगवत्प्रेम का रसास्वादन करने में व्यास जी ने श्रीमद्भागवत के अनुसार गोपियों की प्रेम-भक्ति का अनुसरण किया—

हरि-गुन गावत, कलिजुग मुनियनु, भयौ सबनि कौ काज।
साखि भागवत बोलत अजहूँ, काहैं करत अकाज ॥
सुक-सनकादिक जेहि रस माते, तजि संसार समाज।
सो रस 'व्यासदास' कौ जीवन, राधामोहन आज ॥ (व्या० २९८)

व्यास-वाणी में राधाकृष्ण के विहार-दर्शन के लिए सखी भाव से उपासना के संकेत कई स्थलों पर पाये जाते हैं—

१. छलबल करि हरि-राधा बिहरत, देखत 'व्यास सखी' सचुपावति।
२. यह सुख निरखि 'व्यास सखी' फूली-फूलैं अंग न मात सकल दुख जाय ॥

व्यास जी के मतानुसार लक्ष्मी और नारायण रासेश्वरी और नित्य विहारी के अंश मात्र हैं। उनके कितने ही पदों में ऐसी भावना प्रकट हुई है—

१. 'व्यास' स्वामिनी के पद-नख की कमला करत न सरी जू।
२. अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरैं, कमला निरखि लजानी जू ॥

३. धनि-धनि बृंदावन की धरनि ।
अधिक कोटि बैकुंट लोक तें, सुक-नारद मुनि बरनि ।×
ब्रह्मा मोह्यौ ग्वाल मंडली, भेद रहित आचरनि ।
राधा की छवि निरखत मोही, नारायन की घरनि ।। (व्या० ४०)
४. मोहन धुनि बैकुंठहि गई । नारायन मन प्रीति जु भई ।।
वचन कहत, कमला सुनौ ।।
कुंजबिहारी बिहरत देखि । जीवन जनम सफल करि लेखि ।।
यह सुख हम कों है कहाँ ।।
श्री बृंदावन हमते दूरि । कैसे कर उड़ि लागै धूरि ।।
रास रसिक गुन गाइ हौ ।। (व्या० ७५६)

उक्त त्रिपदियों में रामानुजीय भक्ति पद्धति के सविशेष नारायण को गौण रूप दिया गया है । व्यास जी ने राधा को संपूर्ण तत्वों का सार माना है । श्री मद्भागवत में राधा नाम का उल्लेख न होने का भी कारण उन्होंने यह बताया कि जिस राधा नाम की महिमा का पार पाने के लिए ही कृष्ण ने अनेकों लीलाएँ कीं, उस परम धन को व्यास जी ने गोपनीय ही रक्खा । वे कहते हैं—

परम धन राधा नाम-अधार ।
जाहि स्याम मुरली मे टेरत, सुमिरत बारंबार ।।
जंत्र, मंत्र अरु बेद तंत्र में, सबै तार कौ तार ।
श्री सुक प्रकट कियौ नहि याते, जानि सार कौ सार ।।
कोटिन रूप धरे नँद-नंदन, तौऊ न पायौ पार ।
'व्यासदास' अब प्रगट बखानत, डारि भार मे भार ।। (व्या० ३१)

ऐसी वैभवशालिनी राधा की कृपा पाकर व्यास जी को किसका डर था ! उन्होंने लोकाचार, विधि-निषेध और धर्म-कर्म को छोड़कर मुक्ति का भी अनादर किया । परमधन का गर्व ऐसा ही होना है—

राधिका सम नागरी प्रबीन की नबीन सखी,
रूप, गुन, सुहाग, भाग आगरी न नारि ।×
ताके बल गर्व भरे, रसिक 'व्यास' से न डरे,
लोक, वेद, कर्म, धर्म छाँड़ि मुकुति चारि ।। (व्या० ४२६)

इस प्रकार की चर्चा व्यास-वाणी में अनेकों स्थलों पर आती है, जिससे पता चलता है कि लौकिक आडंबर त्याग कर वे एक मात्र रसिक उपासना में तल्लीन हो गये थे । देखिये—

१. स्याम ! तुम्हार राज लाज तजि, 'व्यास' निगम हद् सीवा तोरी ।
२. या सुख कारन 'व्यास' आस के, लोक-बेद उपहास सहत है ।

(३) *सामंजस्य*—इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यास जी की भक्ति-पद्धति मध्वाचार्य के सिद्धांतों के अनुसार है। व्यास जी के पिता कृष्ण चैतन्य के गुरु-भाई माधवदास जी के शिष्य कहे जाते हैं। श्री कृष्ण चैतन्य मध्व संप्रदाय में ही दीक्षित हुए थे और उनके द्वारा भक्ति का प्रबल प्रचार हुआ। वे राधिका जी के अवतार माने गये। चैतन्य संप्रदायी साधुओं का नाम-स्मरण भी व्यास जी ने बड़े आदर के साथ किया है। उन्होंने रूप और सनातन की स्तुति श्रद्धा पूर्वक की है। उन दोनों भाइयों के निधन पर कहे गये उनके विरह के पद में कृष्ण चैतन्य के लिए 'करुणा-सिंधु' विशेषण का प्रयोग तथा उनके बिना अपने को अनाथ हो जाने का कथन किया गया है। उनकी कुंजकेलि की प्रधान उपासना का संकेत विरह के इस पद में भी है—

साधु—सिरोमनि रूप-सनातन ।
जिनकी भक्ति एकरस निवही, प्रति कृष्न-राधा तन ॥ ×
करुनासिंधु कृष्ण-चैतन्य की कृपा फली दुहुँ आनन ।
तिन बिनु 'व्यास' अनाथ भये, अब सेवत सूने पातन ॥ (२७)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है व्यास जी के पिता एवं गुरु माध्व संप्रदाय के अनुयायी थे। चैतन्य महाप्रभु इसी संप्रदाय के मानने वाले थे और हित हरिवंश जी के सिद्धांतों का भी इनसे विरोध नहीं था। इन दोनों ने अपनी—अपनी विशिष्ट मान्यताओं के साथ दो नये संप्रदायों की स्थापना की। मध्वाचार्य के ब्राह्म संप्रदाय के अत्यंत निकट होने के कारण, हम इन दोनों संप्रदायों के अनुयायिओं में एक अभिन्न प्रेम भाव पाते हैं। गौड़ीय संप्रदाय के तत्कालीन कितने ही अनुयायियों ने हित हरिवंश जी की महिमा का गान किया है। भगवतमुदित जी ने 'रसिक अनन्य माल' में हित जी की महिमा का वर्णन किया है। उनके इस ग्रंथ की वंदना से वे श्री कृष्ण चैतन्य के अनुयायी निर्विवाद रूपेण सिद्ध हैं।

महाप्रभु कृष्ण चैतन्य के जीवन चरित्र से परिचित व्यक्ति जानते हैं कि काशी के प्रसिद्ध वेदांताचार्य स्वामी प्रकाशानंद जी सरस्वती के ज्ञान का गर्व उन्हीं महाप्रभु ने मिटा कर उन्हें भक्त बनाया था। भक्ति का इस प्रकार बोध होने के कारण उनका नाम भी बदल कर प्रबोधानंद रख दिया गया था। कृष्ण चैतन्य के शिष्यों में वे बड़े सरस कवि थे। परंतु हित हरिवंश जी की महिमा-वर्णन में भी 'जय जय श्री हरिवंस व्रत आनंद

कों। भास्यौ धामस्वरूप प्रबोधानंद कौं ॥' आदि कथन मिलते हैं। इसका कारण है इन दोनों संप्रदायों मे एक स्वाभाविक मेल, जिसके फलस्वरूप इनके अनुयायी दोनों आचार्यों मे श्रद्धा रखते रहे। धार्मिक भाव की वृत्ति वाले सज्जन तो संत मात्र का आदर करते ही हैं। व्यास-वाणी में प्रबोधानंद जी पर भी एक पद है--

प्रबोधानंद से कवि थोरे ।
जिन राधावल्लभ की लीला-रस मे सब रस घोरे॥
यह प्रिय 'व्यास' आस करि (श्री) हित हरिवंसहि प्रति कर जोरे॥(१८)

उक्त पद से भी प्रबोधानंद की श्री हित जी के प्रति श्रद्धा प्रकट होती है और इस सिद्धांत की व्यास-वाणी के अंतःसाक्ष्य से पुष्टि प्राप्त होती है कि गौड़ीय माध्व संप्रदाय के अनुयायी हित हरिवंश जी में आदर भाव रखते थे।

(४) *समन्वय*—तात्पर्य यह कि माध्व गौड़ीय एवं राधावल्लभीय संप्रदायों द्वारा नये प्रकार से माध्व संप्रदाय की भक्ति का प्रचार हुआ। उनके प्रवर्तकों ने स्वयं तो प्रस्थानत्रयी पर स्वतंत्र भाष्य लिख कर अपने अलग दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन नहीं किया, किंतु उनके शिष्यों ने सांप्रदायिक ग्रंथों की रचना की। श्री कृष्ण चैतन्य द्वारा अचिंत्यरूपा, मायाशक्ति, अवाङ्मनस गोचर तत्व, सर्वमान्य कहे गये थे, इनसे अनेक शिष्यों ने उनके दार्शनिक वाद को 'अचिंत्य भेदाभेद' नाम दिया।

गौड़ प्रांत (बंगाल) में भक्ति की यह धारा विशेष रूप से प्रवाहित होने के कारण इसका नाम गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय हुआ। इसे गौर संप्रदाय भी कहते हैं। इसी प्रकार हिताचार्य के वाद को भी 'सिद्धाद्वैत' नाम दिया गया, और उनके पूज्य देव श्रीराधावल्लभ के नाम पर उनके संप्रदाय का हितराधावल्लभीय नामकरण हुआ। गौड़ीय संप्रदाय मे राधा का परकीया रूप से और राधावल्लभीय संप्रदाय मे विशेषतया स्वकीया रूप से अनुमोदन हुआ।

(५) *संकीर्णता*—अपने समय में मध्वाचार्य सम्मत राधाकृष्ण की भक्ति और विशेष कर माधुर्य भाव को प्रधानता देकर उपासना का प्रचार करने वाले यही दो संप्रदाय थे। इससे उनके अनुयायी दोनों भक्ताचार्यों में श्रद्धा भावना रखते थे। जैसे जैसे समय बीतता गया,

† श्री हित हरिवंश जी की बधाई (हस्तलिखित) पृष्ठ २९

वैसे वैसे साम्प्रदायिक संकीर्णताएँ बढ़ती गई । साधु स्वभावोचित महात्माओं के प्रति आदर भाव के वचनों की भौतिक आलोचनाओं द्वारा गुरु शिष्य का निर्णय करने में आग्रह और झंझटें उत्पन्न हो गईं।

किसी सांप्रदायिक आचार्य का अर्थ केवल उस मत का प्रस्थान त्रयी पर भाष्य करके प्रचार करने वाले महापुरुष से है। उन्होंने सिद्धांत की सृष्टि की, ऐसा न तो वे मानते हैं और न उनके अनुयायी ही। सत्य अनेक प्रकार का नहीं हो सकता, किंतु जब वह वाणी में व्यक्त किया जाता है, तब दृष्टिकोण एवं वाणी के भेद से वह विविध रूप का हो जाता है। इन रूपांतरों के नाम से जिन सम्प्रदायों की सृष्टि हुई, उनके कुछ अनुयायी अपने संप्रदायों का विशेष प्रचार करने एवं महत्व बढ़ाने के लिए आग्रहवाद और संकीर्णता का आश्रय लेते हुए भी पाये जाते हैं। अनन्यता के भ्रममूलक प्रचार ने भी इसे प्रोत्साहित किया। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में मीराबाई के घर पहुँचे हुए पुष्टिमार्गीय कृष्णदास के व्यवहार में इस प्रकार की संकीर्णता लक्षित होती है। आगे के युग में वह और भी अधिक बढ़ गई।

४. अनन्यता—

व्यास जी के आराध्य देव श्री कृष्ण थे। वे किसी अन्य देवी-देवता की आशा न रख कर राधा-कृष्ण की ही एक मात्र उपासना करते थे। अपने सिद्धांतों की दृढ़ता के कारण इस अनन्य रसिकता का निर्वाह करने में उन्हें कष्ट भी उठाने पड़े, परंतु वे अपने निर्दिष्ट मार्ग से विचलित नहीं हुए। समस्त संपत्ति और ऐश्वर्य का त्याग कर उन्होंने अपने प्रण को निबाहा—

मोहि भरोसो है हरि ही कौ।
मोकों सरन न और स्याम बिनु, लागत सब जग फीकौ ॥४
दीनन की आसा कौ दाता, परम भावतौ जी कौ।
जाके बल कमला सों तोरी, काज भयौ अति नीकौ ॥
चारि पदारथ, सब सिधि, नव-निधि, पर डारत नहिं पीकौ ॥ ५
'व्यासहिं' आस स्याम-स्यामा की, ज्यों बालक आधार चुरी कौ ॥ (१०२)

उनकी वाणी से पता चलता है कि भक्त लोग उनकी भक्ति में बाधा डालते थे और उन्हें कष्ट देते थे। वे उस संगति को छोड़ने के लिए व्याकुल थे। जैसा उनके पद से भी ध्वनित है—

करि मन साकत कौ मुँह कारौ ।
साकत मोहि न देख्यौ भावै, कहा बूढ़ौ कहा बारौ।×
'व्यासदास' यह संगति तजियै, भजियै स्याम सवारौ ॥ (२६१)

उस समय सांप्रदायिक विक्षेप बड़े जोरों पर था। अपने मत की पुष्टि तथा दूसरे संप्रदायों को अधर्म कह कर उसकी निंदा की जाती थी। जब शाक्तों द्वारा व्यासजी को यह व्यवहार मिला, तो उन्होंने विवाद में न पड़ कर सरलता से यह कह कर टाल दिया—

जासों लोग अधर्म कहत है, सोई धर्म है मेरौ ।
लोग दाहिने मारग लाग्यौ, हौब चलत हौ डेरौ ॥ (व्या० २३०)

श्यामा-श्याम के अतिरिक्त अन्य किसी की पूजा तो उन्हें पसंद थी ही नहीं, अतएव अपनी कन्या के विवाह तक में गणेश-पूजन का उन्होंने विरोध किया। किंतु व्यास जी ने होरी की धमार में लिखा है—

मोहन पकरि जूथ में ल्याई, पूजा रचित बनाई ।
दधि-अच्छित-रोरी कौ टीकौ, गनपति गौरि मनाई ॥

इससे प्रकट होता है कि वे गणेश और गौरी में यथोचित श्रद्धा रखते थे और अपनी अनन्यता के कारण अपने इष्टदेव में ही सभी देवी-देवताओं को समाविष्ट मानते थे। उन्हें विश्वास था कि इस प्रकार के अनन्य भक्तों से भूत-प्रेत तथा अन्य देवी-देवता भी डरते हैं—

हरिदासन के निकट न आवत, प्रेत-पितर, जमदूत ।
अरु जोगी, भोगी, सन्यासी, पंडित, मुंडित, धूत ॥
ग्रह, गन्नेस, सुरेस, सिवा - सिव, डरि कर भाजत भूत ।
सिधि-निधि, विधि-निषेध, हरि-नामहि डरपत रहत कपूत ॥ (८६)

किंतु अनन्यता का कोरा स्वांग रचने वालों को अपने मिथ्या आचरण के कारण दैवी प्रकोप का भाजन बनना पड़ता है, यह भी वे मानते थे—

रसिक अनन्य कहाइ कै, पूजै गृह गन्नेस ।
'व्यास' क्यों न जिनके सदन, जम गन करैं प्रवेस ॥

वे किसी दूसरे देवता के द्वार पर नहीं जाना चाहते थे। अनन्य व्रत का पालन उन्होंने तलवार की धार पर चलना जैसा मान कर भी निष्ठापूर्वक उसी का पालन किया—

अनन्य ब्रत खाँड़े की सी धार ।
इत-उत डगत जगत हित तैं, हरि फेर न करत सम्हार ॥
कौन काम कीरति बिनु प्रीतहि, गनिका कैसौ जार ।
'व्यासदास' की पति-गति नासै, गयें पराये द्वार ॥ (६५)

५. माधुर्य उपासना के संप्रदायों में समान श्रद्धा—

(१) *हरिदासी संप्रदाय*—वृंदावन में मैंने राधावल्लभीय समुदाय में एक किंवदंती सुनी थी, जिसके अनुसार व्यास जी ने अपने एक पुत्र को श्री हित जी के ज्येष्ठ पुत्र वनचंद्र जी का शिष्य करा दिया था। इस कथन का तो लेख कहीं मिलता नहीं, अपितु उनके द्वारा अपने एक पुत्र किशोरदास को श्री स्वामी हरिदास जी का शिष्य कराये जाने का वर्णन 'निजमत-सिद्धांत-सार' आदि हरिदासी संप्रदाय के ग्रंथों में पाया जाता है।

श्रीमद् व्यासदास प्रण लीनो । दासकिशोर पुत्र संग कीनों ।
श्री स्वामी कौ सिष्य करायौ । रास मध्य ताकौ पद गायौ ॥

स्वामी हरिदास जी के प्रधान बारह शिष्यों में से एक किशोरदास जी भी थे, जो व्यास जी के पुत्र थे और जिन्होंने व्यास जी द्वारा अपनी संपत्ति के विभाजन में संभवतः केवल माला, तिलक और छाप को पाया था। प्रियादास कृत 'भक्तमाल' की टीका में भी यही सूचना मिलती है। 'श्री लोकेन्द्र ब्रजोत्सव' आदि भी इसका समर्थन करते हैं। व्यासवंशीय गोस्वामी ललितमोहिनी दास † का, जिनका ओरछे में संवत् १७८० में जन्म हुआ था, हरिदासी संप्रदाय के आचार्य होकर टट्टी संस्थान की गद्दी पर आसीन होना भी इस बात की पुष्टि करता है कि व्यास जी के वंशजों की एक शाखा में हरिदासी संप्रदाय की उपासना प्रचलित थी।

(२) *मध्व संप्रदाय*—बुंदेला नरेश प्रसिद्ध भक्त महाराज मधुकर शाह श्री व्यास जी के शिष्य§ थे। इसके संकेत व्यास वाणी में भी उपलब्ध हैं। उनके वंशज परंपरा से व्यास जी के वंशजों के शिष्य होते चले आते हैं। 'ओरछा गजेटियर' में तत्कालीन ओरछा नरेश महाराजा प्रतापसिंह को, जो सं० १९३१ में ओरछा के राजसिंहासन पर आसीन हुए मध्व संप्रदाय का वैष्णव लिखा गया है। यह ओरछा नरेश महाराज मधुकरशाह के पुत्र वीरसिंह देव प्रथम के वंशज थे। यही संप्रदाय अन्य बुंदेला नरेशों का भी विभिन्न गजेटियरों में लिखा है। इससे व्यास जी के वंशजों की उस शाखा का, जिसमें परंपरा से ओरछा नरेश के राज्य गुरु हुए, मध्व मतानुयायी होने का प्रमाण मिलता है। व्यास जी के वंश में

---

†   ललितमोहिनी दास, व्यास कुल कौ अवतंसा ।
    जनम ओड़छे माँहि, नाँहि कलि की रति अंसा ॥
                                    —सहचरिशरण कृत 'गुरु-प्रणालिका'

§ 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में मधुकरशाह को विट्ठलनाथ जी गोस्वामी का शिष्य होना लिखा है। देखिये, वैष्णव संख्या २४५.

वृंदावनान्तर्गत टट्टीस्थित रसिक कंगाल अभ्यागत यमुनादास दत्त वेद शास्त्रोक्त शुभासीर्वादांकित...॥ उपरान्त हे मन् समाज कुमुदिनशाकर श्री हुजूर सों मिलने कौ मनोरथ विशेष है परंतु प्रिया प्रीतम के आधीन आयवौ है।✓ हे श्रीमद्भागवतामृताब्धि रसज्ञ आपतो श्रीमद् गुरु परंपरार्णव के पूरणानुरागी चक्षु चकोर प्राय निरंतर रहो हो।✓ हे श्रीमद् भगवत् भक्ति कल्पद्रुमावतार आपहूँ प्रत्यक्ष प्रगट भये हो यातंतर हे श्रीमत् हित हरिवंशांघ्रि अम्बुज स्वेदांघ्रि प्रेमानुरागपूर्वक रसिक अनन्योपासक दृढ़व्रत स्थिर हजूर ही हो। हे ध्रुव धर्म धुरंधर जैसी कछु पूर्व परंपरा भगवत कीर्तन गायन होत आई ता प्रमाने प्रथा श्री हुजूर करें हैं।✓ और समाचार वेद मूर्ति विद्धुशावतंस राजमान्य राजेश्री बिहारीलाल भट्ट जी की पाती तै मालूम होवेंगे सुज्ञेषु बहुना किं॥ मिती पौष शुक्ल ॥७॥ संवत् १६०६ ॥ श्रीरस्तु ॥ १ ॥"

महाराज मर्दनसिंह के गुरु कन्हैयालाल गोस्वामी थे, जिनके पौत्र गोस्वामी गोपीलाल द्वारा श्री चतुरासी जी की टीका के संबंध में लिखे गये एक पत्र में भी महाराज मर्दनसिंह को श्री हित हरिवंश उपासक कहा है—

"श्री जय जय श्री राधावल्लभ जी की। स्वस्ति श्री हित हरिवंश उपासक हरि गुरु सेवा परायण श्री जी के निज कृपापात्र श्री श्री काका जू साहब बहादुर जू देव एते सदा शुभ चिंतक चिरंजीवी पंच श्री गोस्वामी गोपीलाल की जाहर होवे में आवे।..."

इससे प्रकट है कि महाराज मर्दनसिंह के गुरु जो व्यासवंशीय गोस्वामी थे, राधावल्लभीय संप्रदाय के अनुयायी थे। इस प्रकार हम व्यास जी के वंशजों को माध्व, राधावल्लभीय और हरिदासी तीनों संप्रदाय के अनुयायी पाते हैं। राधावल्लभीय और हरिदासी संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांतों पर प्रस्थानत्रयी के भाष्य न होने के कारण कुछ लोगों की धारणा है कि ये संप्रदाय माध्व आदि के अंतर्गत उनकी ही साधना-पक्ष के प्रचारक हैं। इस दृष्टिकोण से उक्त विभिन्नता का लोप सा ही हो जाता है। परंतु उक्त तीनों मत एक ही लक्ष्य रखते हुए भी अपनी-अपनी अलग मान्यताएँ और विशिष्टताएँ बनाये हुए हैं। यह प्रकट ही है कि व्यास जी का श्री हित हरिवंश और स्वामी श्री हरिदास जी से अभिन्न प्रेम था, अतएव उक्त विवेचन के आधार पर अनुमान करना असंगत न होगा कि उन्होंने अपने तीन पुत्रों को तीन गुरुओं से दीक्षा दिलवा कर भक्ति मार्ग की माधुर्य उपासना की तीन मधुर धाराओं को अपने वंश में प्रवाहित किया।

सप्तम अध्याय

नृत्य और संगीत

★

१. आराधना के माध्यम—

भक्ति के साथ कविता और संगीत आदि का संबंध सदा से ही चला आ रहा है। अपने आराध्य देव को सुंदर भजनों के संगीत और नृत्य द्वारा भावों के प्रदर्शन से सरलता पूर्वक रिझाने की कला को माधुर्य उपासना के सभी भक्तों ने अपनाया है। व्यास जी भी अपने प्रेम और भक्ति के लिए नृत्य और गान को ही प्रधान साधन मानते थे। कर्मकांड से दूर रह कर वे उक्त कलाओं के द्वारा हार्दिक आनंद लेते हुए ही अपने आराध्य देव को तुष्ट करते थे। गायनाचार्य भक्त नारद जी के प्रति भगवान के यह वाक्य उनके कानों में गूंजते हुए प्रतीत होते हैं—

नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिना हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद॥

व्यासजी ने इसका पूरी तरह अनुभव किया था। अपनी साखी में उन्होंने कहा है—

नैन न मूदे ध्यान कों, किये न अंगन न्यारा।
नाँच-गाय रासहिं मिले, बसि बृंदावन 'व्यास'॥

उनका कहना है कि अभिमान छोड़कर जिस प्रकार हो भगवान का स्मरण करो। उनकी लीलाओं को खेल कर, स्वरूप बदल कर और नृत्य गान द्वारा उनकी भक्ति कर नटनागर को सरलता से रिझाया जा सकता है—

मेरौ मन मानत नाँचे-गायै।
एक प्रेम भक्ति कौ फल है, मोहनलाल रिझायै।×
तजि अभिमान दीनता जन की, स्यामु रहत सचु पायें॥ (व्या. २२५)

नृत्य और संगीत साधना को उन्होंने बड़ा गौरव प्रदान किया है। किंतु राजाओं को रिझाने के लिए भगवत्-भक्ति के भी भजन गाना व्यास जी की दृष्टि में एक कपट पूर्ण व्यवहार का उदाहरण था। वे उस नृत्य और संगीत को भगवत्-प्राप्ति का साधन मानते थे, जिसमें मन रास रसिक की ओर ही लगा रहे—

गावत मन दीजे गोपालहि ।
नाँचत हरि पर चितु दीजे तो, प्रीति बढ़ै प्रतिपालहि ॥ ×
मुँह गावत गोपालहिं कपटी, मन में धरि भूपालहिं ।
हाथी कौ सो स्वांग धरत, पुनि चलत स्वान की चालहिं ॥ (व्या.२५१)

उनका विश्वास था कि नृत्य और संगीत की ललित कलाएँ भगवान को सुख देकर संतुष्ट करती हैं—

नाँचत-गावत हरि सुख पावत । ×
नाँचत गन गंधर्व देवता, 'व्यासहिं' कान्ह जगावत ॥ (व्या. २८३)

वे कला को कला के लिए मानते थे । उनके वर्णनों से प्रकट होता है कि नृत्य और गान संबंधी कलाओं का उन्हें बड़ी बारीकी का ज्ञान था । नृत्य में नेत्रों के संचालन से प्रकट किये गये भावों को शब्दों में सुन कर सामने एक चलचित्र का सा प्रदर्शन हो जाता है । देखिये—

नटवा नैन सुघंग दिखावत ।
चंचल पलक सबद उघटत हैं, धं धं तत्र थेई थेई कल गावत ॥
तारे तरल तिरप गति मिलवत, गोलक सुलप दिखावत ।
उरप भेद भ्रू भंग संग मिलि, रतिपति कुलनि लजावत ॥
अभिनय निपुन सैन सर पैनति, निमि बारिधि बरषावत ।
गुनगन रूप अनूप 'व्यास'प्रभु, निरखि परम सुख पावत ॥ (व्या.३८०)

श्रीकृष्ण राधिका जी को अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय देते हैं । उन्होंने अनेक गुणियों को देखा और उनका संगीत सुना, किंतु व्यास की स्वामिनी राधिका जी के रूप को देख कर तो उनके लोचन और संगीत सुन कर उनके कान आत्म-विस्मृति में सुधि ही खो बैठे । इससे अधिक गुण की सराहना क्या हो सकती है—

बहुत गुनी मैं देखे सुने री, सुधि न परै राधे तेरे गान की ।
मोहू कछू गर्व हुतौरी गुन कौ, हौं पचिहारयौ, समुझि न परै कछु तेरे तान की ॥
तू जानत गति रेख नेम की, ताल मंदिर घोर सुर बंधान की ।
'व्यास' की स्वामिनि तेरे गावत, कछु सुधि न रही मेरे लोचन कान की ॥
(व्या० ३६२)

२. संगीत शास्त्र पर व्यास जी का ग्रंथ—

व्यास जी द्वारा रचित भारतीय संगीत शास्त्र पर 'रागमाला' नामक एक ग्रंथ की सूचना खोज रिपोर्ट सन् १६०६-०८ में दी गई है । ६०४ श्लोकों के कलेवर के इस ग्रंथ की, संवत् १८५४ के लिपिकाल की.

…क प्रति स्टेट लाइब्रेरी टीकमगढ़ में सुरक्षित है। हिंदी के दोहा छंदों में …सरस्वती मत के अनुसार राग-रागनियों का वर्णन इसमें किया गया है। …ंथ की प्राप्त प्रति के प्रारंभिक और अंतिम भाग के उद्धरण इस प्रकार है—

प्रारंभिक भाग—श्री गणाधिपतये नमः। श्री सरस्वत्यै नमः॥ …ी कृष्णायनमः॥ दोहरा॥

जा सम देवन कों सदा, संकट परें महाय।
सदा अभय वरदायनी, 'व्यास' चरन चित लाय॥१॥
राग-रागिनी आप ही, रसना बुद्धि सरूप।
ग्रंथ राग निर्णय उदित, होवे परम अनूप॥२॥
बहु मत बूझ बिचारि कै, मत सरस्वती मानि।
सब गुणदायक स्वामिनी, सब लायक जगरानि॥३॥
राग रागिनी गानजुत, होवें अंग समेत।
सुर औ ताल प्रमान तें, गावे सुनै सुनेति॥४॥
भैरवादि षट राग है, रागनीय इकतीस।
'व्यास' कहै रागांग जुत, सोहे मोहे ईस॥५॥
भैरव की तिय पाँच हैं, प्रथम भैरवी जानि।
अरु बिभावरी गूजरी, गुनकरीय सुभ मानि॥६॥
पुनि बिलावली रागनी, भैरव की सुखदानि।
'व्यास' कहत मत भारती, गायौ जाय सुमानि॥७॥

अंतिम भाग—इति राग शास्त्रे नाद भेद फल प्रभाव राग निर्णय अष्टविंशतमो प्रकास॥२८॥ इति रागमाला संपूर्ण॥ यादृशी पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशी लिखितं मया॥ यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते॥मीती॥ जेष्ठ मासे शुक्ल पक्षे द्वादशी रवि वासरे संवत् १८५५ मुकामुठेहरी॥ लिखितं लक्ष्मणदास वैश्य॥

३. ध्रुपद शैली से प्रेम—

इससे प्रकट होता है कि व्यास जी संगीत शास्त्र के बहुत ऊंचे विद्वान थे तथा अपने समय के प्रसिद्ध गायक भी थे। उस समय साधारण लोगों को तो ख्याल-टप्पा की शैली में उड़ती हुई चीजें पसंद थीं, किंतु उच्च श्रेणी के गायकों और विशेष कर वैष्णव समाज में ध्रुपद शैली के गायन का आदर था। प्राचीन मंदिरों में अब भी परंपरा से ध्रुपद शैली के गायन की व्यवस्था चली आती है। स्वामी हरिदास जी को ध्रुपद शैली ही मान्य थी। वृंदावन चले जाने पर व्यास जी की इन्हीं

गायनाचार्य स्वामी श्री हरिदास जी के अत्यंत निकट संपर्क में रहे तथा उनमें उनकी विशेष श्रद्धा भी रही। स्वामी जी उस समय भारत के सर्वोच्च गायक थे। तानसेन आदि उनके शिष्य थे। अतएव व्यास जी को ध्रुपद शैली मान्य होना प्रतीत होता है।

उनके पदों में मृदंग की 'परनों' के टुकड़ों का प्रयोग हुआ है, जिससे वादन कला में उनकी प्रवीणता के साथ-साथ ध्रुपद शैली में प्रियता भी सिद्ध होती है। स्वर संकेतों के साथ 'परन' का एक टुकड़ा निम्नलिखित पद में सुनिये—

अपने बृंदावन रास रच्यौ, नाचत प्यारे पिय संग।
सब्द उघटत स्याम नटवर, मनौ कल मुख चंग॥
बिबिध बरन संगीत अभिनय, निपुन नखसिख अंग।
सा रे ग म प ध नी सप्तस्वर गान तान तरंग॥
सिद्ध रागनी राग सारंग, सहित सरस सुघंग।
धंननन तंतनन तक तक थुंग रुनित मृदंग॥
तरल तिलक ललाट कुंचित, चपल चिकुर सुभंग।×
थकित सुक-पिक-हंस-केकी, कोक-भृंग-कुरंग।
'व्यास' स्वामिनि नित्य बिहरत, प्रनय कोटि अनंग॥ (६४४)

व्यास-वाणी के विभिन्न पदों में प्रसंग वश वाद्य यंत्रों के नामों के प्रयोग मिलते हैं, जिनमें वीणा, रवाव, मृदंग, सहदाना, दुंदभी, वेणु, डफ, मुहचंग, ढोल, भेरि, शहनाई, मुरली, उपंग, रुंज, दमामा, आवज्ञ और करताल हैं। व्यास-वाणी में अधिकांश पदों पर शीर्षक रूप में राग-रागनियों के नाम पाये जाते हैं। निश्चय पूर्वक तो नहीं कहा जा सकता कि ये शीर्षक कब और किसके द्वारा दिये गये, परंतु व्यास जी के संगीतज्ञ होने के कारण यह अनुमान करना असंगत न होगा कि उन पदों के राग संकेत बहुधा वे हैं, जिनमें व्यास जी उन पदों को विशेष रूप से गाया करते थे और कदाचित उन्हीं ने ही इस प्रकार के संकेत स्वयं दे रक्खे हों।

अष्टम अध्याय

काव्य

★

१०. रचना विस्तार—

(१) *हिंदी*—बुंदेलखंड के नरेशों के लगभग सभी पुस्तकालयों में व्यास जी के ग्रंथ उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त वृंदावन, अयोध्या, मिर्जापुर, प्रयाग, चित्रकूट, ललितपुर, अटेर (ग्वालियर) और सागर आदि स्थानों से भी व्यास जी के हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध हुए है। 'दयाल जी का पद' तथा 'ख्याल टिप्पा' नामक भजन संग्रहों में, जिनमें क्रमशः २२ और ५६ भक्तों के भजन संगृहीत हैं, व्यास जी के पद पाये जाने का उल्लेख खोज रिपोर्टों‡ में है। अनेकों प्रकाशित एवं हस्तलिखित कीर्तन-संग्रहों और वर्षोत्सवों मे लेखक ने व्यास जी के पद प्रचुर मात्रा में पाये हैं।

इससे पता चलता है कि उनका काव्य कितनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर चुका था। संवत् १९९१ तथा १९९४ मे वृंदावन से श्री व्यास-वाणी के दो प्रकाशन भी हो चुके है। इससे पूर्व लाला केदारनाथ वैश्य लखनऊ द्वारा श्री भगवतरसिक की वाणी के साथ व्यास जी की साखी संवत् १९७१ में ही प्रकाशित हो चुकी थी। विविध नामों से प्राप्त व्यास जी के जो ग्रंथ पाये जाते है, वे निम्नलिखित रूपों में से एक न एक के अंतर्गत आ जाते हैं—

१. राग-माला
२. व्यास जी की वाणी
३. व्यास जी के सिद्धांत के पद
४. व्यास जी के रस के पद
५. व्यास जी के साधारण पद अथवा व्यास जी के स्फुट पद
६. रास पंचाध्यायी
७. व्यास जी की साखी अथवा व्यास जी की चौरासी

‡ "This poet (Vyas ji) is very popular in Bundelkhand, his native place, where his songs are usually sung along with those of Surdas".

—*Report on the search of Hindi Manuscripts 1909—11 page 9.*

'राग-माला' हिंदी भाषा में भारतीय संगीतशास्त्र पर सरस्वती मत के अनुसार लिखा गया दोहा छंदों में एक शास्त्रीय ग्रंथ है। इसकी पुष्पिका में दिया हुआ इस ग्रंथ का नाम 'राग-माला' व्यास जी द्वारा निर्धारित प्रतीत होता है, किंतु ऊपर दिये गये अन्य सभी ग्रंथों के नाम उनके ही द्वारा निर्धारित किये हुए प्रतीत नहीं होते। संभव है कुछ पद रचनाओं के शीर्षक उन्होंने दिये हों और इस प्रकार १२१ त्रिपदी छंद में लिखी गई तद्विषयक रचना का 'रास-पंचाध्यायी' नामकरण व्यास जी ने ही किया हो।

राग-माला में ६०४ दोहा है। इनके अतिरिक्त व्यास जी के नाम से १४८ दोहे अभी तक उपलब्ध हुए हैं। इन दोहों के संग्रह को 'साखी' नाम दिया गया है, जो नाम उनके शिक्षाप्रद होने के कारण उपयुक्त है। उस समय तक कबीर आदि संतों के दोहे भी साखी के नाम से प्रचलित हो चुके थे। दोहों के दो लिखित संकलन जिनमें उक्त साखी के ही क्रमशः ८६ और ८७ दोहे हैं, 'व्यास जू की चौरासी' के नाम से लेखक को मिले हैं। श्री हिताचार्य जी के प्रसिद्ध चतुरासी जी ग्रंथ के आधार पर यह नामकरण बाद में किया गया प्रतीत होता है।

राग-माला को छोड़कर शेष उपलब्ध रचनाओं के देखने से पता चलता है कि वे किसी योजना के अनुसार नहीं लिखी गई हैं, वरन् उनके हृदयोद्गारों का एक संकलन है। इस कारण शेष समस्त रचना 'व्यास-वाणी' के अंतर्गत आ जाती है। प्राचीन हस्तलिखित संग्रह और अर्वाचीन प्रकाशन भी इसी नाम से उपलब्ध हैं। महात्माओं की रचनावली को 'वाणी' नाम से संबोधित करने की प्रथा भी उस समय चल पड़ी थी, परंतु ग्रंथ का यह नाम भी व्यास जी के शिष्यों का रक्खा हुआ प्रतीत होता है।

इस प्रकार व्यास जी के दो ग्रंथ माने जाते हैं—

१. राग-माला (जिसमें ६०४ दोहे हैं।)

२. व्यास-वाणी (जिसमें विविध प्रतियों के आधार पर ७४८ पद और १४८ दोहा उपलब्ध हैं।)

राग-माला के अतिरिक्त उपर्युक्त अन्य सब हिंदी रचनाएँ व्यास-वाणी के ही अंतर्गत हैं। व्यास-वाणी (राधावल्लभीय) के वक्तव्य में लिखा है कि व्यास जी की पद-रचना की संख्या १००० सुनी जाती है। व्यास-वाणी (श्री राधाकिशोर गोस्वामी) के अंत में किसी कवि का एक

दोहा दिया गया है, जिसके अनुसार (वाम गति से अंक गिनने पर) उनके पदों की संख्या ६१४ मानी जा सकती है। वह दोहा इस प्रकार है—

श्री व्यास गिरा निधि रत्न पद, कच्छप की उनिहार ।
माला नित वल्लभ रची, रसिकन उर आधार ॥

(२) *संस्कृत*—इनके अतिरिक्त व्यास जी के एक संस्कृत ग्रंथ 'नवरत्न' की भी सूचना आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी द्वारा प्रकाशित व्यास-वाणी के वक्तव्य में दी गई है। इसी प्रकार एक और ग्रंथ 'स्वधर्म-पद्धति' भी श्री व्यास जी की संस्कृत रचना कही जाती है* ।

श्री विनयतोष भट्टाचार्य जी ने व्यास जी द्वारा श्री निंबार्क की दशश्लोकी का भाष्य करना लिखा है‡ । किंतु यह सूचना हरिराम व्यास और हरिव्यास देव में उन्हें भ्रम हो जाने के कारण प्रकट की गई प्रतीत होती है।

(३) *अप्रकाशित अतिरिक्त पद*—'राग-माला' जो संगीत शास्त्र पर लिखा गया दोहा छंदों में व्यास जी का ग्रंथ है, अब तक अप्रकाशित है। व्यास जी की भक्ति, उपदेश, विहार, साखी, साधना आदि विषयों पर लिखी गई रचनाएँ 'व्यास-वाणी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस नाम से प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्य हैं और दो प्रकाशित भी हो चुके हैं। किंतु ऐसा कहा जाता है कि व्यास जी की रचनाएँ और अधिक हैं। इस कथन का समर्थन उन हस्तलिखित प्रतियों ने किया है, जिनमें लेखक को व्यास जी का एक न एक अप्रकाशित अतिरिक्त पद अथवा दोहा उपलब्ध हो सका है।

२. कविता काल—

श्री वियोगीहरि ने व्यास जी का रचना-काल संवत् १६१८ से संवत् १६५५ तक माना जाना स्वीकार किया है† । किंतु व्यास जी की वृंदावन के प्रति उत्कंठा सूचक पद उनके अंतिमबार वृंदावन-गमन (संवत्

---

* संस्कृत के उक्त दोनों ग्रंथों के दर्शन प्रयास करने पर भी लेखक न पा सका, किंतु संस्कृत 'नवरत्न' से उद्धरण लेखक ने बाबा श्री कृष्णदास जी (गोवर्द्धन वालों) के पास देखे हैं। श्री पुलिनबिहारी दत्त ने अपनी बंगला पुस्तक 'वृंदावन-कथा' के पृष्ठ १८२ पर व्यास जी के स्वधर्म पद्धति नामक ग्रंथ को अधिक प्रचलित होना बताया है।

‡ Preface to Sakti Sangam Tantra.

† ब्रजमाधुरी सार

१६१२) के पूर्व की रचनाएँ स्पष्ट रूप से प्रकट है। 'देहांत-काल-निर्णय' के प्रसंग में यह बताया गया है कि उनके संवत् १६६३ के पश्चात् के रचे हुए पद भी प्राप्त है। इस कारण हमें संवत् १६१८ और संवत् १६५५ की मानी गई उक्त दोनों सीमाओं को छोड़ना पड़ेगा।

व्यास जी पहिले शास्त्रार्थी पंडित थे। पंडितों की तत्कालीन विचार धारा के अनुसार यही प्रतीत होता है कि उस समय उन्होंने हिंदी में कोई काव्य रचना न की होगी। हो सकता है कि संगीत शास्त्र पर हिंदी में 'राग-माला' उनकी उस समय की ही रचना हो, क्यों कि उसका उद्देश्य संगीत प्रेमियों को राग-रागनियों का शास्त्रीय परिचय देना था और उनके लिए उस समय में संस्कृत ग्रंथ से कोई लाभ न था। साथ ही इस प्रकार का शास्त्रीय ग्रंथ उनमें भक्ति भाव का प्रभाव बढ़ जाने के उपरांत नहीं रचा गया होगा।

शास्त्रार्थ करने के निमित्त काशी-यात्रा में व्यास जी का भक्ति की ओर झुकाव हो जाना कहा जाता है। संवत १५६१ में उनका वृंदावन पहुँचना और तीर्थाटन करना प्रतीत होता है। इन सूचनाओं की संगति मिलाते हुए यह अनुमान होता है कि काशी से ओरछा वापिस आकर काशी में प्रचलित कबीर, रैदास, पीपा, नामदेव आदि की कथाओं को सुनकर वे उन साधुओं की स्तुति के पद संवत् १५६० के लगभग रचने लगे थे। अतः व्यास जी का कविता-काल संवत् १५६० से संवत् १६६३ तक माना जा सकता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि जीवन के अंतिम भाग में हरित्रयी के अन्य दोनों सदस्यों के निधन हो जाने के पश्चात उन्होंने कोई उत्सव संबंधी कविता संभवतया नहीं लिखी।

३. काव्य का स्वरूप—

(१) *सामान्य परिचय*—व्यास जी भक्त पहिले हैं और कवि बाद में। कला के प्रदर्शन की दृष्टि से उन्होंने कविता नहीं की; उनका काव्य अनुभूतिप्रधान है। यद्यपि यह शास्त्रीय कौशल के उदाहरणों से भरा हुआ है, तथापि वे सब बिना प्रयास के ही स्वाभाविक रूप में उनके हृदय से निकले हुए उद्‌गार मात्र हैं। प्रकृति और मानव हृदय के साथ अपनी सहानुभूति द्वारा जिस मधुर संगीत को उन्होंने प्रस्तुत किया, उसमें रस और अलंकार स्वाभाविक रूप से शोभा पा रहे हैं।

माधुर्य-उपासना तथा उत्कट रति भाव के कारण भक्ति में शृंगार का समावेश तो पूर्ण रूप से रहा, फिर भी उनका प्रकृति वर्णन शृंगार

रस के उद्दीपन रूप में ही न होकर व्रज के वन-उपवन, नदी, रज आदि के प्रति धार्मिक प्रेम भाव उत्पन्न करता हुआ उसके प्रति सहानुभूति और तन्मयता का सृजन करता है। लोक के प्रति परलोक को भी आकर्षित करने वाली उनकी वाणी हृदय, मन और आत्मा सभी को आनंदित करती है।

कृष्णभक्ति-काव्य का मेरुदंड ही शृंगार रस है। शास्त्रीय विवेचन के दृष्टिकोण से उनके काव्य मे राधिका और कृष्ण के जो वर्णन है, उनमें राधिका स्वकीया नायिका और कृष्ण अनुकूल नायक के रूप मे विहार करते हैं। मिलन, मान, दूती, मानमोचन, पुनर्मिलन आदि के शब्द-चित्र व्यास-वाणी मे इसी भाव के पोषक हैं।

कोमल-कांत-पदावली के सरस प्रवाह के साथ रस पेशल मधुर भावों की कल्पना के सहित राधाकृष्ण की ललित लीलाओं का वर्णन जिस ढग से व्यास जी ने किया है, वह उनकी अपनी विशेषता है। वर्णन की सजीवता पग-पग पर दिखाई देती है और कवि उसी घटना स्थल पर सदैव ही उपस्थित मिलता है। उनके काव्य में भक्ति और साधना के सीधे-साधे मनोहर भावों के पदों द्वारा सहज मे ही बड़ी-बड़ी आध्यात्मिक गुत्थियाँ खोल दी गई हैं। जीव की प्रतीक गोपिकाओं का ब्रह्मस्वरूप श्री कृष्ण के प्रति जिस प्रगाढ़ प्रेम का परिचय दिया गया है, वह शुष्क दार्शनिक तत्वों की सरसता के माध्यम से व्यक्त करने में सफल हुआ है। राधाकृष्ण के प्रेम की निर्मलता के जैसे सुंदर चित्र यहाँ देखने को मिलेंगे, वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं। वृंदावन के प्रति अनुराग, साधुओं के विरह तथा संतों और भक्तों की महिमा-कथन जैसे विषयों पर तो व्यास जी की वाणी को विशेष अधिकार मिला हुआ प्रतीत होता है। उपमाओं की विशेषताएँ और उत्प्रेक्षाओं की उड़ानें इनके सरस मधुर और अछूते भावों का चक्कर काटती दिखाई देती है। उनके शब्द-चित्रों मे सौन्दर्य छलक रहा है। पदों का लालित्य अलौकिक माधुर्य का संचार करता है। प्रयुक्त शब्दों के नाद सौंदर्य की छटा ऐसी आकर्षक है कि वह उनके अर्थ और ध्वनि प्रकट करने में सदैव सहायक होकर श्रोताओं को भावों के निकट लाने में पूरा सहयोग प्रदान करती रहती है। कवि के रूप में उन्होंने चित्रण-कला और संगीत का उद्‌घाटन कर उसी लक्ष्य को सिद्ध किया, जिसे भक्ति मार्ग में प्रेम, श्रद्धा और लोक-सेवा की भावना से प्राप्त किया जाता है।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, उनकी अभी तक उपलब्ध समस्त रचनाएँ दो ग्रंथों के रूप में हमारे सामने हैं। उनमें से एक 'राग-माला' तो संगीत शास्त्र का ग्रंथ है। भाषा और शैली की दृष्टि से यह उनकी प्रारंभिक काल की रचना प्रतीत होती है। इसमें नाद का शास्त्रीय विवेचन है। हृदय की अनुभूति को प्रकट करने वाला व्यास जी का काव्य 'व्यास-वाणी' के नाम से प्रसिद्ध है।

वृंदावन की माधुरी, आराध्य विषयों की स्तुति, उपदेश, संत और भक्तों की प्रशंसा, खलों और पाखंडियों की दशा का निरूपण एवं अन्य लोक कल्याणकारी विषयों पर रचे गये व्यास जी के पद वाणी के सिद्धांत नामक प्रकरण में संकलित है। उनकी 'साखी के दोहा' भी विषय की अनुरूपता के कारण इसी प्रकरण के अंग माने जा सकते हैं, किंतु शैली की भिन्नता के कारण वे अपना स्वतंत्र स्थान रखते हैं। व्यास-वाणी का यह भाग काव्य के विभिन्न रसों और अलंकारों से ओतप्रोत है। उपदेशों की साधारण बातें जिस ढंग से कही गई हैं, वह व्यास जी की अपनी विशेषता है। देश और समाज की तत्कालीन स्थिति पर दृष्टि डालने के लिए उनकी साखी और सिद्धांत के पद झरोखे का काम करते है। स्वभावोक्तियों और सहज वर्णन की शैली ने व्यास जी के पदों में ऐसे-ऐसे ऐतिहासिक तथ्य और सामाजिक रीतियों की सूचनाओं को सदा के लिए सुरक्षित कर रक्खा है, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। कला पक्ष के अतिरिक्त वाणी की यह विशेषता इसे और भी अधिक उपादेय बना देती है। उनकी उपासना के सिद्धांत भी इन पदों और दोहों में कहे गये हैं।

शृंगार रस भाग में राधाकृष्ण के विविध विहार, उनके अंगों की छवि, त्यौहारों, गृहस्थ जीवन के सामाजिक उत्सवों आदि का बड़ा ही सुंदर और सरस वर्णन है। इसमें विहार, विभिन्न उत्सव और समय विशेष पर कीर्तन करने के पद, ब्रज लीलाओं के स्फुट वर्णन तथा रास-पंचाध्यायी, ये चार प्रकरण सम्मिलित हैं। श्री राधाकृष्ण के दाम्पत्य प्रेम संबंधी सभी अवसरों का वर्णन व्यास जी ने बड़ी तन्मयता और मधुर भक्ति निष्ठा से किया है। कृष्णभक्ति-काव्य के प्रणेता प्रायः सभी भक्त कवियों ने इन विषयों पर लिखा है, किंतु कवि की व्यक्तिगत उपासना और सांप्रदायिक विभिन्नताओं के कारण विषय निरूपण में जो अंतर रहता है, उसके अतिरिक्त उनकी काव्य-प्रतिभा भी रस की परिपक्वता के के लिए दायित्व रखती है।

कृष्ण के राधा के प्रति प्रेम के जो अलौकिक सौन्दर्य चित्र व्यास जी के काव्य में हमें देखने को मिलते हैं, उनकी सबसे बड़ी विशिष्टता है मानवीय संयोग शृंगार के निर्मल प्रेम की उदात्त भावना और आध्यात्मिकता का एक साथ मनोहर मिश्रण। इनके उद्दाम शृंगार प्रवाह के अंतस्तल में रहस्यमयी माधुर्य भावना की निगूढ़ धारा बहती रहती है। इनका काव्य मुक्तक शैली पर है। वाणी में संग्रहीत इनकी रास पंचाध्यायी की कथा अवश्य श्रीमद्भागवत् के दशमस्कंध के अध्याय २९ से ३३ तक के आधार पर वर्णित है।

(२) *शैली*—व्यास जी वर्ण्य-विषय के साथ तादात्म्य भाव प्राप्त कर लेते थे। उन्होंने 'गीत गोविंद' के रचयिता जयदेव को राधाकृष्ण के शृंगार वर्णन की परंपरा को स्थापित करने में आचार्य मानकर उनकी रचना-शैली और भाव-योजनाओं को अंगीकार किया। राधा कृष्ण का शृंगार वर्णन करने वाले वे कवि जिन्होंने भक्ति भावना से प्रेरित होकर शृंगार का वर्णन न कर काव्य कला को प्रदर्शित करने का ही उसे विषय बनाया, व्यास जी के हृदय में स्थान न पा सके। इसके विपरीत उन वैष्णव कवियों का उन्होंने सम्मान पूर्वक स्मरण किया है, जो भक्ति को प्रधानता देकर काव्य का सृजन करते थे, चाहें वे किसी भी संप्रदाय के अनुयायी रहे हों।

(३) *भाषा*—व्यास जी ने अपने काव्य में ब्रजभाषा को अपनाया, किंतु उनकी भाषा मिश्रित ब्रजभाषा है। इसमें संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का बाहुल्य है। कवि का ४७ वर्ष तक बुंदेलखंड में निवास होने के कारण उसकी भाषा में बुंदेलखंडी शब्दों की प्रधानता रहना भी स्वाभाविक है।

भाषा को रस के अनुकूल बनाने के लिए उन्होंने ध्वन्यात्मक शब्दों का भी बहुत स्थलों पर प्रयोग किया है। लोकोक्तियों और मुहावरों से प्रौढ़ता और महाकवि जयदेव जैसी कोमल-कांत-पदावली और प्रवाह पूर्ण वाक्य-विन्यास से सरसता प्राप्त कर उनकी काव्य-भाषा लोक रुचि के अनुकूल बन गई थी। उसमें फारसी आदि विदेशी भाषा के प्रचलित शब्द भी अपनाये गये, किंतु उनका प्रयोग बहुत ही कम हुआ है। इसी प्रकार अपवाद स्वरूप आजकल की खड़ी बोली की क्रियाओं के प्रयोग भी पाये जाते हैं, जैसे—

(अ) खड़ी बोली की क्रियाएँ—

अपने हरि सों मन न 'लगाया' ।
जार भरतार कियो दुख 'पाया' ।
'व्यास' पुहागिल स्याम रिझाया ॥ (व्या० ८८)

(इ) संस्कृत के तत्सम शब्द—

जयति नव नागरी, कृष्ण-सुख-सागरी, सकल गुन-आगरी, दिनन भोरी ।
जयति हरि-भामिनी, कृष्ण-घन-दामिनी, मत्त गज गामिनी, नव किसोरी ॥
जयति गोपाल मन मधुप नव मालती, जयति गोबिंद मुख कमल भृंगी
जयति नंदनंदन उर परम आनंद-निधि, लाल गिरिधरन प्रिय प्रेम रंगी ॥
जयति सौभाग्य-मनि कृष्ण-अनुराग-मनि, सकल तिय मुकुट-मनि सुजस लीजै ।
दीजिये दान यह 'व्यास' निज दास का, कृष्ण सों बहुरि नहि मान कीजै ॥

(उ) संस्कृत के तद्भव शब्द—

१. भक्त न भयो भक्त को 'पूत' ।
भक्त होइ 'साकत' कें, ज्यों श्रुतदेव सुदामा सूत ॥ × (व्या. २८८
२. मेरैं भक्त है 'दैई-दैऊ' । (व्या. वा. २२)

(ऊ) बुंदेलखंडी के शब्द और मुहावरे—

१. 'दावानलहि न ओस बुझावत, कुहुर न हरत इकासहि'[1] ।
२. संतन के अपराध छमत, आपुन करतब्यहि गनत[2] ॥
३. यह सुनि सकुचि गये बन मोहन, गिरधर 'भौरी'[3] आनी ।
४. और सकल साधन नीरस या रस बिन 'सब गुर माटी'[4] ॥
५. अलकनि ओट पलक नहि नैननि 'हिरनी सी बिडरी'[5] ।
६. बातनि 'खैचत खाल बार की'[6], 'लीपत भुस पर भीति'[7] ।
७. इहि रस नवधा भक्ति 'उबीठी'[8], रस भागौत कथा की ॥

---

[1] इकास = अधिक मात्रा में जल पीने की प्यास ।

[2] गनत = अंगीकार कर लेते हैं ।

[3] भौरी = लंबी जलाऊ लकड़ियों का बोझ, जिसमें विशेष कर हाथ से तोड़ी हुई अथवा जंगल में बीनी गई लकड़ी बाँध ली जाती है ।

[4] सब गुर माटी = व्यर्थ ।

[5] हिरनी सी बिडरी = हरिणी के समान भयभीत होकर भाग गई ।

[6] बार की खाल खैचबो = बड़ी बारीकी से व्यर्थ का तर्क-वितर्क करना ।

[7] भुस पर भीत लीपबो = निराधार बात करना ।

[8] उबीठो = आकर्षक न रही; अरुचिकर हो गई ।

(ग) लोकोक्ति

दोष रहित गुन रहित, 'व्यास' अंधे की दई चरावै† ।

(घ) ध्वन्यात्मक शब्द-योजना—

१. किंकिन कंकन नूपुर धुनि सुनि, नदित मृदंग सुघंग सुताल ।
२. धननन तननन तक तक थुंग रुनित मृदंग ॥

(ओ) विदेशी शब्द—

१. परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि 'बकसति'§ मौज घनी ।
२. ढोल भेरि सहनाई धुनि सुनि, खबर महावन आई ॥*

(४) *वाणी की सरसता*—कृष्णभक्ति-काव्य में राधाकृष्ण के प्रेम और शृंगार का वर्णन बड़े विशद रूप में हुआ है। भक्त की व्यक्तिगत उपासना और भावना के अनुसार राधाकृष्ण को विभिन्न दृष्टि बिंदुओं से चित्रित किया गया है। अलग-अलग आध्यात्मिक मतों को साधना पक्ष में प्रकट करने के लिए राधा और कृष्ण एवं भक्त और भगवान में अनेक प्रकार के संबंधों की कल्पना की गई है। इस प्रकार विशिष्ट उपासना पद्धति को अपनाने वाले भक्त-कवि की रचना तदनुकूल रस को व्यक्त करने में अग्रसर हुई है।

व्यास जी ने राधा और कृष्ण के किशोर अवस्था में दर्शन किये तथा माधुर्य भक्ति को अपनाया। माधुर्य भक्ति में उनकी राधा कृष्ण की विहार उपासना थी, अतएव विप्रलंभ शृंगार को उनकी वाणी में स्थान न मिला। कुंज-केलि किंवा संयोग शृंगार उन्हें प्रिय था। विरह भक्ति को निःस्वाद मानते हुए वे स्वयं लिखते हैं—

कुंज केलि मीठी, है विरह भक्ति सीठी ज्यों आग ॥

(५) *राधा और कृष्ण के संयोग—शृंगार* के वर्णन में व्यास जी ने अपनी लेखनी पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया, परंतु उस रस के उपयुक्त मनोविकारों का चित्रण करने में जिस सजीवता को उन्होंने उत्पन्न किया, उसे वे अपनी उपासना के बल पर ही कर सके हैं। प्रेम की

---

† अंधे की दई चरावै—जिसका कोई सहायक नहीं होता, उसकी रक्षा भगवान करते ही हैं।

§ बकसति—(फारसी बख्शीदन) प्रदान करना।

* खबर—(अरबी खबर); समाचार।

उदात्त भावना का संयोग शृंगार में ऐसा सुन्दर वर्णन व्यास जी के अधिकार की ही वस्तु है। सांसारिक कलुषित काम-वासना को नष्ट करने के लिए वृंदावन-विहारी और रासेश्वरी के अखंड प्रेम दर्शन को ही उन्होंने एकमात्र साधन माना था। इस भावना का यह फल हुआ कि उनके शृंगार वर्णन में किसी न किसी रूप में अधिकतर मिलन का संकेत हो ही जाता है।

नर-गुणगान करने वाले प्राकृत कवियों के युग में होते हुए भी वे उनसे प्रभावित न होकर अपने एक ही सिद्धांत पर दृढ़ रहे। यह बात उन जैसे भक्त कवियों के आत्मबल की परिचायिका है। काव्य के विषय में तादात्म्य की अनुभूति उनकी महत्वपूर्ण विशेषता है। पशु-पक्षी, लता-वृक्ष, जड़-चेतन सभी के साथ उन्हें समवेदना थी, जो हृदय से प्रस्फुटित होकर रस रूप में प्रवाहित हुई।

तुलसीदास के समान उन्होंने खलों और पाखंडियों पर भी दृष्टि रक्खी। लोक-कल्याण की भावना से उन्होंने साखी और सिद्धांत के पदों में अपने अमूल्य उपदेशों को कहा। उनकी शिक्षा व्यापक दृष्टिकोण लेकर सामने आई। कबीर के समान वे स्वतंत्र रूप से प्रत्येक विषय पर अपना विचार रखते थे और आडंबरों से घृणा करते थे। जहाँ उन्होंने व्यभिचार और अनुदारता को पाया, उसकी निर्भयता से प्रताड़ना की। उनके काव्य से, उनका प्रकृति के प्रति प्रेम, मनोभावों का अध्ययन तथा व्यवहारों और रीतियों का ज्ञान आदि प्रकट होता है।

भक्ति-काल के पश्चात् आने वाले रीति-कालीन कवियों ने नायिका-भेद के द्वारा शृंगार का जो स्वरूप उपस्थित किया, उसमें प्रधानतया नायिका की चेष्टाएँ चित्रित की गईं। नायिका की क्रिया, वचन अथवा मनोभावों के इस प्रकार के चित्रण उन्होंने उन पुरुषों की वासना-तृप्ति के लिए प्रस्तुत किये, जिनके आश्रय में रहकर उन्हें जीविका का उपार्जन करना था। उस युग में 'कवि' कहलाने के लिए भी 'रीति' वर्णन करने की एक रीति ही बन गई थी। परंतु भक्तों का शृंगार वर्णन उनकी साधना की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के अनुसार था। इसलिए शास्त्रीय रीति पर ध्यान देने की उन्हें कोई आवश्यकता ही न थी। अतएव आज उनकी वाणी का काव्य-रीत्यनुसार परीक्षण कम से कम उनके उद्देश्य के अनुकूल

नहीं है। किंतु इसमें काव्य के स्वाभाविक गुण किस प्रकार व्यक्त हैं, इसे जानने के लिए काव्यानुरागियों की उत्सुकता हो सकती है।

व्यास जी ने रसों और अलंकारों आदि की शास्त्रीय पद्धति को ध्यान में न रखकर अपने राग अलापे। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर उनके द्वारा जिस काव्य का सृजन हुआ, उसमें शृंगार और शांत रस की प्रधानता है। शांत रस वीर का विरोधी है और शृंगार भी वीर रस का एक आलंबन में विरोध सा रखता है, तथापि वीर रस के रूपकों का भी उक्त रसों के अंतर्गत कथन किया गया है।

युगलकिशोर की माधुर्य उपासना के इस क्षेत्र में श्री राधा वृंदावन की रानी हैं और श्री कृष्ण उनके आधीन रहने वाले आज्ञानुकारी पति। उनका कभी वियोग नहीं होता और जो मानादिक कारणों से क्षणिक अंतर दृष्टि-गोचर होता है, वह भावी मिलन में प्रगाढ़ता उत्पन्न करने के हेतु को ही सिद्ध करता है। ऐसी भावना को व्यक्त करने वाले काव्य में शृंगार रसांतर्गत विप्रलंभ शृंगार का अभाव तो होगा ही, संभोग शृंगार के भी सब हाव और नायिका-भेद की सभी अवस्थाओं के वर्णन करने का अवसर नहीं आ पाता। फलतः उनकी वाणी में स्वाधीनपतिका नायिका के चित्रण की विशेषता है। कहीं-कहीं अवस्था भेद से खंडिता आदि का रूप भी दिखलाई दे जाता है, जो श्री कृष्ण की ब्रज लीलाओं के विविध वर्णनों का प्रचलित विषय रहा है। सखीभाव की उपासना द्वारा उपास्य देवों के अधिक निकट पहुँचने के लिए मानवती नायिका के रूप में भी राधा का वर्णन बहुत हुआ है। श्री कृष्ण अनुकूल पति के रूप में प्रकट होते हैं और वाणी में नायिका के संयोग शृंगार की व्यंजना विशेष रूप से पाई जाती है।

तत्वज्ञान और वैराग्य के फलस्वरूप वर्णन किये गये सिद्धांत के पद तथा साखी के दोहा शांत रस के उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। साधुओं के विरह में करुण रस का तथा पाखंडियों की दशा के चित्रणों में हास्य का भी समुचित आभास मिल जाता है। इन रसों के अतिरिक्त अन्य रसों का वर्णन वाणी में न होने के ही बराबर है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, व्यास जी ने काव्यशास्त्र के शृंगार रसांतर्गत नायिका-भेद को ध्यान में रखकर काव्य का सृजन नहीं किया था, फिर भी इसमें तदनुसार तत्व प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं। अब विभिन्न रसों के कुछ उदाहरण लीजिये—

शृंगार रस

स्वकीया नायिका—

राधिका मोहन की प्यारी ।
नखसिख रूप अनूप गुन सीमा, नागरी श्री वृषभान-दुलारी ॥
बृंदाविपिन निकुंज भवन, तन कोटि चंद उजियारी ।
नव-नव प्रीति प्रतीति रीति रस बस किये कुंजबिहारी ॥
सुभग सुहाग प्रेम रंग राची, अंग - अँग स्याम सिंगारी ।
'व्यास' स्वामिनी के पद-नख पर, बलि-बलि जात रसिक नर-नारी ॥(३७१

अनुकूल नायक—

तब मेरे नैन सिरात किसोरी ! जब तेरे नैन निहारौं ।
कोटि काम-रति, कोटि चंद बदनारबिंद पर वारौं ॥×
तू भूषन धन जीवन मेरें, यह ब्रत मन प्रतिपारौं ।
'व्यास' स्वामिनी के तन-मन पर, राई-लौन उतारौं ॥ (व्या. ८२१)

नायक को पर-स्त्री-संसर्ग के चिह्नों से चिह्नित देख कर ईर्ष्या कलुषित भाव प्रकट करने वाली नायिका को अवस्थानुसार भेद में 'खंडिता' कहा गया है। इन भावों के अनुकूल कथन वाणी में प्राप्त हैं। ब्रज लीला के अंतर्गत खंडिता भाव से राधा अथवा अन्य गोपी सपरिहास कोप प्रकट करने की दशा में प्रकट होती हैं। यथा—

आजु पिय काके हाथ बिकाने ।
ताही कौ भाग सुहाग छबीलौ, जाके उर लपटाने ॥
सुरत रंग की अंगनि उपमा, दुरति न बनति बखानें ।
उर नख, रेख अंग सोहत, मानों ससि गन गगन समाने ॥
पीक लीक नैननि फिरि आई, सोभित पल अलसाने ।
मानौं अरुन पाट के फंदनि, द्वै खंजनि अरुझाने ॥× (८१२)

नायक को दोषी जान कर जब नायिका उससे रूठ जाती है, उस दशा में स्वभावानुसार नायिकाभेद में उसे 'मानवती' संज्ञा दी गई है। नायक द्वारा नायिका को मनाने के अतिरिक्त 'दूती' एवं 'सखी' भी इस कार्य में सहायक होती हैं। वाणी में 'मान' और 'दूती' अथवा 'सखी' संबंधी सुंदर पद प्रचुर परिमाण में हैं। वर्षा ऋतु के आगमन पर कृष्ण मानिनी राधिका को किस प्रकार मनाते हैं, यह व्यास जी से सुनिये। गुरु मान का उदाहरण इस पद में प्राप्त है—

मान न कीजे माननि, वर्षा ऋतु आई ।
अंग संग मिलि गाउ राधिका, राग मलार सुहाई ॥
बिनु अपराधहि रूसनौं छाँड़ि दे, श्री वृषभान दुहाई ।
'व्यास' स्वामिनी साँवरे सुंदर पाँइनि लागि मनाई ॥(व्या० ६७४)

लघु मान को व्यक्त करने वाले इस पद में रूठे को मनाने का
भी देखिये—

मुख छबि अद्भुत होत रिसानें ।
नैननि की सैननि महँ सुंदरि, तेरें हाथ बिकानें ॥×
तोरत अंग रंग भरि पुलकित, रिसि न तजत अकुलानें ॥
अपनौ काज बिगारति नाहिन, आतुर कुसल सयानें ।
'व्यास' उसास लेत दोऊ जन, रबकि कंठ लपटानें ॥ (व्या. ८८५)

राधिका ने कृष्ण की बात रख ली । वे भी कहने लगीं—

सुनहु पिय ! जिय तें हौं न रिसानी ।
तुम्हरें मन कौ मरमु लेत ही, अरु चित काज सिसानी ॥×
लेत उसास आस करि, हरि-हरि कहि राह चरि मुसिकानी ।
समुझि बिनोद 'व्यास' की स्वामिनि, स्याम कंठ लपटानी ॥(व्या.५५४)

देखिये, सखी मानिनी राधिका पर अपना क्या प्रभाव जमा रही
सी स्वाभाविक सीख है । शिक्षा सखी का एक अनमोल उदाहरण
में मिलता है—

कोप करनि कत बात कहे तें ।
रास रजनि में बिरस होत सखि, पिय तें रूसि रहे ते ॥
धरमु न रहतु नाइका कौ कछु, पति कों बिपति सहे तें ।
कीरत बिमल बाढ़ि है जुग-जुग, प्रीति और निबहे तें ॥
बलि-बलि जाउँ रहे न कछू सुख, चंचल मन उमहे तें ।
यह सुनि पिय के हिय लपटानी, 'व्यासहि' चरन गहे तें ॥(व्या.५२८)

व्यास-वाणी में श्री अंगों के वर्णन भी बड़े कोमल हैं । भक्ति
के इन वर्णनों ने रीतिकाल के नख-शिख का पथ प्रशस्त किया था ।
श्री अंगों के वर्णनों में से श्री राधिका जी के आनन का अलंकारिक
में एक सुंदर पद यहाँ उपस्थित किया जाता है—

देखि सखी राधा-मुख चारु ।
मनहुँ छिड़ाइ लयौ इहि, सब उपमनि कौ रूप सिंगारु ॥

दार्यौ, दामिनि, कुंद मद भग, दसननि दै मनु सारु ।
विद्रुम वर बंधूक बिंब मिलि, अधरनि दै रस भारु ॥
सुक, किंसुक, तिलकुसुम तज्यौ मृदु सिरष नासिका ढारु ।
सुभग कपोलनि बोल दियौ तनु, मधुपनि अधिक उदारु ॥×
गौर स्याम सोभा सागर कौ, नाँहिन वारापारु ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि आयै, सकल सरूप उगारु ॥ (३६६)

श्री कृष्ण द्वारा कराये गये राधिका के षोडश शृंगार देखिये—

आजु बनी वृषभानु दुलारी ।
अंग राग भूषन पट रुचि-रुचि, मोहन अपनें हाथ सिंगारी ॥
निकुरनि चंपकली गुहि बेनी, डोरी रोरी माँग सँवारी ।
मृगज बिंदु जुत तिलक इंदुछवि, झलकति अलक मनहुँ अलिनारी ॥×
नखसिख कुसुम बिसिख रस बरसत, रोमनि कोटि सोम उजियारी ।
'व्यास' स्वामिनी पर तृन तोरत, रसिक निहोरत जय जय प्यारी(३६८

निम्नलिखित पदों में संयोग शृंगार के कुछ हावों के अनुकूल तत्व मिलते हैं—

लीला (प्रेमाधिक्य के कारण वेष, अलंकार तथा प्रेमालाप द्वारा प्रियतम का अनुकरण करना)—

कुँवरि कुँवर कौ रूप भेष धरि, नागर पिय पहँ आई ।
प्यारिहि हरि न मिले सकुची जिय उपजी तब इक बुद्धि उठाई ॥
हौं वृंदावन-चंद छबीलौ, राधा-पति सुखदाई ।
तू को 'प्रिया' 'प्रिया' कहि टेरत, तजि बनभूमि पराई ॥×(१६८)

किलकिंचित (अति प्रिय वस्तु की प्राप्ति से गर्व जन्य मंद हास्य, त्रासादि के विचित्र संमिश्रण का भाव—

नैननि नैन मिलत मुसक्यानी ।
मुख सुखरासि निरखि उर उमगत, दुरि करि लाज लजानी ॥
तन सों तन, मन सों मन मिलयौ, ज्यों पिय पय में पानी ।
रसिकनि की गति 'व्यास' मंद पै कैसैं जात बखानी ॥ (३२८)

विभ्रम—(शीघ्रता में भूषणादि का स्थानांतर पर धारण करना)—

अंजत एक नैन बिसरयौ। कटि कंचुकी लहँगा उर धरयौ ।
हरि लपेट्यौ चरन सों ॥
स्रवनन पहिरे उल्टे तार। तिरनी पर चौकी सिगार ।
चतुर चतुरता हरि लई। ×

चकित (प्रिय के आगे अकारण डरना या घबराना)—

जब - जब कौंधति दामिनी,
तब-तब भामिनी डराति प्रीतम-उर लागति ।
उन्मद मेघ-घटा धुनि सुनि निसि,
पियहिं जगावति, आपुनि जागति ॥× (६८३)

मद (सौभाग्य और यौवन के गर्व से उत्पन्न मनोविकार)—

पिय कों नाँचन सिखावत प्यारी ।
बृंदावन में रास रच्यौ है, सरद-चंद उजियारी ॥
मान-गुमान लकुट लिएं ठाढ़ी, डरपत कुंजबिहारी ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखत, हँसि-हँसि दै कर-तारी ॥ (६६२)

विच्छित्ति (कांति को बढ़ाने वाली अल्प वेश-रचना)—

पाटी सिलसिली सिर लसति ।
सहज सिंगार सुकेसी केसनि, स्वरनि जूथिका लसति ॥× (३३५)

कुट्टमित (केश, स्तन और अधर आदि के ग्रहण करने मे आतरिक हर्ष होने पर भी बाहरी घबराहट के साथ सिर और हाथों का परिचालन करना)—

कुँवरि प्रवीन सु बीन बजावति ।
बंसीवट निकट निकुंजनि बैठी, सुख-पुंजनि बरषावति ।×
लेति उसाँस, देति कुच-दरसन, परसत सकुचि दुरावति ॥ (४४५)

शृंगार रस के उद्दीपन विभावों में चंद्र, चाँदनी, कोकिलादि पक्षियों का गुंजार, मधुर गान, वाद्य, नदी-तट, कमनीय केलि-कुंज और ऋतुओं के वर्णन प्रस्तुत होते हैं। इनके बड़े ही सुंदर उदाहरण व्यास-वाणी में भरे पड़े हैं। शरद् ऋतु की निर्मल चंद्रिका का उद्दीपन स्वरूप में वर्णन करने वाला एक पद देखिये—

दोऊ मिलि देखत सरद-उज्यारी ।
बिछी चाँदनी मध्य पुलिन कें, तास जरी फुलकारी ॥ (६२१)

श्री कृष्ण द्वारा रासोत्सव की योजना देखिये—

रास रच्यौ बन कुंजबिहारी ।
सरद-मल्लिका देखि प्रफुल्लित, बनि आई पिय-प्यारी ॥
बाम स्याम कें स्यामा सोभित, जनु चाँदनी अँधियारी ।
भूषन गन तारिका तरल छबि, बदन-चंद उजियारी ॥
कोमल पुलिन कमल मंडल महँ मंडित नवल दुलारी ।
बाजत ताल मृदंग संग, नव अंग सुधंग सिंगारी ॥ (६२६)

व्यास जी को रास से विशेष प्रेम था उन्होंने रास संबंधी बहुत सुन्दर पद लिखे हैं, जिन्हें पढ़ते समय रासोत्सव की छटा सामने नाँचने लगती है। श्रीमद् भागवत के दशम स्कंध के अध्याय २९ से ३३ तक को रास पंचाध्यायी कहते हैं। उनमें वर्णित कथा के आधार पर व्यास जी ने त्रिपदी छंद में रास पंचाध्यायी† की बड़ी सरस रचना की है।

वसंत, फाग और वर्षा ऋतु के भी ऐसे ही मनमोहक वर्णन हैं। वाणी में संगृहीत अनेक पदों में से उदाहरण रूप में एक-एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है।

वसंत ऋतु—

चलि देखहि वृंदावन वसंत आयौ।
फूलन फूलनि के भँवरा, मारुत मकरंद उड़ायौ॥
मधुकर कोकिल कीर कोक मिलि, कोलाहल उपजायौ।
नाँचत स्याम बजावत गावत, राधा राग जमायौ॥
चोवा चंदन बुका बदन, लाल गुलाल उड़ायौ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, रोम-रोम सचु पायौ॥ (६४६)

फाग खेलने का हुल्लड़ सुनकर गोपियाँ कब घर में रह सकती थीं। वे भी युगलकिशोर की उस फाग क्रीड़ा में सम्मिलित होने के लिए दौड़ कर आ गईं—

खेलत फाग फिरत दोऊ फूले।
स्यामा स्याम काम बस नाँचत, गावत सुरत हिंडोरे झूले॥ ×
कोलाहल सुनि गोपी धाईं, बिसरे गृह, पति लोक कसूले।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, नैन कुरंग रहे तकि भूले॥ (६५८)

---

† रास पंचाध्यायी के नाम से नंददास, कृष्ण देव, दामोदर, गोपालराम, कृष्णराम चौबे, सुंदरसिंह, माधा कृष्णदास आदि कवियों ने रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। हिंदी साहित्य संसार में नंददास की रास पंचाध्यायी प्रसिद्ध है, जो उनकी अंतिम काल की रचनाओं में गिनी जाती है। व्यास जी की रास पंचाध्यायी कदाचित् इस नाम की अन्य हिंदी रचनाओं में प्राचीनतम है।

श्री हित हरिवंश जी के शिष्य सेवक जी ने 'हित विलास' एवं श्री 'हरिवंश नाम प्रताप यश' तथा संवत् १६६४ वि० में राधावल्लभीय संप्रदाय के एक कवि चतुर्भुज दास ने 'भक्ति प्रताप' ग्रंथ व्यास जी की रास पंचाध्यायी की शैली पर रचे थे।

वर्षा ऋतु—

आज कछु कुंजनि में बरषा सी ।
बादल दल में देखि सखी री, चमकति है चपला सी ॥
नान्ही-नान्ही बूँदनि कछु धुरवा से, पवन बहे सुखरासी ।
मंद-मंद गरजनि सी सुनियतु, नाँचति मोर-सभा सी ॥
इंद्रधनुष बग-पंगति डोलति, बोलति कोक-कला सी ।
इंद्रवधू छवि छाइ रही, मनु गिरि पर अरुन घटा सी ॥
उमँगि महीरुह सी महि फूली, भूली मृग-माला सी ।
रटत 'व्यास' चातक ज्यों रसना, रस पीवत हू प्यासी ॥ (६८६)

व्यास जी की उपासना कृष्ण के बाल स्वरूप की न होने से उस रूप का चित्रण तो उन्होंने नहीं किया, किंतु अपने उपास्य श्री किशोर और किशोरी जी की जन्म बधाइयाँ अवश्य ही उन्होंने बड़े सरस पदों में गाई हैं। इन बधाइयों मे कवि का हर्ष और उत्साह देखने योग्य है। नंद के घर पुत्र जन्म होने की सूचना पाकर व्रजवासी फूले नहीं समाते। वे सब काम-काज छोड़कर उस आनंद में भाग ले रहे हैं। कवि का रस में तादात्म्य भाव कितना प्रौढ है, देखिये—

चलहु भैया हो नंद महर घर बाजत आजु बधाई ।
जनम्यौ पूत जसोदारानी, गोकुल की निधि आई ॥
कोऊ बन जिनि जाउ गाय लै, आवहु चित्र बनाई ।
करहु कुलाहल, नाँचहु, गावहु, हेरी दै-दै भाई ॥ ×
बाजत झांझ, मृदंग, चंग, डफ, बीना, बेंनु सुहाई ।
जय-जय धुनि बोलत डोलत मुनि कुसुमावलि बरषाई ॥
परम उदार सकल ब्रजबासिन घर-घर बात लुटाई ।
जाचक धनी भये, बड़भागी 'व्यास' चरन-रज पाई ॥ (६०१)

रावल‡ में वृषभानु के घर आज बधाई बज रही है। महावन* में इसकी सूचना मिलते ही वहाँ से कवि रावल की ओर दृष्टि फेंकता है और वह सब का ध्यान बृषभानु के घर पर फहराती हुई मांगलिक ध्वजा पर आकर्षित कर 'खबर' की पुष्टि पहिले ही प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् कहीं 'दूब' बाँधने को वहाँ से ब्राह्मण आ पाता है। देखिये—

‡ मथुरा से चार मील दूर श्री राधिका का जन्म स्थान।

* यह रावल से लगभग दो मील दूर है। नंद और यशोदा यहीं रहते थे और यही पुराना गोकुल था।

भैया आज रावल बजति बधाई।
ढोल, भेरि, सहनाई धुनि सुनि, खबर महाबन आई॥
वह देखो बृषभान-भवन पर, बिमल धुजा फहराई।
दूब लयें द्विज आयौ तब ही, कीरति कन्या जाई॥ (६१०)

उक्त पद में 'वह देखो बृषभान-भवन पर बिमल धुजा फहराई' चरण में क्या ही सुंदर चित्र उपस्थित किया है! कवि कितना सजीव वर्णन कर सकता है, इसको प्रकट करने के लिए यह एक पंक्ति ही पर्याप्त है। व्यास-वाणी के पदों से प्रकट होता है कि उन्होंने अत्यंत निकट उपस्थित होकर राधाकृष्ण की लीलाओं, उत्सवों और विविध प्रसंगों के वर्णन किये हैं। यद्यपि इनका ऐतिहासिक मूल्य नहीं है, तथापि भावना क्षेत्र में रस-संचरण करने में ये वर्णन अधिक प्रभावोत्पादक हुए हैं।

शृंगार रस के विवेचन में उसके अंतर्गत प्रभूत नायिकाभेद को दृष्टि में रखकर यद्यपि उपर्युक्त कुछ पदों को उद्धृत किया गया है, तथापि यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि राधाकृष्ण की लीलाओं के वर्णन व्यास जी ने नायिका-नायक के रूप में प्रस्तुत नहीं किये थे, वरन् उन्होंने उनमें उपास्य देवोचित श्रद्धा के साथ अपनी विशिष्ट भक्ति-भावना के बल पर युगलबिहारी के अलौकिक दर्शन पाये। उनकी वाणी में प्राप्त अन्य रसों के उदाहरण देखिये—

वीर रस

व्यास-वाणी में शुद्ध वीर के उदाहरण ढूँढने का प्रयास ही न करना चाहिए, क्यों कि यह रस कवि के वर्ण्य विषय से ही मेल नहीं खाता। परंतु शृंगार के कुछ पदों में वीर रस के रूपक प्रस्तुत हुए हैं, देखिये—

आजु अति कोपे स्यामा-स्याम।
बीर खेत बृंदावन, दोऊ करत सुरत-संग्राम॥×
जीती नागरि, हारे मोहन, भुज संकट में घेरे।
पीन पयोधर, हार-नितंब, प्रहार किये बहुतेरे॥
प्रनय कोप बोली कैतव, अपराध किये तैं मेरे।
परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि, छाँड़ि दिये करि चेरे॥ (४८८)

दानवीर—

हरि सौ दाता भयौ न आहि।×
जाहि भक्त की लाज बड़ाई, दीनी द्रुपद सुतांहि॥
जाकी दान-मान की महिमा, सकत न बेद सराहि।

'जिहि चिरवा लै, कमला दीनी', मंद न माँगत ताहि ।
पतित पिंगलहि आलिंगन दै, रूप दियौ कुब्जाहि ।। (व्या. ६५)

धर्मवीर—

गुरु की सेवा हरि करि जानी ।×
यह सुनि सकुचि गये वन मोहन, सिर धरि मौरी आनी ।
भूखे - प्यासे मेहु सह्यौ, निसि - भोर भर्यौ हरि पानी ।। (२)

दयावीर—

असरन-सरन स्याम जू कौ बानौ ।×
दयासिंधु दीननि कौ बांधव, प्रगट भागवत कहानौ ।×
"व्यास" कलंक लगै तो जननी जौ न पितहि पहिचानौ ।। (७०)

हास्य रस

व्यंग द्वारा स्मित हास्य की मधुर व्यंजना का उदाहरण लीजिये—

हरि-भक्तन तें सम्धी प्यारे ।
आये संत दूरि बैठारे, फेरत कान हमारे ।।
दूर देस ते सारे आये, ते घर में बैठारे ।
उत्तम पलिका, सौरि सुपेती, भोजन बहुत सवारे ।।
भक्तनि दीजै चून चननिकौ, इनकौं सिखवट न्यारे ।
'व्यासदास' ऐसे विमुखनि, जम सदा कढ़ेरत हारे ।। (२६५)

करुण रस

श्री हित हरिवंश के निधन पर उन्होंने अपने जो शोकोदगार
क्ये हैं, वे बड़े ही हृदयस्पर्शी हैं, देखिये—

हुतौ सुख, रसिकन कौ आधार ।
बिनु हरिबंसहि, सरस रीति कौ कापै चलि है भार ।।
को राधा दुलरावै - गावै, बचन सुनावै चार ।
श्री बृंदावन की सहज माधुरी, कहि है कौन उदार ।।
पद - रचना अब कापै ह्वै है, निरस भयौ संसार ।
बड़ौ अभाग अनन्य सभा कौ उठिगौ ठाठ-सिंगार ।। (२४)

अदभुत रस

शृंगार के योग से अद्भुत रस का वर्णन एवं उत्तमा दूत
देश का क्रियात्मक प्रदर्शन इस पद में देखिये—

सँदेसौ कह्यौ दूतिका आनि ।
अनबोलै सब अंग दिखाये, नागरि लै है जानि ।।×
मूंदत स्रवन, उसास कंठ धरि, फारत पट दुखदानि ।
वनमाला तोरति - जोरति कर, पाँइ परति मुसकानि ।।

सातल माह कमल उर पद आए, कहाल लम लपटान ।
आँगे विरदा मुनि मुनि-कल ताजि, छूटी जिय की आनि ॥
'श्यामदास' के ममुक्षि विनोदनि, कुँवर जिवावे आनि ॥ (श्या.५२०)

श्याम जी का वर्ण्य विषय रौद्र, भयानक और वीभत्स रस के अनुकूल न होने के कारण इन रसों के उल्लेखनीय उदाहरण वाणी में नहीं पाये जाते। प्रस्तुत वर्णन के प्रसंग में अत्यंत सीमित रूप में कहीं-कहीं इन रसों के अनुकूल भावों का उदय और उनकी शांति दृष्टिगोचर होती है—

रौद्र रस (क्रोध)

जो हौं सत्य मुकुन्द कौ जायौ ।
तौ मेरो मन साँचौ करि हरि, तुम दारुन दुख दुख पायौ ॥
मो अनन्य के मंदिर में, जिनि आनि अनग पुजायौ ।
तिनकौ वंस बेगि हरि तोरहु, मार मूठ जिनि ग्यायौ ॥ × (२६०)

भयानक रस (भय)

×साकत देखें डरु लागत है, नाहर हू ते भारी ।
भक्त हेत मम प्रान हरत है, नेक न डरे मदधारी ॥×

निम्न पद में वीभत्स की व्यंजना है, किंतु प्रधानता शांत रस की ही है—   *वीभत्स रस (जुगुप्सा)*

जूठन जे न भक्त की खात ।
तिनके मुख सूकर-कूकर के, अभक्ष्य भक्ष्य पीवत गात ॥
जिनके बदन सदन नरकनि के, जे हरिजननि घिनात ।
काम विवस कामिनि के पीवत, अधरन लार चुचात ॥
भोजन पर माखी मूतति है, ताहू करि सो ग्वात ॥ ×(व्या१५४)

निम्न पद में हृदय की अमूल्य अभिलाषा ने शांत रस को पुष्ट किया है—   *शांत रस*

ऐसौ मन कबि करिहौ हरि मेरौ ।
कर करवा, कामरि काँधे पर, कुंजनि माँझ बसेरौ ॥
ब्रजवासिन के टूक भूख में, घर-घर छाछि-महेरौ ।
छुधा लगै तब माँगि ग्वाऊँगौ, गनौं न साँझ - सबेरौ ॥ × (२६३)

(५) *वाणी की कलात्मकता*—भक्तिकाव्य में रस की अपेक्षा अलंकार पर अधिक आग्रह होने की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है। भावप्रधान

कविता होने के कारण, व्यास-वाणी में अर्थालंकारों का विशेष सौन्दर्य है। कोमल और सरस पदावली के प्रयोग मे अनुप्रासों और यमकों का चमत्कार भी पग-पग पर दिखाई देता है। यों तो उनकी वाणी की ओर विभिन्न अलंकार आकर्षित हुए हैं, किंतु उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि व्यास जी को अधिक प्रिय प्रतीत होते हैं। इन भावात्मक अलंकारों के प्रयोग से शब्दों के चित्र से बन गये हैं। उनकी वाणी में श्लेष आदि ज्ञानात्मक अलंकारों के प्रयोग नहीं पाये जाते। इससे सिद्ध है कि व्यास जी ने अपनी कविता को अलंकृत करने का प्रयास नहीं किया, वरन् हृदय के स्वाभाविक उद्‌गारों को व्यक्त करने में उनकी भाषा अपने आप अलंकृत हो गई है। कुछ अलंकारों के चमत्कार उनके पदों में देखिये। इन उदाहरणों में प्रस्तुत अर्थालंकारों के अतिरिक्त अनुप्रास आदि शब्दालंकार तथा अन्य अर्थालंकार भी यत्र-तत्र दिखाई देते हैं।

उपमा—

गौर मुख चंद्रमा की नॉंति।
सदा उदित वृंदावन प्रमुदितकुमुदिन, वल्लभ जाँनि ॥ × (व्या. ३४६)

उत्प्रेक्षा—

गौर स्याम सुंदर मुख देखत मेरे नैन ठगे।
मानहुँ चंद-किरन मधु पीवत, राति चकोर जगे॥
सरद कमल मकरंद स्वाद रस, जनु अलिराज खगे।
निरखत हास-बिलास-मधुरता, लालच पल न लगे॥ (व्या.४३७)

रूपक—वृंदावन के लिए राजधानी का रूपक देखिये—

माया काल न रहत वृंदावन, रसिकन की रजधानी।
सदा राज ब्रजराज लाड़िलौ, राधा संतत रानी॥
मथुरा मंडल देस सुबस, गढ़ गोवर्धन सुखदानी।
रास भंडार सुभोग रहत, अति पावन जमुना पानी ॥(व्या० ४३)

वृंदावन की शोभा का उन्होंने अपनी माधुर्य उपासना के तत्वों मे कैसा सुंदर वर्णन किया है, उसे भी सुनिये—

श्री वृंदावन की सोभा देखत, बिग्ले साधु सिरात।
बिटप-बेलि मिलि केलि करत, रस-रंग अंग लपटात॥
भुज साखनि परिरंभन, चुंबन देत परसि मुख पात।
कुच फल सदय हृदय पर राजत, फूल दसन मुसकात॥ (व्या. ४४)

परंपरित रूपक—

दुख-सागर कौ वार न पार ।
जुग-जुग जीव थाह नहि पावत, बूड़त सिर धरि भार ॥
तृष्ना तरल बयारि झकोरति, लाभ लहरि न उतार ।
काम क्रोध भर मीन-मगर डर, नाँहिन कहूँ उबार ॥ (१४५)

बिभावना (पाँचवीं)—निम्न पद की कितनी जोरदार भाषा है ! ाधना की अनन्यता से आत्मबल का पुष्टीकरण देखिये—

अनन्यनि कौन की परवाहि ।
श्री कुंजबिहारी की आसा करि, ले कमरी करवाहि ।
कोटि मुकुति सुख होत, गोखरू जबै गड़ै तरवाहि ॥ (६८)

गोखुरू (काँटा) के चुभने में कोटि मुक्ति के बराबर सुख मिलने ी कैसी सुंदर भावात्मक कल्पना है ! इसी प्रकार—

सुभग गोरी के गोरे पाँइ । ×
जमुना जल के दूर करत मल, चरननि पंक छुटाइ ॥

उल्लेख—

मोहनी कौ मोहन प्यारौ ।
आनँदकंद सदा बृंदावन, कोटि चंद उजियारौ ।
ब्रजबासिन के प्रान जीवनि धन, गोधन कौ रखवारौ ॥
नंद - जसोदा कौ कुल मंडन, दुष्टनि मारन वारौ । (६६३)

रूपकातिशयोक्ति—केवल उपमानों द्वारा शिख-नख का वर्णन सुनि

चंद्र बिब पर वारिज फूले ।
ता पर फनि के सिर पर मनिगन, तर मधुकर मधुमद मिलि भूले ॥
तहाँ मीन, कच्छप, सुक खेलत, बंसीहि देखि न भये बिकूले ।
बिदुम-दारयौ में पिक बोलत, केसरि-नख-पद नारि गरूले ॥ × (३७

केवल उपमानों में राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप का चित्र देखिये-

आवत सखि चंदा साथ अँध्यारी ।
घन-दामिनि, चकोर-चातिक मिलि, मोरति राका प्यारी ॥
गज, मराल, केहरि, कदली, सर, बक, चकवा, सुक, मारी ।
खंजन, मीन, मकर, कच्छप, मृग, मधुप, भुजंगिनि कारी ॥ (४४०

भ्रांतिमान—

मोहन मुख की हौं लेउँ बलाइ ।
बोलत, चितवत, हँसत, लसत छबि, उपजत भ्रांति माइ

भँवरनि कौ संभ्रम करि भँवरिनि, भेंटति अलकनि आइ ।
खेजत नैननि सों खंजन भुव, धनुषहि रहे डराइ ॥ (४०३)

लोकोक्ति—

कहा भयौ जो प्रान-रवन तें, बारक चूक परी ।
'ठाकुर लेइ सँवारि बेग ज्यों, सेवक तें बिगरी' ॥(५२४)

अधिक—

माला-हरिमंदिर ते पावन, वृंदावन की रैनु ।
भक्त भागवतहू तें प्यारी,रसिकनि मोहन बैनु ॥
महाप्रसाद स्वाद तें मीठौ,गाइन कौ पय फैनु ।
साधु संग तें अधिक जानिवौ, ग्वाल-मंडली धैनु ॥ ×(५०)

मीलित—

गई ही खरिक दुहावन गाइ ।
खोरि सांकरी छैल छबीलौ अंचल पकरयौ धाइ ।
तैसी निसि अँधियारी, तैसोई स्याम न जान्यौ जाइ ॥ × (७२०)

भावक—

मन बावरे तू हरि पद अटक्यौ ।
अब तै साँचौ सुख पायौ, तब दुख लगि घर-घर भटक्यौ ॥
भली करी तैं मोह तोरिकै, बृंदावन कों सटक्यौ ।
नै देख्यौ कुंजनि में मोहन, राधा के उर लटक्यौ ॥ ×(२३५)

संभावना—

जौ पै सबहिनि भक्ति सुहाती ।
तौ बिद्या,बिधि,बरन,धर्म की,जाति रसातल जाती ॥
होते जो न बहिर्मुख कलिजुग, आनंद सृष्टि अघाती ।
होती सहज समीति सबनि में,प्रीति न कहूँ समाती ॥ × (२७८)

(६) *पिंगल*—व्यास जी ने अपने पदों की रचना कीर्तन के दृष्टि-
ते की थी । किसी छंद विशेष के लक्षणों पर ध्यान रखे बिना
के ताल-स्वर में राग को बैठाकर उनकी वाणी प्रस्फुटित हुई है। इस
े काव्य को गीति काव्य कहा जाता है । इन गीतों का प्रस्तार क
र वर्ण एवं मात्रा संख्या के लघु-गुरु विपर्यय कर पिंगल शास्त्रानुसार
ार तो किया जा सकता है, किंतु इस ओर व्यास जी का विशेष
ी प्रतीत नहीं होता । संगीत के अनुरूप वाणी की शब्द-योजना
अभिप्रेत थी ।

साखी के लिए उन्होंने पदों के साथ-साथ पूर्व प्रचलित दोहा छंद अपनाया। इस छंद का उपयोग वीरगाथा काल से ही अधिक होता चला आ रहा था और कबीर आदि संत भी साखी में इसी छंद का प्रयोग कर चुके थे। रास पंचाध्यायी उन्होंने त्रिपदी छंद में लिखी।

(७) *चरित्र चित्रण*—व्यास-वाणी दो भागों मे विभक्त है, एक सिद्धांत और दूसरा श्रृंगार रस। सिद्धांत भाग में स्तुति, उपदेश एवं भक्ति की महिमा आदि विषयों के वर्णन है, अतएव इस भाग मे पात्रों की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। प्रसंगानुसार जहाँ लोभी, कपटी, साधु-विमुख आदिकों के वर्णन आये है, उनके पढ़ने से ऐसे व्यक्तियों का एक चित्र सा सामने खड़ा हो जाता है। श्रृंगार रस भाग में राधा और कृष्ण के श्रृंगारिक चित्र प्रस्तुत हुए है। वे व्यास जी के आराध्य देव ही है। माधुर्य उपासना मे उत्कृष्ट रतिभाव के वर्णन के लिए युगल स्वरूप का किशोरावस्था में चित्रण हुआ है। युगल दंपति की प्रत्येक प्रेम चेष्टा को ऐसे मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया गया है कि लौकिक काम-वासना वाले भक्तिहीन युवक-युवतियों को तो राधा और कृष्ण दोनों काम-कला-विशारद प्रतीत हो सकते है। किंतु इस विलास क्रीड़ा के रूप मे आध्यात्मिक भाव छिपे हुए है। बिना आध्यात्मिक अर्थ के तो लोग व्यास-वाणी को क्या, समस्त कृष्णभक्ति-काव्य के दिव्य प्रेम को संसारी वासना मान कर उसके एक विशेष भाग को अश्लील तक कह डालेंगे!

व्यास जी ने कृष्ण की श्रृंगार लीला के वर्णन के साथ-साथ संसार पर भी दृष्टि डाली है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें श्रीकृष्ण की बाल-लीला में भी लीन रहने का उल्लेख किया है‡, जो उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। युगल दंपति के विवाह के पूर्व के वर्णन व्यास वाणी में नगण्य के बराबर हैं। अतएव व्यास जी को कृष्ण की बाल-लीला में लीन रहना नहीं कहा जा सकता। राधा और कृष्ण के जन्मोत्सव के वर्णन भी बाल-लीला के चरित्र नहीं कहे जा सकते, क्यों कि उनमें नंद-वृषभानु, यशोदा-कीरति एवं अन्य गोप-गोपियों के आनंदोत्सव के गीत गाये गये है। इसके अतिरिक्त व्यास-वाणी में ब्रजलीला रस के अंतर्गत कृष्ण की अन्य लीलाओं के भी कुछ वर्णन है, जिनमें दान लीला, पनघट लीला आदि में श्रृंगार रस की भावनाएँ ही व्यक्त हैं। 'वात्सल्य' के शुद्ध व्यक्तीकरण के उदाहरण बहुत थोड़े हैं। यथा—

‡ हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १६०

बाल-चबैनी ग्वाल चबात ।
मीठी लागत मोहन के सँग, घर की छाक न खात ।।
टोरि पतौवा, जोरि पतोखी, पय पीवत न अघात ।
मधुर दही के स्वाद निबेरत, फूले अँग न समात ।।
कबहुँक जमुना जल में पैरत, मोहन मारत लात ।
बूड़क लै उछरत छलबल सों, स्याम गात लपटात ।।
कबहुँक खग-मृग-भाषा बोलत, बन सिंघें न डरात ।
अदभुत लीला देखि देखिकै, 'व्यासदास' बलि जात ।। (७०६)

इसलिए कहा जा सकता है कि कोई प्रबंधात्मक वर्णन न होने एवं मुक्तक काव्य-रचना के कारण व्यास जी को पात्रों के चरित्र-चित्रण करने का विशेष अवसर ही न था ।

(८) *व्यापकता*—व्यास-वाणी के सिद्धांत भाग में लोक-कल्याण की भावना को लेकर अनेकों महत्वपूर्ण विषयों पर व्यास जी के उपदेश और विचार संकलित हैं । विविध प्रसंगों में उद्धृत उदाहरणों के अतिरिक्त यहाँ ऐसे पद दिये जाते हैं, जो व्यास-वाणी के व्यापक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालने में सहायक होंगे । जहाँ इन वर्णनों से धर्म और आध्यात्मिक धाराओं को बल मिला है, वहाँ साहित्य-सृजन और ऐतिहासिक तथ्यों के संरक्षण के कारण वे और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं । प्रकृति-निरीक्षण, जीव मात्र के साथ आत्मानुभूति, ब्रजभूमि और विशेष कर वृंदावन से अनुराग, के जैसे सजीव वर्णन व्यास जी ने प्रस्तुत किये हैं, वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं । वृंदावन के वृक्षों के प्रति उनका आदर-भाव देखिये—

प्यारे श्री बृंदावन के रूख ।
जिन तर राधा-मोहन बिहरत, देखत भागत भूख ।।
माया-काल न व्यापै जिन तर, सींचै प्रेम-पयूख ।
कोटि गाय-बाँभन हत, साखा तोरत हरहि बिदूख ।। × (५१)

पाखंड से घृणा—नीचे लिखे पद में झूठे तथा कपटपूर्ण आचरण करने वालों की लज्जास्पद दशा का कैसा प्रभावोत्पादक वर्णन है, देखिये—

बिनु भक्तिहि, जे भक्त कहावत ।
भीतर कपट निपट सब ही सों, ऊपर उज्जल ह्वै जु दिखावत ।।
धन सब ही कौ घूंसि टूंसि कै घर भरि, सठ सो सुतनि खवावत ।
दिन-दिन क्रोध बिरोध जगत सों, सो घन बोध हियौ भरि आवत ।। ×
(व्या वा २६४)

कलियुग के प्रभाव ने संसार की दशा ही बदल दी। उपदेशकों के आचरण भी नीच हो गये। संतों के द्वारा जाति-भेद माना जाना देख कर व्यास जी क्षुब्ध थे। ब्राह्मण के घर में जन्म पाना ही लोगों की आमदनी का एक साधन बन गया था। लड़-झगड़ कर तामसी वृत्ति में धन प्राप्त करने वाले ब्राह्मण पर व्यास जी करोड़ों कसाई न्योछावर कर देते हैं, देखिये—

धर्म दुरयौ कलि दई दिखाई।
कीनौ प्रगट प्रताप आपनौ, सब बिपरीति चलाई॥
धन भयौ मीत, धर्म भयौ बैरी, पतितन सों हितवाई।
जोगी-जपी-तपी-संन्यासी ब्रत छाँड्यौ अकुलाई॥×
दान लैन कों बड़े पातकी, मचलनि कों बँभनाई।
लरन-मरन कों बड़े तामसी, वारों कोटि कसाई॥
उपदेसनि कों गुरू गुसाईं, आचरनै अधमाई।
'व्यासदास' के सुकृत साँकरे, श्री गोपाल सहाई॥ (१२६)

उन्हें जाति-पाँति में भेदभाव मान्य नहीं था। जहाँ वे तामसी ब्राह्मणों पर करोड़ों कसाई न्यौछावर करते हैं, वहाँ वे रैदास जैसे भक्त पर करोड़ों ब्राह्मण भी न्यौछावर कर देते हैं—

'व्यास' बड़ाई छाँड़िकै, हरि-चरनन चित जोरि।
एक भक्त रैदास पर, वारौं बामन कोरि†॥

पर-उपदेश-कुशलता आगे काम नहीं दे सकती। 'कहो सो करो' इसी पर वे अपने उपदेशों में बल देते रहे—

बाम्हन के मन भक्ति न आवै। भूलै आप सबनि समुझावै॥ (२१३)

उनका कहना था कि बिना वास्तविक त्याग के दिखावटी बृंदाबन-बास करने से क्या लाभ उठा सकते हो—

कहा भयौ बृंदावनहिं बसै।
जौलगि व्यापत माया, तौलगि कह घर ते निकसै॥
धन-मेवा कों मंदिर-सेवा, करत कोठरी बिषै रसै।×
कंचन हाथ न लेत, कमंडल में मिलाय बिलसै।
'व्यास' लोभ रति हरि हरिदासनि परमारथहिं खसै॥ (१३६)

---

† यह दोहा भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी के छप्पय 'इन मुसलमान हरि-जनन पर, कोटिन हिंदुन वारिये' का स्मरण दिलाता है।

नैतिक आदर्श—उपदेश के अनुकूल आचरण करने तथा आशा को त्याग ने पर ही दुःख से मनुष्य दूर हो सकता है। भागवत में वर्णित भक्ति का प्रचार करने वाले उपदेशकों में जो उस समय स्वामी, भट्ट तथा गुसांई (गोस्वामी) की उपाधियों से सम्मानित हो रहे थे, परस्पर प्रेम-भाव का अभाव व्यास जी को खटकता था। क्योंकि भक्ति के प्रचार का समान उद्देश्य होते हुए भी आपसी प्रेम छोड़कर वे धन के कारण अपने शिष्यों की संख्या बढ़ाने में तो लगे थे, परंतु वास्तविकता से दूर होते जा रहे थे—

जैसी भक्ति भागवत बरनी।
तैसी बिरले जानत, मानत कठिन रहिन तें करनी॥
स्वामी भट्ट गुसाईं अगनित, मति करि गति आचरनी।
प्रीति परस्पर करत न कबहूँ, मिटै न हिय की जरनी॥ (१४२)

ब्रज-भूमि में अचल निवास करने का उपदेश देने वालों के द्वारा ही बंगाल और गुजरात में जाकर लोगों को ठगने की कथाएँ सुनकर वे उन्हें अज्ञानी बनाते थे—

भटकत फिरत गौर-गुजरात।
सुखनिधि मथुरा तजि बृंदावन, दामन कों अकुलात॥×
'व्यास' बिबेक बिना संसारहिं, लूटत हू न अघात॥ (१३३)

तथा—

एक भक्ति बिनु घर-घर भटकत।×
औरन के सुख संपति देखत, लेत उसास लिलारी पटकत।×
गुरु गोबिंद लजाइ, आपनौ सहि अपमान, दान लै मटकत॥(१३२)

वाणी और कर्म की समानता अनन्य धर्म है, और इन दोनों में भेद है व्यभिचार, यह व्यास जी ने बताया है—

जाकी है उपासना, ताही की बासना,
ताही कौ नाम, रूप, गुन गाइयै।×
सोई बिभचारी आन कहै, आन करै,
ताकौ मुख देखे, दारुन दुख पाइयै॥ (व्या. ६२)

आदर्शता से पतित हो जाने वाले उपदेशकों से ही केवल उन्हें न कहना था, शिष्यों को भी तो अपने कर्तव्य का ध्यान दिलाना आवश्यक था। 'लोभी गुरू, लालची चेला' पर भी एक पद सुनिये—

गुरुहिं न मानत चेली-चेला।
गुरु रोटी-पानी सों घूंन्ति, सिष्य कें दूध पियैं त्रुकरेला "

सिष्यनि कें सौने के बासन, गुरु कें कूँड़ी-कुँड़ेला ।×
'व्यास' आस जे करत सिष्य की, तिनतें भले भँड़ेला ॥ (१२७)

विश्व-कल्याण की भावना—कलियुग के उद्धार के लिए 'हरिनाम को बताकर भक्ति करने का व्यास जी ने उपदेश दिया । भक्ति की कसौटी उन्होंने 'सबसे प्रेम करना' निर्धारित की । देखिये—

कलिजुग मन दीजे हरि-नामै ।
आराधन-साधन धन कारन, कत कीजे बे कामैं । (व्या. वा. १७१)

संतों को उन्होंने भगवान का सच्चा मंदिर कहा है—

साँचे मंदिर हरि के संत ।
जिन मन मोहन सदा बिराजत, तिनहि न छाँडत अंत ॥ (१५७)

संतोष—

जैसे सुख मोहन हमहि दिखावत ॥
ऐसे सुख भुगति मुकति के भोगी, सपनें हूँ नहि पावत ।×
हरि की कृपा जानियै तबहीं, संत घरहि जब आवत ॥
इहि बिधि 'व्यास' कहाइ अनन्य, पाइ सुख अनत न कितहूँ धावत ॥ (२४२)

अपने पुत्र को उपदेश देते हुए वे श्री कृष्ण की जन्म-भूमि मथुरा तक पहुँचने भर में उसकी मनोकामना की पूर्ति हो जाना निश्चित बताते है । जगत-पिता पर विश्वास जमाने के लिए वे कहते है—

भजहु सुत ! साँचे स्याम पिताहि ।
जाके सरन जात ही मिटि है, दारुन दुख की डाहि ॥
कृपावंत भगवंत सुने मैं, छिन छाँड़ौ जिनि ताहि ।
तेरे सकल मनोरथ पूजैं, जो मथुरा लौं जाहि ॥× (११६)

नाम की स्तुति—मन की एकाग्रता और हरिनाम-स्मरण पर उनके अनुभूत प्रयोग सुनिये—

हरि बोलि, हरि बोलि प्यारी रसना । हरि बोले बिनु नरकहि बसना ॥
हरि बोलि नाँचि न मेरे मना । हरि बोलि होइ निरमल तना ॥
हरि - नाम हरि - नाम सदा जपना । हरि बिनु 'व्यास' न कोऊ अपना ॥
(व्या. वा. ३४)

आत्म संयम—

दुविधा जब जै है या मन की ।
निर्भय ह्वै कै भज [illegible], रज श्री वृंदावन की

कामरि लै, करवा जब लैहै, सीतल छाँह कुंजन की ।
अति उदार लीला गावहुगे, मोहन-स्याम सुघन की ॥
इन पाँइनि परिकरमा दैहैं, मथुरा-गोवर्धन की ।
'व्यास' दास जब टेक पकरिहै, ऐसैं पावन पन की ॥ (व्या. १६७)

वासनाओं की बलि—

काहै भजन करत सकुचात ।
पर-धन, पर-दारा-तन चितवत, तब कहि क्यों न लजात ॥
मिथ्या बाद-बिवाद बकन कौं, फूल्यौ फिरत कुजात ।
फूट्यौ कर्म, भर्म हिय बाढ़्यौ, तजि अमृत विष खात ॥ ×
हरि-गुन गाइ, नाँचि निर्भय ह्वै, 'व्यास' लखी यह बात ॥(व्या. १६६)

कंचन-कामिनी का त्याग—

'व्यास' पराई कामिनी, कारी नागिन जान ।
सूँघति ही मरि जाअगौ, गरुड मंत्र नहिं मान ॥
'व्यास' पराई कामिनी, लहसनि कैसी बानि ।
भीतर खाई चोरिकै, बाहिर प्रगटी आनि ॥
'व्यास' कनक अरु कामिनी, तजियै भजियै दूरि ।
हरि सों अंतर पारिहै, सुख दै जैहै धूरि ॥

समय का उपयोग—

गोपालै जब भजियै, तब नीकौ ।
जोतिक, निगम, पुरान सबै ठग पढ़ै जान है जीकौ ॥
भद्रा भली, भरनी भव हरनी, चलत मेघ अरु छींकौ ।
'व्यासदास' धन-धर्म बिचारै, सो प्रेमी कौड़ी कौ† ॥(व्या. १०६)

हरिजन—गांधी-युग ने 'हरिजन' शब्द के व्यापक अर्थ को थोड़ा
। संकुचित कर दिया है । अछूत जाति के लोग, विशेष कर स्वपच (भंगी)
स युग में महात्मा गांधी के प्रचार से 'हरिजन' कहलाये । प्राचीन संतों
हरिजन की परिभाषा में जाति का बंधन न रख कर भक्ति और उसके
ंतर्गत लोक-कल्याणकारी सदाचरण का समावेश किया था । वे ब्राह्मण
ल में जन्म लेने मात्र से उसका आदर करने को तैयार न थे और न
गी होने से ही उसे हरिजन कह सकते थे । उनके लिये भक्ति की
सौटी प्रधान थी । जो उस पर खरा उतरा, उसे उन्होंने विना भेद-भाव
'हरिजन' होना स्वीकार किया । व्यास जी इसी मत के न केवल

---

† ऐसा ही पद सूरदास के नाम से भी प्रसिद्ध है ।

समर्थक ही थे, वरन् उसे व्यवहार में लाकर उन्होंने सक्रिय उपदेश भी दिया था। इस संबंध की उनकी रचनावली से उनके मनोगत भाव स्पष्ट हैं—

भक्ति में कहा जनेऊ-जाति ।
सब दूषन भूषन विप्रन के, पति छू घरनि घिनाति ।×
'व्यास' दास कें सुख सर्वोपरि, वेद विदित विख्याति ॥ (व्या० १०८)

हरिजन की बड़ाई में उनके हृदय से निकले हुए शब्द सुनिये—

'व्यास' दास हरिजन बड़े, जिनकौ हृदय गँभीर ।
अपनौ सुख चाहत नहीं, हरत पराई पीर[1] ॥
'व्यास' बड़े हरि के जना, हरिहि नवावत माथ ।
जिनके हिय में बसत है, तीन लोक कौ नाथ ॥
बृंदावन के स्वपच के, रहिये सेवक होय ।
तासों भेद न कीजिये, पीजे पद - रज धोय ॥
'व्यास' मिठाई विप्र की, तामैं लागै आग ।
बृंदावन के स्वपच की, जूठनि खैये माँग ॥
'व्यास' कुलीननि कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस ।
'स्वपच भक्त की पानहीं, तुलै न तिनकौ सीस ॥

इस प्रकार के उपदेशों ने आगे आने वाले युग में अछूतोद्धार के आंदोलन के लिए पथ प्रशस्त किया था। यदि ऐसे संतों ने इतने पहले से इन उदार विचारों को प्रकट न किया होता, तो महात्मा गांधी को अछूतोद्धार में प्राप्त हुई सफलता अवश्य ही संदिग्ध बनी रहती। जैसा कहा जा चुका है, व्यास जी ने न केवल अपने उच्च विचारों से ही जनता के दृष्टिकोण को परिष्कृत किया, वरन् उन्होंने उन्हें कार्य रूप में परिणत कर स्वयं एक आदर्श भी उपस्थित किया था। अतएव मनसा, वाचा, कर्मणा सभी प्रकार हमारे चरित्र-नायक व्यास जी ने हरिजन के वास्तविक स्वरूप को जाना था।

प्रकृति से प्रेम—मनुष्य के साथ पशु-पक्षी और पेड़-पौधों को भी सहानुभूति-सूत्र में बद्ध दिखाने वाले कवियों की कमी किसी साहित्य में नहीं है, किंतु व्यास जी की विशेषता है जीव मात्र एवं लता-वृक्षों के साथ आत्मानुभूति। बृंदावन की तो प्रत्येक वस्तु उन्हें श्रद्धेय है। वहाँ के लता-वृक्ष उनके परिवार के ही सदस्य हैं—

---

[1] यह बापू को प्रिय लगने वाला गीत 'वैष्णव जनतो तेने कहिये, जे पीर पराई जाने रे' की याद दिलाता है।

श्री बृंदावन के रूख, हमारे मात-पिता, सुत-बंध ।×
इनहि पीठि दै, अनत दीठि करै, सो अंधनि में अंध ॥ (५४)

इन वृक्षों के साथ उनकी सहानुभूति इतनी अधिक है कि वे 'कोटि गाय-थांभन हत, साखा तोरत हरहिं विदूख' कहकर उसका परिचय देते हैं। लता-वृक्ष के आलिंगन में उन्हें अपने आराध्य देव की झाँकी मिल जाती है। उन्होंने उन्हें अपना देवी-देवता माना और कहा कि 'बेलि हमारी कुलदेवी सब, विटप-गुल्म सब देवा'।

पशु-पक्षी—वृक्ष तो हुए कुटुंबी, तब पशु-पक्षियों का उनके पड़ौसी और मित्र होना स्वाभाविक है—

अरौसी-परौसी हमारे भैया-बंधु भँवर, पिक, चातिक, बक, तमचोर ।
न्यारे कारे-पीरे खग-मृग, हितुवा चंद चकोर ॥
मोहन धुनहि सुनावत, गावत मन भावत चितचोर ॥× (व्या. बा. २४५)

जिन श्री युगलकिशोर की निकुंज सेवा साधना में व्यास जी लीन थे, उन्हीं के साथ उनके यह प्रेमी 'परौसी' भी फिर रहे हैं—

फिरत सँग अलिकुल, मोर, चकोर ।×
निकट कुरंग कुरंगनि आवत, सुनि मुरली धुनि घोर ।
'व्यास' आस करि त्राम तजत सर, चक्रबाक भरि भोर ॥ (४४३)

सभी खग-मृग, पर्वत और वृक्ष राधा-कृष्ण के प्रेम-संगीत में मुग्ध हैं। इस अखंड जीवन-समष्टि का भी एक चित्र देखिये—

रसिक-सिरोमनि ललना-लाल मिलें सुर गावत ।
मत्त मधुर बिबि धुनि सुनि कोकिल कूजत, तन-मन ताप बुझावत ॥
मोर-मंडली नाँचति प्रमुदित, आनंद नैननि नीरु बहावत ।
मंद-मंद घनबूंद गाज लजि, सीतल सजल सीकर बरषावत ॥×
(व्या. वा. २६१)

कभी तो "हाथी कौ धरि स्वांग, 'व्यास' यह तज कूकर की चाल" कहकर पशु विशेषों की प्रवृत्ति के सहारे आत्मशुद्धि का उपदेश देते हैं, और कभी वे सबसे पहिले प्रसाद पा लेने पर बिल्ली से स्पर्द्धा करने लगते हैं। ये कहते हैं—

संतत राग-भोग जूठनि कौं, 'व्यासहि' करौ बिलैया ।

प्रेम के कठिन मार्ग के यात्री जल, थल और आकाश में विहार करने वाले जीव व्यास जी की दृष्टि से ओझल नहीं हो सके। देखिये

कठिन हिलग की रीति, प्रीति करि लंपट पै न अघात ।
अति आतुर चातुरता भूलत, प्रीतम कहू अकुलात ।।
परत तेल में माखी, मरति न जानत दुख की बात ।
चंचल चैंटी चाखि राव-रस, प्रान बिसरि लपटात ।।
चंचल मिरिग घंट सुनि सिर धुनि, बैठि बँधावत गात ।
परत पतंग दीप - ज्वाला महँ, आरत काहि डरात ।।
चोर, चकोर, मोर, निसि, ससि, घन, देखत नैन सिरात ।।(व्या० ७४४)

विषयों की विभिन्नता तथा प्रभावोत्पादक विचार-शैली को देख कर हम कह सकते हैं कि भक्त व्यास जी की कवित्व शक्ति बड़ी सबल थी। भक्ति में लीन रहते हुए उन्होंने संसार को अमूल्य उपदेश दिये। यह उनकी लोक-संग्रह की भावना का द्योतक है। श्री राधाकृष्ण की विहार-लीला के वर्णन में कवि का शृंगार रस पर एक विशिष्ट अधिकार प्रकट होता है, जिसकी समीक्षा 'वाणी की सरसता' के प्रसंग में की जा चुकी है। भक्ति की भावना में लीन रहने वाले व्यास जी में हम उच्च श्रेणी के कवि के रूप का तो दर्शन प्राप्त करते ही हैं, साथ ही साथ उनमें एक प्रभावशाली समाज-सुधारक नेता और महात्मा को भी पाते हैं।

आधार पर 'मिश्रबंधु विनोद' में भी श्री हित हरिवंश जी के संबंध में यही अशुद्ध उल्लेख हुआ है। सितंबर सन् १९४७ ई० के 'कल्याण' में प्रकाशित 'श्री गोपाल भट्ट' शीर्षक लेख में भी इसी अशुद्धि को दुहराया गया है।

विक्रम की १७ वीं शताब्दी में निंबार्क संप्रदाय में श्रीभट्ट जी के शिष्य श्री हरिव्यास देव जी परम वैष्णव संत हो गये हैं। उन्होंने भ्रमण कर विशेष रूप से निंबार्क संप्रदाय का प्रचार किया था। उनके प्रचार के कारण ही निंबार्क संप्रदाय की विशिष्ट शाखा का नाम अब तक 'हरिव्यासी' संप्रदाय कहा जाता है। संभवत: हरिव्यासी संप्रदाय का नाम हरिराम व्यास से मिलता-जुलता होने के कारण श्री ग्रियर्सन साहब ने हरिराम व्यास को ही 'हरिव्यासी' संप्रदाय का संस्थापक माना है‡। इसी प्रकार श्री विलसन ने भी 'रिलीजस सैक्ट्स आफ दि हिन्दूज़' नामक ग्रंथ के पृष्ठ १५१ पर उनको तथा श्री केशव भट्ट को निंबावत संप्रदाय के संस्थापक श्री निंबादित्य के शिष्य होने का उल्लेख कर इसी भ्रांति को ही प्रकट किया है। डा० उमेश मिश्र ने 'हिन्दुस्तानी' त्रैमासिक पत्रिका में प्रकाशित अपने 'प्राचीन वैष्णव संप्रदाय' शीर्षक एक लेख में हरिराम जी व्यास को श्रीभट्ट का शिष्य लिखा है। श्रीभट्ट जी के शिष्य श्री हरिव्यास देव जी थे, न कि हरिराम जी व्यास।

श्री विनयतोष भट्टाचार्य जी ने 'शक्ति-संगम तंत्र' की भूमिका में हरिराम शुक्ल को श्रीभट्ट का शिष्य लिखते हुए मत प्रकट किया है कि उन्हीं का दूसरा नाम हरिव्यास मुनि था तथा वही हरिव्यासी संप्रदाय के संस्थापक एवं परशुराम के गुरु थे*। किंतु हरिव्यास देव जी गौड़ ब्राह्मण थे। उनका समाधि-स्थान नारद टीला, मथुरा है। इसे कावड़िया जी का स्थान भी कहते हैं। उनका जन्मोत्सव कार्तिक वदी १२ को मनाया जाता है†। हरिराम जी शुक्ल सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनका समाधि-स्थान व्यास घेरा, वृंदावन है। उनका जन्मोत्सव मार्गशीर्ष कृष्णा ५ को मनाया जाता है।

नाभादास जी ने अपनी 'भक्तमाल' में समोखन जी शुक्ल के पुत्र व्यासजी पर एक स्वतंत्र छप्पय लिखा है तथा दूसरे छप्पय में श्रीभट्ट जी के

‡ Modern Vernacular Literature of Hindustan, Page 28

* Preface to the 'Sakti Sangam Tantra'. Vol. LX.

† श्री आचार्य , पृष्ठ १५

उपरांत हरिव्यास जी का और उनके बाद परशुरामजी का नामोल्लेख किया है। हरिव्यास देव जी के संबंध में देवी को दीक्षा देने वाली प्रचलित कथा का संकेत नाभादास जी ने उक्त दोनों छंदों के अतिरिक्त ही छप्पय में किया है और उसी में उनका श्रीभट्ट जी के शिष्य होने का भी उल्लेख है। यथा—

श्रीभट्ट-चरन-रज परस तें, सकल सृष्टि जाकों नई।
हरिव्यास तेज हरि भजन बल, देवी कों दीच्छा दई॥

आचार्य-परंपरा-परिचय (पृष्ठ १४) में श्रीभट्ट जी का आविर्भाव-काल संवत् १३५२ विक्रमी इस आधार पर माना गया है, कि उनके ग्रंथ 'युगल शत' में उसका रचना-काल निम्न दोहा के अनुसार संवत् १३५२ दिया है—

नैन बान पुनि राम ससि, गनों अंक गति बाम।
प्रकट भयौ 'श्री जुगल सत', यह संवत अभिराम॥

इस ग्रंथ की हस्तलिखित दो प्रतियों में मुझे उक्त दोहा ही प्राप्त नहीं हुआ! इससे इस दोहा को भी प्रक्षिप्त माना जा सकता है। भक्तमाल में नाभा जी ने श्रीभट्ट जी का वर्णन करने वाले-छप्पय में कई वर्तमान कालिक क्रियाओं का स्पष्ट रूप से प्रयोग किया है। अतएव श्रीभट्ट जी को १७ वीं शताब्दी का ही मानना पड़ेगा। यदि 'युगल शत' के कथित दोहा को प्रक्षिप्त न भी माना जावे, तब भी इतना मानना पड़ेगा कि लिपिकार ने भ्रम वश उसके प्रथम चरण में 'राग' शब्द के स्थान पर 'राम' शब्द लिख दिया है। इस प्रकार शुद्ध पाठ कर लेने पर 'युगल शत' का रचना काल संवत् १६५२ इस दोहा के अनुसार भी हो जायगा।

अतः श्रीभट्ट जी के शिष्य हरिव्यास देव जी हरिराम व्यास जी के समकालीन हुए, जिससे 'हरिव्यासी संप्रदाय' के संस्थापक होने का हरिराम व्यास जी में भ्रमपूर्ण आरोप हो सका है। ध्रुवदास जी ने भी अपनी 'भक्त-नामावली' में 'हरिव्यास' और 'व्यास जी' के उल्लेख अलग-अलग स्थलों पर किये हैं। इससे सिद्ध है कि हरिव्यास देव जी और हरिराम जी व्यास नाम के अलग-अलग दो संत थे और हरिराम जी व्यास ने हरिव्यासी संप्रदाय की स्थापना नहीं की थी।

(२) *बिहारी का दोहा*—श्री व्यास-वाणी की प्रकाशित दोनों प्रतियों में व्यास जी की साखी के अंतर्गत एक यह दोहा भी है, जो बिहारी सतसई में भी पाया जाता है—

अपने अपने मत लगे, वादि मचावत सोर।
ज्यों-त्यो सबकों सेइबौ- एकै नंदकिसोर॥

'बिहारी सतसई' की एक हस्तलिखित प्राचीन प्रति में तो यह पहिला ही दोहा है तथा 'बिहारी सतसई' पर लिखी गई प्रसिद्ध टीकाओं में से बिहारी रत्नाकर, मानसिंह की टीका, कृष्ण कवि की टीका, हरिप्रकाश टीका, लाल चंद्रिका, शृंगार सप्तशती तथा प्रभुदयाल पांडे की टीका में उक्त दोहा उपलब्ध होता है, किंतु 'बिहारी सतसई' की रस कौमुदी टीका मे यह दोहा नहीं है। इधर लाला केदारनाथ वैश्य, लखनऊ द्वारा संवत १९७१ विक्रमी में प्रकाशित 'भगवत रसिक की वाणी' के साथ भी जो व्यास जी की साखी संकलित है, उसमे भी यह दोहा है। 'व्यास जू की साखी' या 'व्यास जू की चौरासी' के नाम से जिन तीन हस्तलिखित प्राचीन प्रतियो के अध्ययन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनमें से संवत् १८८८ और १८९४ की दो प्रतियों में, जिनमें ८६ दोहे हैं, उक्त दोहा नहीं पाया जाता! किंतु तीसरी संवत् १९१४ की प्रति में, जिसमें ८७ दोहे है, प्रसंगांतर्गत दोहा उपलब्ध होता है। श्री वियोगीहरि जी ने 'ब्रजमाधुरी सार' में व्यास जी की साखी के उदाहरण मे जो थोड़े से दोहे दिये हैं, उनमें भी उक्त दोहा दिया गया है।

ऐसी स्थिति में यह कहना कठिन है कि वास्तव में यह दोहा व्यास जी का है या बिहारी का, क्यों कि दोनों महानुभावों की उपलब्ध प्रकाशित और प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में यह पाया जाता है। बिहारी का जन्म व्यास जी के जन्म से लगभग ९३ वर्ष पश्चात् माना जाता है। इससे व्यास जी द्वारा तो बिहारी का वह दोहा ग्रहण करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सकता। साथ ही बिहारी जैसे महाकवि से भी व्यास जी के दोहा को सतसई में मिला लेने की आशा नहीं की जा सकती। अतः इसे संपादकों की भ्रमवश हुई भूल ही माननी होगी।

(३) *कबीर की साखी*—ऐसे ही साम्य का दूसरा उदाहरण कबीर की साखी में मिलता है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से प्रकाशित 'कबीर ग्रंथावली' की प्रस्तावना मे पृष्ठ १७ पर कबीर की वैष्णवता के प्रमाण में उनकी ही रचना प्रकट करते हुए यह दोहा दिया गया है—

साकत बांभण मति मिलै, वैसनौ मिलै चंडाल।
अंकमाल दे भेटिये, मानों मिले गोपाल॥

किंतु यही दोहा व्यास-वाणी में भी इस प्रकार के थोड़े से पाठांतर से पाया जाता है—

साकत बामन जिन मिलो, वैष्नव मिलि चंडाल।
जाहि मिलैं सुख पाइये, मनों मिले गोपाल॥

(४) *मधुकर शाह की रचना*—'बुंदेल वैभव' के प्रथम भाग में महाराज मधुकर शाह की रचनाओं के जो उदाहरण श्री गौरीशंकर जी द्विवेदी ने दिये हैं, उनमें से एक पद व्यास-वाणी का भी है। वह यह है—

भक्ति बिनु केहि अपमान सह्यौ ।
कहा-कहा न असाधनि कीनौ, हरि बल धर्म रह्यौ । ×
'व्यास' बचन सुन मधुकर साह, भक्ति-फल सदा लह्यौ ॥ (१६८)

यह पद व्यास-वाणी की संवत् १८८८ की हस्तलिखित प्रति में तो नहीं है, किंतु संवत् १६६४ की प्रति में अलग-अलग दो स्थानों पर, पृष्ठ ३५ तथा ५० पर, लिखा मिलता है। बुंदेलखंड नरेश महाराजा मधुकर शाह व्यास जी के प्रिय शिष्य थे। व्यास-वाणी में ऐसे और भी पद उपलब्ध हैं, जिनमें मधुकर शाह का नामोल्लेख हुआ है। यथा—

हरि सों कीजे प्रीति निवाहि ।×
ऐसें तन-धन-सुत-दारा झूँठे, सब मधुकर साहि ॥ (२०५)

इसमें 'व्यास' का नामोल्लेख भी नहीं है। इसी प्रकार के और भी दो पद व्यास-वाणी में हैं, जिनमें 'व्यास' की छाप न होकर मधुकर शाह का नामोल्लेख है। यथा—

होइब सोई, हरि जो करिहै ।×
साधुनि कौ अपराध करत, मधुसाहि न ताहि गुदरिहै ॥ (१०८)

यह पद व्यास-वाणी की दोनों हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है।

* *ऋतु बसंत दुलहिन सँग खेलत, बाढ्यौ री रंग निवाहि ।×*
करि न्यौछावर बलि-बलि जाइ, तृनु तोरि जोरि कर मधुकर साहि ॥(परि० २)

उक्त पद व्यास-वाणी की मुद्रित प्रतियों में है, किंतु हस्तलिखित प्रतियों में नहीं है। इसमें 'मधुकर साहि' का नाम अंतिम चरण में ऐसे प्रसंग के साथ दिया गया है, जिससे यह पद व्यास जी का न होकर मधुकर शाह का ही ज्ञात होता है।

(५) *सूरदास की 'रास-पंचाध्यायी' तथा अन्य पद*—सूरसागर की मुद्रित प्रतियों में 'रास पंचाध्यायी' विषयक एक विस्तृत पद प्राप्त* है। यही पद किंचित परिवर्तन के साथ व्यास-वाणी की प्रतियों में भी मिलता है। इस पद की लीला-भावना पुष्टि संप्रदाय के प्रायः प्रतिकूल और व्यास जी

* श्री वैंकटेश्वर प्रेस, बंबई द्वारा प्रकाशित सं० १६६४ का संस्करण, पृष्ठ ३६०–३६२ तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित संस्करण, पृष्ठ ६६६–६७३, पद सं० १७६८

की उपासना-पद्धति के अनुकूल है, अतः यह पद सूरदास जी का न होकर व्यास जी का ही ज्ञात होता है। सूर-साहित्य के विशेषज्ञ श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने भी इसे सूरदास जी का पद स्वीकार नहीं किया है‡। सूरसागर और व्यास-वाणी में से उक्त पद के विशिष्ट अंश को उद्धृत कर हम इस विषय का विस्तृत विवेचन करना चाहते हैं—

'सूरसागर' से उद्धृत—	'व्यास-वाणी' से उद्धृत—
कह्यौ भागवत सुक अनुराग।	कह्यौ भागवत सुक अनुराग।
कैसें समुझैं बिनु बड़ भाग॥	कैसें समुझैं बिनु बड़ भाग॥
'श्री गुरु सकल' कृपा करी॥	'श्री गुरु सुकल' कृपा करी॥
'सूर' आस करि बरन्यौ रास।	'व्यास' आस करि बरनौ रास।
चाहत हौं वृंदावन बास॥	चाहत है बृंदावन बास॥
राधा (बर) इतनी करि कृपा॥	'करि राधे इतनी कृपा'॥
निसि-दिन स्याम सेउँ मैं तोहि।	निजु दासी अपनी करि मोहि।
यहै कृपा करि दीजै मोहिं॥	नित प्रति स्यामा सेऊँ तोहिं॥
नव निकुंज सुख-पुंज में॥	नव निकुंज सुख-पुंज मे॥
हरिबंसी हरिदासी जहाँ।	हरिबंसी हरिदासी जहाँ।
हरि करुना करि राखहु तहाँ॥	मोहि करुना करि राखौ तहाँ॥
नित बिहार आभार दे॥	नित्य बिहार अघार है॥
कहत-सुनत बाढ़त रस-रीति।	कहत-सुनत बाढ़ै रस-रीति।
बक्ता स्रोता हरिपद-प्रीति॥	स्रोतहि बक्तहिं हरिपद-प्रीति॥
रास-रसिक गुन गाइ हो॥	रास-रसिक गुन गाइ हो॥
(सभा का सूरसागर, पद १७९८)	(व्या० वा० ७९८)

उक्त दोनों उद्धरणों में चिह्नांतर्गत शब्दों पर विचार कीजिये। व्यास-वाणी में 'श्री गुरु सुकल कृपा करी' है। श्री व्यास जी ने गृहस्थ जीवन के पूर्व अपने पिता सुकल समोखन जी से ही दीक्षा ग्रहण की थी और व्यास-वाणी के अन्य स्थलों पर भी गुरु-कृपा का उल्लेख करने में उन्होंने अपने पिता का आस्पद 'सुकल' ही प्रयोग किया है। प्रौढ़ावस्था में वृंदावन आने पर उन्होंने हित हरिवंश जी और स्वामी हरिदास जी में सद्गुरु भावना स्थापित की थी। सूरसागर के पाठानुसार इसका गुरु द्वारा संपूर्ण कृपा करने का अर्थ है। किंतु सूरदास जी के गुरु

‡ सूर-निर्णय, पृष्ठ १५

श्री वल्लभाचार्य जी थे। "श्री वल्लभ-नख-चंद्र-छटा बिनु, सब जग माँहिं अँधेरौ" के गायक सूरदास गुरु की संपूर्ण कृपा प्राप्त करने पर "हरिबंसी हरिदासी जहाँ, हरि करुना करि राखौ तहाँ" कहेंगे, यह असंगत है। 'व्यास आस कर बरनौं रास' और 'सूर आस कर बरनौं रास' में यमक की सुंदरता पहिले उद्धरण में ही है। इससे मानना होगा कि कवि का नाम इस स्थान पर 'व्यास' ही अधिक उपयुक्त है, न कि 'सूर'। 'करि राधे इतनी कृपा' पाठ छंद की गति के अनुसार ठीक है, किंतु 'श्री राधा वर इतनी कर कृपा' में छंद की गति सूरोचित नहीं है। श्री हरिबंश जी और हरिदास जी को जो धाम प्राप्त हुआ, उसकी प्राप्ति के लिए 'स्यामा' को ही संबोधित करना उपयुक्त है, जैसा व्यास जी ने किया है; न कि 'स्याम' को, जैसा सूर के कथित पद में है। राधावल्लभीय संप्रदाय के प्रवर्तक श्री हित हरिबंश जी के सुलभ धाम को प्राप्त करने के लिए 'राधा' की कृपा-कामना आवश्यक है। कारण कि उनके संप्रदाय में राधा की उपासना प्रधान है। यही बात श्री हरिदास जी के लिए भी लागू है। श्री युगलकिशोर के उपासी व्यास जी द्वारा 'नित्य विहार' को आधार मानना उपयुक्त है, क्यों कि उनके मतानुसार राधा रानी हैं और उन्हीं की उपासना से कृष्ण का प्रसाद भी मिल सकता है। यद्यपि सूरदास जी के गुरु वल्लभाचार्य जी ने वात्सल्य, सख्य, दास्य और कांता चारों भावों की भक्ति करने का उपदेश दिया था, तथापि उनके पुष्टिमार्ग की सेवा में श्री कृष्ण के बाल स्वरूप की ही प्रधानता है। फलतः 'नित्य विहार' के आधार की सूर द्वारा याचना मौलिक प्रतीत नहीं होती। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि १२१ त्रिपदी छंदों में लिखी गई यह रास-पंचाध्यायी निश्चित रूप से व्यास जी की रचना है, तथा इसके कुछ शब्दों को बदल कर लिपिकारों ने इसे सूरसागर में मिलाने का व्यर्थ प्रयास किया है।

सूरदास का एक और पद देखिये—

ऐसैं बसिये ब्रज की बीथिनि।
ग्वारनि के पनवारे चुनि-चुनि, उदर भरीजै सीथिनि॥
पैंडे के सब बृच्छ बिराजत, छाया परम पुनीतनि।
कुंज-कुंज प्रति लोटि-लोटि, ब्रज-रज लागै रंग-रीतनि॥
निसि-दिन निरखि जसोदा-नंदन, अरु जमुना-जल पीतनि।
परसत 'सूर' होत तन पावन, दरसन करत अतीतनि†॥

---

† नागरी प्रचारिणी सभा का सूरसागर, पद १२०८

उक्त पद का मिलान व्यास जी के निम्न पद से कीजिये—

ऐसैं हि बसिये ब्रज-बीथिनि ।
साधुन के पनवारे चुनि-चुनि, उदर पोषियत सीथिनि ।।
घूरनि मे के बीन चिनघटा, रच्छया कीजै सीतिनि ।
कुंज-कुंज प्रति लता लोटि, उड़ रज लागै अंगीथिनि ।।
नित प्रति दरस स्याम-स्यामा कौ, नित जमुना-जल पीतिनि ।
ऐसैं हि 'व्यास' होत तन पावन, इहि विधि मिलत अतीतिनि ।।(व्या० ९७

ब्रजभूमि और उसकी लता-कुंजों के प्रति व्यास जी की जो अनन्य भावना थी, तथा हरि-भक्तों के प्रति उनकी जो अपार श्रद्धा थी, उसे देखते हुए उपर्युक्त पद भी व्यास जी का ही सिद्ध होता है। सूर-पदावली के प्राचीन लिपि-कर्त्ताओं ने भ्रमवश अथवा जान बूझ कर उक्त पद को किंचित परिवर्तन के साथ सूरदास जी का बना दिया है।

२. व्यास-वाणी में शोध-सामग्री—

व्यास जी ने शोध-कर्ताओं के लिए अपनी वाणी में अमूल्य सामग्री दी है। किंतु स्वयं व्यास जी के प्रामाणिक जीवन-चरित्र के अभाव में इस सामग्री का उपयोग पूर्ण रूप से साहित्य के इतिहास में अभी तक नहीं हो सका है। कुछ तथ्य,जो जनश्रुति के आधार पर प्राचीन भक्त और कवियों के जीवन-चरित्र में लिखे गये है, किसी साक्ष्य के बिना शंका की दृष्टि से देखे जाते हैं। यह कहा जा चुका है कि व्यास जी भक्त पहिले थे और उनका काव्य भक्ति के हृदयोद्‌गार प्रकट करने में रचा गया था, अतएव इसमें अन्य भक्तों के तत्कालीन प्रचलित चमत्कारों का भी उल्लेख पाया जाता है। यथा—

(१) *नामदेव*—भक्त नामदेव के संबंध में उनका यह पद इसी प्रकार का एक उदाहरण है—

साँची भक्ति नामदेव पाई ।
कृष्न-कृपा करि दीनी जाकों, लोकनि बेद बड़ाई ।।
प्रीति जानि पय पियौ कृपानिधि, छानि छबीलैं छाई ।
चरन पकरि सठ के हठ बल ज्यों हरि सों बात कहाई ।।
जाके हित हरि मंदिर फेरयौ, चित दै गाइ जिवाई ।
जिन रोटी घी चुपरि स्याम कों, अपने हाथ खवाई ।।
जाकी जाति-पाँति-कुल बीठल, संत जना सब भाई ।
ताकी महिमा 'व्यास' कहा कहै जाके सुबस कन्हाई (व्या० १०)

इन्हीं नामदेव के संबंध में उक्त चमत्कारपूर्ण घटनाओं में दो घटनाएँ और बढ़ा कर व्यास जी के समकालीन नाभादास जी ने भी कदाचित उक्त पद-रचना के पश्चात्‡ अपनी भक्तमाल में उनका वर्णन किया, जो इस प्रकार है—

बाल-दसा बीठल्ल, पानि जाके पय पीयौ।
मृतक गऊ जीवाय, परयौ असुरन कौ दीयौ॥
सेज जलिल तें काढ़ि, पहिल जैसी ही होती।
देवल उलट्यौ देखि, सकुच रहे सबही सोती॥
पंढुरनाथ कृत अनुग ज्यौं, छानि स्वकर छई घास की।
नामदेव प्रतिज्ञा निर्बही, ज्यौं त्रेता नरहरि दास की॥

प्राचीन भक्त-चरित्रों में इस प्रकार के अलौकिक चमत्कारों की चर्चा होती चली आती है, किंतु इन वृत्तांतों से भी शोधक समुचित सार-तत्व प्राप्त कर लेते हैं।

(२) *कबीर*—व्यास-वाणी में कबीर का नामोल्लेख कई स्थलों पर है। यद्यपि कबीर का देहांत व्यास जी की बाल्यावस्था के समय ही हो चुका था, तथापि निस्संदेह रूप से यह कहा जा सकता है कि व्यास जी का ऐसे व्यक्तियों से अवश्य ही संपर्क रहा होगा, जो कबीर के साथी रहे हों। कबीर के संबंध में व्यास-वाणी के उल्लेख बड़े महत्वपूर्ण हैं—

कलि में साँचौ भक्त कबीर।
जब तें हरि-चरननि रुचि उपजी, तब तें बुन्यौ न चीर॥×
पाँच तत्व तें जन्म न पायौ, काल ग्रस्यौ न सरीर।
'व्यास' भक्ति कौ खेत जुलाहौ, हरि - करुनामै नीर॥ (व्या० १६)

तथा—

भक्त न भयौ भक्त कौ पूत।×
बूड़्यौ बंस कबीर कौ, जब भयौ कमाला पूत॥ (व्या० २८४)

इसमें कबीर के पुत्र का नाम कमाला (कमाल) की सूचना के साथ उसका भक्त न होना भी प्रगट होता है। रामानंद आदि साधुओं की

‡ नाभादास जी द्वारा व्यास जी के लिए 'भक्त इष्ट अति व्यास के' लिखना कदाचित इस ओर संकेत देता है कि वे 'भक्तमाल' की रचना के पूर्व व्यास जी से भक्तों की स्तुति सुन चुके थे। 'भक्तमाल' की रचना-संवत् १६४२ के पश्चात् मानी जाती है और व्यास जी का कविता-काल संवत् १५६० के लगभग प्रारंभ हो जाता है

स्मृति कर विरह-भावना व्यक्त करने वाले व्यास जी के एक पद में कबीर का रामानंद के शिष्य होने का प्रामाणिक कथन सुरक्षित है, जो श्री परशुराम जी चतुर्वेदी के अनुसार अभी तक ज्ञात सामग्री में तत्संबंधी प्राचीनतम साक्ष्य है*। श्री चतुर्वेदी जी का कहना है—"इसी प्रकार कबीर साहब के रामानंद-शिष्य होने की चर्चा सर्व प्रथम कदाचित् भक्त व्यास जी (संवत् १६१८ में वर्तमान) से आरंभ होती है और उसके अनंतर भक्तमाल श्रेणी के ग्रंथों में इस बात का उल्लेख निरंतर होता चला जाता है, तथा इन्हें तकी का उत्तराधिकारी व चेला मानने की बात गुलाम सरवर की "खजीन तुल असफिया" में बहुत पीछे दीख पड़ती है†।"

वह पद इस प्रकार है—

साँचे साधु जु रामानंद ।
जिन हरि जू सों हित करि जानौ, और जानि दुख -दंद ॥
जाकौ सेवक कबीर धीर अति, सुमति सुरसुरानंद ।
तब रैदास उपासक हरि कौ, सूर सु पम्मानंद ॥
इनतें प्रथम तिलोचन - नामा, दुख-मोचन सुख - कंद ॥ × (२३)

(३) *तिलोचन*—उक्त पद में महाराष्ट्र प्रांत के भक्त कवि तिलोचन का भी नामोल्लेख हुआ है। उनके द्वारा सवा लाख पदों की रचना करने का लेख निम्न लिखित पद में देखिये—

सबै करत पद की रति, कहा हम थोरे हरिहिं रिझावत ।
राग-रागिनी, तान-मान महि, लालन लगतैं आवत ॥ ×
सवा लाख कीने तिलोचन, हरि कौ को दरसन पावत ॥ (१६१)

(४) *सूरदास आदि*—'बिहारहिं स्वामी बिन को गावै' (व्या.२६) की स्थायी वाले पद में 'सूरदास बिनु पद-रचना कों, कौन कविहिं कवि आवै' कह कर व्यास जी ने हिंदी साहित्य के सूर्य पर अपनी सम्मति दी है। उक्त पद में अष्टछाप के कृष्णदास और परमानंददास के संबंध में भी सम्मतियाँ हैं।

(५) *अन्य नामोल्लेख*—उक्त प्रकार के नामोल्लेख केवट, खेम, गगल भट्ट, चैतन्य महाप्रभु, जैमल, जयदेव, धन्ना जाट, पीपा, पद्मावती, बोधानंद, बिहारिनदास, मेहा, मीराबाई, माधवदास, मधुकरशाह, रैदास,

* 'उत्तरी भारत की संत-परंपरा', पृष्ठ १५८

† वही पृष्ठ १२६

राघवानंद, रूप, सनातन, सेना नाई, सुरसुरानंद, हरिदास स्वामी और हित हरिवंश के संबंध में भी हुए हैं। एक पद में तो व्यास जी ने भक्तों को अपना कुटुंबी ही कह कर उनमें आत्मीयता का भाव प्रकट किया है—

इतनौ है सब कुटुम हमारौ।
सैन, धना अरु नामा, पीपा और कबीर, रैदास चमारौ॥
रूप, सनातन कौ सेवक, गंगल भट्ट सुढारौ।
सूरदास, परमानंद, मेहा, मीरा भक्ति बिचारौ॥×
आसू कौ हरिदास रसिक, हरिबंस न मोहि बिसारौ॥× (२१

(६) *गोस्वामी तुलसीदास जी का संकेत*—व्यास जी का प्रथम बार वृंदावन जाने का समय सं० १५९१ निकलता है, और अंतिम बार वे संवत् १६१२ में वृंदावन गये तथा जीवन पर्यंत वहीं पर रहे। गोस्वामी तुलसीदास जी का वृंदावन जाने का काल निम्नलिखित ग्रंथों में तद्-विषयक प्रसंगों की समीक्षा करने पर अलग-अलग समय में प्रकट होता है—

१. मूल गोसाईं चरित के अनुसार संवत् १६४६ के लगभग।
२. दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता से संवत् १६२६ के लगभग‡।

उपरोक्त दोनों संवतों में व्यास जी का वृंदावन में ही निवास था। इन ग्रंथों में कृष्ण द्वारा गोस्वामी तुलसीदास की अनन्य राम-भक्ति के प्रण की रक्षा के लिए धनुष-बाण धारण करने की घटना का उल्लेख किया गया है। किंतु इस घटना के चमत्कार का श्रेय दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता में नंददास की भक्ति को दिया गया है। मूल गोसांई चरित में वह गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति के प्रभाव से वर्णित है। उक्त दोनों ग्रंथों के लेखक अपने-अपने संप्रदाय का आग्रह रखते थे। मूल गोसांई चरित की प्रामाणिकता में भी संदेह किया जाता है। अतएव इस विषय पर प्रियादास जी की 'भक्ति-बोधिनी' भक्तमाल की टीका तीसरा साक्ष्य मान लेना होगा, जो टीकाकार के चैतन्य संप्रदायी होने के कारण उक्त दोनों सांप्रदायिक आग्रहों से मुक्त है, एवं जिसके अनुसार वृंदावन में तुलसीदास की यात्रा के समय उनकी अनन्यता की टेक रखने के लिए कृष्ण

---

† भगवतरसिक (जन्म सं० १७९५ के लगभग) ने भी ४४ चरणों का एक बड़ा पद लिखा है। इसमें उन्होंने 'व्यास जी' के नाम का भी समावेश किया है— इमसों इन साधुन सों पंगति।×
ब्यासदास, हरिवंस गुसांई, दिन दुलराए दंपति॥

‡ सूर निर्णय, पृष्ठ ६४

मूर्ति का धनुष-बाण धारण करने की चमत्कारपूर्ण कथा का श्रेय तुलसीदासजी को ही था। यद्यपि इस प्रकार की चमत्कारपूर्ण घटनाओं की ऐतिहासिक समीक्षा करना अभिप्रेत नहीं है, तथापि जिन व्यास जी के संबंध में हमें निर्णय करना है, वे दैवी चमत्कारों में पूर्ण विश्वास रखते थे, जैसा कि उनके 'साँची भक्ति नामदेव पाई' आदि पदों में वर्णित घटनाओं से प्रकट है। नामदेव के हाथ से भगवान के दूध पी जाने की चमत्कारपूर्ण घटना व्यास जी की साखी में भी वर्णित है—

नामा के कर पय पियो, खाई ब्रज की छाक।
'व्यास' कपट हरि ना मिलैं, नीरस अपरस पाक॥

अतएव हमें इस हेतु तो उस घटना को मान ही लेना पड़ेगा। व्यास जी का उक्त घटना को संकेत करने वाला पद यह है—

करौ भैया साधुन ही सौं संग।
पति-गति जाय असाधु संग तें, काम करत चित भंग॥
हरि तें हरिदासिन की सेवा, परम भक्ति कौ अंग।
जिनके पद तीरथमै पावन, उपजावत रस-रंग॥
जिनके बस दरसथ-सुत मार्यौ, माया कनक कुरंग।
तिनके कहत 'व्यास' प्रभु सुमर्यौ, सत्वर धनुष-निषंग॥ (व्या० २१७)

यहाँ पर व्यास जी के 'प्रभु' वृंदावन बिहारी श्री कृष्ण हैं, न कि विष्णु, क्यों कि व्यास जी ने अपने कितने ही पदों में नारायण या विष्णु को अपने प्रभु राधावल्लभ से प्रथक कहा है। कृष्ण के इस प्रकार धनुष-बाण धारण करने की कथा अन्य किसी साधु के संबंध में प्रचलित न होने के कारण इस पद में गोस्वामी तुलसीदास से संबंधित इस चमत्कारिक घटना के संकेत को अभिप्रेत समझना चाहिये।

रहा रसिकानन्य व्यास जी द्वारा रामभक्तों की प्रशंसा का प्रश्न। इसके लिए इतना कहना ही पर्याप्त है कि राम-भक्ति के प्रसिद्ध प्रचारक श्री रामानंद के संबंध में "साँचे साधु जु रामानंद" पद निश्चयात्मक रूप से व्यास जी की संवत् १६४० वि० के बाद की रचना है, जब कि वे अनन्य व्रत को पूर्ण रूप से ले चुके थे। इस पद में कबीर, सुरसुरानंद, रैदास आदि रामानंदी एवं अन्य उन प्रमुख साधुओं में श्रद्धा प्रकट की गई है, जो उस समय परमधाम को प्राप्त कर चुके थे। । अतएव कृष्ण द्वारा धनुष-बाण धारण करने की अन्य कोई घटना प्रसिद्ध न होने के कारण आलोच्य पद में लेखक को गोस्वामी तुलसीदास जी का ही संकेत मान्य है।

द्वितीय खंड

वाणी-संकलन

★

'व्यास-वाणी' की महिमा—

जय जय बिसद व्यास की बानी ।
मूलाधार इष्ट रसमय, उत्कर्ष भक्ति रस सानी ॥
लोक बेद भेदन तें न्यारी, प्यारी मधुर कहानी ।
स्वादित सुचि रुचि उपजै, पावत मृदु मनसा न अघानी ॥
सक्ति अमोघ विमुख-भंजन की, प्रगट प्रभाव बखानी ।
मत्त मधुप रसिकन के मन की, रस रंजित रजधानी ॥
कलि के कलुष विदारन कारन, तीछन तरल कृपानी ।
कपट - दंभ कूरी दूरी कर, बसन दास पन छानी ॥
रस शृंगार सरस जमुना सम, बर धारा घहरानी ।
बिधि-निषेध तरुवर तरु तोरत, हरि जस जलधि समानी ॥
सुंदर बदन जुगल छबि भूषन, चीर चातुरी ठानी ।
पहिरै प्रेम कंचुकी सोहत, मुख मंदिर महरानी ॥
स्रवन सीप चातक बिरही कों, ज्यों स्वातिन कौ पानी ।
सुख संतोष बढ़ावै, दूजै मुक्ति फलद अनुमानी ॥
हरि - लीला सागर तें रस भर बरपै सुझर सुहानी ।
सींचत सुहृद हृदय के दारुन, घनमाला सम जानी ॥
भक्ति अनन्य सलिल उपजाई, मृदुल सघन सरसानी ।
पायें ताहि छुधित जन मन के, जियै जीव सुखमानी ॥
जनु संतन के सुजस चंद्र की, सोभा स्वच्छ दिखानी ।
जातें जाइ प्रकृति जामिन कौ, तम तामस दुखदानी ॥
जुगल बिहार विटप सों लिपटी, सुबरन बेलि निवानी ।
लगे रँगीले सुमन जासु में, फल रसमय निर्बानी ॥
दधि माधुर्य, माठ बृंदावन, मरौ अमोघ अमानी ।
सहज सतोगुन बँधौ जासु में, गोपी सुमति सयानी ॥
सखी रूप नवनीत उपासक, अमृत निकस्यौ आनी ।
'नीलसखी'† प्रनमामि नित्य, सो अद्भुत कथन मथानी ॥

"...इन (व्यास जी) की रचना परिमाण में भी बहुत विस्तृ
विषय-भेद के विचार से भी अधिकांश कृष्ण-भक्तों की अ
क है* ।....'

—आचार्य रामचंद्र

---

† नीलसखी जी का जन्म ओरछा में (सं० १८०० में) हुआ था, वि
अधिकतर वृंदावन मे ही रहे। उनकी ११० पदों की वाणी उपलब्ध

—बुंदेल वैभव, भाग २, पृष्ठ

* हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १६०

प्रथम परिच्छेद

सिद्धांत

★

गलाचरण— राग सारंग

बंदे श्री सुकल - पद-पंकजन ।
सत्त-चित्त-आनंद की निधि, गई हिय की जरन ।।
नित्य वृंदाविपिन संतत जुगल मम आभरन ।
'व्यास' मधुरहिं दियौ सर्वसु, प्रेम-सौरभ सरन ।।१।।

रु-महिमा— राग बिलावल

गुरु की सेवा हरि करि जानी ।
गये उज्जैन, रैन-दिन दुख सहि, तजि मथुरा रजधानी ।।
छाँड़ी प्रभुता पाँइ लगत हैं, दास कहत सुखदानी ।
गद्-गद् सुर पुलकित बेपथ, सोहत गो-रज लपटानी ।।
इहिं विधि रहत बहुत दिन बीते, गुरु-घरनी अनखानी ।
पीसत, पोवत, करत रसोई, हौं जु भई नकवानी ।।
यह सुनि सकुचि गये बन मोहन, सिर धरि मौरी आनी ।
भूखें प्यासें मेहु सह्यौ निसि, भोर भर्‌यौ हरि पानी ।।
दियौ जिवाइ मृतक सुत तब हीं, गुरु महिमा पहिचानी ।
हरि के गुन-गन कहौ कहाँ लगि, 'व्यास' विमुख अभिमानी।।२।।

राग केदारौ

गुरु गोविंद एक समान ।
वेद पुरान कहत भागवत, ते जु बचन परमान ।।
एके सिष्य लोक देत हैं, गुरु सों दूर भयें परसावत ।
छियें छोति मानत हैं छुतिहा, सींचौ लै पुनि धावत ।।
जैसी रीति सेष सोफिन की, ऐसी रीति चलावत ।
संन्यासी पै मंत्र सुनत हैं, ते कब भक्त कहावत ।।
गुरु गाड़ें चेला लै बारें, दोऊ पंथ तुरंत भये ।
उत संन्यास न इतहिं भक्ति-फल, खल नर बीचहिं बीच गये ।।
दीच्छा बरनु पलटु है ऐसौ, दिया दिया है जैसौ ।
'व्यास' बीज बोयत है जैसो, फल लागत है तैसौ ।।३।।

राग बिलावल

जैसे गुरु तैसे गोपाल ।

हरि तो तब ही मिलि हैं, जब ही श्री गुरु होहिं कृपाल ।।
गुरु रूठें गोपाल रूठि हैं, वृथा जातु है काल ।
एक पिता बिनु गनिका-सुत कौ, कौन करै प्रतिपाल ।।
ज्यौं रज बिनु रजपूत कपूत जिय देखत रन कौ चाल ।
ऐसैं ही गुरु के बिमुख सिष्य कौ जम करिहैं बेहाल ।।
संत संग गुरू की सेवा करि, सुपचहिं करत निहाल ।
'व्यास' दास बिजयें गुरु जुग-जुग मिटत नहीं उर-साल ।।४।।

३. साधु-स्तुति— राग सारंग

नमो नमो नारद मुनिराज ।

बिषयनि प्रेम-भक्ति उपदेसी, छल-बल किये सबनि के काज ।
जासों चित दै हित कीनौ, ते सब सुधरे साधु समाज ।
'व्यास' कृष्ण-लीला रँग राचे, मिट गई लोक-बेद की लाज ।

राग सारंग

नमो नमो जय सुकदेव-बानी ।

जा सुमिरत हरि मन में आवत, गावत सुधरे सब अभिमानी ।
तासों प्रीति करत भ्रम छूटत, करम दुरासा त्रास डरानी ।
मद मत्सर माया सुत जाया, काया बिसरी सब दुखदानी ।
जिन सर्वोपरि बृंदावन की, सहज माधुरी केलि बखानी ।
निर्मल भजन अनन्य कियौ जिन, निरसे जोगादिक बुधि ध्यानी ।
जिनकी बिषै भागवत संतत, भक्ति-भाव भक्तन पहिचानी ।
जय जय 'व्यास' उत्तरानंदन, आनँदकंद सरद घन पानी ।

राग सारंग

सुक नारद से भक्त न कोऊ, जिहिं भागवत सुनायौ ।
बिनु भागवत भक्ति न उपजै, साधन साधि बतायौ ।।
जिनके बचन सुनत, संदेह परीच्छत देह भुलायौ ।
संसारी ताकों करुना करि सुखदानी दिखरायौ ।।
जिनकी कृपा कृपाल होत हरि, सुत ह्वै आपु बँधायौ ।
तिन कारन गिरवर धरि, बिष पावक पीवत सुख पायौ ।।
कहा-कहा न कियौ करुनानिधि, निज दासनि कौ भायौ ।
कोटि अजामिल हू तें पापी, 'व्यास' हिं नाम लिवायौ ७

राग धनाश्री

पद्मावती-पति-पद सरनम् ।
कुंजकेलि- कविराज मुकुटमनि, रसिक अनन्यनि आभरनम् ।।
श्री हित हरिवंस हंस मुख सुखमय, वचन रचन दुख जल तरनम् ।
श्री जयदेव 'व्यास' कुल वंदित, ब्रज जुवती नट नृत करनम् ।।८।।

राग सारंग

श्री जयदेव से रसिक न कोई, जिन लीला - रस गायौ ।
जाकी जुगति अखंडित मंडिन, सबही के मन भायौ ।।
त्रिविध त्रिलास कला कवि मंडन, जीवन के भागनि आयौ ।
'पतति पतत्रे' मुख निसरत ही, राधा-माधव कौ दरसन पायौ ।।
वृंदावन कौ रसमय वैभव, जिनि पहिलै सबनि सुनायौ ।
ता पाछैं औरन कछु पायौ, सो रस सबनि चखायौ ।।
पद्मावति-चरनन कौ चारन, जिहिं गोविंद रिझायौ ।
'व्यास' न आस करी काहू की, कुंजनि स्याम बुलायौ ।।९।।

राग गौरी

नमो-नमो जै श्री हरिवंस !
रसिक अनन्य वेनुकुल-मंडन, लीला - मानसरोवर-हंस ।।
नमो जयति वृंदावन, सहज माधुरी रास-विलास प्रसंस ।
आगम-निगम अगोचर, राधे-चरन-सरोज 'व्यास'-अवतंस ।।१०

मेदा-मिश्री-मुहरें मेरें, श्री वृंदावन की धूरि ।
जहाँ राधा रानी, मोहन राजा, राज रह्यौ भरिपूरि ।।
कनक कलस, करुवा महमूदी*, खासा ब्रज कमरनि की चूरि ।
'व्यास'हिं हित हरिवंस† बताई, अपनी जीवनि - मूरि ।।११

राग सारंग

अनन्य नृपति श्री स्वामी हरिदास ।
श्री कुंजबिहारी सेये बिनु, जिन छिन न करी काहू की आस ।।
सेवा सावधान अति जान, सुवर गावत दिन रास ।
ऐसौ रसिक भयौ ना ह्वै है, भुवमंडल आकास ।।
देह विदेह भये जीवत ही, बिसरे विस्व - विलास ।
श्री वृंदावन-रज तन-मन भजि, तजि लोक-बेद की आस ।।

* महमूदी (ग, च, छ); मैहमूदी (ख)

† हेत हरिबंश (ख); हिति हरिवंस (ग), हित हरिवंश (च); श्री हरिवंस (छ)

प्रीति-रीति कीनीं सब ही सों, किये न खास खवास
अपनौ ब्रत हठि और निबाह्यौ, जब लगि कठ उसास
सुरपति, भूपति, कंचन, कामिनि, जिनकें भायें घास
अब के साधु 'व्यास' हम हू से, जगत करत उपहास

राग नट]

श्री हरिवंस से रसिक, हरिदास से अनन्यनि की, को बपुरा अब करि सकै
जिन बृंदावन साँचौ करि जान्यो, राधावल्लभ, कुंजविहारी
रूप-सनातन हैं बैरागी, उपकारी सब के हितकारी
'व्यास' धन्य-धन्य ब्रजवासी, कृष्णदास गोबर्धन-धारी

राग जयतिश्री

श्री माधवदास सरन मैं आयौ।
हौं अजान, ज्यों नारद ध्रुव सों कृपा करी, संदेह भगायौ ॥
जिनहिं चाहि गुरु सुकल तज्यौ वपु फिरकै दरसन पायौ।
मो सिर हाथ धरौ करुना करि, प्रेम-भक्ति-फल पायौ ॥
हरिवंसी, हरिदासी सों मिलि, कुंजकेलि-रस गाय सुनायौ।
गुरु, हरि, साधु, नाम, बन, जमुना, महाप्रसाद रसालय भायौ ॥
जातें सहज प्रिया-प्रीतम बस, कलजुग बृथा गँवायौ।
मनसा, बाचा और कर्मना, 'व्यास'हिं स्याम बतायौ ॥१४

राग देवगांधार

जै-जै मेरे प्रान सनातन-रूप।
अगतिन की गति दोऊ भैय्या, जोग-जज्ञ के जूप ॥
बृंदावन की सहज माधुरी, प्रेम-सुधा के कूप।
करुनासिंधु, अनाथबंधु, जय भक्त-सभा के भूप ॥
भक्ति भागवत-मति आचारज-कुल के चतुर चमूप।
भुवन चतुर्दस विदित बिमल जस, रसना के रस-तूप ॥
चरन-कमल कोमल रज-छाया, मेटत कलि-रवि धूप।
'व्यास' उपासक सदा उपासी राधा-चरन अनूप ॥१५॥

राग सारंग

कलि मे साँचौ भक्त कबीर।
जब तें हरि चरननि रुचि उपजी, तब तें बुन्यौ न चीर ॥
दीनौ लेइ न कबहुँ जाँचै, ऐसौ मत कौ धीर।
जोगी, जती, तपी, संयासी, तिनकी मिटी न पीर ॥
पाँच तत्व तें जनम न पायौ, काल ग्रस्यौ न सरीर।
'व्यास' भक्ति की खेत जुलाहौ, हरि नीर १६

राग सारंग

साँची भक्ति नामदेव पाई।
कृष्न-कृपा करि दीनी जाकों, लोकन-वेद बड़ाई॥
प्रीति जानि पय पियौ कृपानिधि,छाँनि छबीलै छाई।
चरन पकरि सठ के हठ बल,ज्यों हरि सों बात कहाई॥
जाके हित हरि मंदिर फेर्‌यौ, चित दै गाइ जिवाई।
जिन रोटी घी चुपरि स्याम कों अपने हाथ खवाई॥
जाकी जाति-पाँति-कुल बीठल, संतजना सब भाई।
ताकी महिमा 'व्यास' कह कहै, जाकैं सुबस कन्हाई॥१७॥

राग धनाश्री

प्रबोधानंद से कवि थोरे।
जिन राधावल्लभ की लीला-रस में सब रस घोरे।
केवल प्रेम-विलास आस करि, भव-बंधन दृढ़ तोरे॥
सहज माधुरी वचननि, रसिक अनन्यनि के चित चोरे।
पावन रूप-नाम-गुन उर धरि, बिषै-बिकार जु मोरे॥
चारु चरन-नख-चंद-बिंब में, राखे नैन चकोरे।
जाया, माया, गृह, देही सों, रवि-सुत बंधन छोरे॥
लोक-वेद सारंग अंग के, सेत हेत के फोरे।
यह प्रिय'व्यास'आस करि, हित हरिबंसहिं प्रति कर जोरे॥१८॥

श्री राधावल्लभ की नव कीरति, बरनत हू न निघात।
भरतखंड की सुकवि मंडली, बरनत हू न अघात॥
बड़े रसिक जयदेव बखानी, लीला - अमृत चुचात।
बृंदावन हरिवंस प्रसंसित, सुनि गोरी मुसिकात॥
राग सहित हरिदास कही, रस-नदी वही न थहात।
रसिक अनन्यनि की जूठनि,'व्यास'सखी रुचि-सुचि कै खात॥१६

राग धनाश्री

साँची प्रीति श्री बिहारिनदासै।
करूवा, कै कुंज - कामरी, कै धरु श्री स्वामी हरिदासै॥
तिबाधक सहि सकत न जिनकें, जानत नहीं कहा कहै त्रासै।
[illegible]ा माधुरी मत्त मुदित ह्वै गावत, रस जस जगत उदासै॥
[illegible]न ही छिन परतीत बढ़त,रस-रीतनि देखि बिबि बदन बिलासै।
[illegible]ग नित्य बिहार करत मिलि, इहै आस निजु बन बसि'व्यासै' २०

राग धनाश्री

इतनौ है सब कुटुम हमारौ ।
सैन, धना अरु नामा, पीपा और कबीर, रैदास, चमारौ ॥
रूप, सनातन कौ सेवक, गंगल भट्ट सुढारौ ।
सूरदास, परमानंद, मेहा, मीरा भक्ति बिचारौ ॥
बाह्मन राजपुत्र कुल उत्तम, तेऊ करत जाति कौ गारौ ।
आदि अंत भक्तन कौ सर्वसु, राधावल्लभ प्यारौ ॥
आसू कौ हरिदास रसिक, हरिवंस न मोहिं बिसारौ ।
इहि पथ चलत स्याम-स्यामा कै, 'व्यास' हिं बारौ, भावहिं तारौ ॥

राग सारंग

मेरैं भक्त है देई - देऊ ।
भक्तनि जानौ, भक्तनि मानौ, निज जन मोहिं बतेऊ ॥
माता, पिता, भैय्या मेरे भक्त-दमाद, सजन, बहनेऊ ।
सुख-संपति परमेस्वर मेरैं, हरिजन जाति - जनेऊ ॥
भवसागर कौ बेरौ भक्तौ, केवट कहि हरि खेऊ ।
बूड़त बहुत उबारे भक्तनि, लिये उबार जरेऊ ॥
जिनकी महिमा कृष्न कपिल कहि, हारे सर्वोपरि बेऊ ।
'व्यास' दास के प्रान-जीवन-धन, हरिजन बाल-बड़ेऊ ॥२

साधु-विरह—

राग सारंग

साँचे साधु जु रामानंद ।
जिन हरि जू सों हित करि जान्यौ, और जानि दुख दंद ॥
जाकौ सेवक कबीर धीर अति, सुमति सुरसुरानंद ।
तब रैदास उपासक हरि के, सूर-सु परमानंद ॥
इनतें प्रथम तिलोचन-नामा, दुखमोचन सुखकंद ।
खेम-सनातन भक्तिसिंधु, रस रूप, राघवानंद ॥
अलि हरिवंसहिं फब्यौ, राधिका-पद-पंकज मकरंद ।
कृष्नदास, हरिदास उपास्यौ, बृंदावन कौ चंद ॥
जिन बिनु जीवत मृतक भयें हम, सह्यौ बिपति कौ फंद ।
तिनु बिनु उर कौ सूल मिटै क्यों, जियै 'व्यास' अति मंद ॥२३

राग देवगंधार

हुतौ सुख* रसिकनि कौ आधार ।
बिनु हरिबंसहिं सरस रीति कौ, कापैं चलि है भार ॥

---

* सुख (ख, ग, छ) रस (क, घ,)

को राधा दुलरावै-गावै, बचन सुनावै चार ।
श्री बृंदाबन की सहज माधुरी, कहि है कौन उदार ॥
पद-रचना अब कापै ह्वै है, निरस भयौ संसार ।
बड़ौ अभाग अनन्य सभा कौ, उठिगौ ठाठ-सिंगार ॥
जिन बिनु दिन-छिन सतजुग बीतत, सहज रूप आगार‡ ।
'व्यास' एक कुल कुमद - बंधु बिनु, उडगन जूठौ थार ॥२४॥

राग धनाश्री

पै न छवि कोऊ कवन बखानै ।
जीव कुकात प्रीति कहिबे कों, व्याकुल होत अयानै ।
अति अगाध रस-सिंधु-माधुरी, वेई पै कहि जानै ।
ताकौं पार-पार नहिं पावत, बिधि-सिव-सेप धरत श्रुति ध्यानै ॥
कोटि-कोटि जयदेव सरीखे, कहत सुनत न अघानै ।
'व्यास' आस मन की को पुजवै, श्री हरिबंस समानै ॥२५॥

राग सारंग

बिहारहिं* स्वामी बिनु को गावै ।
बिनु हरिबंसहिं, राधाबल्लभ को रस-रीति सुनावै ॥
रूप - सनातन बिनु, को बृंदाबिपिन - माधुरी पावै ।
कृष्नदास बिनु, गिरधर जू कों को अब लाड़ लड़ावै ॥
मीराबाई बिनु, को भक्तनि पिता जान उर लावै ।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु, को सब बंधु कहावै ॥
परमानंददास बिनु, को अब लीला गाइ सुनावै ।
सूरदास बिनु पद-रचना कों, कौन कबिहिं कहि आवै ॥
और सकल साधन बिनु, को कलिकाल कटावै ।
'व्यासदास' इन बिन, को अब तन की तपन बुझावै ॥२६॥

राग सारंग

साधु-सिरोमनि रूप-सनातन ।
जिनकी भक्ति एक रस निबही, प्रीत कृष्न-राधा तन ॥
जाकौ काज सवाँर्‌यौ चित दै, हित कीनौ छिन ता तन ।
जाकें बिषय-बासना देखी, मनसा करी न बातन ॥

---

‡ आगार (च, छ); सिंगार (ख), (ग) प्रति में लिखित इस पद में यह नहीं है ।

* बिहारहिं ख बिहारिहि (ग ,

श्री वृंदावन की सहज माधुरी, रोम-रोम सुख गातन ।
सब तजि कुंज-केलि भज अहनिसि, अति अनुराग सदा तन ।
तृन हू तें नीचे, तर हू तें सहकर, अमानी, मान सुहात न ।
असि-धारा व्रत ओर निवाह्यौ, तन-मन कृष्न-कथा तन ।
करुनासिंधु कृष्न चैतन्य की कृपा फली दुहूँ आतन ।
तिन बिनु 'व्यास' अनाथ भये, अब सेवत मूखे पातन ॥

५. जमुना जी की स्तुति—

राग कान्हरौ

जमुना जोरी जू की प्यारी ।
जाकौ वैभव कही भागवत, सुक, जयदेव बिचारी ॥
मनिमय तटी, उभय पट-भूपन, पूपन पियहिं सिंगारी ।
सौरभ-सुधा सलिल, जनु राधा-मोहन की रस - झारी ॥
सुरतरु राज बिराजत, तीर कुटीर समीर सँवारा ।
कुसुमित नमित विविध साखा सों, प्रान समान सुखारी ॥
महलन के मारग जल छलबल, बिहरत निपुन बिहारी ।
ऐंननि लै नैनन - सैनन म, व्याकुल बसत बिकारी ॥
हंस हंसिनी सभा प्रसंसित, जय वृषभान-दुलारी ।
'व्यास'-स्वामिनी, स्याम-भामिनी, बृंदावन-चंद उज्यारी ॥८

६. महाप्रसाद की स्तुति—

राग सारंग

हमारी जीवन-मूरि प्रसाद ।
अतुलित महिमा कहत भागवत, मेंटत सब प्रतिवाद ॥
जो षट मास ब्रतनि कीनैं फल, सो एक सीथ कैं स्वाद ।
दरसन पाप नसात, खात सुख, परसत मिटत बिपाद ॥
देत-लेत जो करै अनादर, सो नर अधम गवाद ।
श्री गुरु सुकल प्रताप 'व्यास', यह रस पायौ अनहाद† ॥२

हरि-प्रसाद क्यों लेत नारकी ।
ब्याह-सराध अधम जहँ जूठनि खात फिरत संसार की ॥
जा मुख सलिता बहै निरंतर, बिष-लोहू-कफ-लार की ।
तिहिं मुख सुखद जाय क्यों जूठनि, ब्रज-जुबतिन के जार की

† श्री गुरु सुकल प्रताप 'व्यास' यह रस पायौ अनहादि (ग) '
सकल प्रताप 'व्यास' यह रस पायौ अनहाद (च); 'व्यास' प्रीति परतीत री
बृन्न तै सुख नाद (स, च)

ताहि न बृंदावन-रज रुचि है, राधा-पद सु कुँवार की ।
जाकी देह टेव परी है, कदरज ढोली स्वार की ॥
ज्यों असती आराधन जारहिं, तजि सेवा भरतार की ।
तिनैं 'व्यास' कहावत निगमन, विषय-नदी विष-धार की ॥३०॥

७. नाम की स्तुति— राग कान्हरौ

परम धन राधा नाम अधार ।
जाहि स्याम मुरली मे टेरत, सुमिरत बारंबार ॥
जंत्र, मंत्र अरु बेद-तंत्र में, सबै तार कौ तार ।
श्री सुक प्रकट कियौ नहिं याते, जानि सार कौ सार ॥
कोटिन रूप धरैं नँदनंदन, तौऊ न पायौ पार ।
'व्यासदास' अब प्रगट बखानत, डारि भार में भार ॥३१॥

लागी रट राधा, श्री राधा नाम ।
ढूँढ़ि फिरी बृंदावन सगरौ, नंद - ढिठौना स्याम ॥
कै मोहन है खोर साँकरी, कै मोहन नँदगाम ।
श्री 'व्यासदास' को जीवन राधे, धनि बरसानौ गाम ॥३२॥

राग गौरी

हरि-हरि-हरि मेरै आधार । हरि-हरि मेरै सहज सिंगार ॥
हरि-हरि सकल सुमन कौ सार । हरि-हरि 'व्यास' कृपन कें भंडार ॥३३॥

राग भैरव

हरि बोलि, हरि बोलि, प्यारी रसना । हरि बोले बिनु नरकहिं बसना ॥
हरि बोलि, नाँचि न मेरे मना । हरि बोलि, होइ निरमल तना ॥
हरि बोलि, पर-निंदा नहीं करना । हरि बोलि, राधा-चरन सरना ॥
हरि बोलि, बृंदाविपिन गहना । हरि बोलि,हरि बोलि सबै सहना ॥
हरि नाम, हरि नाम सदा जपना । हरि बिन'व्यास'न कोऊ अपना ॥३४॥

राग सारंग

गोपाल कहियै, गोपाल कहियै । गोपाल कहियै,कछु और न कहियै ।
गोपाल कहियै, दुख-सुख सहियै । गोपाल ज्यों राखैं, त्यों ही रहियै ॥
गोपाल गाइयै, परम पद लहियै । 'व्यास' बेगि बृंदावन गहियै ॥३५॥

राग नट

नरहरि गोविंद गोपाला ।
दीनानाथ, दयानिधि सुंदर; दामोदर नँदलाला ॥
सरन - कलपतरु चरन कामधेनु, आरति हरन कृपाला ।
भक्त पतित पावन, , रसाला ॥

अघ, बक, बकी, वत्स, धेनुक, कंस, केसि कुल काला ।
साधु सभा हरि पुष्ट करहिं, दिन दुष्टन के घर घाला ॥
मानसरोवर रसिक अनन्य, हृदय कल कमल मराला ।
घन तन स्याम, नाम राधा-धव, नागर नैन बिसाला ॥
इंद्र नीलमनि मोहन तन छवि, कंचन तन ब्रजबाला ।
'व्यास'-स्वामिनी हरि उर राजत, मानहुँ चंपक-माला ॥३

राग धनाश्री

जय श्री कृष्णा, जय श्री कृष्णा, जय श्री कृष्णा, जय जगदीसा
असुर - सँहारन, बिपति - बिदारन, ईस्वन हू के ईसा
कृष्ण - मुरारी, कुंज - बिहारी, बाल - मुकुंदे, लाला
दीन - उधारी, संत - सुधारी, गिरिधारी, गोपाला ।
जदुकुल - नायक, दीन - सहायक, सुख - दायक, जन - बंधू
सुखमा - सुंदर, महिमा - मंदिर, करुना - पूरन सिंधू ॥
गोधन-गोहन, बन - घन - सोहन, मन - मोहन, ब्रज - चंदा
नटवर नागर, परम उजागर, गुन-सागर, गोबिंदा ।
जदुकुल - नंदन, दनुज - निकंदन, करत सनंदन सेवा
जय गरुड़ासन, प्रेम प्रकासन, 'व्यासदास' कुल देवा ।

८. श्री वृंदावन की स्तुति—

राग सारंग

कहत हू बनै न ब्रज की रीति ।
यह सुख सुक-सनकादिक माँगत, माया-मोहहिं जीति ॥
सब गोपाल उपासिक, तन-मन वृंदावन सों प्रीति ।
एक गोविंद चंद लगि छाँड़ी, लोक-बेद की भीति ॥
सहज सनेह देह गति बिसरी, बाढ़ी सहज समीति ।
संपति सदा रहत, बिपदा महिमोहन की परितीति ॥
अगनित प्रलय-पयोधि बढ़त हू, मिटी न घोष बसीति ।
'व्यास' बिहारिहिं बिहरत बन, अवतार गये सब बीति ॥२८

राग सारंग

सदा वृंदावन सब की आदि ।
रसनिधि,सुखनिधि,जहाँ बिराजत नित्य, अनंत, अनादि ॥
गौर-स्याम कौ सरन, हरन दुख, कंद - मूल - मुंजादि ।
सुक, पिक, केकी, कोक, कुरंग, कपोत, मृगब, सनकादि

कीट, पतंग, विहंग, सिंह, कपि, तहाँ सोहत जनकादि ।
तरु, तृन, गुल्म, कल्पतरु, कामधेनु, गो, बृष, धर्मादि ॥
मोहन की मनसा ते प्रगटित, अंस - कला कपिलादि ।
गोपिन कों नित नेम - प्रेम, पद-पंकज जल - कमलादि ॥
राधा दृष्टि सृष्टि सुंदरि की, बरनत जयदेवादि ।
मथुरा मंडल के जादव कुल, अति अखंड देवादि ॥
द्वादस बन में तिलु - तिलु धरनी, मुक्ति तीर्थ गंगादि ;
कृष्ण जन्म अचला न चलै, जो होहिं प्रलय मन्वादि ॥
गिरि गह्वर बीथी रति रन में, कालिंदी सलितादि ।
सहज माधुरी मोद विनोद, सुधा-सागर ललितादि ॥
सबै संत सेवत निरबैरिन, लखि माया नासादि ।
सेष - असेष पार नहिं पावत, गावत सुक-'व्यासा'दि ॥३९॥

राग कामोद

धनि-धनि बृंदावन की धरनि ।
अधिक कोटि बैकुंठ लोक तें, सुक - नारदमुनि बरनि ॥
जहाँ स्याम की वाम केलि कुल धाम, काम-मन हरनि ।
ब्रह्मा मोह्यौ ग्वाल मंडली, भेद रहित आचरनि ॥
राधा की छवि निरखत मोही, नारायन की घरनि ।
और बार कीनी बनि बनिता, प्रेम पतिहिं अनुसरनि ॥
जहाँ महीरुह राज विराजत, सदा फूल-फल फलनि ।
तहाँ 'व्यास' बसि ताप बुझायौ, अंतरहित की जरनि ॥४०॥

राग सारंग

छबीली बृंदावन की धरनि ।
सदा हरित, सुख भरित, मोहनी मोहन परसत करनि ॥
धवल धेनु छवि नवल ग्वाल फबि, सोभित द्रुम की जरनि ।
रंग भरी अँग-अँग विराजत, पल्लव लब-लब धरनि ॥
चंद्रक चारु सिंगार, केकि-नट नाचत मिलि नागरनि ।
गुन अगाध राधा - हरि गाइ-बजावत सुख-सागरनि ॥
कुंज-कुंज कमनीय कुसुम, सयनीय केलि आचरनि ।
कुच गहि चुंबन करि दुख मेटि, भेंटि भुज आँकौ भरनि ॥
पावक-पवन, चंद-तारा जहँ, आभासत नहिं तरनि ।
'व्यास' स्वामिनी कौ बल-बैभव, कहि न सकत कवि डरनि ॥४१॥

श्री बृंदावन की सोभा देखत, मेरे नैन सिरात ।
कुंजनि - कुंज पुंज सुख बरषत, हरषत सबके गात ॥
राधा-मोहन के निज मंदिर, महा प्रलय नहिं जात ।
ब्रह्मा तें उपज्यौ न अंड तें, कमल सिखंड नसात ॥
फन पर रवि तर नहीं बिराट महँ, कमला पुर के नात ।
माया-काल रहित, नित नूतन, सदा फूल-फल-पात ॥
निर्गुन-सगुन ब्रह्म तें न्यारौ, बिहरत सदा सँघात ।
'व्यास' बिलास-रास अद्‌भुत गति, निगम अगोचर बात ॥

राग धनाश्री

माया-काल न रहत, बृंदावन रसिकन की रजधानी ।
सदा राज ब्रजराज लाड़िलौ, राधा संतत रानी ॥
मथुरा मंडल देस सुबस, गढ़ गोवर्धन सुखदानी ।
रास भंडार सुभोग रहत, अति पावन जमुना पानी ॥
बंसीवट छत्र, पुलिन सिंघासन, मृदंग अलि-पिक-बानी ।
कटि-काछनी टिपारौ बाँधे, मोरन सुधंग ठानी ॥
निर्भय राजपंथ, चिर बीथिन, महल निकुंज रवानी ।
प्रतीहार ब्रजबासी रोकत, सपनें हु न जान अभिमानी ॥
हरिबंसी - हरिदासी महलनि साधु सनातन जानी ।
बेगि खबर करि 'व्यास' गुदरिवी, पिछिली हू पहिचानी ॥

राग केदारौ

श्री बृंदावन की सोभा देखत, बिरले साधु सिरात ।
बिटप-बेलि मिलि केलि करत, रस-रंग अंग लपटात ॥
भुज-साखनि परिरंभन, चुंबन देत परसि मुख पात ।
कुच फल सदय हृदय पर राजत, फूल दसन मुसकात ॥
कोटर स्रवन सुनत मृदु कुंजनि, किसलय नैन चुचात ।
नित्य विहारहिं खग सुर गाइनि गावत सुरभि सुवात ॥
इहिं रस जिनके तन-मन राचे, तिनहिं न और सुहात ।
'व्यास' बिलास-सिंधु लोभिन के उर-सरवर न समात ॥४

राग केदारौ

सुखद सुहावनौ बृंदावन लागत है अति नीकौ ।
त्रिविध समीर बहै, रुचिदाइक भाँवते-भाँवती कौ
मोर, चकोर, हंस-हंसिनि युत, पीवत पान अधर-रस पी कौ
पलक न लगत अंग छवि निरखत, बांनत जीवन जी कौ

रली बजाइ, सुनाइ स्रवन धुनि, संतन सों मंडल रचि लीकौ ।
नृत्तत, थेइ-थेइ बोलि परस्पर, तन में तनक न सीकौ ॥
नित्य बिहार-अहार करत हैं, ब्रजवासिन सुख-पुन्य रती कौ ।
'व्यासदास' या सुख के ऊपर और ऐसौ, ज्यौं दीपक द्यौसहिं फीकौ ॥४१

राग देवगंधार

श्री बृंदावन देखत नैन सिरात ।
इनि मेरे लोभी नैनन में, सोभा-सिंधु न मात ॥
संतत सरद-बसंत, बेलि-द्रुम झूलत, फूलत घात ।
नंदनँदन-बृषभाननंदिनी मानहुँ मिलि मुसकात ॥
ताल, तमाल, रसाल, साल, पल-पल चमकत, फल-पात ।
मनहु गौरमुख बिधु कर रंजित, सोभित साँवल गात ॥
किंसुक नवल नवीन माधुरी, बिगसित हिल उरझात ।
मनहु अबीर-गुलाल भरे तन, दंपति रति अकुलात ॥
बैठे अलि अरबिंद-बिंब पर, मुख-मकरंद चुचात ।
मानहु स्याम कंचु कुच कर गहि, अधर-सुधा पीवत बलि जात ॥
नाचत मोर, कोकिला गावत, कीर-चकोर सुहात ।
मनहु राम-रस नाचैं दोऊ, बिछुर न जानत प्रात ॥
त्रिभुवन के कवि कहि न सकत कछु, अदभुत गति की बात ।
'व्यास' बात नहिं मुख कहिआवै, ज्यौं गूंगहिं गुर खात ॥४२॥

श्री बृंदावन प्रगट सदा सुख-चैन ।
कुंज-निकुंज पुंज छबि बरषत, आनँद कहत बनै न ॥
कुसुमिति नमित बिटप नव साखा, सौरभ अलि रस-ऐन ।
मधुप, मराल, केकि, सुक, पिक धुनि, सुनि व्याकुल मन मैन ॥
स्यामा-स्याम फिरत बन-बीथिन, होत अचानक ठैन ।
पुलकित गात सम्हारत भुज में, भेंटत बात कहै न ॥
अति उदार सुकुमारि नागरी, रोम-रोम सुख दैन ।
हाव-भाव अँग-अंग बिलोकत, धन्य 'व्यास' के नैन ॥४३॥

राग सारंग

बृंदावन की बलाइ लै हौं ।
देखत जाहि राधिका-मोहन, सुख पावत रौ-रौ ।
सीतल छाँह सुबास कुसुम-फल, जमुना-जल रस सौ ॥
बिटप-बेलि प्रति केलि प्रगट, बिट बधू प्रताप नदौ ।
सुक, पिक, अलि केकी, मराल, मन माँहि बँधौ

ब्रजवासिन की पद-रज तन, मन सुखसागरहिं सचौं
छबि-निधि 'व्यास'हिं फब गई भक्ति, क्यों छिन छाँड़ि सकौं।

प्यारी श्री बृंदावन की रैन।
जाहिं निरखि मोहन सुख पावत, हरषि बजावत बैन।
जहाँ-तहाँ राधा चरननि के अंक बिराजत गैन
राग-भोग संजोग जहाँ-तहाँ, दंपति के रति-सैन।
रसिक अनन्यनि कौ मुख-मंडन, दुख-खंडन, सुख-चैन
मधु मकरंद चंद रस बरषत, गोधन कौं निजु फैन॥
कुंजनि पुंजनि की छबि निरखत, रति भूली पति मैन।
'व्यासदास' के कुंवर-किसोरी, बाँयौ-दाहिनौ नैन॥

माला-मंदिर तें पावन, बृंदावन की रैन।
भक्ति-भागवत हू तें प्यारी, रसिकन मोहन नैन॥
महाप्रसाद स्वाद नें मीठौ, गाइन कौ पय-फैन।
साधु-संग ते अधिक जानिबौ, ग्वाल मंडली धैन॥
वर मथुरा बैकुंठ लोक ते सुखद निकुंजनि ऐन।
सुक-नारद-सनकादिक हू तें, दुर्लभ मोहन-सैन॥
सुनौ न देखौ, भयौ न ह्वै है, राधा सम रस चैन।
'व्यास' बल्लभ वपु बेदनि हू (ते), माँग्यौ मोहन मैन॥५०।

प्यारे श्री बृंदावन के रूख।
जिन तर राधा-मोहन बिहरत, देखत भाजत भूख॥
माया-काल न व्यापै जिन तर, सींचै प्रेम पयूख।
कोटि गाय-बांभन हन, साखा तोरत हरहिं बिदूख॥
रसिकन पारजात सूझत है, बिमुखन ढाक-पिलूख।
जो भजियै तौ तजियै पान, मिठाई, मेवा, ऊख॥
जिनके रस-बस ह्वै गोपिन तज सुख-संपति-ग्रह तूख।
मनि-कंचन मय कुंज बिराजत, रंध्रनि चंद्र-मयूख॥
जिहिं रस भोजन तज्यौ परीछित, उपजौ सुकहिं अहूख।
'व्यास' पपीहा बन घन सेयौ, दुख सलिता-सर सूख॥५

छबीली बृंदावन की बेलि।
आनँद-कंद-मूल सुख मय, फल-फूल सुधा-मधु फेलि॥
राधारवन भवन मनमोहन, निरखि बढ़ावत केलि।
मलयज, मृगज, कपूर पूरि, कुंकुम, सौरभ रस मेलि

तहाँ बिराजत हंस-हंसिनी, अंस बाहु पर मेलि ।
अलि-कुल नैन चपक रस पीवत, कोटि मुकति पग पेलि ।
'व्यास' स्वामिनी पियहिं सुबस करि, बिरमति नाहिंन खेलि ।।५२।।

राग सारंग

बिराजै श्री बृंदावन की बेलि ।
फूलनि द्रुम भरि ताहि भेंटि, दुख मेटि, अंस भुज मेलि ।।
अरुझि नाह की बाँहनि, कुंचित केस सुदेस नवेलि ।
कल फल पीन पयोधर पिय के, हिय सुख-सागर झेलि ।।
किसलय बदन बिहँसि चुंबन करि, पुलकि-पुलकि करि केलि ।
आनँद नीर नयन मधु बरषत, हरषत कोटिक खेलि ।।
पट-भूषन नव कुसुम-पत्र छवि, रवि - पावस अवहेलि ।
'व्यास' राधिकारवन-भवन कौं, निरखत है पग पेलि ।।५३।।

श्री बृंदाबन के रूख, हमारे मात - पिता - सुत - बंधु ।
गुरु गोविंद साधु गति-मति सुख फल-फूलन की गंध ।।
इनहिं पीठि दै, अनत दीठि करै, सो अंधनि में अंध ।
'व्यास' इन्हें छोड़ैरु छुड़ावै, ताकौ परै निकंध ।।५४।।

मीठी बृंदावन की सेवा ।
स्यामा-स्यामहिं नीकी लागत, ज्यों बालकहिं कलेवा ।।
वेलि हमारी कुल - देवी सब, बिटप-गुल्म स॰ देवा ।
और धरम अकरम से लागत, बिन माला ज्यों लगत जनेवा ।।
कुंजनि-कुंजनि कुसुम-पुंज रचि, सैन ऐन मधु-मेवा ।
मनि-कंचन भाजन भरि सौंधे, अंग धूप कौ खेवा‡ ।।
बिहरत सदा दुलहिनी-दूलह, अँग-अँग मधु रस पेवा ।
'व्यास' रास आकास फिरत दोऊ, मानहु प्रेम - परेवा ।।५५।।

राग धनाश्री

देखौ श्री बृंदाविपिन प्रभाइ ।
सब तीरथ धामनि फिर आयौ, देखत उपजत भाइ ।।
श्री जमुना तट लता भवन रज, छिन-छिन बाढ़त चाइ ।
मगन होत जब सुधि-बुधि बिसरत, कहूँ चलत नहिं पाइ ।।
यह रस चाखि और रस भूले, फूलत लखि मन अति घहराइ ।
अचरज कहा 'व्यास' सुख बरनत, थके रसिक ताहि गाइ ।।५६।।

सेबा (च , छ मेवा (ख

राग धनाश्री

सदा बन कौ राजा भगवान ।

जाकौ अंत अनंत न जानत, करि सुख चतुर बखान ।।
जो परभाव भक्ति रजधानी, राधारानी - प्रान ।
कुंज महल श्री वृंदावन धन गोपी रूप - निधान ।।
प्रेम प्रजा ब्रजवासी अनुचर, ग्वाल-ग्वालि संतान ।
माइ जसोदा, नंद पिता, सुखदाता श्री वृषभान ।।
बिटप छत्र-छाया मृदु राजत, आसन सभा सुजान ।
मंत्री मदन सहायक संतत, लाइक विषय प्रधान ।।
नटवा मोर और कल कोकिल, मधुप सुरन बँधान ।
भेरि मारही, झरना कल रव, मधुर मृदंग निसान ।।
राग-भोग संजोग सदा गति, रास - बिलास सु गान ।
यह सुख 'व्यास' दास कौं निसिदिन, दीनौ कृपानिधान ।।

९. मधुपुरी की स्तुति—

राग कान्हरौ

धनि-धनि मथुरा, धनि-धनि मथुरा, धनि मथुरा के वासी हो
जीवत मुक्त सबै बिहरत हैं, केसौराय उपासी हो
माला - तिलक हृदै अति राजत, मुनि-मन ज्ञान प्रकासी हो
थावर - जंगम सबै चत्रभुज, काम - क्रोध-कुलनासी हो
सुभग नदी बिश्रांत जमुन जल मज्जन काल बिनासी हो
'व्यासदास' पट पुरी दुरी सब, हरिपुर भयौ उदासी हो

सखी हो मथुरा-वृंदावन बसियै ।

तीन लोक तें न्यारी मथुरा, और न दूजी दिसियै ।
केसौराइ, गोवर्धन, गोकुल, पल-पल माँहि परसियै ।
जमुना जल बिसरांत मधुपुरी, कोटि करम जहँ नसियै ।।
नंदकुमार सदा बन बिहरत, कोटि रसाइन रसियै ।
'व्यासदास' प्रभु जुगल किसोरी, कोटि कसौटी कसियै ।।

१०. श्री किशोर-किशोरी जू की स्तुति—

राग सारंग व बिहागरौ

जय-जय राधिका-धव स्याम ।

केलि - पुंज - निकुंज - नायक, कंज - मुख सुख-धाम ।।
नैन - सैननि मैन मोहत, बैन बिहसनि बाम ।
भृकुटि - भंग तरंग उपजत, अंग अंग ललाम

पीत चीर, अबीर भूषन, किंकनी ननि दाम ।
मुकट-कुंडल गंड झलकत, अलक-छवि अभिराम ।।
धन्य बृंदाविपिन-बासी, सत्य पूरन काम ।
'व्यास' अगनित पतित उधरे, लेत पावन नाम ।।६०।।

राधिका-रमन जय ।
नवल कुँवरि बृंदावन-वासी, निज दासन दिखरावत सुख-चय ।।
जाके चरन-कमल सेवत नित, रसिक अनन्य भये सब निरभय ।
ताके नाम-रूप-गुन गावत, पावत महा प्रसाद रसालय ।।
नव निकुंज रति-पुंजनि बरषत, परसत अंग ललित लीलामय ।
ताकी आस 'व्यास' नहिं छाँड़हिं, जदपि लोक भये सब निर्दय ।।६१।।

राग धनाश्री

महिमा स्याम की हम जानी ।
जेहि प्रताप बृंदावन सेवत, मो हू से अभिमानी ।।
हम हू सेन कृपा करि दैहै, दरसन राधारानी ।
'व्यासदासि' नव केलि विलोकति, बिन ही मोल बिकानी ।।६२।।

श्री राधाबल्लभ नमो-नमो ।
कुंज-निकुंज-पुंज रति-रस में, रूप-रासि जहाँ, नमो-नमो ।।
सुख-सागर, गुन-नागर, रस-निधि, रस सुधंग रँग, नमो-नमो ।
स्याम सरीर, कमलदल लोचन, दुख-मोचन हरि, नमो-नमो ।।
बृंदाबिपिन-चंद नँदनंदन, आनँदकँद सुख, नमो-नमो ।
सर्वोपरि, सर्वोपम, निसि-दिन 'व्यासदास'-प्रभु, नमो नमो ।।६३।।

राग सारंग

सबको भाँमतौ राधावर ।
पूत जसोदा कौ नँदनंदन, ब्रज-लाड़िलौ स्याम-सुंदर ।।
कुंजबिहारी सदा सिंगारी, गावत-नाचत सदा सुघर ।
कोक-कलाकुल, रसिक-मुकटमनि, बारिज-मुख सुख-सागर ।।
महा पतित पावन चरननि के, सरन रहत काकौ डर ।
'व्यास' अनन्य रसिक-मंडल कौ पोसक मानसरोवर ।।६४।।

हरि सौ दाता भयौ न आहि ।
सुख करिबे कों, दुख हरिबे कौं, सब जग देख्यौ चाहि ।।
भक्तन के बस हरि है जानत, जसु दीनौं जसुदाहि ।
जाहिं भक्त की लाज बढाई दीनौं द्रुपद सुताहि

जाकी दान-मान की महिमा, सकत न वेद सराहि ।
जिहि चिरवा लै कमला दीनी, मंद न माँगत ताहि ।।
पतित पिंगलहिं आलिन दै, रूप दियौ कुब्जाहि ।
हरि न पाइयतु 'व्यास' भक्ति बिनु, मिटै न मन की डाहि ।।

भयौ न ह्वै है हरि सों प्यारो ।
सुन्यौ न देख्यौ हरि सौ हितुवा, सुत-माता-महतारौ ।।
ज्यौं रंक सों प्रीति करत कोऊ, अपनौ काज बिगारौ ।
गरजत भक्त भरोसे हरि के, ज्यौं पानिप मनि गारौ ।।
कामधेनु, कल्पद्रुम कौ सेवक, अजहिन करौ कुदारौ ।
सिंह-सरन रहि स्यारहिं डरपत, बिनु काजर मुँह कारौ ।।
भव-सागर डरि स्वान-पूंछ गहि, सो को, जो न दुखारौ ।
'व्यास' आस तजि बृंदावन में, रीजें दाव सबारौ ।।

हरि कौ सौ हित न कियौ अब काहू ।
और सबै दुखदाता, लातनि मारत लागें पाहू ।।
ऐसौ सुख सपनैं नहिं दीनो, गर्भे बसत माता हू ।
अपनौ विषै-भोग-पोषन लगि, कीनों कपट पिता हू ।।
बोलि तोतरे बोल, चोरि चित, वित लीनों बेटा हू ।
अपनै काज पतिव्रत लीनौ, बस कीनी अबला हू ।।
भाइप प्रीति मप्रीति मिलैं चित, घर लीनौ भैया हू ।
कपट प्रीति-परतीति बढ़ाई, अपने काज मग्वा हू ।।
ब्याह बरैती मिस रूठ्यौ करि, घर लूट्यौ सजना हू ।
धन कारन मन हरथौ कर्‍यौ सब, स्वारथ लगि राजा हू ।।
हरि-गुन विमल अगाध सिंधु की, को जाने सीमा हू ।
क्रूर, कुटिल, कामी, अपराधी, 'व्यास' विमुख सेवा हू ।।६

राग सारंग जयतिश्री

हरि दासनि के बस ह्वै जानत ।
निगम अगोचर, आपुन हित करि, जन के जसहिं बखानत ।
राई सौ गुन देखत गिरि सम, दोष न मन महँ आनत
थोरै ही रति करत बहुत, बहु दीने तनक न मानत ।
जालराइ अभिमनिनि, दीननि तबहीं हँसि पहिचानत ।।
सर्वसु देत सुरायैं ही, कपटिनि सों चतुराई ठानत
संतन के अपराध छमत, अपनैं करतब ही हिरानत ।
व्यास' भक्ति की यहै रीति, अपनैं संतनि सों मन मानत

राग सारंग व धनाश्री

सोहत पराधीनता स्यामहिं ।
जाके बल रस-सिंधु बढ़ायौ, गावत को गुन-ग्रामहिं ॥
मारत - बाँधत सुख पावत हरि, छोरि न डारत दामहिं ।
रोवत नहीं दुखित ह्वै जानत प्रेम-नेम जसुधा महिं ॥
आपु बँधाइ छुड़ाइब दीननि, देत विषय निह कामहिं ।
अद्‌भुत वैभव कह्यौ न जाय सुक श्री भागवत कथा महिं ॥
मोद-विनोद बिचित्र बिराजत, निस-दिन चंद ललामहिं ।
'व्यास' रूप-गुन सुख-रस आनँद-कंद बृंद राधा महिं ॥६९॥

राग सारंग

असरन-सरन स्याम जू कौ बानौ ।
बड़ौ बिरद पतितन कौ पावन, भक्तन हाथ बिकानौ ॥
सुक-नारद जाकौ जस गावत, सिव-बिरंचि - उरगानौ ।
हित ही की हित मानत नागर, गनत न रंक, न रानौ ॥
दयासिंधु दीननि कौ बांधव, प्रगट भागवत कहानौ ।
रजधानी बृंदावन जाकी, लोक चतुर्दस थानौ ॥
ऐसे ठाकुर कौ हौं सेवक, कैसैं औरहिं मानौं ।
'व्यास' कलंक लगै तो जननी, जो न पितहिं पहिचानौं ॥७०॥

राग कान्हरौ

राधाबल्लभ मेरौ प्यारौ ।
सर्वोपरि सबहिंन कौ ठाकुर, सब सुखदानि हमारौ ॥
ब्रज-बृंदावन-नाइक, सेवा - लाइक स्याम उज्यारौ ।
प्रीति-रीति पहिचानै-जानै, रसिक अनन्यनि कौ रखवारौ ॥
स्याम कमल दल लोचन, दुख-मोचन नैननि कौ तारौ ।
अवतारी, सब अवतारन कौ महतारी - महतारौ ॥
मूरतिवंत-काम गोपिन कौं, गऊ - गोप कौ गारौ ।
'व्यासदास' कौ प्रान-जीवन-धन, छिन न हृदै तें टारौ ॥७१॥

राग कमोद व धनाश्री

देखौ माई, सोभा नागरि-नट की ।
जाके दरस-परस रस राचै, बिथकित मनसा मन की ॥
जाकौ गुन लागत ही भागै, साँपिनि तृष्ना धन की ।
जिहिं रस गोपी गोपालहिं भजि, तजि माया गृह तन की ॥

जहाँ चंद्रिका मंद होत नहिं, राधा बिधु-आनन की ।
पीवत नंदकिसोर चकोरहिं बाढ़ी चोप मदन की ।।
जाकी कथा परीछत सुनि, तजि त्रास बिषी भय भव की ।
जिहिं आनँद 'व्यासहिं' सुख परिहरि, आसा जननी-थन की ।।७२।।

राग सारंग व धनाश्री

स्याम सु धन को नाही अंत ।
जाकै कोटि रमा सी दासी, पद सेवत रति-कंत ।।
कोटि-कोटि लंका-सुमेरु से, रंकनि हँसि बगसंत ।
सिव, बिरंचि, मघवा, कुबेर, जाके रोमनि के तंत ।।
रजधानी वन कुंजमहल-महली सरद-बसंत ।
श्री राधा रानी, सहचरि गोपी, सुख पुंजनि बरषंत ।।
नागर मनमोहन रस-सागर, अर्थ अपार अनंत ।
'व्यास' स्वामिनी भोग भोगवत, नव जोबन मयमंत ।।७३।।

श्री बृंदावन के राजा स्याम, राधिका ताकी रानी ।
तीन पदारथ करत मँजूरी, मुक्ति भरत जहँ पानी ।।
करमी-धरमी करत जेबरी, घरु छावत है ज्ञानी ।
जोगी, जती, तपी, संन्यासी, इन चोरी के जानी ।।
पनिहाँ बेद, पुरान मिलनियाँ, कहत-सुनत यह बानी ।
घर-घर प्रेम-भक्ति की महिमा, 'व्यास' सबनि पहिचानी ।।७४।।

राग सारंग (चर्चरी ताल)

नव कुँवर चक्र चूड़ा नृपति मनि साँवरौ, राधिका तरुनि-मनि पट्टरानी
सेसगृह आदि बैकुंठ पर्यंत, सब लोक थानैत, बन राजधानी
मेघ छयानवै-कोटि बाग सींचत जहाँ, मुक्ति चारौं जहाँ भरत पानी
सूर-ससि पाहरू, पवन जन, इंदिरा चरन-दासी, भाट निगम-बानी
धर्म कुतवाल, सुक सूत, नारद चारु फिरत चर, चार सनकादि ज्ञानी
सत्त गुन पौरिया, काल बंदुआ, कर्म डाँडियै, काम-रति सुख-निसानी
कनक मरकत धरनि, कुंज कुसुमित, महल मधि कमनीय सयनीय ठानी
पल न बिछुरत दोऊ, जात नहिं तहाँ कोऊ, 'व्यास' महलन लियें पीकदानी ।।

राग धनाश्री

स्यामहिं उपमा दीजै काकी ?
बृंदावन सौ घर है जाकौ, राधा दुलहिन ताकी ।।
नारद, सुक, जयदेव बखानी, अद्भुत कीरति जाकी ।
जाकौ वैभव देखत कमला-पति में रही न बाकी ।।

इहिं रस नवधा भक्ति उबीठी, रति भागवत-कथा की ।
रहन-कहन सबही तें न्यारी, 'व्यास' अनन्य सभा की ।।७६।।

राग सारंग

यह छवि को कवि बरन सकै !
जब राधा मोहन सनमुख ह्वै, भृकुटि-बिलास तकै ।।
सेष - असेष कोटि चतुरानन, वरनत बदन थकै ।
उपमा जितीं तितीं सब झूठीं, कत मन - बुधि भटकै ।।
जिते तिते वक्ता अरु स्रोता, कलपि - कलपि सुबकै ।
आगम - निगम सबै पचिहारे, 'व्यासै'-मति तनकै ।।७७।।

राग बिलावल व सारंग

श्री राधाप्यारी के चरनारबिंद, सीतल सुखदाई ।
कोटि चंद मंद करत, नख - बिधु जुन्हाई ।।
ताप, साप, रोग, सोग, दारुन दुख-हारी ।
कालकूट - दुष्ट - दवन, कुंजभवन - चारी ।।
स्याम हृदय भूषन जुत, दूषन जित संगी ।
श्री बृंदावन-धूरि - धूसर, रास - रसिक - रंगी ।।
सरनागत अभय बिरद, पतित पावन बानै ।
'व्यास' से अति अधम आतुर कौं, कौन समानै ।।७८।।

राग सारंग व धनाश्री

धनि तेरी माता, जिनि तू जाई ।
ब्रज-नरेस बृषभान धन्य, जिहिं नागरि कुँवरि खिलाई ।।
धन्य श्रीदामा भैय्या तेरौ, कहत छबीली बाई ।।
धन्य बरसानौ, हरिपुर हू तें ताकी बहुत बड़ाई ।
धन्य स्याम बड़भागी तेरौ नागर कुँवर सदाई ।।
धन्य नंद की रानी जसुदा, जाकी बहू कहाई ।
धन्य कुंज सुख - पुंजनि, बरसत तामैं तू सुखदाई ।।
धन्य पुहुप - साखा - द्रुम - पल्लव, जाकी सेज बनाई ।
धन्य कल्पतरु बंसीबट, धनि वर बिहार रह्यौ छाई ।।
धन्य जमुन, जाकौ जल निर्मल अँचवत सदा अघाई ।
धन्य रास की धरनी, जिहिं तू रुचि कै सदा नचाई ।।
धन्य सखी ललितादिक, निसिदिन निरखत केलि सुहाई ।
धन्य अनन्य 'व्यास' की रसना, जेहिं रस-कीच मचाई ७६।

११. उत्तम सिद्ध भक्त लक्षण—

राग केदारौ

श्री कृष्न - कृपा तें सब बनि आवै ।
सतगुरु मिलै साधु की संगति सदा, असाधु न भावै ॥
चित इंद्रीजित, वितु न रुचै मन, निजु जनही कों धावै ।
लोचन दुखमोचन मुख देखत, रसना हरि - गुन गावै ॥
दरस भक्ति भागवत तीस - सात जगदीस बतावै ।
रास - विलास - माधुरी राधा, बृंदाबिपिन बसावै ॥
सो जु कहा उपजै गुन हरि भजि, दोष दुखनि बिसरावै ।
दोष रहित, गुन रहित, 'व्यास' अंधे की दई चरावै ॥८०

राग सारंग

रुचत मोहि बृंदावन कौ साग ।
कंद - मूल, फल - फूल जीविका, मैं पाई बड़ भाग ॥
घृत, मधु, मिश्री, मेवा, मैदा, मेरे भायें छाग ।
एक गाय पै वारौं, कोटिक ऐरावति से नाग ॥
जमुना जल पर वारौं, सोमपान से कोटिक जाग ।
श्री राधापति पर वारौं, कोटि रमा के सुभग सुहाग ॥
साँची माँग किसोरी के सिर, मोहन के सिर पाग ।
बंसीवट पर वारौं कोटिक, देव - कल्पतरु - बाग ॥
गोपिन की प्रीतिहिं पूजत, सुक - नारद अनुराग ।
कुंज - केलि मीठी है, बिरह - भक्ति सीठी ज्यों आग ॥
'व्यास'* विलास रास - रस पीवत, मिटैं हृदय के दाग ॥८१

राग गौरी व नट

मेरौ हरि-नागर सों मन मान्यौ ।
अगम-निगम पथ छाँड़ि दियौ है, भली भई सबरे जग जान्यौ ॥
मात-पिता की सीख न मानी, और तजी कुल - कान्यौ ।
'व्यासदास' प्रभु के मिलिवे बिनु, काहि रुचै भोजन - पान्यौ ॥

मोहिं बृंदावन-रज सों काज ।
माला, मुद्रा, स्याम बिंदुली, तिलकु हमारौ साज ॥
जमुना जल पावन सु हमारें, भोजन ब्रज कौ नाज ।
कुंज-केलि- कौतुक† नैननि - सुख, राधा - धव कौ राज ॥

---

* 'व्यास' (छ); 'श्री व्यास' (ख), (च)

† 'कौतुक' (च), (छ), 'कौतिक' (ख) (ग)

निसि - दिन दुहुँ दिसि सेवा मेवा, ताल-पखावज बाज ।
निरतत नटनागर भावत अति, 'व्यास'हिं साधु-समाज ।।८३।।

ई साधु, जो हरि गुन गाया ।‡ सोई साधु जु छाँड़ै माया ।।
या को फल गृह, सुत, जाया । दामिनि कैसी चमकिनि काया ।।
. संसार धूरि की छाया । सपनैं हरि सों मन न लगाया ।।
र भरतार कियौ दुग्व पाया । 'व्यास' सुहागिल स्याम रिझाया ।।८४।।

माया भक्त न लगतै जाई ।
जद्यपि कान्ह कुँवर की बहिनी, जसुदा मैया जाई ।।
जाके मोहैं तन - धन भावै, मन में नारि पराई ।
जस की हानि होत ताके बस, पसु ज्यों करत लराई ।।
वासों प्रीति करत हरि विसरत, संत जना सब भाई ।
सोई साधु जु ताहि तजै, हरि-चरन भजै चित लाई ।।
नाचति जगहिं, नचावति मम सिर, तोरति तार रिसाई ।
मोहन बिनती सुनहुँ 'व्यास' की, वन में होति हँसाई ।।८५।।

हरिदासन के निकट न आवत प्रेत, पितर, जमदूत ।
अरु जोगी, भोगी, संन्यासी, पंडित, मुंडित, धूत ।।
ग्रह, गनेस, सुरेस, सिवा, सिव डर करि भाजत भूत ।
सिधि-निधि, बिधि-निषेध हरिनामहिं, डरपत रहत कपूत ।।
सुख - दुख, पाप - पुन्य मायामय भीत सहत आकूत ।
सब की आस-त्रास तजि 'व्यास'हिं भावत भक्त सपूत ।।८६।।

राग सारंग व धनाश्री

श्री बृंदावन न तजै अधिकारी ।
जाके मन परतीति रीति नहिं, ताके बस न बिहारी ।।
कैसै जारहिं भजिहै, तजिहै भरतारहिं कुल - नारी ।
भागी भक्ति लोभ के आगैं, मंत्री डोम भिखारी ।।
को-को भयौ न पर - घर हरुवौ, तात तजी महतारी ।
मालहिं पहिरि गुपालहिं छाँड़त, गुरुहिं दिवावत गारी ।।
ज्यौं गजकुंभ बिदारहिं सिंह बालक झपटै ज्यौं स्यारी ।
ऐसैं 'व्यास' सूर कायर की, संगति हरि करि न्यारी ।।८७।।

बन परमारथ पथ हरि मेरौ ।
अरथ करत है अनरथमैं कहा, मारतु है घर ही में घेरौ ।।

---

‡ (ख) प्रति में यह चरण नहीं है

कियौ अनन्य बीच नीच ह्वै, आइ फव्यौ रसिकनि कौ टेरौ ।
'व्यास' आस कै स्याम भरोसौ, दुख के बीज बये रस-खेरौ ॥८८

श्री बृंदावन मेरी घर बात ।

जाहि पीठि दै दीठि करौं कित, जित-तित दुखित जीव बिललात ।
स्याम सचे सुख-सागर कुंजनि, नागर रसिक अनन्य खटात
सहज माधुरी कौ रस बरषत, हरषत गोरे-साँवल गात ।
मुख मुख-चंद-सुधा रस सुनि-सुनि, स्त्रवननि आनँद मृष्टि अघात
नाद- बिनोद रास-रस माते, कोउ न रंगनि अंग समात ।
बिबि अरबिंद द्रवत मकरंदहिं, पियहिं जिवावहिं दल-पत्र चुचात
या रस बिनु फीके सब साधन, ज्यों दूलह बिनु 'व्यास' बरात ।

यह बृंदावन मेरी संपति ।

इहिलोक, परलोक बृंदावन मेरौ, पुरुषारथ-परमारथ, गथु-गति ।
साधन साधु संतत बृंदावन, राग-रंग गुन-गुनी जहाँ अति ।
भक्ति भागवत बृंदावन मेरौ, मात, पिता, भैया, गुरु संमति ॥
मंदिर जगमोहन मन - कोठौ, बृंदावन सेवा–मेवा निति ।
दाता दान - मान बृंदावन, छिन छूटै ना रहै प्रान पति ॥
जहाँ निकुंज पुंज सुख विहरत, राधा-मोहन मोहे काम-रति ।
तहाँ 'व्यास' बनिता भयौ चाहत, चारयौ बेद करत मत आरति ।

हमारैं बृंदावन व्यौहार ।

संपति गति बृंदावन मेरैं, करम - धरम करतार ॥
स्वारथ, परमारथ बृंदावन, गथ-पथ बिधि-ब्यौपार ।
बृंदाविपिन गोत - कुल मेरैं, कुल - बिद्या - आचार ॥
रूप - सील बृंदावन मेरैं, गुन गारौ सिंगार ।
बरष, मास, रितु, पच्छ, ऐन, जुग, कल्प सबै तिथि, बार ॥
फागु, दिवारी, परबु, पारबन बृंदावन त्यौहार ।
सूर सुघर बृंदावन मेरैं, रसिक अनन्य उदार ॥
बंधु सहोदर - सुत बृंदावन, राजा राज भँडार ।
श्री राधा-ललितादिक मेरैं, जीवन - प्रान - अधार ॥
सर्बसु 'व्यासदास' कौ बनि है, बृंदावनहिं अभार ॥६१

जाकी उपासना, ताही की बासना, ताही कौ नाम-रूप-गुन गाइयै ।
यहै अनन्य धर्म परिपाटी, बृंदावन बसि अनत न जाइयै ॥
सोई बिभचारी आन कहै, आन करै, ताकौ मुख देखैं, दारुन दुख पा
'व्यास' होइ उपहास त्रास कियैं, आस अछत, किस दास कहाइयै

ऐसैहिं बसियै ब्रज-बीथिनि ।
साधुन के पनवारे चुन-चुन, उदर पोषियत सीथिनि ॥
घूरनि में के बीन चिनवटा, रछ्या कीजै सीतिनि ।
कुंज-कुंज प्रति लता लोटि, उड़ रज लागै अंगीथिनि ॥
नित प्रति दरस स्याम-स्यामा कौ, नित जमुना जल पीतिनि ।
ऐसे हिं 'व्यास' होत तन पावन, इहिं बिधि मिलत अतीतिनि ।

राग रामकली

तेई रसिक अनन्य जानिवै ।
जिनको बिषय-बिकार न, हरि सौं रति, तेई साधु मानिवै ॥
तिनकी संगति पतित सु उधरे, जो बारक घर आनिवै ।
तिनके चरनोदक सों, अपने नख-सिख गातनि न्हानिवै ॥
तिनकी पावन जूठनि जैंवत, तब ही हरि हिय आनिवै ।
तिनके वचन स्रवन सुनि तिहिं छिन, मन-संदेह भानिवै ॥
तिनकी जीवनि - धन बृंदावन, जीवत मरत वखानिवै ।
'व्यास' राधिका-रमन भवन बिनु, तेई क्यों पहिचानिवै ॥८

श्री बृंदावन साँचौ है जाकैं ।
विषई विपै भिखारी दाता, निकट न आवै ताकै ॥
बसनी बसनहिं गिरत न जानैं, जीव कोऊ मद छाकैं ।
ऐसैं ही रससिंधु मगन भयैं, रहै अविद्या काकैं ॥
कुंज - केलि अनभौ है जाकै, सो चलै न पथ अबला कैं ।
जैसैं निर्धन ह्वै जु न* जैहै मोलैहू गनिका कैं ॥
जैसैं सिंधत्ति के सुत भूखे, जाचत नहिं बिलवा कैं ।
काम स्याम सों जिनहिं, ते सुने न जात रमा कैं ॥
ज्यों अनयासा संपति आवैं, ब्याहैं राजसुता कैं ।
ऐसैं ही 'व्यास' भक्ति पायैं सुख, द्रवत हैं स्याम कृपा कैं ॥६

जाके मन वसै बृंदावन ।
सोई रसिक अनन्य धन्य, जाकैं हित राधा-मोहन ॥
ताहि नित्य बिहार फुरै, बन-लीला कौ अनुकरन ।
बिषय - बासना नाहिन जाकैं, सुधरै अंतहकरन ॥
लोक-बेद कौ भेद न जाकैं, श्री भागवत सौ धन ।
ताकैं 'व्यास' रास-रस बरषत, बहि गईं कामिनि-कंचन ॥१

* 'जु न' (ख), (छ), 'जन' (ग , (ग),

हरि बिनु और न सुनौं-कहौं।
श्री गुरु की मैं सपथ करी है, यां पर मॉझ रहौं ॥
काहू के दोष न मन में आनौं, सबके मनहिं गहौं।
अंतरजामी हरि सब ही के, हौं उपहास सहौं ॥
जीवनि के चित थिर न रहत हैं, सुख-दुख धरतु न हौं।
'व्यास'हिं आस स्याम-स्यामा की, प्रीति किये निबहौं ॥१०१॥

मोहिं भरोसौ है हरि ही कौ।
मोकों सरन न और स्याम बिनु, लागत सब जग फीकौ ॥
दीननि की मनसा कौ दाता, परम भावतौ जी कौ।
जाके बल कमला सी तारी, काज भयौ अति नीकौ ॥
चारि पदारथ, सर्ब सिद्धि, नव निधि पर डारत नहिं पीकौ।
आँन देव मननै नहिं जाँचौं, ज्यों धन जानौं घी कौ ॥
तिनुका कैसैं रोकि सकै, पावस परवाह नदी कौ।
हरि अनुरागिहिं लगै सराप न, सुर-नर, जती-सती कौ ॥
जैसैं मीनहिं जल कौ बल, अलि-हंसहिं कमल-कली कौ।
'व्यास'हिं आस स्याम-स्यामा की, ज्यों बालक आधार चुची कौ ॥१०२॥

नैननि देखौ सोई भावै।
जोई कपट-लोभ तजिके श्री राधावल्लभ के गुन गावै ॥
रसिक अनन्य भक्त मंडल की मीठी बात सुनावै।
ताके चरन-सरन ह्वै रहियै, दिन प्रति रास दिखावै ॥
स्यामा-स्याम करैं सोई, जो 'व्यास' दास सुख पावै ॥१०३॥

भक्ति में कहा जनेऊ-जाति।
सब दूषन भूषन बिप्रन कैं, पति छू घरनि घिनाति ॥
कहा हरे रँग भाँग बिराजत, तुलसी न मैं समाति।
सोहति नहीं सुहागिल के सँग, सौति सुरति इतराति ॥
संध्या-तरपन-गायत्री तजि, भजि माला-मंत्र सजाति।
'व्यास' दास कैं सुख सर्बोपरि बेद बिदित बिख्याति ॥१०४॥

राग सारंग

रसिक अनन्य भगति फल भोगि।
जिनके केवल राधावल्लभ बृंदावन रस भोगि ॥
जे सुख-संपति सुपन न देखत, ज्ञान-कर्म-व्रत-जोगि।
जिनके सहज सनेही, स्यामा-स्याम सदा संजोगि ॥

नीरस पसु परसौ नहिं जानै, अभिमानी भव जोगि ।
'व्यास'जु हरि तजि आनहि मानत, ह्वै है तुरक दुरोगि ॥

गोपालै जब भजियै तब नीकौ ।
जोतिष, निगम, पुरान सबै ठग, पढ़ै जानि है जी कौ ॥
भद्रा भली, भरनी भव हरनी, चलत मेंव अरु छीकौ ।
'व्यासदास' धन-धर्म बिचारै, सो प्रेमी कौड़ी कौ ॥

राग सारंग

जैयै कौन के अब द्वार ।
जो जिय होइ प्रीति काहू कें, दुख सहियै सो बार ॥
घर-घर राजस - तामस बाढ़्यौ, धन-जोबन कौ गार ।
काम बिबस ह्वै दान देत नीचन कों, होत उदार ॥
साधु न सूझत, बात न बूझत, ये कलि के ब्यौहार ।
'व्यासदास' कत भाजि उबरियै, परियै माँझी धार ॥

१२. मध्यम साधक भक्त लक्षण—

राग सारंग

होइब सोई हरि जो करिहै ।
तजि चिंता चित चरन-सरन रहि, भावी सकल मिटरिहै ॥
करिहै लाज नाम - नाते की, यह बिनती मन धरिहै ।
दीनदयाल बिरद साँचौ करि, हरिदासन-दुख† हरिहै ॥
सिंहिनि - सिंह बीच बैठ्यौ सुत, कैसैं स्यारहिं डरिहै ।
ऐसैं स्यामा-स्यामहिं थरुदै, डरिकैं कौन बिचरिहै ॥
सुनियत सुक मुनि-बचन चहूँ जुग, हरि दोषनि संहरिहै ।
साधुन कौ अपराध करत, मधुसाहि न ताहिं गुदरि है ॥

राग बिलावल

जगजीवन है जीवनि जग की ।
दीन हरिहिं आधीन बजे सैं औरन गति बोहित के खग की
जैसैं दंभु अंबु महँ ठानत, होत जीविका बग की
ऐसैं कपटी नट भट नाटकु* पिटभरि करत ठगौरी ठग की
पंडित, मुंडित, तुंड बल भोगी, आसा बढ़ै कुंडुंबहिं मग की
सो को 'व्यास'न बँध्यौ दुरासा, ज्यों गनिकाहि कठिन कुच-भग की

† 'दासन दुख' (ख); 'दारुन-दुख' (ग), (छ); 'दारुण-दुख' (
* 'नाटकु' (ख), 'नाटक (च), (छ

राग सारंग व बिलावल

कौनैं सुख पायौ बिनु स्यामहिं ।
सेवत मदा बबूरन, कैसैं म्बायौ चाहत आमहिं ।।
सिंह सरन मूझत नहिं बूझत, पढ़्यौ जु सून्य सभा महिं ।
परम पतिव्रत कौ सुख नाहिंन, सुनैं हू गनिका महिं ।।
विकल बुद्धि, मन सुद्धि न उपजै, काम, क्रोध, माया महिं ।
गुरुकुल धर अभिमानहिं जाकैं, 'व्यास' भक्ति नहिं ता महिं ।।११०।।

राग धनाश्री

जौ काकौ भाग, जु दिन प्रति स्यामा-स्यामहिं रुचि सौं गावै ।
की चरन - सरन ह्वै रहियै, तौ बृंदावन स्याम बसावै ।।
की जूठन जौ खइयै, तौ ताप - पाप गोपाल नसावै ।
यास' दास ताही कौ हूजौ, जाहि भक्ति बिनु और न भावै ।।१११।।

कहा-कहा नहिं सहत सरीर ?
स्याम-सरन बिनु कर्म सहाय न, जनम - मरन की पीर ।।
करुनावंत साधु-संगत बिनु, मनहिं देइ को धीर ?
भक्ति-भागवत बिनु को मेटै, सुख दै दुख की भीर ।।
बिनु अपराध चहूँ दिसि बरषत, पिसुन बचन अति तीर ।
कृष्न - कृपा - कवची तें उबरे, पोच बढ़ी उर पीर ।।
नामा, सैंन, धना, रैदास, दीनता फुरी कबीर ।
तिनकी बात सुनत स्रवनन सुख, बरषत नैननि नीर ।।
चेतहु भैया बेगि, कलि बाढ़ी काल - नदी गंभीर ।
'व्यास' बचन बल बृंदावन बसि, सेवहु कुंज-कुटीर ।।११२।।

राग नट

को-को न गयौ, को-को न जैहै !
इहिं संसार असार भक्ति बिनु, दूजौ और न रैहै ।।
हरि - बिमुख नर आतमघाती, नरक परत न अघैहै ।
संत-चरन दृढ़ सरन नाव बिनु, काल - नदी में बैहै ।।
सुधासिंधु हरि - नाम निकट तजि, विषयी बिषयन खैहै ।
'व्यास' बचन कौ कियौ निरादर, फिर पाछैं पछितैहै ।।११३।।

राग केदारौ तथा नट,

कबहूँ नीके करि हरि न बखानै ।
न-कमल सुखरासि स्याम के, ते तजि बिषयनि हाथ बिकानै

दिवस गयौ छल करत मनोरथ निसि सोवत झूँठौ बररां
इहिं बिधि मनुष जनम गँवायौ, श्रीपति कहि धौं कब पहिचानै
जेहिं सुमिरत त्रैताप नसत हैं, ते आराधि भवन नहिं आ
समै गयौ गोपाल बिमुख भयैं, तातें 'व्यास' बहुत पछितानै

सारंग (जयति ताल)

कहा मन या तन पै तू लैहै ?
करिलै हित राधा-धव सौं तू, पुनि केस काल कर गैहै ।
करत कृतनता दूरे धरत धन, तन छूटैं धन कहाँ समैहै ।
बाढ़ी तृष्ना कृष्न - कृपा बिनु, पावत हू न अघैहै ।
सूकर, स्वान, स्यार की खाजी, ता पर का गरवैं‡ है ।
'व्यास' बचन मानें बिन, जुग-जुग जम के हाथ बिकैहै ।

छिनु-छिनु ग्रसत तनहिं मन काल ।
अजहू चेत चरन गहि हरि के, आयौ है कलि-काल ।
लाज न कीनी राज-सभा महँ, कत कूटत है गाल ।
पेट न भरत करत हू चेटक, लोभ पर्‍यौ मति चाल ।
घर-घर भटक्यौ नट के कपि ज्यों, बहुत भयौ न बे-हाल ।
बिनु हरि-दास निहाल भयौ को, बिमुख भयैं न निहाल ।
पुत्र, कलत्र सों नेह बिरस ज्यों, गैया चाटत छाल ।
दीनन ही हरि राखि लेत ज्यों, मीनन सीतल ताल ।।
गीध मृगन वे तकि-तकि मारत, जैसें कालहिं काल
ऐसै कपट प्रीति की संगति, सदाँ बढ़ै उर साल ।
मन दुख, आँखिन दुख, स्रवननि दुख, सुख दै हरै कृपा
'व्यासदास' की बिनती सुनि, पुनि कृपा करी नँदलाल ।

राग केदारौ

धर्म छूटत छूटहिं किन प्रान ।
जीवत मृतक भयौ अपराधी, तजि गुरु रीति प्रमान ।।
बीधिरवानी करी मूढ़ मति, करि गोरिल गुन - गान
चढ़ि गादहि सर्वत्र मंत्र पढ़ि, पाप बजाइ निसान ।।
यह कारौंछि पौछि है को अब, ते दै कन्या - दान
माँगर† तेल कलस जल धोये, रोवै जड़ बेदान

‡ का गरवै (ग, च, छ); कहा गवै (स)
† मागर (ग, च, छ) मारग (स)

भक्ति न होत दुष्ट निंदक कैं, किकरीन कौ लान ।
चढ़ैं काठ की धार-धार ज्यौं, लागत न क्रूर कृशान ।।
कपटी अपनौ होइ न कबहूँ, जौरामीत निदान§ ।
'व्यास' पुनीत न होइ कूकरौ कातिक गंगा-स्नान ।।१९७।।

राग सारंग

मन छाँड़ै हू मन जैहै ।
पाकौ छाँड़ि गहत हू काचौ, फिर पाछें पछितैहै ।।
हरि के चरन-सरन बिनु जुग-जुग, फिर अप-कीरति रैहै ।
ताही कौ तनु, तनु कौ सोई, जो हरिहाँ सौं हित करि लैहै ।।
जाही कौ धर्म, धर्म कौ सोई, सो हरि की ओर लिवैहै ।
जाहि गनिका कौ सुत सोई, बिना करै अब कैहै ।।
ताही कौ कर्म, कर्म कौ सोई, जो असि-धारा व्रत गैहै ।
भक्ति-भाव धरि भजै स्याम कौं, भली-बुरी सब सैहै ।।
'व्यास' अनन्य सभा सेवत हू, काल व्याल कौ सैहै ।।१९८।।

भजहु सुत ! साँचे स्याम पिताहि ।
जाके सरन जात ही मिटिहैं, दारुन दुख की डाहि ।।
कृपावंत भगवंत सुने मैं, छिन छाँड़ौ जिन ताहि ।
तेरे सकल मनोरथ पूजैं, जो मथुरा लौं जाहि ।।
हे गोपाल दयाल, दीन तू, करिहैं कृपा निबाहि ।
और न ठौर अनाथ दुखिन कौं, मैं देख्यौ जग चाहि ।।
करुना वरुनालय की महिमा, मो पै कही न जाहि ।
श्री 'व्यास'दास के प्रभु कौं सेवत हारि भई कहु काहि ।।१९९।।

जौ पै वृंदावन धन भावै ।
तौ कत स्वारथ-परमारथ लगि, मूढ़ मनहिं दौरावै ।।
नव-निधि अष्ट-सिद्धि बन-वैभव, सपनें अंत न पावै ।
घर-घर भटकत मुक्ति बापुरी, कमलहिं को बतरावै ।।
महा पतितपावन जमुना-जल, भूतल-ताप नसावै ।
नव-निकुंज-रति-पुंजनि बरषत, हरि राधे गुन गावै ।।
सदा अधीन रहत नित मोहन, मन लै प्रियहिं रिझावै ।
'व्यास' स्वामिनी रास-मंडल में, चुटकिनि पियहिं नचावै ।।२००।।

---

§ जोरामीतु निदान (ख); ज्योरामीतुनदान (ग);
ज्यौं रामी त्यु दान (घ) (छ)

श्री बृंदावन-रस मोहिं भावै हो ।
ताकी हौं बलि जाऊँ सखी री, जो मोहिं आनि सुनावै हो
वेद, पुरान औ भारत भाषै, सो मोहिं कछु न सुहावै हो
मन, बच, क्रम स्मृत हू कहत ते, मेरे मन नहिं भावै हो ।
कृष्न-कृपा तब ही भलैं जानौं, रसिक अनन्य मिलावै हो
'व्यास' दास तेई बड़भागी, जिनके जियै यह आवै हो ।

श्री बृंदावन में मंगल भरिबौ ।
जीवनमुक्त सबै ब्रजवासी, पद-रज सौं हित करिबौ ॥
जहाँ स्याम बछरा ह्वै, गायन चौंपि तृननि कौ चरिबौ ।
हरि बालक गोपिनि पय पीवत, हरि आँखौ-भरि चलिबौ ॥
सात रात-दिन इंद्र रिसानौं, गोवर्धन कर धरिबौ ।
प्रलय मेघ मघवाहि बिमद करि, कहि सबसों नहिं डरिबौ ।
अघ, बक, बकी बिनासि,रास रचि,सुख-सागर में तरिबौ ॥
कुंज-भवन रति-पुंज चयन करि, राधा के बस परिबौ ॥
ऐसे प्रभुहिं पीठि दै, लोभ, रति, माया, जोवन जरिबौ ।
श्री गुरु सुकल प्रताप 'व्यास' रस, प्रेमसिंधु उर भरिबौ ॥१०

राग बिलावल तथा सारंग

यह तन बृंदावन जो पावै ।
तौ स्वारथ परमारथ मेरौ, रसिक अनन्यनि भावै ॥
दासिनि की दासी करि हरि मोहिं, राधा-रमन दिखावै ।
यहै बासना मेरे मन में, और कछू जिनि आवै ॥
पुंज पुन्य तें प्रेम भक्ति - रति, कुंज बिहार बनावै ।
सर्वोपरि रस-रीति-प्रीति कौ, बारिध 'व्यास' बढ़ावै ॥१२

राग धनाश्री

गाइ गुन तनहिं न दीजै ठालि ।
साधुनि की सेवा करि लीजै, कौनें देखी कालि ॥
काल-बधिक तकि मारतु बिमुखनि, बिषै बिसारी भालि ।
हरिहिं क्यों न सम्हारत अजहू, गुरु-बचननि प्रतिपालि ॥
छाँड़हु आस-त्रास सब ही की,जग उपहासहिं पेटहिं घालि ।
ऐसैं ही दुख सहियै, जैसैं जर खोदैं तें जीवत आलि ॥
हरि करिहैं हित सुत कौं, जैसैं गैया आवत-थालि ।
छयौ कै धरि स्वाँग 'व्यास' यह, तजि कूकर की चालि १०

राग धनाश्री तथा कान्हरौ

गाइ मन, मोहन नागर-नटहिं ।
कुंजन अंतर देखि निरंतर, राधा-छबि की छटहिं ।।
केलि नवेलि बेलि-कुल छिन, जिन छाँड़ौ बंसीबटहिं ।
कमल विमल जल मृदुल पुलिन, सुख सेवहु जमुना-तटहिं ।।
कुसुमित नमित अमित किसलय दल, कुंज बीथिन में अटकहिं ।
गुंजत मधुप- पुंज, पिक बोलत, गौर स्याम लपटहिं ।।
बृंदावन की सहज संपदा, पावत हू जिन लटपहिं ।
'व्यास' आस तजि भजियहु,रसिक अनन्यनि के संघटहिं ।।१२५।।

गाइ लै गोपालै दिन चारि ।
काल भुजंग लोक बली तें हरि के चरन उबारि ।।
लोभ-कपट तजि, साधु - चरन भजि, लीजै जनम सुधारि ।
दया, दीनता, दास-भाव तें गुरुहिं न आवै गारि ।।
रसना इंद्री अनी अन्यारी, भेदत तनहिं सम्हारि ।
साधु-चरन-रज की कवची करि, कबहुँ न आवत हारि ।।
कृष्न-कृपा बिनु तृष्ना बाढ़ी, गृह, बन* बिषै उजारि ।
'व्यास' अकाज करै जिनि अपनौं, प्यारो स्याम बिसारि ।।१२६।।

. कनिष्ठ प्रवर्तक भक्त लक्षण—

गुरुहिं न मानत चेली-चेला ।
गुरु रोटी पानी सों घूँटत, सिष्य कें दूध पियैं कुकरेला ।।
सिष्यनि के सौने के बासन, गुरु कें कुँड़ी - कुँड़ेला ।
चोर चिकनियनि कों बहु आदर, गुरु कों ठेली - ठेला ।।
सिष्य तौ माँखीचूसा सुनियत, गुरु पुनि खाल उचेला ।
वह कायर, यह कृपन हठीलौ, ईंट मारि दिखरावतु भेला ।।
श्री कृष्न-भक्ति बिनु बिबि असमंजस, दुख-सागर में झेली-झेला ।
'व्यास' आस जे करत सिष्य की, तिनतें भले भँडेला ।।१२७।।

राग बिलावल तथा धनाश्री

गुरु गोविंदहिं बैचत हाट ।
भक्त न भयौ माँगनौ, जैसैं डोम, कलावंत, भाट ।।
कायर क्रूर कुटिल अपराधी, कबहुँ न होइ निराट ।
लोभ सोभ मिलि सबै बिगारयौ, ज्यों रैनी कौ माँट ।।

---

* 'बन'—च, छ; 'बिनु'—ख

तन खोवत कामिनि मुख जोवत, लागि काम का म्याट ।
पावत है बिस्राम न मन में, उपजत कोटि उचाट ॥
पर घर गयैं पांडुपुत्रनि कों, परिभौ कर्‌यौ विराट ।
द्रुपदसुता कीचक हू डारी धर्म - पुत्र कें रुधिर लिलाट ॥
जाके जात सुआवत देखत, बिनु रुचि देत कपाट ।
'व्यास' आस करि हरिहिं जु सेवै, ताकी परियौ बाट ॥

राग सारंग

धर्म दुर्‌यौ कलि दई दिखाई ।
कीनौ प्रगट प्रताप आपनौ, सब विपरीति चलाई ॥
धन भयौ मीत, धर्म भयौ वैरी, पतितन सों हितवाई ।
जोगी, जपी, तपी, सन्यासी ब्रत छाँड़्यौ अकुलाई ॥
बरनास्रम की कौन चलाई, संतनि हू में आई ।
लीनौ लोभ घेरि आगै दै, सु-कृत चल्यौ पराई ॥
देखत संत भयानक लागत, भावत ससुर - जमाई ।
संपति सुकृति सनेह मान चित, गृह ब्यौहार बड़ाई ॥
कियौ कुमंत्री लोभ उपायौ, महा मोह जु सहाई ।
काम - क्रोध - मद - मोह - मत्सरा, दीनी दंम दुहाई ॥
दान लैन कों बड़े पातकी, मचतनि कों बँभनाई ।
लरन - मरन कों बड़े तामसी, बारौ कोटि कसाई ॥
उपदेसनि कों गुरू गुसाँई, आचरनैं अधमाई ।
'व्यासदास' के सुकृत साँकरे, श्री गोपाल सहाई* ॥

मोहि न काहू की परतीति ।
कोऊ अपने, धर्म न साँचौ, कासों कीजे प्रीति ॥
कबहुँक ब्यास उपासि दिखावत, लै प्रसाद तजि† छीति ।
ह्वै अनन्य सोभा लगि दिन द्वै, सब सौं करत समीति ॥
बातनि खेंचत खाल आर की, लीपत भुस पर भींति ।
कुवा परैं बादर चाटत है, धूम धौरहर ईति ॥
स्वारथ परमारथ पथ बिगर्‌यौ, उस पथ चलत अनीति ।
'व्यास' दिनै चारिक या बन में जानि गही रस-रीति ॥

* 'व्यासदास' कौ सुकृत सांकरे मैं श्री गोपाल सहाई (ख) 'व्यासदास' ... सकरे मे श्री गोपाल सहाई (ग) 'व्यासदास' के सुकृत्य साँकरे श्री हरिवंश ... (छ) 'व्यासदास' के सुकृत्य साँकरे श्री (हित) हरिवंश सहाई (च)
† तजि (ग, च, छ) 'तन' (ख),

भक्त ठाढ़े भूपनि के द्वार ।
उझकत झुकत पौरियन डरपत, गाइ बजाइ सुनावत तार ॥
कहियहु धाय थवाइत प्रोहित, हमहिं गुदरबी स्वार ।
छिन-छिन करत त्रिया की बिनती, उपजत कोटि बिकार ॥
बिहसत लसत कोटि बर अंतर, कलिजुग के अनुसार ।
होत अनादर त्रिपयनि कैं जब, तब हीं होत कुतार ॥
चंदन, माला औ स्याम बिंदुनी, दै उलटे उपहार ।
'ब्यास' आस लगि नट बाँदर ज्यौं, नाँचत देत उतार ॥१३१॥

एक भक्ति बिनु घर-घर भटकत ।
फिट-फिट होत बिपै रस लंपट, साधु-चरन गहि मनहिं न हटकत ॥
औरन कैं सुख-संपति देखत, लेत उसास लिलारी पटकत ।
दाता कौ दुख, सुख करि मानत, गाइ-नाँचि बातैं कहि मटकत ॥
जब लगि कंठ उसास न तब लगि, हरि परतीति न कबहूँ अटकत ।
गुरु गोबिंद लजाइ आपनौ, सहि अपमान, दान लै सटकत ॥
खोवत* खात रहत दिन पसु ज्यौं, जामिनि कामिनि के उर लटकत† ।
'ब्यास' आस के दास भिखारी, दारुन दुख मैटे ज्यौं झटकत ॥१३२॥

भटकत फिरत गौर-गुजरात ।
सुख - निधि मथुरा बृंदावन तजि, दामन कौं अकुलात ॥
जीवन-मूरि जहाँ की धूरहिं, छाँड़त हू न लजात ।
मुक्ति-पुंज समता नहिं पावत, एक कुंज के पात ॥
जाकी तक्र सक्र कौं दुर्लभ, ताहि न बूझत बात ।
'ब्यास' बिबेक बिना संसारहिं, लूटत हू न अघात ॥१३३॥

राग सारंग

लोभी बगरूरे कौ सौ पात ।
मान छानि कौ फूस‡ धूम सौ काके नैन समात ॥
पावस सलिता के तिनका ज्यौं, चलत न कहूँ खटात ।
दामनि लगि गनिका लौं, निसदिन सबके हाथ बिकात ॥
जौ कोऊ सर्वस देइ, तौऊ संतोष बिना पछितात ।
अमुका मेरी भाँजी दीनी, ता पर औंट चबात ॥

* खोवत (ख, ग); सोवत (च, छ)
† लटकत (च, छ); लपटत (ख, ग)
‡ फूस (ग); फूँस (छ); फूल (ख)

निलजन सकुच नहीं घर माहीं, सब ही सों सतरात ।
भड़िहा कूकर लौं कारौ मारत हू ना किकियात ॥
टूटे घरहिं नेकु लौं डरपत, जब लगि दरर चुचात ।
सूकर पाइ प्रतिष्ठा विष्ठा, फूले अंग न मात ॥
अधर लार गंडकहिं भजन करि, महा मांस हू खात ।
कृष्ण-कृपा बिनु तृष्णा जाकें, सो 'व्यासहिं' न सुहात ॥१

लोभिनि बृंदावन न सुहात ।
भागत भोर चोर लौं पापी, बिमुखन सेवत जात ॥
रहत सोम लगि लोभ धरै मन, दुःख करै चिललात ।
सुखहिं पीठि दै दुख कों दौरत, बहुतनि हाथ बिकात ॥
केलि-कुंज पुंजनि कौ वैभव, नैननि महँ न खटात ।
सहज माधुरी कौ रस कैसें नीरस हृदै समात ॥
जहाँ स्याम के धोखैं चौकत तनिकहु खरकै पात ।
जाहि पीठि दै पति-गति नासै, 'व्यासहिं' सो न सुहात ॥२

राग सारंग तथा गौरी (अठताल)

कहा भयो बृंदावनहिं बसैं ।
जौ लगि व्यापत माया, तौ लगि कहू घर तें निकसैं ॥
धन मेवा कों मंदिर सेवा, करत कोठरी बिषै रसैं ।
कोटि - कोटि दंडवत करै, कहू भूमि लिलाट घसैं ॥
मुँह मीठे, मन सीठे, कपटी बचन, नैनी† बिहसैं ।
मंत्र ठगौरी कहूँ न तंत्र गद मानत बिषय डसैं ॥
कंचन हाथ न लेत, कमंडल में मिलाय चिलमैं ।
'व्यास' लोभ रति हरि हरिदासनि, परमारथहिं खसैं ॥

घटत न अजहूँ देह कौ धर्म ।
झूँठ न होत बेद-बानी हरि, फटत नाम कौ भर्म ॥
साधन बिबिध, कुठार धार हूँ कठिन, कटत नहिं कर्म ।
पंडित मूरख कोऊ न जानत, यह संसै कौ मर्म ॥
कहत भागवत साधु संग तें जाय जगत की सर्म ।
'व्यास' तबहिं असमंजस मिटिहै, जब ह्वैहै मन नर्म ॥

साधत बैरागी जड़ बंग ।
धातु रसायन ओखदि के बल निसिदिन बढ़त अनंग ॥

---

† बचन नैन (ख); बचन रचब नैननि (ग, च, छ)

सुक-वचननि कौ रंग न लाग्यौ, भयौ नहिं संसै कौ अंग ।
विषै-बिकार गुन उपजै चित लगि, सबै करत चित भंग ॥
बन में रहत, गहत कामिनि कुच, सेवत पीन उतंग ।
धनि-धनि साधु मानि† संतनि तजि, हरि कौ छाँड़ि उछंग ॥
लोभ वचन आननि अँग अंगनि, सोभित निकर निषंग ।
'व्यास' आस दृढ़ पासि गरै, तिहिं भावै रागिनि-रंग ॥१३८॥

दिन द्वै लोग अनन्य कहायौ ।
धन लगि नट कौ भेष काछि कैं, फिरि पाँचनि में आयौ ॥
सिगरे बिगरे अगनित गुरु करि, सब कौ जूठौ खायौ ।
इत व्यौहार न उत परमारथ, बीचहिं जनम गमायौ ॥
खौं खोदौ ऊसर बैवे कों, घोड़ भैंस लै साँड़* मुल्यायौ ।
गनिका कौ सुत पितहिं पिंड दै, काकौ नाम लिवायौ ॥
अँधरहिं नाँचि दिखायौ जैसैं, बहिरहिं गाइ सुनायौ ।
चढ़ि कागद की नाव नदी कहिं, काहू पार न पायौ ॥
प्रीति न होहि बिना परतीतिहिं, सब संसार नचायौ ।
सहज भक्ति बिनु 'व्यास' आस करि, घर ही माँझ मुसायौ ॥१३९॥

राग बिलावल

कपट न छूटै हरि गुन गावत ।
काम न छूटै स्यामहिं सेवत, कामिनिहीं लगि धावत ॥
कहत भागवत घर नहिं छूटै, मत्सर मद न नसावत ।
भक्ति करत हू धर्म न छूटै, बाँधे कर्म नचावत ॥
हरिबासर कौ भेद न छूटै, महाप्रसादहिं पावत ।
कर्म विषै नहिं छूटै विषयी, साधुनि कों समुझावत ॥
देह धर्म कौ संग न छूटै, देह धर्म ही ध्यावत ।
कुंजर-सोच करत नहिं डरपत, 'व्यास' वचन बिसरावत ॥१४०॥

कहत सुनत भागवत, बढ़ै स्रोतहिं वक्तहिं अभिमान ।
मद- मत्सर न गयौ, न भयौ सुख, रुच न करत चखकान ॥
भक्ति न भई, विषै न गई रति, भूलि गयौ भगवान ।
लोभी कौ लोभ न छूटौ, न गयौ कृपन कौ जु सयान ॥

धनि धनि साधु मानि (ख), धन धन साध मान (ग)
धिक धिक अधमनि (च, छ)
भैंस लै सांढ (ख); 'भैंस लै माट (ग);
भैंस लै माँट (च)- 'भैंस लै माँटै' (छ):

केवल कृष्न-कृपा बिनु, साधु संग बिनु, रंग न आन ।
'व्यास' भक्ति समुझी तबहीं, नारद के सुनत बखान ॥१४१॥

राग सारंग

जैसी भक्ति भागवत बरनी ।
तैसी बिरले जानत, मानत कठिन रहनि तें करनी ॥
स्वामी, भट्ट, गुसांई अगनित-मनि करि गति आचरनी ।
प्रीति परस्पर करत न कबहूँ, मिटै न हिय की जरनी ॥
धन कारन साधन करि हरि पर धरि सेवा बन घरनी ।
बिषै-बासना गई न अजहूँ, छाँड़ि बिगूचे घरनी ॥
सहज प्रीति बिना परतीति न, सिस्नोदर की भरनी ।
'व्यास' आस जौ लगि है, तौ लगि, हरि बिनु दुख जिय भरनी ॥१४२॥

जीवन जन्म भक्ति बिनु खोवत । संत सुहात न हरि मुख जोवत ।
नख-सिख बिषै बिषी दुख भोगत । द्यौस अघाय खाय निसि सोवत ॥
पायैं सुख, अपनायैं रोवत । हरि-जस-जल मन मलिन न धोवत ॥
पर-धन पर-नारी सुख टोवत । कामधेनु तजि कूकरि लोवत ॥
छीरहिं परिहरि, नीर बिलोवत । 'व्यास'हिं बरजत दुख-गिरि ढोवत ॥१

गावत नाँचत आवत, लोभ कह ।
याही तें अनुराग न उपजत, राग-बैराग सोभ कह ॥
मंत्र - जंत्र पढ़ि मेलि ठगौरी, बस कीनौं संसार ।
स्वामी बहुत, गुसाईं अगनित, भट्टन पै न उबार ॥
भाव बिना सब बिलबिलात, अरु किलकिलात सब तेहू ।
'व्यास' राधिका-रवन-कृपा बिनु, कहूँ न सहज सनेहू ॥१४४॥

राग सारंग

दुख-सागर कौ वार न पार ।
जुग-जुग जीव थाह नहिं पावत, बूड़त सिर धर भार ॥
तृष्ना तरल बयारि झकोरति, लोभ-लहरि न उतार ।
काम - क्रोध भर मीन - मगर उर, नाहिन कहूँ उबार ॥
श्री गुरु - चरन नाम नौका नहिं, हरि-करिया न बिचार ।
'व्यास' भक्ति बिनु आस जाइ नहिं, सत,संगति करि बार ॥१४५॥

जो दुख होत बिमुख घर आयैं ।
ज्यौं कारौ लागै कारी निसि, कोटिक बीछू खायैं ॥
दुपहर जेठ परत बारू में, घायनि लौंन लगायैं ।
काँटिन माँझ फिरत बिनु पनहीं, मूँड में टोला खायैं ।

टूटत चाबुक काटि पीठ पर, तरुवा बाँधि उठायैं ।
जो दुख होत अगिन में ठाढ़ैं सर्वसु जुवा हरायैं ॥
ज्यौं बाँझहिं दुख होत, सौत कौ सुंदर बेटा जायैं ।
देखत ही सुख होत जितौ दुख, बिसरत नहिं बिसरायैं ॥
भटकत फिरत निलज बरजत हौ, कूकर ज्यौं झहरायैं ।
गारी देत दिलग नहिं मानत, फूलत दमरी पायैं ॥
अनि दुख दुष्ट जगत में जेते, नैकु न मेरे भायैं ।
वाके दरसन परस मिलत ही, कहत 'व्यास' यौं नायैं ॥१४६॥

राग सारंग

जो पै हरि की भक्ति न साजी ।
जीवत हू तें मृतक भये अपराधी, जननी लाजी ॥
जोग, जज्ञ, तीरथ, व्रत, जप, तप सब स्वारथ की बाजी ।
पीड़ित घर-घर भटकत डोलत, पंडित मुंडित काजी ॥
पुत्र - कलत्र स्वजन की देही, गीध - स्वान की खाजी ।
बीत गये तीनों पन कपटी, तऊ न तृष्ना भाजी ॥
'व्यास' निरास भयौ जाही तें कृष्न-चरन रति राजी ॥१४७॥

भक्त-प्रशंसा—

साधु सरसीरुह कौ सौ फूल ।
निर्मल सीतल जल हितकारी, काहू कों न त्रिसूल ॥
तिनके वचन पान करि, हारत काम - जटा निर्मूल ।
जिनकी संगति भक्ति देत, हरि हरत सकल भ्रम - मूल ॥
तिनके 'व्यास' दास जो हूजै, तौ न रहै भव - सूल ॥१४८॥

राग धनाश्री

सुनियत कबहुँ न भक्त दुखारौ ।
पुजये स्याम काम बिनु दामनि, है निष्काम सुखारौ ॥
कृष्न कह्यौ रुक्मनि सों निहकिंचन - जन मोहिं पियारौ ।
ताकौ मुख कबहूँ नहिं देखौं, जाकैं धन कौ गारौ ॥
बन बसि पांडुसुतनि नहिं माँग्यौ, लग्यौ न राज लुभारौ ।
पाँच बरष के ध्रुव घर छाँड़्यौ, सो लगि तजि आहारौ ॥
कोटि जातना सहि प्रहलाद; बिषाद न जानत बारौ ।
पट - लूटत द्रोपदी न मटकी, करी न अनंत पुकारौ ॥

वाके दरसन परस मिलत ही (ग) वाके दरसन परस मिलतनहिं (ख)
दरश परश नहिं दीजौ वाकौ (च) दरस परस नहिं दीजौ वाकौ (छ)

जरत गर्भ बैराट सुता महँ, माहिं मन दियौ सवारौ
सरनागति आरति गजपति कौ, मो बिनु को रखवारौ ॥
ब्रज लगि मैं विष अग्नि-पान कियौ, विषधर कीनौ न्यारौ ।
महाप्रलय के मेह नेह लगि, गोवर्धन लग्यौ न भारौ ॥
भक्तनि कें अवतर्‌यौ भक्ति लगि, भूखौ रह्यौ उधारौ ।
असुरनि सों जूझे भक्तन लगि, भयौ जु पसु चरि चारौ ॥
तन, मन, जीवन, जीव, जीविका, सर्वस भक्त हमारौ ।
'व्यासदास' की बिनती कोऊ भक्त न मोहिं बिसारौ ॥

सुने न देखे भक्त भिखारी ।
तिनकें दाम काम कौ लोभ न, जिनकें कुंजबिहारी ॥
सुक-नारद अरु सिव-सनकादिक, ये अनुरागी भारी ।
तिनकौ मतु भागवत न समुझैं, सब की बुधि पचिहारी ॥
रसना, इंद्री दोऊ बैरिन, जिनकी अनी अन्यारी ।
करि आहार - विहार परस्पर, बैर करत बिभिचारी ॥
विषयनि की परतीति न हरि कौं, रीति कहत बाजारी ।
'व्यास' आस-सागर में बूड़े, सो कै भक्ति बिसारी ॥

राग धनाश्री

सदा हरि - भक्तनि कें आनंद ।
गावत महाप्रसादै, पावत सुख - संतोष अमंद ॥
जिनकौ मुख निरखत सुख उपजत, दूर होत दुख-द्वंद ।
अहंकार, ममता, मद छूटत भूतनि कौ सौं छंद ॥
श्री राधावल्लभ के पद - पंकज, सकल संपदा - कंद ।
सेवत रसिकन के भ्रम छूटत, लोक-बेद के फंद ॥
मुक्त भयैं अजहूँ गावत सुक, नारद, सनक, सनंद ।
'व्यास' बिराजमान सर्वोपरि, जय बृंदावनचंद ॥

राग धनाश्री

निरखि हरिदासनि नैन सिरात ।
स्याम हृदै में जब ही आवत, मिलत गात सों गात ॥
स्रवन होत सुख भवन दवन दुख, सुनत छबीली बात ।
दूरि होत त्रैताप - पाप सब, मुख चरनोदक जात ॥
बाढ़ति अति रस-रीति प्रीत सों, संत प्रसादै खात ।
गदगद स्वर पुलकित जस गावत, नैननि नीर चुचात ॥
तिनके मुख मसि घसि लपटाऊँ, जिनहिं न संत सुहात ।
'व्यास' अनन्य भक्ति बिनु जुग-जुग, बहुत गये पछितात

राग सारंग

जो सुख होत भक्त घर आयैं ।
सो सुख होत नहीं बहु संपति, बाँझहिं बेटा जायैं ॥
जो सुख भक्तन कौ चरनोदक पीवत, गात लगायैं ।
सो सुख सपनै हू नहिं पैयत, कोटिक तीरथ न्हायैं ॥
जो सुख भक्तन कौ मुख देखत उपजत, दुख बिसरायैं ।
सो सुख होत न कामिहिं कबहूँ, कामिनि उर लपटायैं ॥
जो सुख होत भक्त-बचननि सुनि, नैनन नीर बहायैं ।
सो सुख कबहुँ न पैयत पितुघर, पूत कौ पूत खिलायैं ॥
जो सुख होत मिलत साधुन कैं, छिन-छिन रंग बढ़ायैं ।
सो सुख होत न रंक 'व्यास' कौं लंक सुमेरहिं पायैं ॥१५३॥

जूठन जे न भक्त की खात ।
तिनके मुख सूकर-कूकर के, अभखि-भखि पोषत गात ॥
जिनके बदन सदन नर्कन के, जे हरि - जननि घिनात ।
काम-बिबस कामिनि के पीवत अधरन लार-चुचात ॥
भोजन पर माँखी मूतति है, ताहू रुचि सौं खात ।
भक्तन कौ चरनोदक अँचवत, अभिमानी जरि जात ॥
स्वपच भक्त कौ भोग महत हरि, बाँभन ताहि डरात ।
बाजदार की पाँति ब्याह में, जैंवत बिप्र बरात ॥
भेंटत सुनहिं रैंट मुख लागत, सुख पावत जड़ तात ।
अपरस ह्वै भक्तन छ्वै छुतिहा, तेल सचेलै न्हात ॥
हरि - भक्तनि पाछैं आछैं डोलत, हरि गंगा अकुलात ।
साधु-चरन-रज माँझ 'व्यास' से कोटिक पतित समात ॥१५४॥

राग धनाश्री

भव तरिबे कौं भक्ति उपाउ ।
साधु संग करि हरिहिं भजौ रे, देहु सवारौ दाउ ॥
परहरि निंदा, पर-दारा तजि, भजियै हरिराउ ।
सब गुन जैहैं लोभ करत ही, स्याम न करत सहाउ ॥
काचे घट के जल ज्यौं छिनु-छिनु, घटति जात है आउ ।
बिषयनि की संगति बूड़हुगे, देह जॉजरी नाउ ॥
हरि कौ नाम धाम सर्बस सुख, जानि कृस्न-गुन गाउ ।
'व्यास' बचन बिसरावत ही, जम - द्वारौ जाइ बसाउ ॥१५५॥

भावत हरि प्यारे के प्यारे ।
जिनके दरस परस हरि पाये, उघरे भाग हमारे ।।
दूरि भये दुख-दोष, हृदय के कपट-कपाट उघारे ।
भवसागर बूड़त हमसे अपराधी बहुत उधारे ।।
भूत-पितर, देई-देवा सों झगरे सकल निवारे ।
सुख सुख बचन रचन कहि कोटिक बिगरे 'ब्यास' सुधारे ।।

राग गौरी

साँचे मंदिर हरि के संत ।
जिन मन मोहन सदा बिराजत, तिनहिं न छाँड़त अंत ।।
जिनि महँ रुचि करि भोग भोगवत, पाँचौ स्वाद दरंत ।
जिन महँ बोलत हँसत कृपा करि, चितवन नैन सुपंत ।।
अपनै मत भागवत सुनावत, रति दै रस बरषंत ।
जिनमें बसि संदेह दूरि करि, देह धर्म परजंत ।।
जहाँ न संत तहाँ न भागवत, भक्त सुसील अनंत ।
जहाँ न 'ब्यास' तहाँ न रास-रस, बृंदावन कौ मंत ।।१५०

राग गौरी

पहिले भक्तन के मन निर्मल ।
जिनके दरस पतित पावन भये, जीव परसत गंगाजल ।।
जिनके हिय तें हरि न टरत कबहूँ एकौ पल ।
तिनकौ नाम लेत गुन गावत रति बाढ़ै सद सेयें चरन-तल ।।
तिनकें सुरति-रति बाढ़ै सदा जुगल छूटत न कहूँ छल ।
जिनकें मद-अभिमान न मत्सर, तिनके बेगि पंथ चल ।
जिन्हें सेइ बृंदावन पायौ, 'ब्यास' सुफल जनम-फल ।।१५८

बेद भागवत स्याम बतायौ ।
गुरु बचननि परतीति बढ़ाई, साधन सब संदेह भगायौ ।।
त्रिभुवन में भुवि जा लगि जनये, निजु बपु छीन छुड़ायौ ।
साधु संग कीनी बंसी बस, निस्चै करि मन भायौ ।।
जहाँ भक्त सब जात, तहाँ तें अजहूँ कोऊ न आयौ ।
'ब्यास' हिं बिदा करौ करुना करि, समाचार लै आयौ ।।१५

१५. उपदेश—

राग नट

सुख में हरि बिसरावै कैसें, दुख में हरि कहि आवै ।
दुख सुख परे जु छरिहि न छाँड़ै, ताहि न हरि बिसरावै ।

दुख-सुख जौ लगि, भक्ति न तौ लगि, यह भागवत बतावै ।
दुख-सुख झूँठौ, संतत साँचौ हरि, हरि-जन मुहिं भावै ।।
सुख-दुख छूटैं सुक, सनकादिक, नारद हरि-गुन गावै ।
विधि-निषेध, गुन-दोष, सुक्ख-दुख, विषयिनि बाँधि नचावै ।।
सुख-दुख गयें जु सुख उपजत है, तापै स्याम बँधावै ।
हरिबंसी हरिदासी सेवत, 'व्यास' तहाँ बन पावै ।।१६०।।

राग गौरी

हरि की भक्ति बिनु तन-मन मैलौ ।
जैंमै बिनु लाग्यौ बिनु जोत्यौ, गायनि-माँझ फिरत खल खैलौ ।।
आपु न जानत, कही न मानत, अजहूँ गुरहिंन करत असैलौ ।
आपुन बिगरि बिगारत औरनि, ज्यों जल-नायैं काचौ थैलौ ।।
जुग-जुग जनम-जनम जाही तें, अजहुँ न भर्‌यौ विषै कौ थैलौ ।
'व्यास' वचन मानैं बिनु जानैं, नरक परैगौ बैले पैलौ ।।१६१

तन छूटत ही धर्म न छूटै ।
जीवत मरैं न माया छूटै, काल करम मुँह कूटै ।।
पुत्र, कलत्र, सजन सुख देवा, पितर, भूत सब लूटैं ।
कबहुँ रंक राजा कबहूँ है, विषय-विकार न छूटै ।।
साधु न सूझै, गुन नहिं बूझै, हरि-जस-रस नहिं घूँटै ।
'व्यास' आस घर घालै जग कौ, दुखसागर नहिं फूटै ।।१६२।।

राग सारंग

हरि बिनु सब सोभा सोभा सी ।
अंजन मंजन पति बिनु सीठौ, ज्यों मटकै ममवासी ।।
अँधरहिं काजर, नकटिहिं बेसरि, टौंटिहिं पहुँची हासी ।
हीज पुरुष, त्रिया बाँझ बृथा, मुँडली लटकन भति नासी ।।
कुढ़ियहिं मुदरी, बूचहिं कुंडल, केस बिना आकासी ।
दासी लीन कुलीन कामिनी, कंचन तन संन्यासी ।।
स्यारहिं राज नरनि में सोहै, जैसैं राज बिसासी† ।
'व्यास' स्याम बिनु सब असमंजस, जैसैं धनिक बिनासी ।।१६३।।

हरि बिनु को अपनौ संसार ।
माया-मोह बँध्यौ जग बूड़त, काल नदी की धार ।।
जैसैं संघट होत नाउ में, रहत न पैले पार ।
सुत-संपति-दारा सौं ऐसैं, बिछुरत लगै न बार ।।

† बिलासी (ख); बिनासी (ग), बिलासी (च, छ)

जैसैं सपनैं रंक पाइ निधि, औंड़े धरि भंडार ।
ऐसैं छिन-भंगुर देही कौं, गरबतु कहा गँवार ॥
जैसैं अंध आँधरे टेकत, गनत न खार पनार ।
ऐसैं 'व्यास' बहुत उपदेसे, सुनि-सुनि गये न पार ॥'

राग धनाश्री

भक्ति बिनु मानुष-तन खोवै, क्यों सोवै, उठि जागु रे ।
बिषय-अग्नि परि भागि उबरियै, साधुनि सों कीजै अनुरागु रे
देह, गेह, दारा, सुख, संपति, ज्यों कोकिल सुत कागु रे ।
लाज-बड़ाई, गुन-चतुराई, जैसैं फोकट† फागु रे ॥
माया-मोह जियत नहिं छूटै, जैसैं दुमुहाँ नागु रे ।
लोक-बड़ाई कौ सुख झूँठो, बाजीगर सौ बागु रे ॥
हरि बिनु क्यों तरिहै दुख सागर,ज्यौ धन निधन सुहागु रे ।
आयु घटत जानत नहिं, जैसैं नदी-तीर बड़ बागु रे ॥
जैसैं मृग अपनौ हित जानत, सुनत बधिक कौ रागु रे ।
ऐसै 'व्यास' बचन बिनु मानैं, मिटै न मन कौ दागु रे ॥१

भगति बिनु अगति जाहुगे बीर ।
बेगि चितै हरि-चरन-सरन रहि, छाँड़ि बिषै की भीर ॥
कामिनि-कनक देखि जिनि भूलहु, मन में धरियहु धीर ।
साधुन की सेवा करि लीजे, जौ लगि जियत सरीर ॥
मानुष तन बोहित, गुरु करिया, हरि अनुकूल समीर ।
डरियहु आत्मघात तें, तरियहु काल-नदी गंभीर ॥
सैन, धना, नामा, पीपा, रैदास, भक्ति लै गये कबीर ।
ताकें 'व्यास' स्याम उर आवत, जाही कें है पर-पीर ॥१

राग सारंग [जयति ताल]

भक्ति बिनु टेसू कौ सौ राज ।
कारागृह दारा हय गय, रहत न गाँव समाज ॥
सूकर, कूकर, बधिक, सूकरी, इम सु नरक कौ साज ।
जैसे राँकहिं सुख न होत, पावत सब पसु बस नाज* ॥
ऐसे कोटि पुरुष पर मिटत न, एक जुवति की खाज ।
झटपट है जग बकहिं रात दिन, काल चहूँ दिस बाज ॥
अपने सरन राखिहै 'व्यास'हिं, हरि सबके सिरताज ॥१

---

† फोकट (च, छ), फोटक (ख, ग);

* सब पसु बस नाज (च छ) सब सुत्र नाज ग)

भक्ति बिनु केहि अपमान सह्यौ ।
कहा-कहा न असाधुनि कीनौ, हरि-बल धर्म रह्यौ ॥
अधम राज-मद माते लै, सिविका जड़भरत नह्यौ ।
निगड़ सहे बसुदेव देवकी, सुत पटकत दुःसह सह्यौ ॥
हरि-ममता प्रहलाद बिषाद न जान्यौ, दुख सहदेव दह्यौ ।
पट लूटत द्रौपदि नहिं मटकी, हरि कौ सरन चह्यौ ॥
मत्त सभा कौरवनि बिदुर सों, कहा-कहा न कह्यौ ।
सरनागत आरत गजपति कों, आपुन चक्र गह्यौ ॥
हा, हरि, नाथ ! पुकारत आरत, और कौन निबह्यौ ।
'व्यास' बचन सुन मधुकरसाह, भक्ति-फल सदा लह्यौ ॥१६८॥

काहे भजन करत सकुचात ?
पर-धन, पर-दारा-तन चितवत, तब कहि क्यों न लजात ॥
मिथ्या बाद-बिवाद बकन कों, फूल्यौ फिरत कुजात ।
फूट्यौ कर्म, भर्म हिय बाढ़्यौ, तजि अमृत बिष खात ॥
डहक्यौ आइ पाइ भल अबसर, भक्ति बिमुख भयौ गात ।
सहज सिराय गई माया में, बहुत गये पछतात ॥
पाछें गई सु जान दै रे, अब सुन लै यह बात ।
हरि गुन गाइ नाँच निर्भय ह्वै, 'व्यास' लखी यह घात ॥१६९॥

कहत सुनत बहुत दिन बीते भक्ति न मन में आई ।
स्याम-कृपा बिनु, साधु-संग बिनु, कहि कौनैं रति पाई ॥
अपनैं-अपनैं मत मद भूले, करत आपनी भाई ।
कह्यौ हमारौ बहुत करत हैं, बहुतनि मे प्रभुताई ॥
मैं समुझी सब, काहू न समझी, मैं सबहिंन समुझाई ।
भोरे भक्त हुते सब तब के, हम तौ बहु चतुराई ॥
हमहीं अति परिपक्व भये, औरनि कें सबै कचाई ।
कहनि सुहेली, रहनि दुहेली, बातनि बहुत बड़ाई ॥
हरि-मंदिर माला धरि, गुरु करि, जीवनि के दुखदाई ।
दया, दीनता, दास-भाव बिनु, मिलै न 'व्यास' कन्हाई ॥१७०॥

राग सारंग

कलिजुग मन दीजै हरि-नामैं ।
आराधन-साधन धन-कारन, कत कीजै बेकामैं ॥
साधुनि के गुन जाहि न लागैं, दोष बिरानैं तामैं ।
सेवा मंदिर भक्ति भागवत, अब न होत बिनु दामैं ॥

हरि साधुनि बिनु कछू न भावै, ऐसे गुन हैं कामैं।
जाहि भलौ सबही कौ भावै, 'व्यास' भक्ति है तामैं ॥'

राग सारंग व धनाश्री

कलिजुग स्याम-नाम आधार।
हरि के चरन-सरन बिनु, काल-व्याल पै कहूँ न उबार ॥
देवी-देवा पूजा करि-करि, धार बहै संसार।
स्वान पूँछ गहि भव-सागर कौ, क्यों पावहुगे पार ॥
छूट्यौ अपनौ धर्म सबनि पै, ज्ञान विवेक विचार।
एक लोभ के आगैं, सकल गुननि कौ पर्यौ बिडार ॥
बाह्मन करत सूद्र की सेवा, तजि बिद्या-आचार।
रज छाँड़ी रजपूत, कपूतन लाज नहीं संसार ॥
बनिक-बनिक में मेलि जौहरी, जोरत कपट भँडार।
कुल की नारि गारि दै भर्तहिं, ज्यों रति गाइबि जार‡ ॥
और सबै असमंजस हरि बिनु, नाहिंन कहूँ उबार।
'व्यास' वचन माने बिनु जुग-जुग सैवहुगे जमद्वार ॥१

तौ लगि रवनी लगत रवानी।
जब लगि मोहन-मुख-छवि बारक, उर अंतर नहिं आनी ॥
तौ लगि स्रवननि सुनत सुहाइ, न और पुरान-कहानी।
जौ लगि साधुनि पर बारक हू, सुनी न सुक-मुख-बानी ॥
तब लगि जोग, जज्ञ, ब्रत, तीरथ, भावत पावक पानी।
जब लगि गुरु-उपदेस न जान्यौ, प्रेम-भक्ति हू बानी।
जब लगि 'व्यास' निरास दास ह्वै, भजी नहीं रजधानी ॥

राग सारंग व बिलावल

सपनौ सौ धन अपनौ स्याम।
आदि अंत तासौं न बिछुरिबौ, परत काल सौं काम ॥
तन, धन, सुत, दारा, कारागृह, तजहु भजहु लै नाम।
देखि-देखि फूलहु जिनि भूलहु, जग नट कौ सौ आम ॥
जैसैं बछरा के धोखे सों, गैया चाटत चाम।
ऐसैं 'व्यास' आस सब झूँठी, साँचौ हरि अभिराम ॥

राग धनाश्री

साँचौई गोपाल-गोपाल रहिबौ।
रूप-सील-गुन कौन काम कौ, हरि की भक्ति बिनु थहिबौ ॥

‡ गाइबिजार (ख, ग); गाय बिजार (च, छ)

जोग, जज्ञ, जप, तप, संजम, ब्रत, कलई कौ सौ मढ़िबौ ।
नाम-कुठार बिना को काटै, पाप-बृंद कौ बाढ़िबौ ॥
जैसें अन्न बिना तुस कूटत, बारू में तेल न कढ़िबौ ।
ऐसैंहिं करम-धरम सब हरि बिनु, बिन बैसांदर डढ़िबौ ॥
जैसै परदारा सों रति करि, पति बिनु रासभ चढ़िबौ ।
ऐसैंहिं 'व्यास' निरास भये बिनु, कह बातनि कौ गढ़िबौ ॥१७५॥

राग गौरी व धनाश्री

बृंदावन साँचौ धन भैया ।
कनक-कूट कोटिक लगि तजियै, भजियै कुँवर कन्हैया ॥
जहाँ श्री राधा-चरन रेनु को कमला लेत बलैया ।
तिनमें गोपी नाँचति-गावति, मोहन बेनु बजैया ॥
कामधेनु कौ छीरसिंधु तजि, भजहु नंद की गैया ।
चारयौ मुक्ति कहा लै करियै, जहाँ जसोदा मैया ॥
अदभुत लीला, अदभुत बैभव, साँचौ सुकदेव कहैया ।
आरत 'व्यास' पुकारत बन में, थोरेई लोग सुनैया ॥१७६॥

राग सारंग व धनाश्री

श्री बृंदावन अनन्यनि की गति ।
अनत रहत दुख सहत सुखनि लगि, जाइ हठीले (हू) की पति ॥
सुक बरजे सुकरत अभिमानी, त्रिपयिन संग गई मति ।
कृष्न-कृपा बिनु तृष्ना बाढ़ी, कनक-कामिनी सों रति ॥
सीता राम सरीखे बिछुरे, माया बर्तमान अति ।
अजहूँ माया मोह न छूटत, 'व्यास' मीच सिर गाजति ॥१७७॥

जाके मन लोभ बसै सो कहा हरि जानै ।
स्याम-कृपा बिनु साधु-बचन नहिं मानै ॥
साधुन सों बिमुख भूत-पितरन कों मानै ।
गनिका कौ पूत पितहिं कैसैं पहिचानै ॥
इहिं बिधि जगत जनम-जनम बहुतन के हाथ बिकानै ।
'व्यास' स्याम-भक्ति बिनु को, को नहीं खिसानै ॥१७८॥

राग नट

मनहिं नचावै विषय-बासना, क्यों हिरदै हरि आवै ।
हौं असमर्थ अनाथ, मारयतु पांचनि, को समुझावै ॥
सखा संग के अंग करत नहिं, सखी न मोहिं बचावै ।
लहुरौ भैया करि बिरोध, औरनि पै मोहिं हँसावै ॥

बिनु आगहिं घरु लगत जु लायौ, सो कोऊ न बुझावै ।
भीतर भाजि दुर्यौ बाहिर कौ, भक्त न सोधौ पावै ॥
तोरौ पानौ सुत - दारा हँसि बसत परौसी गावै ।
एकै आस 'व्यास' नहिं समुझत, खात पीवन बहकावै ॥१

राग धनाश्री

तृष्ना कृष्न - कृपा बिनु सबकै ।
जती सती कौ धीरज न रहै, माया - लोभ बाव के बबकै
जग घोराहि काम दौरावत, मारत आसा चाबुक ठबकै
गह्यौ आसरौ बृंदावन कौ, काटर‡ 'व्यास' भयौ है अबकै

राग कान्हरौ

श्री कृष्न-सरन रहें तृष्ना जैहै ।
भजि गोपाल कृपालहिं निसिदिन, काल-व्याल कबहूँ नहिं खैहै
साधु - सिंह की जो संगति रहै, तौ न निकट माया-मृग रैहै
'व्यास' भक्ति बिनु गति नहिं लहियै, जम के द्वार नरक दुख सैहै

राग धनाश्री

जैसै प्यारे लागत दाम ।
ऐसैं रसिक अनन्यन लागत, प्यारे स्यामा-स्याम ॥
काया-जाया सों रति बाढ़ी, कौन कहै निहकाम ?
राग-तान-तालहिं मन दीनौ, लेइ न हरि-गुन-ग्राम ॥
पाप हरन, सुचि-करन 'व्यास', पतितन कौं है हरि-नाम ॥

राग सारंग

नियंता पतितन कौ हरि-नाम ।
उचरत ही मुँह कुचरत कलि कौ, खोज न राखत स्याम ॥
चोर मध्य या मित्र, ब्रह्म, गुरु, दारा, सुत आराम ।
अधवंतन हरि बोलत हीं, भगवंत दियौ निज-धाम ॥
कौन अजामिल हू तें पापी, जाकौं जम हँसि कियौ प्रनाम ।
हरि-पद-पंकज-छत्र-छाँह बिनु, मिटै न दुख-रवि-घाम ॥
ब्रजबासी 'व्यास' बबूर किये हरि, और भक्त कुल आम ॥

राग कान्हरौ

पतित पवित्र किये हरि-नागर ।
एक नाम के लेत सबनि के, सूखि गये अघ-सागर ॥

---

‡ काठर (ख ग) कट्टर (च, छ

अधम अजामिल हू कौं उघरी, मुक्ति-पौर की आगर ।
हरि-हरि कहत कौन पापी के, पाप लिखे जम-कागर ॥
जैसैं राजनीत की संका, चोरन होत अचागर ।
गौरस्याम कौ सरन नक्यौ जिनि, तिनकी कौन बराबर ॥
ऐसैं 'व्यास' अनन्य सभा में और न होत उजागर ॥१८४॥

राग कान्हरौ

हरि कहि लेहु कछू नहिं रैहै ।
सपनौ सौ जोवन-धन अपनौ, सुत-संपत-दारा - घर जैहै ॥
कोटिक करम धरम कौ करता, एक भक्ति बिनु गति नहिं पैहै ।
संतत सिंह सरन रहि को अब ,कोटि स्वान परि धौ कहा लैहै ॥
कुल - कन्या भरतारहिं तजि, गनिका कैसैं पतिहिं रिझैहै ।
कदली निकट वारि कर, को जड़ अंड - बबूर - धनूरे बैहै ॥
हीरा हेम निगड़ दुखदाता, चंदन फूल भार को मैहै ।
प्यासे परत सुधासिंधु हित, कौन अंध विष घोरि अचैहै ॥
सुरसरि परिहरि कौन पातकी, पावन छोड़ सुरा-जल न्हैहै ।
'व्यास' उपासक हरि कौ ह्वै, को देव-पितर-भूतन कर गैहै ॥१८५॥

हरि के नाम के भरोसैं रहियै ।
साधन-बिधि-ब्यौपार न कलिजुग, निसि-दिन हरि-हरि कहियै ॥
अपनैं धरम बिमुख नर, हरि-भजन बिना भवसिंधु न तरियै ।
और न कछू उपाव, भाव करि, संत-चरन-रज गहियै ॥
माया-काल न गुन सब झूँठे, दुख - सुख बिधि सब सहियै ।
'व्यास' निरास भयौ, हरि के बल साँचौ सुख तब लहियै ॥१८६॥

राग कान्हरौ

गाइ लेहु गोपालहिं, यह कलिकाल बृथा न बितीजै ।
बिछुरत हू न जानि है, तन-मन-धनहिं न भूलि पतीजै ॥
दामिन कैसी चमक मीचु की, कामिनि त्यौं न चितीजै ।
करता - हरता परमेसुर, बिनु काजहिं कन पछतीजै ॥
भोग करत दुख-रोग बढ़त, हरि - नाम प्रसाद हितीजै ।
'व्यास' स्याम के दास कहावत, कपट भँडार रितीजै ॥१८७॥

हरि-गुन गावत कलिजुग रहियै ।
बिधि - ब्यौहार रह्यौ न कछू अब, साधु - चरन निजु गहियै ॥
इहिं संसार-समुद बोहित उठि, हरि - हरि कहत निबहियै ।
'व्यास' स्याम की आस करहु, उपहास सबनि की सहियै । १८८

राग कान्हरौ

मन मेरे तजियै राजा-संगति ।
स्यामहिं भुलवत दाम - काम बस, इनि बातनि जैहै पति ।
बिषयनि के डर क्यों आवत हरि, पोंच भई तेरी मति
सुख कहँ साधन करत अभागे, निसि-दिन दुख पावत अति ।
'व्यास' निरास भये बिनु, भगति बिना न कहूँ गति ।।

राग कान्हरौ

जाकैं हरि धनु नाहिंन माल ।
जो गरीब गरबत काहे कों, बादि बजावत गाल ।।
है कपूत बंस-कुल-बोरा, काँचु रच्यौ ज्यों लाल ।
तासों धनिक कहौ जिनि कोऊ, है कोरौ कंगाल ।।
तरपट परै जानियै तब ही, कंठ गहै जम - जाल ।
'व्यासदास' सपनैं की संपति, को गहि भयौ निहाल ।।१

राग कान्हरौ

सबै करत पद की रति, कहा हम थोरे हरिहिं रिझावत ।
राग-रागिनी तान-मान महिं, लालन लगतैं आवत ।।
कछू जुगति ना मो कहँ उपजत, उर में मोहन गावत ।
सवा लाख कीनैं तिलोचन हरि कों, को दरसन पावत ।।
भाव बिना न भक्ति - रस उपजै, यह सब संत बतावत ।
कियैं उपाय राधिका, मोहन 'व्यास'हिं निकट न आवत ।।१

राग नट

कहत सब लोभहिं लागौ पाप ।
तऊ न छूटत लोभ होत हू, बाढ्यौ उर परिताप ।
जैसैं पंकहिं पंक न छूटहिं, सूखि सरीरहिं आप ।
ऐसैं जोग, जज्ञ, तीरथ, ब्रत, मन कौ मिटै न ताप ।।
विद्यावानि* कृष्न जादव कों, मुनि नें दीनौ कोपि सराप ।
'व्यास' भक्ति बिनु दुर्लभ लोकनि तजत सोक अगधाप ।।१

राग कान्हरौ

लोक चतुर्दस लोभ फिरायौ । कबहुँक राजा रंक मुहायौ
कबहुँक बाँभन सुपच कहायौ । 'व्यास' बचन सुनि साधुन पायौ

* विद्यावानि (ग) विद्यमान (ख, प, कु),

राग सारंग

जाके मन बसै काम-कामिनि - धन ।
ताकैं सपनें हू न संभवै, आनँद-कंद स्याम-घन ॥
भक्ति, भागवत भनत तहाँ नहिं, जहाँ विषय आचरन ।
दया, दीनता, करुना तहाँ, जहाँ नहिं जीव - आहरन ॥
विमद विमत्सर संत जहाँ हैं, भगवत - लीला - सरन ।
'व्यास' आस की पास बँधे, ते बूड़े ग्रह-आचरन ॥१६४॥

राग बिलावल

निष्काम ह्वै स्याम जो गावहु ।
साँचे-साँचे साधुनि में तुम, साँचे साधु कहावहु ॥
बिनु लीनें जो नाँचहु, तौ तुम प्रेम - भक्ति-फल पावहु ।
दाम-काम ना हरि-नाम कौ गुन लगैं न कोटि रिझावहु ॥
इंद्रीजित ह्वै अजितहिं मन दैं, तन धन सुख बिसरावहु ।
बिमुखन के द्वारें उझकत ही, मुख जिनि हरिहिं दिखावहु ॥
अगनित दोष रोष तृष्ना महँ, कृष्नहिं कहा लजावहु ।
आसा-बंधन तें नँदनंदन, 'व्यास'हिं बेगि छुड़ावहु ॥१६५॥

राग सारंग

सो न मिल्यौ जो कबहुँ न बिछुरै ।
हरि कौ साथ सु और निबाहूँ, जो मन माँझ फुरै ॥
जैसैं पथरहिं भिदत न पानी, परसत फटक घुरै ।
ऐसैं जड़ सचेल के चित सों, साँचौ हित न जुरै ॥
अनी, आगि में परत धनी लगि सूर सती न मुरै ।
गिरवर तरवर सिंधु भेद कैं, फिरि न नदी बहुरै ॥
ठग, बग, डिंभी लोगनि की गत, आदि - अंत न दुरै ।
दया, दीनता, दास - भाव बिनु 'व्यास' न स्याम ढुरै ॥१६६॥

दुविधा तब जैहै या मन की
निर्भय ह्वै कैं जब सेवहुगे, रज श्री बृंदावन की ॥
कामरि लै, करुवा जब लैहै, सीतल छाँह कुंजन की ।
अति उदार लीला गावहुगे, मोहन - स्याम सुघन की ॥
इन पाँइन्नि परिकरमा, दैहैं, मथुरा - गोवर्धन की ।
'व्यास' आस जब टेक पकरिहै, ऐसैं पावन पन की ॥१६७॥

सबै सुख, बिमुखनि कों दुख-रूप ।
जहाँ न रसिक अनन्य सेईयतु बृंदावन के भूप ।।
जहाँ न जीव-दया, न दीनता-भाव, न भक्ति अनूप ।
कनक-कूट कोटिक लगि तजि, भज हरि-मंदिर जु अजूप ।
'व्यास' वचन सुनि राज परीछत बिसराये गृह-कूप ।।

राग सारंग

हरि-बिमुखन कों दारुन दुख पायौ ।
निसि-दिन विषै-भोग की चिंता, अंतकाल दिन आयौ ।।
औंड़ी नींव खुदाइ दाम दै, ऊँचौ घर करवायौ ।
'व्यास' बृथा ऐसे साधन करि, जनम-जनम डहकायौ ।।

बिमुखनि रुचित न कुंजन बसिबौ ।
जिनमें राधा-मोहन बिहरत, देखि सुखद सुख हँसिबौ ।।
निसि-दिन-छिन छूटत नहिं कामिनि, चरनन सों सिर घसिबौ ।
चुंबत मन-आनंद बिकाने, रह कुल व्याकुल गसिबौ ।।
अंग-अंग रसरंग रचे, सुख सचे, कुसुम कच खसिबौ ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि, पिय सँग जमुना-जल में धसिबौ ।।

राग सारंग

बहिनी-बेटा, हरि कों न तजियै ।
जा संगति तें पति-गति नासै, ता संगति तें लजियै ।।
माता, पिता, भैया, भामिनि, कुल, सखी, सखा नहिं भजियै ।
साधुनि के पथ चलियै, ऊबट चलै सु बेगि बरजियै ।।
गुरुहिं न आवै गारि बालन की, सो सामग्री सजियै ।
'व्यास' बिमुख ब्राह्मन परिहरियै, सुपच भक्त की कृपि उपजियै ।।

जौ पै कोऊ साँची प्रीति करि जानैं ।
तौ या बन में राधा-रमनै, मन लगाइ गहि आनैं ।।
सुनियत कथा स्याम जू की एकै, प्रीति के हाथ बिकानैं ।
ता मोहन की महिमा कैसै, बिपई 'व्यास' बखानैं ।।

साँची प्रीति हरति उपहासहिं ।
कपट-प्रीति-रँग राचि परस्पर, जब-कब होहिं बिनासहिं ।।
मुँह-मीठी बातनि मन मोहत, हरत पराई आसहिं ।
दावानलहिं न ओस* बुझावत, कुहुर न हरत डुकासहिं† ।।

---

* ओस (च, छ); वोस (ख, ग)

† डुकासहि (च, छ) ढुकासहि (ख) दुकासहि (ग)

पीर पराई धीर हरत कछु, कहत न आप व्यथा सहि ।
वर के सुत ज्यों जिय कायर, कोकिल चित्त चोरत कल बासहिं ।
ऐसे कपटिन की संगति तजि, 'व्यास' भजहु हरि-दासहिं ॥२०३॥

साँची प्रीति के हरि गाहक ।
ज्ञान राइ सब ही हरि जानत, परत प्रेम कौ लाहक ॥
कपट निकट न रहै नट-नागर, दीननि के दुख दाहक ।
'व्यास' न कोऊ और सहाइक, भक्ति-भार कौ बाहक ॥२०४॥

राग सारंग

हरि सों कीजै प्रीति निवाहि ।
कपट किये नागर-नट जानत, सबके मन की डाहि ॥
मैं फिरि देख्यौ लोक-चतुर्दस, नीरस घर-घर आहि ।
अपनै-अपनै स्वारथ के सब, मन दीजै अब काहि ॥
भक्ति-प्रताप न जानत विषई, भव-सागर अवगाहि ।
जार-जुवति-गनिका कौ बेटा, पहिचानै न पिताहिं¹ ॥
जैसै प्यासौ मृग धावत, नहिं पावत मृग-तृष्नाहि ।
ऐसैं तन, धन, सुत, दारा सब झूँठे, मधुकरसाहि ॥२०५॥

प्रीति कपट की जब-तब टूटै ।
चोढ़ गाय ज्यौं हुँकरि बछेरुहिं, थन लागत मुख कूटै ॥
कबहुँक वचन बोल मीठे से, तमकि तुपक सी फूटै ।
पाखंडिन की संगति खोटी, ज्यों ठग मिलि सब² लूटै ॥
कृपावंत भगवंत होहिं तब, दारुन दुख तें छूटै ।
साधु-संग तें 'व्यास' परम सुख, भक्ति-रतन कहा खूटै ॥२०६॥

राग रामकली

वादि सुख* - स्वाद, बेकाज पंडित पढ़त ।
स्याम-जस, भक्ति-रस, कहै नहिं भागवत,
हक नाहक कहा कनक-कामिनि विषै निसिदिन रढ़त ॥
करत साधन सकल, धन-मान चित धरि,
कटक भटकत मृषा वचन-रचना गढ़त ।

---

¹ पहिचानै न पिताहि (च, छ); पहिचानै पतिताह (ख); पहिचानै पतिताहि (ग)
² सब (ख); सग (ग, च, छ)
* सख (च, छ) मुख (ख, ग)

अस्व - गज हेत नृपनि नर ठगत, रातनि—
जगत, नैंक आदर जान गर्व - पर्वत चढ़त ॥
हरिदास निंद करि, पित्र-भूत बंदि उर,
कृष्न - गोपाल सुभ नाम नहिं मुख रढ़त ।
'व्यास' मन त्रास नहिं करत जमदूत की,
जातना‡ कठिन सहि लेत पावत डढ़त ॥२०

राग सारग

पढ़त - पढ़ावत जो मन मान्यौ ।
कौन काम गोपाल - भक्ति सों, जो पुरान पढ़ि जान्यों ॥
घर-घर भटकि, मटकि कामिनि लगि, गाल पटकि धन आन्यौ ।
निसिदिन विषै-स्वाद - रस - लंपट, तजि पाँचनि की कान्यौ ॥
सपनैं हूँ न किये हरि अपने, हित† हरिबंस बखान्यौ ।
सुने न बचन साधु के मन दै, चरन पखारि न अँचयौ पान्यौ ॥
सारासार विवेक न जान्यौ, मन - संदेह न भान्यौ ।
दया, दीनता, दास-भाव बिनु, 'व्यास' न हरि पहिचान्यौ ॥२

राग सारग

हिय में आवत हरि न पढ़ैं ।
अभिमानी क्यों दास होत, दीनन के कंध चढ़ैं ॥
भक्ति - प्रीति तौ खोवत धन लगि, रोवत गुली डढ़ैं ।
ठगत राजसिनि, डगत धर्म तें, फूलत दाम बढ़ैं ॥
जब - तब पीतरि प्रगट होत, कलई सों कनक मढ़ैं ।
'व्यास' कपट सों हरि न मिलत, ज्यों सूरहिं रनहिं कढ़ैं ॥२०१

राग सारंग

आपु न पढ़ि औरनि समुझावत । दोषहिं प्रगटत, गुनहिं दुरावत ॥
नीर मिलै सब छीर मिड़ावत । संत - सभा सपनें नहिं आवत ॥
अपनै ही घर बड़े कहावत । औरनि ठगि आपुन ठगवावत ॥
गनिका के से भाव बनावत । हरि-विमुखनि पै सचु नहिं पावत ॥
इहिं विधि जनम-जनम डहकावत । 'व्यासहिं' अभिमानी नहिं भावत॥२

भक्ति न जनमै पढ़ैं पढ़ायैं ।
कृष्न-कृपा बिनु, साधु-संग बिनु, कह कुल गाल बजायैं ॥
हरि सों ठैन न सुघर मानहीं, पिटभरि रागहिं गायैं ।
हरिहिं रिझाइ सकै को नटवा, नट - भट पै नचवायैं ॥

‡ जाचना (ख) जाचिना (ग) यातना (घ छ)
† हित (ख) हिति (ग श्री (छ (श्री) हेत (च)

सपने हू न मिलें हरि लोभिनि, बाजे विविध सुनायें ।
सुभटनि जूझत हरि न मिलें अब, सती न पावक पायें ।।
दान दिये भगवान न भेटें, कोटिक तीरथ न्हायें ।
नाऊ, जाट, चमार, जुलाहे, छीपा हरि दुलरायें ।।
मत्सर बाढ़्यौ भट्ट-गुसाँइन, स्वामी 'व्यास' कहायें ।।२११।।

राग सारंग

भई काहूँ कैं भक्ति पढ़ैं न ।
धन कों पंडित कहत भागवत, होत न हरि सो ठैन ।।
उपज्यौ भाव कबीर धीर कों, बेद पुरान पढ़ैं न ।
माँस छाँड़ि रैदास भक्त भये, कृश - तुरंग चढ़ैं न ।।
बिषइनि तजे पिंगला सुधरी, करुना राज बढ़ैं न ।
'व्यास' प्रतीति बिना न कहूँ सुख,ज्यौं दुख उरग कढ़ैं न ।।२१२।।

बाह्मन के मन भक्ति न आवै । भूलै आप, सबनि समुझावै ।।
औरनि ठगि-ठगि अपुन ठगावै । आपुन सोवै, सबनि जगावै ।।
बेद-पुरान बेचि धन ल्यावै । सत्या तजि हत्याहिं मिलावै ।।
हरि-हरिदास न देख्यौ भावै । भूत, पितर, देवता पुजावै ।।
अपुन नरक परि कुलहिं बुलावै । 'व्यास'भक्ति बिनु को गति पावै।।२१

हरि बिनु जम की पाँसि जनेऊ ।
सुक-सनकादिक मुकति भये, हरि-भजन करत हैं तेऊ ।।
अगिन-कुंड रौरव कुंडनि सम, मूँज मेखला बंधनु ।
स्रवा डंड स्वाहा-रव हाहा, भूलि गये नँदनंदनु ।।
कुस त्रिसूल, कंटक रित्विज करि, द्विज-पंडित जम-जूप ।
षोडासान जु मास खवावत, आचारज जम रूप ।।
इहिं बिधि कलजुग जज्ञ करत, कंचन-कामिनि की आस ।
केवल भक्ति-भागवत बिनु,छिन ना जीवै सुख पावै'व्यास' ।।२१४।।

राग कान्हरौ

साकत बाह्मन, गूँगौ ऊँट ।
भार लेत संसार, अहार बिकट काँटे कौ सूँट ।।
चालि हालि सहि, नकुवा छेदि, चढ़्यौ उटहेरौ टूँट ।
नकनकाइ मारत हारत हू, देत न जल कौ घूँट ।।
लये कुदान कारटौ† खाइ, बढ़ाइ निलज जग - खूँट ।
'व्यास' वचन माने बिनु बाढ़्यौ दारुन दुख कौ सूँट ।।२१५

† कारटौ ग, च) काग्टौ (ख) कार्टौ छ)

राग सारंग

पितर सेष जड़ स्यामहिं देत।
तिहिं पापी अपुने पितरनि के मुख में मेली रेत॥
सो ठाकुर-सेवक न जानिवौ, जो अधमनि की जूठन लेत।
तिनकी संगति पति-गति जैहै, मेरे चित यह चेत॥
स्याम केस सित होत न धोयैं, कौला होत न सेत।
सहज भक्ति बिनु 'व्यास' नहीं कन सेव्रत ऊसर खेत॥

राग सारंग

करौ भैया! साधुन ही सौं संग।
पति-गति जाइ असाधु संग तैं, काम करत चित भंग॥
हरि तें हरि-दासन की सेवा, परम-भक्ति कौ अंग।
जिनके पद तीरथमैं पावन, उपजावत रस-रंग॥
तिनके बस दसरथ-सुत मार्‌यौ, माया-कनक-कुरंग।
तिनके कहत 'व्यास' प्रभु सुमिर्‌यौ, सत्वर* धनुप निरंग॥

राग सारंग

जो तू माला तिलक धरै।
तौ या तन-मन-ब्रत की लज्जा, और निवाह करै॥
करि बहु भाँति भरोसौ हरि कौ, भव-सागर उतरै।
मनसा, बाचा और कर्मना, तृन करि गनतु धरै॥
सती न फिरत बाट ऊपर तें, सिर सिंदूर परै।
'व्यासदास' कौ कुंजबिहारी, प्रीत न कहुँ बिसरै†॥

राग सारंग

मूँड़ मुड़ाये की लाज निबहियै।
माला-तिलक स्वाँग धरि हरि कौ, मारि-गारि सब ही की सहियै
बिधि-ब्यौपार जार सौं कलिजुग, हरि-भर्त्तार गाढ़ौ करि गहियै
अनन्य-ब्रत धरि सत जिनि छाँड़हु, बिमद§ संतनि की संगति रहियै
अग्नि खाहु, बिष पियहु, परौ जल, बिषयनि कौ मुख भूल न चहियै
'व्यास' आस करि राधा-धव की, श्री बृंदावन बेगि उमहियै

---

* सत्वर (च, छ)। (ख, ग) प्रतियों में सत्वर नहीं है।

† प्रीति न कहूँ बिसरै (च, छ), प्रति कबहु बिसरै (ख)

§ बिमद (ग, घ, छ) विसद (ख)

कर लै करुआ कुंज सहाइक।
पीलू-पैंचू, साग-सैंगरै, छाछि-समाँ मन-भाइक॥
विहरत स्यामा-स्याम सनेही, दीनन के सुखदाइक।
बृंदावन की रेनु-धेनु, तरु-तीर सेइबे लाइक॥
अभिमानीनि सजा दै रोकत, ब्रजबासी हरि-पाइक।
काम-केलि सुख के रखवारे, हरषत बरषत साइक॥
मगन सबै आनंदसिंधु में, नंदादिक ब्रज-नाइक।
'व्यास' रास-भूमिहिं नहिं परसत, नीरस माया साइक॥२२०॥

राग सारंग व धनाश्री

घरी,सोई दिन,सोई पल,सोई छिन, जबहिं मिलत मेरे प्यारे के प्यारे।
घर-घरनी, सोई सुत, गुरु हित,* जिनकैं रसिक नैननि के तारे।
'व्यास',सोई दास,त्रास तजि हरि भजि,रास दिखावै,सोई प्रान हमारे॥

राग कान्हरौ

सोई जननी, जो भक्तहिं जावै। सोई जनक, सु भक्ति सिखावै॥
सोई गुरु, जो साधु सिवावै। सोई साधु, जो विषै छुड़ावै॥
सोई धर्म, जो भर्म नसावै। सोई धन, जो प्रीति बढ़ावै॥
सोई सूर, जो मन न चलावै। सोई धीर,जो चित न डुलावै॥
सोई मुख, जो हरि-गुन गावै। सोई 'व्यास',जो रास करावै† ॥२२२

राग नट

कोई रसिक स्याम-रस पीवैगौ। पीवैगौ सोई जीवैगौ॥
पीवैगौ सोई फूलैगौ। तन-मन देख न भूलैगौ॥
पीवैगौ सो नाचैगौ। साधु-संग मिलि राचैगौ॥
चाखैगौ सो जानैगौ। कहनैं कौन पत्यानैगौ॥
'व्यास' दास जिय भावैगौ। तब अंग-खवासी पावैगौ॥२२३

साँची भक्ति और सब झूंठौ।
पाई नारद स्याम-कृपा तें, खात साधु कौ जूठौ॥
जिन-जिन कौ हरि काज सँवारयौ, स्रृंगी रिषि सों रूठौ।
'व्यास' सुनी कि सुनो सुकदेव, परीछत ऊपर तूठौ॥२२४॥

---

* सुत गुरु हित (च, छ); सुत गुर हिति (ग);
सत गुर हित (क)

† करावै (ख, च, छ) बनावै (ग)

राग सारंग

मेरौ मन मानत नाचै - गायैं ।
एकै प्रेम - भक्ति कौ फल है, मोहनलाल रिझायैं ।।
गदगद सुर, पुलकित जस गावत, नैननि नीर बहायैं ।
नट-गोपाल कपट नहिं मानत, कोटिन स्वाँग बनायैं ।।
तजि अभिमान-दीनता जन की, स्याम रहत सचु पायैं ।
'व्यास' सुपच तारे, कुल बोरे विप्रनि हरि बिसरायैं ।।२

राग गौरी

राधावल्लभ के गुननि गाइ लेहु ।
तजहु असाधु, संग भजि साधुनि, हरि सौं हित उपजाइ लेहु ।
बृंदावन निरुपाधि राधिकारमन सौं, प्रीति बढ़ाइ लेहु
नव-निकुंज सुख-पुंजनि बरषत, नैननि सुख दिखराइ लेहु ।
पावन पुलिन रासमंडल में, मन दै तनहिं नचाइ लेहु
गदगद सुर, पुलकित कोमल चित, आनँद-नीर बहाइ लेहु ।
त्रिमद-विमत्सर रसिक-अनन्य - चरन - रज सिर लपटाइ लेहु
इहिं विधि महाप्रसादहिं पावत, सहचरि 'व्यास' कहाइ लेहु ।

कुंजनि-कुंजनि रसमय लूट ।
दस दिसि निसि-बासर बृंदावन - चंद, बृंद सब छूट ।।
राग-भोग अनुरागनि विलसत, जा तन देख्यौ कूट ।
गुन-सागर नागर रस - रूप - कूप - जल जात न टूट ।।
रसिक अनन्य कहाइ अनत बसि, राजा-राउ न फूट ।
लोक - प्रतिष्ठा विष्टा लगि, सतु हारयौ चारौं खूट ।।
ज्यौं अनबोलैं ऊँट भार सहि, भजि काटै सरहूट ।
ऐसै 'व्यास' दुरास - पास बँधि, क्यौं आवै पसु छूट ।।२२

राग गौरी

हरि-गुन गावत कलिजुग सुनियतु, भयौ सबनि कौ काज ।
साखि - भागवत बोलत अजहूँ, काहै करत अकाज ।।
सुक-सनकादिक जेहिं रस माते, तजि संसार - समाज ।
जेहिं रस राज परीछति राँचे, बिसरि गयौ जल-नाज ।।
जिहिं रस प्रेम-मगन भई गोपी, तजि सुत-पति-गृह-लाज ।
सो रस 'व्यासदास' की जीवनि, राधा - मोहन आज ।२२

राग गौरी

स्याम-कृपा बिनु दिन दुख दूनौ ।
अपने ही अभिमान जरत जग, भयौ काज अति भूनौ ॥
भक्ति-मुक्ति कौ दाता है हरि, प्रभु वगसत आनि पूनौ ।
क्रूरनि कौं मुहरें देत, 'व्यास' कौं ईंटें - पाथर - चूनौ ॥२२६॥

.. सिद्धावस्था— राग सारंग

जासौं लोग अधर्म कहत हैं, सोई धर्म है मेरौ ।
लोग दाहिने मारग लाग्यौ, हौं व चलत हौं डेरौ ॥
द्वै-द्वै लोचन सब ही कें, हौं एक आँखि कौ ढेरौ ।
और आब हौं कौन काम कौ, ज्यों वन बुरौ बहेरौ ॥
लोगन कौं पुर - पट्टन - खेरौ, नाहिंन मेरौ बसेरौ ।
मृगया करि जो काम न आवै, मर्कट माँस अहेरौ ॥
जिनकी ये सब छोति करत हैं, तिनहीं कौ हौं चेरौ ।
सूजी नरी घुरहुटी 'व्यास' के मन में वस्यौ वँदेरौ ॥२३०॥

राग सारंग

अब मैं बृंदावन-धन पायौ ।
राधा - चरन - सरन मनु दीनौं, मोहनलाल रिझायौ ॥
सूतौ हुतौ विषै - मंदिर में, श्री गुरु टेरि जगायौ ।
अब तौ 'व्यास' विहार विलोकत, सुक-नारद मुनि गायौ ॥२३१॥

राग धनाश्री

हरि बिनु, छिन न कहूँ सुख पायौ ।
दुख - सुख - संपति - विपति भोगवत,स्वर्ग - नर्क फिरि आयौ ॥
लोक चतुर्दस बहुविधि भटक्यौ, स्वारथ लगि, मैं हरि बिसरायौ ।
कोटि गाय - बाँभन मारे कौ, ताप - पाप उपजायौ ॥
कबहुँक सुपच सरीर धर्‌यौ, चोरी बल उदर बढ़ायौ ।
कबहुँक विद्या - वाद - स्वाद लगि, ब्राह्मन ह्वै पुजवायौ ।
कबहुँक रंक निसंक भयौ, घर - घर फिरि जूठौ खायौ ।
कबहुँक सिंहासन पर बैठ्यौ, छत्र - चौर ढरवायौ ॥
कबहुँक कंचन - कामिनि लगि, रन - दूलह बिरद बुलायौ ।
कबहुँक विषयी - विषयनि कारन, घर तजि मूँड़ मुड़ायौ ॥
ऐसें नाना धर्म - कर्म करि, जनम - जनम डहकायौ ।
अबकैं रसिक अनन्यनि 'व्यास'हिं, राधा रमन बतायौ ॥२३२॥

राग भूपाली

बिसद कदंबनि की कल वाटी ।
बृंदावन रस-वीथिनि रसमय, रसिकन की परिपाटी ।।
नवदल-माल-तमाल-गुच्छ-छबि, तोरन - रचना ठाटी ।
अमित नमित फूलनि की झूलनि, रमित महल की टाटी ।।
अति आवेस सुदेस निलज ह्वै, लाज लाज का काटी ।
स्यामा-स्याम केलि-बल रोकी, मदन-मान की वाटी ।।
सरस सुधंग राग-रागिनि मिलि, गावत है करनाटी ।
तान-तरंग सुनत ही, सकल गुनन की परदा फाटी ।।
और सकल साधन नीरस, या रस बिन सब गुर माटी ।
छाँड़ि प्रपंच नाँच नट कौ सो 'व्यास' सँधि यह डाटी ।।१

राग सारंग व भूपाली

तन अब ही को कामे आयौ ।
साधु-चरन कौ संग कियौ, जिन हरि जू कौ नाम लिवायौ ।।
धन्य बदन मेरौ, जिनि रसिकनि कौ जूठौ खायौ ।
रसना मेरी धन्य, अनन्यनि कौ चरनोदक प्यायौ ।।
धन्य सीस मेरौ, श्रीराधा - रमन - रेनु - रस लायौ ।
धन्य नैन मेरे, जिन बृंदावन कौ सुख दिखरायौ ।।
धन्य स्रवन मेरे, श्री राधा - रमन - विहार सुनायौ ।
धन्य चरन मेरे, श्री बृंदावन गहि अनत न धायौ ।।
धन्य हाथ मेरे, जिन कुंजन में हरि - मंदिर छायौ ।
धन्य 'व्यास' के श्री गुरु, जिन सर्वोपरि रंग बतायौ ।।२

राग कान्हरौ

मनुवाँ मेरे*, तू हरि-पद अटक्यौ ।
अब तैं साँचौ सुख पायौ, तब दुख लगि घर - घर भटक्यौ
भली करी तैं मोह तोरिकैं, बृंदावन कौं सटक्यौ
तैं देख्यौ कुंजनि में मोहन, राधा के उर लटक्यौ
तेरे वस को - को न बिगूच्यौ, जन्मत - मरत न मटक्यौ
'व्यास' दास ह्वै कै किनि उबरहु, आसा-डाइन सब जग गटक्यौ

सुधारयौ हरि मेरौ परलोक ।
श्री बृंदावन में कीन्हौ, दीन्हौ हरि अपनौ निज ओक ।।

---

* मन बावरे (क) मनुआँ मेरे (ग) मनुवाँ मेरे (ख)

माता कौ सौ हेत कियौ हरि, जानि आपनौ तोक ।
चरन - धूरि मेरे सिर मेली, और सबन दै रोक ।
ते नर राकस, कूकर, गदहा, ऊँट, बृषभ, गज, बोक ।
'व्यास' जु बृंदावन तजि भटकत, ता सिर पनहीं ठोक ॥२३६॥

स्याम निबेर्यौ सबकौ झगरौ ।
निजु दासनि के दास करे हम, पायौ नाम अचगरौ ॥
देवी - देवा, भूत - पितर, सबही कौ फार्‌यौ कगरौ ।
पावन गुन गावत तन सुधर्‌यौ, तब रसिकन पथ डगरौ ॥
मिटि गई चिंता मेरे मन की, छूटि गयौ भ्रम सगरौ ।
चारि पदारथ हू तें न्यारौ, 'व्यास' भक्ति - सुख अगरौ ॥२३७॥

गरजत हौं, नाहिन नैकौ डरु ।
और सहाइ करत है, मेरौ श्री गोपाल धुरंधर ॥
धन गोधन मेरैं, रस गोरस, छाया करत कलपतरु ।
जाति-पाँति बल्लभ (गोप) कुल मेरैं, बृंदावन साँचौ घरु ॥
बंसीवट, जमुना-तट, खरिक - खोरि - बीथी जीवन वरु ।
बिहरत 'व्यास' रास में, हंस - हंसिनी मान - सरोवरु ॥२३८॥

राग नट

लोग बेकाज करत उपहास ।
स्याम संग खेलत सचु पायौ, काम कियौ कुल नास ॥
कठिन हिलग कौ फंदा परयौ, अब कैसैं होत निकास ।
पिय सौं हित हठ और निबाह्यौ, जौ लगि कंठ उसास ॥
मोहन - मुख - सुख की चाहनि में, कैसैं मानौ त्रास ।
'व्यास' उदास भये, रस चाहैं, तजि नागर कौ पास ॥२३९॥

हरि पाये मैं लोलक चैया ।
ग, जग्य, तीरथ, ब्रत, संजम, कर्म, धर्म मेरी करत बलैया ॥
: - पुरान - स्मृति - तरु कौ फल, प्यारौ कुँवर कन्हैया ।
ावन घर, नंद पिता, जसुदा ताकी है मैया ॥
ा जाकी घरनि तरुनि - मनि, श्रीदामा जाकौ है भैया ।
त राग-भोग जूठनि कौं, 'व्यास'हिं करौ बिलैया ॥२४०॥

फंद (ग, छ); पंथ (ख);
निकास (च, छ), निवाह (ख, ग);

राग बिलावल

साँचौ धनु मेरे दीनदयाल ।
जुग-जुग लेत-देत नहिं निवटै, मैं पायौ अजगैबी माल ।
ता बिनु सकल लोक की संपति, पायें हू जु होइ बेहाल
ताकौ नाम, रूप, गुन गावत, निकट न आवै माया - काल ।
नवल-किसोर भव-बंध छोरिहै, रंक सुदामा कियो निहाल
निज दासनि दिन पुष्ट करत हरि, दुष्टनि कौ कीनो मति-चाल ।
रसिक अनन्य किये जिहिं बटुना, नटवा ह्वै रीझे गोपाल
सुख, संतोष, मोच्छ भक्तनि दै, बिमुखनि दारून दुख-जंजाल ।
श्री राधा मानसरोवर अँग-अँग, मुक्ता चुनि-चुनि जियत मराल
कामधेनु तजि 'व्यास' किन्हें भजि, निस-दिन बाढ्यौ छाती-साल ॥

जैसे सुख मोहन हमहिं दिखावत ।
ऐसे सुख भुगति मुकति के भोगी, सपनें हू नहिं पावत ।
दरसन दै सब पाप दूरि करि, परसत ताप नसावत ।
महाप्रसाद विषाद हरन मन, मोद बढ़त गुन गावत ॥
उपजत प्रीति-प्रतीति साधु-मुख, श्री भगवंत सुनावत ।
हरि की कृपा जानियै तब ही, संत घरहिं जब आवत ॥
एहि विधि 'व्यास' कहाइ अनन्य, पाइ सुख, अनत न कितहूँ धावत

राग केदारौ

नाचत-गावत हरि सुख पावत ।
नाँचि-गाइ लीजै दिन द्वै, पुनि कठिन काल-दिन आवत ॥
नाँचत नाऊ, जाट, जुलाहो, छीपा नीके गावत ।
पीपा अरु रैदास, विप्र जयदेव सु भलैं रिझावत ॥
नाँचत सनक, सनंदन अरु सुक, नारद मुनि सचु पावत ।
नाँचत गन गंधर्व-देवता 'व्यास'हिं कान्ह जगावत ॥२४३

राग केदारौ

मेरे भाँवते स्यामा-स्याम ।
रास - बिलास करत बृंदावन, विविध बिनोद ललाम ॥
नख-सिख अंग लुभारे - प्यारे, ज्यौं लोभिन कौं दाम ।
रूप-अवधि, गुन-जलधि, रंग-निधि, सब विधि पूरन-काम ॥
मंद हसनि छवि छली अलिहिं, बंक बिलोकनि बाम ।
'व्यास' बिहार निहारति रसिकनि भूले तन-मन धाम ॥२४४

राग सारंग

सुनि बिनती मेरी तू रसना, राधाबल्लभ गाइ।
बृथा काल खोवहि, जिन सोवहि, छिन-भंगुर तन आइ ॥
सुनि सुख - सदन बदन मेरे, तू प्रीति-प्रसादहिं पाइ।
सुनि दुख - मोचन मेरे लोचन, जुगल-किसोर दिखाइ ॥
सुनहि स्रवन, रति-भवन किसोरहिं गावत नैकु सुनाइ।
सुनि नासा, तू चारु चरन पंकज की बास सुँघाइ ॥
सुनि तू सिर, पावन चरनोदक रुचि अभिषेक कराइ।
सुनि कर, तू मंदिर की सेवा सुख पर प्रीति बढ़ाइ ॥
सुनहि चरन, तू बृंदाबन तें अनत न पैंड़ चलाइ।
सुनि मन, हरषि रासलीला पर संतत रुचि उपजाइ ॥
सुनि चित, बिनती आस तजहि नित, दासहिं हाथ बिकाइ।
सुनि बुधि, सुकरि जु कुंज-महल मे सुख-पुंजहिं बरपाइ ॥
सुनहि लोक-करता की इंद्री, बिषै - बिकार बिहाइ।
सुनि बनिता, हरि की दासी ह्वै, मेरो करहि सहाइ ॥
सुनि सुत, नवलकिसोर-दास ह्वै, हरि-गुन गाव-गवाव।
सुनि सिष, हौं भव-जल बूड़त हौं, हरि-पद सेवहु नाव ॥
इहिं कलि-काल गुपाल-भजन कौ आनि पर्‌यौ है दाव।
बिनती सुनहु 'व्यास' की सब ही, हरि बिनु अनत न ठांव ॥२

राग देवगंधार

गावत मन दीजै गोपालहिं।
नाँचत हरि पर चितु दीजै, तौ प्रीति बढ़ै प्रतिपालहिं ॥
बिनु अनुरागहिं, राग न मीठो, सीठौ बिनु गुन-मालहिं।
सब साधन सीठे धन कारन, कत कूटत है गालहिं ॥
गदगद सुर पुलकति असुवनि बिनु, भक्ति न भावत लालहिं।
ऐसो काको भाग, जु नाँचत - गावत पावत कालहिं ॥
मुँह गावत गोपालहिं कपटी, मन में धरि भूपालहिं।
हाथी कौ सौ स्वाँग धरत, पुनि चलत स्वान की चालहिं ॥
घर-घर भटकि-भटकि धन कारन, पहरि लजावतु मालहिं।
पथरा गरैं बाँधि किनि बूड़हु, जब छाँड़त नँदलालहिं ॥
अधम प्रतिष्ठा बिष्ठा लगि तजि, बसि बृंदाबिपिन रसालहिं।
आसा-पासि बँधे क्यों छूटै, 'व्यास' बिसारि कृपालहिं ॥२

राग देवगंधार

रसना, स्यामहिं नैंक लड़ाउ री ।
चढ़ि बैकुंठ-नसैनी हरि-पद, प्रेम - प्रसादहिं पाउ री ।।
छाँड़ि पराई निंदा, बिंदा - गोबिंदा - गुन गाउ री ।
भव-सागर तरिबे के काजै, नाहिंन आन उपाउ री ।।
वे हीं काजै जा देही की, छिन - छिन घटत जु आउ री ।
इहि कलि-काल गुपाल-भजन बिनु,सुख सपने नहि पाउ री ।।
हरि-बिमुखन कौ आजु नाजु-जल, कारी धारि बहाउ री ।
रसिक अनन्यनि की जूठनि पर,'व्यास'हिं रुचि उपजाउ री ।।२५२।।

मन रति, बृंदावन सौं कीजै ।
ग्वायौ पियौ भरयौ मूंज्यौ अब, जीवन कौ फल लीजै ।।
काज - अकाज जानि सब अपुनौ, दाट सवारौ दीजै ।
देखि धेनु, सुनि बैनु, रैन तजि, धृक-धृक जग जो जीजै ।।
जमुना - तट बंसीबट निकट रहत, जो यह तन छीजै ।
बरपत स्यामास्याम-रास-रस, 'व्यास' नैन भरि पीजै ।।२५३।।

राग सारंग

मन, तू बृंदावन के मारग लागि ।
तेरौ न कोउ, न तू काहू कौ, माया-मोह तजि भागि ।।
यह कलि-काल-व्याल बिप भोयौ, जगु सोयौ, तू जागि ।
भवसागर हरि - बोहित कौ, तू होहि कृपा करि कागि ।।
गो-गिरि-सर-सरिता-द्रुम-कुंजनि सौं जोरहि अनुरागि ।
'व्यास' आसि करि राधा-धव की,ब्रजबासिन के कौरा माँगि ।।२५४।।

हरि मिलिहै मोहि बृंदावन मे ।
साधु - बचनौ मैं साँचे जाने, फूल भई मेरे मन में ।।
बिहरत संग देखि अलिगन जुत, निबिड़ निकुंज-भवन में ।
नैन सिराइ पाइ गहिबी, तब धीरज रहै कवन में ।।
कबहुँकि रास-बिलास प्रगटिहै, सुंदर सुभग पुलिन में ।
बिबिध बिहार - अहार लच्यौ है, 'व्यासदास' लोचन में ।।२५५।।

राग सारंग

हम कब होहिंगे ब्रजवासी ।
ठाकुर नंदकिसोर हमारे, ठकुराइन राधा सी ।।

बचन (च छ , बरन (ख)

सखी - सहेली कब मिलिहैं, वे हरिबंसी - हरिदासी ।
बंसीवट की सीतल छैयाँ, सुभग नदी जमुना सी ॥
जाकी वैभव करत लालसा, कर मीड़त कमला सी ।
इतनी आस 'व्यास' की पुजवौ, वृंदाविपिन - विलासी ॥२

वृंदावन कबहि बसाइहौ ।
कर करुवा, हरवा गुंजनि के, कटि कोपीन कसाइहौ ॥
घर-घरनी, करनी कुल की तें, मो मन कबहिं नसाइहौ ।
नाँक सकोरि, बिदोरि बदन, इन बिमुखनि कबहिं हँसाइहौ ॥
सुभग भूमि में चपल चरन ये, बन-बन कबहिं फिराइहौ ।
राधाकृष्न नाम द्वै अच्छर, रसना रसहिं रमाइहौ ॥
बंसीबट जमुना-तट के सुख, मो मन कबहिं लस्याइहौ ।
'व्यास'दास कों नील-पीत-पट, कुंजनि दुरि दरसाइहौ ॥२

अब न और कछु करनै, रहनै है वृंदावन ।
हौनौ होइ सो होइ किनि, दिन-दिन आयु घटति झूठे तन
मिलिहैं हित ललितादिक दासी, रास में गावत सुनि मन
जमुना - पुलिन - कुंज, बन - बीथिनि, बिहरत गौर-स्याम-घन ;
कहा सुत-संपति - गृह - दारा, काटहु हरि माया के फंदन
'व्यास' आस छाँड़हु सब ही की, कृपा करी राधा-नँदनंदन

करि मन वृंदावन सों हेत ।
निसि-दिन-छिन छाया जिनि छाँड़हि,रसिकन कौ रस-खेत ॥
जहँ श्री राधा - मोहन बिहरत, करि कुंजनि संकेत ।
पुलिन रास - रस - रंजित देखत, मनमथ होत अचेत ॥
वृंदावन तजि, जे सुख चाहत, तेई राकस - प्रेत ।
'व्यासदास' के उर में बैठ्यौ, मोहन कहि-कहि देत ॥२

राग केदारौ

करि मन, वृंदावन में वास ।
कपट-प्रीति के लोगनि तजि, भजि जौ लगि कंठ उसास ॥
खेलत राधा - मोहन, जामहिं होत सदा निसि रास ।
कुंज - कुटीर तीर जमुना के, धीर समीर बिलास ॥
नख-सिख बिटप बेलि लपटाने, जहँ-तहँ कुसुम-बिकास ।
बीथिन बीच कीच रँग जाकौ, नाहिंन कहूँ निकास ॥
सुख की खान जान बंसीबट, कीनौ सुरत अवास ।
पावक रवि कौ तेज न, संतत सरद बसंत निवास

हरित भूमि, जल सीतल, छाहीं, गाय-ग्वाल कौ पास ।
यहै फिरत दधि-दूध चहूँ दिसि, सकल दुखन कौ नास* ॥
स्यामहिं गावति गोपी, रसिक अनन्यनि होत उदास* ।
पुजवहु आस 'व्यास' की मोहन, अब जिनि करहु बिसास ॥२६०॥

राग सारंग

रहि मन, बृंदावन की सरन ।
और न ठौर, कहूँ मो - तोकौं, संपति चार्यौ चरन ॥
कुंज - केलि कमनीय, कुसुम-सयनीय देखि, सुख-करन ।
राग भोग संजोग होत जहँ, रजनी रति† की तरन ॥
तरुनी - तरुन प्रताप चाँप बल, काल - व्याल कौ डर न ।
तरनि तेज कर भूमि न परसत, पावक माया बरन ॥
बहत मरुत मकरंद उड़ावत, मृदु छबि सीतल परन ।
सुक, सनकादिक, नारद गावत, सुख पावत अधरन ॥
यह रस पसु नीरस सतु छाँडै, भाजत पेटहिं भरन ।
'व्यास' अनन्य भक्त की जीवनि, बन में मंगल भरन ॥२६१॥

होहु मन बृंदावन कौ स्वान ।
जो गति तोकौं दैहै प्रेमी, सो गति लहै न आन ॥
बेगि बिसरिहै कामिनि - कूकरि, सुनत स्याम-गुन-गान ।
ब्रजबासिन की जूठन जेंवत, बेगि मिलैं भगवान ॥
जहाँ कल्पतरु, कामधेनु के बृंद बिराजत जान ।
बाजत जहाँ स्याम - स्यामा के सुरत - समर - नीसान ॥
सदा सनातन राधा बन कौ, प्रलै खिसत नहिं पान ।
तीरथ और सकल जबहीं लगि, तब लगि ससि अरु भान ॥
है बैकुंठ एक सुनियतु, ताकौ साधन गुरु कौ ज्ञान ।
ब्रज में भये चत्रभुज कौ, राका बर बेनु - बिषान ॥
नंद - जसोदा गो - गोपिन के, मोहन तन - धन - प्रान ।
'व्यास' बेद ब्रज - बैभव जानत नाहिंन, करत बखान ॥२६२॥

राग देवगंधार

ऐसौ मन कब करिहौ हरि मेरौ ।
कर करवा, कामरि काँधे पर, कुंजनि - माँझ बसेरौ ॥

---

* (ख) प्रति में ये दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं ।

† रवि (ग, छ); रस (ख)

ब्रजबासिन के टूँक भूख में, घर - घर छाछि - महेरौ।
छुधा लगै जब माँगि खाँउगौ, गनौं न साँझ - सबेरौ॥
रास - बिलास बृत्ति कर पाऊँ, मेरैं खूँट न खेरौ।
'व्यास' बिदेही बृंदावन में, हरि - भक्तन कौ चेरौ॥२६

राग सारंग

बलि जाऊँ, बलि जाऊँ, राधा मोहि रहन दै बृंदावन की सरन
मोकौं ठौर न और कहूँ अब, सेउँगौ ये चरन॥
सहचरि ह्वै तेरी सेवा करौं, पहिराऊँ आभरन।
अति उदार अँग - अंग माधुरी, रोम-रोम सुख करन॥
देखौं केलि - बेलि मंदिर में, सुनि किंकिन - रव स्रवन।
दीजै बेगि 'व्यास' कौं यह सुख, जहाँ न जीवन - मरन॥२६

राधा, आसा पुजवौ मेरी।
हा, हा, कुँवरि-किसोरी बलि जाऊँ, करहु आपनी चेरी॥
मोहिं स्याम कौ डर नहिं, स्यामा ! छुटत न आसा तेरी।
अगति जाति तैं मेरी देही, भव - सागर तें फेरी॥
कामधेनु के संग न सोहै, सदाँ छोति में छेरी।
तुव पद-पंकज - पारस परसत, 'व्यास' कहा अब खेरी॥२६.

राग गौरी

किसोरी, तेरे चरननि की रज पाऊँ।
बैठि रहौं कुंजनि के कौनैं, स्याम - राधिका गाऊँ॥
या रज सिव-सनकादिक-लोचन, सो रज सीस चढ़ाऊँ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखत, बिमल-बिमल जस गाऊँ॥

किसोरी, मोहिं अपनी करि लीजे।
और दियैं कछु भावत नाहीं, श्री बृंदावन दीजै॥
खग - मृग - पसु - पंछी या बन के, चरन-सरन रख लीजै।
'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखत, महल-टहलनी कीजै॥२६.

राग सारंग

जीवत मरत बृंदावन सरनैं।
सुनहु सुचित ह्वै राधामोहन, यह बिनती मन धरनैं॥
यहै परम पुरुषारथ मेरैं, और कछू नहिं करनैं।
स्याम भरोसे तेरे बल के, नहीं 'व्यास' कों डरनैं॥२६

राग सारंग

कहाँ हौं बृंदावन तजि जाउँ।
मोसे नीच-पोच कों अनत न, हरि बिन और न ठाउँ ।।
सुख - पुंजनि कुंजनि के देखत, विषय बिषै क्यों खाउँ ।।
एक आगि कौ डाढ्यौ, दूजी आग माँझ न बुझाउँ ।।
एक प्रसन्न न मोपर निसि-दिन, छिन-छिन सबै कुदाउँ ।
राधारमन - सरन बिनु अब, हौं काके पेट समाउँ ।।
भोजन - छाजन की चिंता नहिं, मरिबे हू न डराउँ ।
सिर पर सेंदुर 'व्यास' धर्यौ, अब ह्वैहै स्याम सहाउँ ।।२६९।।

राग सारंग

जरतु जग अपने ही अभिमान।
लोभ लहरि तें भागि उबरियै, रहियै हरि की आन ।।
एकनि विद्या-धन-कुल कौ मद, एक गुनी गुन - गान ।
एक रहत जोबन - मदमाते, एक जत्ती तप - दान ।।
भारत, रामायन मूसल सुनि, अजहुँ न जागे कान ।
'व्यास' बायसहिं बेगि उड़ावहु, हरि की कृपा - कमान ।।२७०।।

राग सारंग

मोहिं देउ भक्ति कौ दान।
या संपति कौ दाता और न, हौं मागौं कछु आन ।।
एक चुरू जल प्यासौ जीवै, यौं राखे कौ मान ।
पाछैं सुधा - सिंधु कहा कीजै, छूटि गये जो प्रान ।।
ऐसैं अंगनि देइ कुरंग, सुनत नादहिं सहि बान ।
जैसैं मद - गयंद बिनु बिछुरैं, सहि न सकत ऐलान ।।
तैसैं भृंग बँध्यौ जल - सुत सों, एक लोभ परधान ।
ऐसैं 'व्यास' आस कर बाँधे, मुकरे वे भगवान ।।२७१।।

मेरे तन सों बृंदावन सों, हरि जिन करहु बिछोह ।
अरु यह साधु-संग जिन छूटौ, ब्रजबासिन सों टोह ।।
देउ कृपाल कृपा करि मोकों, राधा-पति सों मोह ।
बिषई विषय कनक - कामिनि सों, मोहिं करौ निरमोह ।।
चारु - चरन - रज - पारस परस्यौ चाहत हौं मन-लोह ।
रागादिक बैरिन में 'व्यास'हिं मोहन करहु निछोह ।।२७२।।

राग गौरी (अठताल)

ऐसौ बृंदावन मोहिं सरनैं।

जा महँ स्यामा-स्याम विराजत, तीन काल दोउ तरनैं ॥
सदा किसोर विटप-मंडल-दल, किसलय कुसुमत फरनैं।
अद्भुत जोटहिं ओट राखि, सेवत नित चारयौ चरनैं ॥
निविड़-निकुंज मंजु कुंजावलि, चलत पत्र मन-हरनैं।
विहरत विपिन-खंड रति-मंडन, राधा-हरि के सरनैं ॥
रसिक अनन्यनि मोहन - वन तें अनत कहूँ नहिं टरनैं।
'व्यास' धर्म तजि भक्ति गही, ताहू तजि नर्कहिं परनैं ॥२८

राग कान्हरौ

मेरी पराधीनता मेटौ हरि किन।

अपने सरन राखि लेहु बलिजाऊँ, बिमुखनि के द्वारैं उभकौं जिन।
तुम्हरे दासहिं आस और की, उपजत नाहिंन, स्याम तुम्हं बिन
सिंघन के बालक भूखे हू तजत प्रान, नहिं चरत हरयौ तृन।
ताही प्रभु की प्रभुता साँची, जाको सेवक सुख पावै दिन
'व्यास' हिं आस राधिका-वर की, जग रूठौ, तूठौ अब ही किन।

राग कान्हरौ तथा सारंग

ऐसैहिं काल जाइ जो बीति।

निसि-दिन कुंज-निकुंजनि डोलत, कहत-सुनत रस-रीति ॥
विमद विमत्सर चरन-सरन ह्वै, बिपै जाइ जो जीति।
नाँचत - गावत रास - रेनु में, तन छूटै जो प्रीति ॥
या रस बिनु सब साधन फीके, ज्यौं बिनु लौंन पहीति।
रसिकनि की हरि आस पुजैहैं, यह 'व्यास'हिं परतीति ॥२८

राग कान्हरौ

श्री राधावल्लभ कौ हौं भावतौ चेरौ।

राधावल्लभ कहत सुनत ही, मन न नैम जम केरौ ॥
राधावल्लभ वस्तु भूलि हू, कियौ अनत नहिं फेरौ।
राधावल्लभ 'व्यासदास' कैं, सुनहु स्रवन दै टेरौ ॥२८

राग कान्हरौ

श्री राधावल्लभ तुम मेरे हित।

और सबै स्वारथ के संगी, गुरी चोपरी दै पोषत पितु ॥
यह मैं जानि सबनि सौं तोरी, तुम सौं जोरी, दै चरनन चितु
इतनी आस 'व्यास'की पुजवहु ज्यौं चातिक पोषत पावस रितु

कनिष्ठ भक्तावस्था—

जौ पै सबहिन भक्ति सुहाती ।
तौ बिद्या, विधि, बरन, धर्म की, जाति रसातल जाती ।।
होते जो न बहिमुख कलिजुग, आनँद सृष्टि अघाती ।
होती मज्ज सभीति सबनि में, प्रीति न कहूँ समाती ।।
जो भागवत रीति गुरु चलते, तौ कति भक्ति बिकाती ।
जो साधुन कौ संग न तजते, तौ कत जरती छाती ।।
जो मंदिर करि हरि कों भजते, तौ कत लिखते पाती ।
जथा लाभ-संतोष रहत ही, मिलते स्याम सँगाती ।।
कृष्न - कृपा न होइ सबहिनि पै, माया जाहि डराती ।
'व्यासदास' भागि किन उबरौ, आगि तें आमा ताती ।।२७८।।

हमरैं कौन भक्ति की रीति ।
साधन पुरुषारथ कछु नाहीं, संतन सों न समीति ।।
कायर, कुटिल, अधम, लोभी, हम निसदिन करत अनीत ।
सपनैहूँ नहिं स्याम-चरन-रति, विषइनि सों बहु प्रीति ।।
तीरथ, करम, धरम, व्रत नाहीं, लोक - बेद की भीति ।
महा पतित-पावन हरि कहियतु, 'व्यास'हिं यह परतीति ।।२७९।।

राग सारंग

अब हम हू से भक्त कहावत ।
माला-तिलक स्वाँग धरि हरि कौ, नाम बेचि धन लावत ।।
स्यामहिं छाँड़त काम बिवस ह्वै, कामिनि ही लगि धावत ।
हरुवे होत तूल तृन हू तें, पर - घर गये न भावत ।।
श्री गुरु कौ उपदेस लेस नहिं, औरन मंत्र सुनावत ।
छल - बल लेत, देत नहिं दीननि, अपने जस कों गावत ।।
भक्ति न सूझत सुनत भागवत, साधु न मन में आवत ।
कियौ अकाज 'व्यास' कौ आसा, बन ही में घर छावत ।।२८०।।

मोसौ पतित न अनत समाइ ।
याही तें मैं बृंदावन की सरन गह्यौ है आइ ।।
बहुतनि सों मैं हित करि देख्यौ, अनत न कहूँ खटाइ ।
कपट छाँड़ि मैं भक्ति कराई, दारा-सुतनि नचाइ ।।
भक्त पुजाये लीला करि, सबही की जूँठनि खाइ ।
ता ऊपर बिरंचे सब मोसों, कोटि कलंक लगाइ ।।
अजहूँ दाँत कन्हैया महिं, तिनहू के चाटौ पाइ ।
तौ न तिन्हें परतीत 'व्यास' की, सब छाँड़े पति जाइ २८१

१६. कुटुंब–उपदेश—

राग–सारंग

बिनती सुनियै वैष्नव दासी !
जा सरीर में बसत निरंतर, नरक ब्याधि, पित, खाँसी ।
ताहि भुलाइ, हरिहिं दृढ़ गहियौ, हँसत संग सुख बासी ।
बढ़ै सुहाग ताहि मन दीजै, और बराक बिसासी ।।
ताहि छाँड़ि हित करौ और सों, गरै परै जम–फाँसी
दीपक हाथ परै कूवा में, जगत करै सब हाँसी ।
सर्वोपरि राधापति सों रति, करत अनन्य बिलासी
तिनकी पद रज सरन 'व्यास' कों, गति बृंदावन बासी ।।

राग सारंग

जो त्रिय होय न हरि की दासी ।
कीजै कहा रूप, गुन सुंदर, नाहिंन स्याम-उपासी ।
तौ दासी गनिका सम जानौ, दुष्ट, राँड, मसवासी ।
निसि-दिन अपनौ अंजन-मंजन करत, बिषय की रासी ।
परमारथ स्वपनै नहिं जानत, अंध बँधी जम-फाँसी
ताके संग रंग पति जैहै, ताते भली उदासी ।
साकत नारि जु घर में राखै, निस्चै नरक निवासी
जिहिं घर साधु न आवत कबहूँ, गुरु-गोविंद मिलासी ।
हरि कौ नाम लेत नहिं कबहूँ, याहीं तें सब नासी
'व्यासदास' जोई पै कीजै, मिटै जगत की हाँसी ।

राग धनाश्री

भक्त न भयौ भक्त कौ पूत ।
भक्त होइ साकत कें, ज्यों श्रुतिदेव सुदामा सूत ।
उग्रसेन कें कंस, बली कें बानासुर जम ऊत
भीषम कें रुक्म, बिभीषन के घर भयौ कपूत ।
सेन, धना, रैदास भयौ जयदेव, कबीर अभूत
बूड्यौ बंस कबीर कौ, जब भयौ कमाला पूत ।
होइ भक्त कें साकत, जानियौ अन्य काहु कौ मूत
ब्रह्मा कें नारद, 'व्यास' कें त्रिदुर, सुक अवधूत

राग धनाश्री

कमठ गुरु सकल[१] जग बाँध्यौ, करम-धरम अरुझाये।
काका, बाबा, घर-गुरु कीनैं, घर ही कान फुकाये॥
जिनकैं भक्ति कहाँ तें उपजै, साधु न मन में आये।
क्रोध रारि हींसा के माँहें, सिष्य न गुरू सुहाये॥
प्रभुता रहत न तन के नातें, कोटिक ग्रंथ सुनाये।
बड़े कुलीन, विद्या-अभिमानी, सुतौ पताल पठाये॥
जगत-प्रतिष्ठा विष्टा सी तजि, सरन स्याम कैं आये।
'व्यासदास' कुल तजी बड़ाई, तब हरि-भक्त कहाये॥२८५॥

मुखनि, जननी जिन जावै। हरि की भक्ति बिनु, कुलहिं लजावै॥
तु विद्या नरक बतावै। हरिनाम पढै साधुन अति भावै॥
लि, हरि बोलि, कहूँ न धावै। हरि बोले बिनु 'व्यास' मुँह न दिखावै॥

जिहिं कुल उपज्यो पूत कपूत।
ताकौ वंस नास ह्वै जैहै, जिनि गिधयौ जमदूत॥
जो सुत पितहिं विरोधै, सोई है सबहिन कौ मूत।
याकी साखि कंस आहुक की, जिनि हठि कियौ कुसूत॥
सोई भक्त भागवत मानैं, नहिं मानै सो भूत।
इहिं संगति तें पति-गति बिसरै, हूजौ पिता अऊत॥
यह पाखंड-प्रपंच छाँड़ियै, चोर चिकनियाँ धूत।
'व्यासादि'कन बतायौ, सुक-सौनक मान्यौ सूत॥२८७॥

राग सारंग

हमारे घर की भक्ति घटी।
उपजे नाती-पूत बहिमुख, बिगरी सबै गटी॥
सुत जो भक्त न भयौ, तौ वा पिता की गरी कटी।
भक्त-विमुख भये मम गुरु सरय सुकल हू मीच ठटी॥
ता सतजुग तें हौं कलिजुग उपज्यौ, काम, क्रोध, कपटी।
माला-तिलक दंभ कौ मेरैं हरि-नाम सीस पटी॥
कृष्न नचाये तृष्ना के, मैं कीनी आरभटी।
किहिं कारन हरि 'व्यास'हिं दीहीं, बृंदावनहिं तटी॥२८८॥

---

[१] 'गुरु सकल' (ख, च): 'गुरू सुकल' (छ)

राग गौरी

मरैं वे, जिन मेरे घर गनेस पुजायौ ।
जे पदार्थ संतन के काजैं, ते सारे सकतन नें खायौ ॥
'व्यासदास' कन्या पेटहिं क्यों न मरी, अनन्य धर्म में दाग लगायौ
जो हौं सत्य सुकुल कौ जायौ ।
तौ मेरौ पन साँचौ करि हरि, तुम दारुन दुख पायौ ॥
मो अनन्य के मंदिर में, जिन थापि गनेस पुजायौ ।
तिनकौ वंस बेगि हरि तोरहु, गाइ गूह जिन ख़ायौ ॥
जिन जीवत हौ हत्यो लोभ लगि, तिहिं बेटन कौ गरौ कटायौ ।
तिहिं मेरौ अपमान कियौ, जिहिं काल हुंकारि बुलायौ ॥
जिनकौ खोज न रहौ कहौं हरि, जिहिं हरि-परस छुड़ायौ ।
रास-विलास जहाँ होते तहँ, मलियागोरिल गायौ ॥
गुरु गोविंदहिं मारि, गारि दै, सो पापी घर नायौ ।
यहै पाप बेगि ही फलिहै, हथजुग बृथा कहायौ* ॥
बेगम मिहरी आपु कों रुची†, भरुबनि भात खवायौ ।
तेहि संगति उपजी यह ममता, बाह्मन बाँधि बहायौ ॥
जो मैं कह्यौ सोई हरि कीनौ, यह परचौ जग पायौ ।
'व्यास' जु बवै, लुनैगो दुख-सुख, यह मत बेद बतायौ ॥८

राग सारंग

करि मन साकत कौ मुँह कारौ ।
साकत मोहिं न देख्यौ भावै, कहा बूढ़ौ, कहा बारौ ॥
साकत देखे डर लागतु है, नाहर हू तें भारौ ।
भक्त हेत मम प्रान हनत है, नैकु न डरै मदन्धारौ ॥
आठैं - चौदस कूँड़ौ पूजैं, अभागे कौ ज्ञान अँध्यारौ ।
'व्यासदास' यह संगति तजियै, भजियै स्याम सवारौ ॥८

सेइयौ, स्यामा-स्याम बृंदावनवासी ।
रसिक अनन्य कहाय अनत रहि, विषै-व्याल बिपुलहिं सहि हासी
साधु न बसत असाधु-संग महँ, जब - तब प्रीति - भंग दुखरासी
देह, गेह, संपति, सुत, दारा, अवर, गंड, भग, उरज उपासी

---

* कहायौ (ग); कथायौ (ख); गमायौ (च, छ)

† बेगम मिहरी आपु कों रुची (ख); बेग समार हरि आपु कौ रिचि
बेगि महावरि आपुन कौं रचि (च) बेगम महेरी आपुन कौं रचि (६

न के हित मूत पियत हैं, भूत - विप्र कर कासी।
सों ममता करि हरि बिसरे, जानत मंद न, तिनहिं बिसासी॥
रथ-परमारथ पथ छूट्यौ, उपजी खाज कोढ़ में खासी।
बूड़ बूढ़्यौ वंस 'व्यास' कौ, बिसर्यौ कुंज-निकुंज-निवासी॥२६२॥

अब साँचेहू कलिजुग आयौ।
पूत न कह्यौ पिता कौ मानत, करत आपनौ भायौ॥
बेटी बेचत संक न मानत, दिन - दिन मोल बढ़ायौ।
याही तें बरषा मंदि होति है, पुन्य तें पाप सवायौ॥
मथुरा खुदत, कटत बृंदावन, मुनिजन सोच उपायौ।
इतनौ दुःख सहिबे के काजै, काहे कों 'व्यास' जिवायौ॥२६३॥

बिनु भक्तिहिं जे भक्त कहावत।
भीतर कपट निपट सब ही सों, ऊपर उज्जल ह्वै जु दिखावत॥
धन सबही कौ मूसि टूसि कै,घर भरि सठ सो सुतनि खवावत।
दिन-दिन क्रोध बिरोध जगत सों,सो धन बोध हियौ हरि आवत॥
झूठी बात न अटकत, भटकत, पटकत पाग फिरादनि धावत।
पर्यौ रहै पाटी तर निसि-दिन, बिपयिन घर आयौ नहिं भावत॥
कोऊ न लेतु नाउं गाउँ में, ठाँव - ठाँव पनहीं जु ठुकावत।
ऐसे कुल में उपजे पाँवर, 'व्यासै' घर-घर फिरत लजावत॥२६४॥

हरि भक्तन तें समधी प्यारे।
आये संत दूर बैठारौ, फोरत कान हमारे॥
दूर देस तें सारे आये, ते घर में बैठारे।
उत्तम पलिका, सौरि सुपेती, भोजन बहुत सवारे॥
भक्तनि दीजे चून चनन कौ, इनकों सिलवट न्यारे।
'व्यासदास' ऐसे विमुखनि, जम सदा कढ़ोरत हारे॥२६५॥

ये दिन अब ही लगत सुहाये।
जब लगि तरुनि तरौछी चितवनि,फिरत विषै कों धाये॥
उठि-उठि चलत गोष्ठ में बैठत, जंगी भंगी भाये।
मोतिन-माल, कनक-आभूषन, रुचि-रुचि बहुत बनाये॥
तजि कुल-बधू औगुननि गहि रहि, लै बिस्वन पहिराये।
मन-मन खुसी मसकरन ऊपर, माखन दूध खवाये॥
खाटौ मठा कठिन भक्तन कों, भांडन खोवा खाये।
लोक-लाज कों तन-मन अर्प्यौ, हरि हित दाम न लाये॥

परमारथ कों नहीं थेगरी, बिमुखन जरकस पाये ।
अदल - बदल ह्वै है दिन दस में, जरा जोगरिन छाये ॥
अब तौ चपल बुढ़ापौ आयौ, रोग - दोष तन ताये ।
अब हू सुमिरि चत्रभुज प्रभु कों, ह्वै है काम कहाये ॥
'व्यासदास' आसा चरननि की, विमल-विमल जस गाये ॥२९६

२०. साधारण पद—

राग नट व आसावरी

मुँह पर घूँघट नैन नचावै । बातन ही की लाज जनावै ॥
अपने ही मुँह सुपत कहावै । जारुहिं लीन भरतार न भावै ॥
बाहिर पहिर-ओढ़ि दिखरावै । भीतर विप की बेलि बढ़ावै ॥
सोई सुहागिल सती कहावै । गुन-बल जो इहि भाँति रिझावै ॥
अंजन मंजन कै भरताहिं नचावै । 'व्यास'जु साँचे सुख नहिं पावै॥२

ऐसौ जो मन हरि सों लागै ।
जैसैं चकई पिया बियोगिन, निसा सबै वह जागै ॥
जल ही तें उत्पत्ति कमल की, सदा रहै बैरागै ।
जैसैं दिनकर उदै होत ही, महामुदित रस पागै ॥
जैसी प्रीत चकोर - चंद की, अनत नहीं चित तागै ।
ऐसैं 'व्यास' मिलहु जो हरि सों, जरा-मरन - भौ भागै ॥२९८

भूलैं मेरे गंडकीनंदन ।
मानहु भटा कढ़ी में बोरे, अंग लगायैं चंदन ॥
हाथ न पाँइ, नैन नहिं नासा, ध्यान करत कछु होत अनंद न ।
जालंधर अरु बृंदा बल्लभ, गावै 'व्यास' कहा कहि छंदन ॥२९

द्वितीय परिच्छेद

शृंगार-रस-विहार

★

ंदना—

राग गूजरी (हमीरताल)

बंदे श्री राधा-रमनमुदारं।

श्री गुरु सुकल सहचरी ध्याऊँ, दंपति-सुख रस-सारं ॥
बृंदावन - घन बीथिनि-बीथिनि, कुंज - निकुंज-बिहारं ।
जोरी प्रमुदित निरखि मनोहर, रतिपति बिमद सुसारं ॥
रसिक अनन्य सरन आधारन†, दासी जन परिवारं ।
स्याम - सरीर गौर - तन चोर, पयोधर भूषन आरं ॥
परिरंभन, चुंबन - धन - संग्रह, अधर - सुधा - आधारं ।
मंदहास अवलोकनि अद्‌भुत, उपजत मदन बिकारं* ॥
सहज रूप गुननागर आगर, बैभव अकह अपारं ।
यह रस नित‡ पीवत जीवत है, 'व्यास' बिसरि संसारं ॥३००॥

राग चौतारौ

बंदे|| श्री राधा-मोहन की प्रीति ।

एक प्रान द्वै देह, हरद - चूने लौं रची समीति ॥
एक - एक बिनु जियें न सारस$, जोरी कैसी रीति ।
गौर - स्याम तन घन-दामिनि लौं, राजत बिपिन बसीति ॥
बिधिमुख चंद-चकोर नयन रस, पीवत कलप गये सब बीति ।
चारि चरन सेये बिनु 'व्यास'हिं अनत नहीं परतीति ॥३०१॥

आधारन (ग, च, छ); साधारन (क, ग); संवत् १८६४ की प्रति में दो स्थलों पर दिया गया है,जिनमें पृष्ठ ६० पर पाठ 'साधारन' शब्द है और पर उसके स्थान पर 'आधारन' पाठ दिया गया है । दोनों ही पाठ प्रचलित ते हैं ।

सदन सुटारं (ग)

सुन (ग)

वंदे (क) बंदौं (च, छ) वंदौ (ग)

सारस (ग, च, छ) भ्रमरस (क)

बंदौं श्री राधा - हरि कौ अनुराग ।
तन मन एक, अनेक रंग भरे, मनहुँ रागिनी राग ।।
अंग - अंग लपटाने मानहुँ, प्रेम रंग कौ पाग ।
रूप अनूप, सकल गुन सीमा, कहत न बनैं सुहाग ।।
विहरत कुंज - कुटीर धीर, सेवत बृंदावन - बाग ।
निसिदिन छिन न चरन छाँड़त अब, 'व्यासदास' कौ भाग ।।२०२।।

राग केदारौ व कमोद

जयति नव-नागरी, कृष्न-सुख-सागरी, सकल गुन-आगरी, दिनन भोरी ।
जयति हरि-भामिनी, कृष्न-घन-दामिनी, मत्त गज-गामिनी, नव किसोरी ।।
जयति पिय-केलि हित, कनक नव बेलिसम, कृष्नकलकलप निसि मिलि बिलासिनी।
जयति बृषभान-कुल-कुमुद-बन-कुमुदिनी, कृष्न-सुख हिमकर निरख प्रकासिनी।
जयति गोपाल मन - मधुप नव मालती, जयति गोविंद-मुख-कमल-भृंगी ।
जयति नँदनंदन-उर परम आनंद-निधि, लाल गिरिधरन पिय-प्रेम-रंगी ।।
जयति सौभाग्य-मनि, कृष्न-अनुराग-मनि, सकल तिय मुकट-मनि, सुजस लीजै
दीजियै दान यह 'व्यास' निज दास कों, कृष्न सों बहुरि नहिं मान कीजै ।।२०३

राग गौड़मलार

स्यामा स्याम रति - आसार ।
सुभग बृंदाविपिन बाढ़ी, सुख-नदी रस-धार ।।
नारदादि सुकादि गावत, कुंज नित्यबिहार ।
प्रेम बस ब्रज - बल्लवी, तजि नेम, कुल-आचार ।।
ब्रह्म, संभु, सुरेस, सेस, न लेस जानत नार ।
'व्यास' स्वामिनि सुजस जगिमगि रह्यौ जुगनि उदार ।।२०४।।

राग सारंग व धनाश्री

सहज प्रीति राधा सों हरि करि जानी री ।
जस-रस स्यामा-स्याम जु राख्यौ, बृंदावन रजधानी री ।।
परबस राउ रसिक-नृपतनि की, परिपाटी पहिचानी री ।
सब विधि नायक, गुनगन लायक, नवल राधिका मानी री ।।
मान करत हरि* चरन धरत, अपमानु करति ब्रजरानी री ।
लोक चतुर्दस की प्रभुता तजि, सहज दीनता मानी री ।।
अंगनि पद-भूषन पहिरावत, सेवा करत स्वानी री ।
तोरत तृन जु दिखाइ आरसी, वारि पियत पिय पानी री ।।

---

* हरि (क); हँसि (च, छ)

बिबिध बिनोद बिहार आदरतीं*, घर-घर कहत कहानी री।
अदभुत बैभव निरखि,सची अरु कमला-रति बिलखानी री॥
चारि मुकति, नवधा दसधा गति, जहाँ रहत अरगानी री।
यह कौतिक देखति ललितादिक,तृपति न सदा अघानी री॥
खग, मृग, गो,सरिता, सरबर,दंपति कों ये सुखदानी री।
संतत सरद, बसंत बिराजत, लाजत सुनि अभिमानी री॥
ता महिमाहिं कहत बिथकित भईं, बेद-उपनिषद बानी री।
यह लीला अब 'व्यास' मंद पै, कैसैं जात बखानी री॥३०५॥

ात: सेज्या-बिहार—

राग सारंग

धनी बृषभान जान की बेटी।
निबिड़-निकुंज-कुसुम-पुंजन पर, स्याम-बाम-अँग लेटी॥
रति निसि जगी सोवत नहिं भोर, किसोर जोर गुजरेटी।
पिय के हिय में जिय ज्यों राजति, बाहु - बाहु - बल भेटी॥
बिहँसनि नैननि की सैननि, मनु मनमथ-अनी खखेटी*।
लोभी लाल 'व्यास' स्वामिनि, जनु कंचन-रासि समेटी॥३०६॥

राग कल्याण (चर्चरी ताल)

बाम कुंजधाम स्यामसुंदरी ललाम,
ललन बिहरत अभिराम काम, भाम-भामिनी।
आनंदकंद मंद पवन, सरदचंद ताप-दवन,
जमुनाजल कमल बिमल, जाम - जामिनी॥
सुरँग कुच, उतंग अंग, माधुरी तरंग रंग,
सुरत रंग, मान - भंग, काम - कामिनी।
मंदहास, भ्रू-बिलास, मधुर बैन, नैन - सैन,
बिबस करत पियहिं, 'व्यासदास' स्वामिनी॥३०७॥

राग कान्हरौ

मंजुल तर कुंज-अयन, कुसुम-पुंज रचित सयन,
बिहरत नँदनंदन - बृषभान - नंदिनी।
आनंदकंद सरदचंद, मंद पवन ताप-दवन,
सीतल जल तरल पूर सूर - नंदिनी॥

---

* आदरत (क) अधार की (च,छ)

* खँभी (क, ग); खखेटी (च, छ)

अंग-अंग सुरत-रंग, नैन - सैन भृकुटि भंग,
कोटि छंदि+ करति सुभग हासि चंदिनी‡ ।
परिरंभन-चुंबन-रस, उरज, करज विविध परस,
सरस जघन दरस, सुख - समूह कंदिनी ॥
अधर-सुधा-पान मत्त, मुदित गान, उदित तान,
लटकत लट बाहु जुगल कंठ फंदिनी ।
गौर-स्याम सिंधु नदी, संगम जल पावन अति,
रसिक भगत-मीन जीवन 'व्यास' बंदिनी ॥३०८

राग धनाश्री

सुनी न देखी ऐसी जोट ।
उपजी अबही के पहिलैं ही, यह रूप-गुननि की पोट ॥
गौर-स्याम सोभा मानौं, कंचन-मरकत के गिरि - कोट ।
भामिनि चलत न देखत चरननि, तुंग कुचनि की ओट ॥
घटत न बढ़त एक रस दोऊ, जोबन - जोर झम्भोट$ ।
रति-रन बीर धीर दोऊ सनमुख, सहत समर-सर‡ चोट ॥
बृंदारन्य अनन्य खेत के समरस नित्य गभोट ।
'व्यास' उपासक प्रभुहिं न जानत, नीरस कवि-कुल-खोट ॥३

२. सुरतांत—

राग सारंग

घूँघट-पट न सँभारत प्यारी ।
उर नख - अंक कलंक ससी, जनु तिलकन सरस सिंगारी
मरगजी माल, सिथिल कटि-किंकिनि, स्वेद सलिल तन सारी
सुरति भवन मोहन बस कीने, 'व्यासदास' बलिहारी

राग सारंग व नट

सुनहु किसोर किसोरी चोरी प्रगटत भोर सिंगार ।
छूटी लट, पट लपटि परी छबि, पीत पिछौरी सार ॥
अंग सुरंग दुरंग हठीले, गाँठि-गठीले हार ।
दुगुन दसन मंडित गंडनि पर, खंडित अधर उदार ॥
कुच नख-रेख, निमेखनि नैननि, सैन सुबेष सुढार ।
सुरति-समर-सुख सूचत मोहन, उपजत कोटि बिकार ॥
गौर-स्याम सलिता-सागर मिलि, बिसरी बिबि कुल धार ।
'व्यास' स्वामिनी के रस-बस हरि, कीने मार सुमार ॥

+ छंदि (ग); चंद मंद (क, च, छ) ‡ चंदिनी (क, ग); चंद चं
$ झम्भौट (क); छचोट (ग); छकोट (च, छ)
‡ समर सर (क), असम सर (ग, च, छ)

ति आवेस केस विगलित जनु, दामिनि तर बरसत घन घोरी।
रखत अद्भुत छवि उपजत, जनु सुख-सागर मे बोरी॥
हन-अंग अनंग-कोच महँ, नख-सिख कुंवरि चबोरी¹।
सेक-सिरोमनि गुनसागर की, सींव सुदृढ़ हरि तोरी॥
त चित दासी करि परिहासी, कर अंचल झकझोरी।
नवत आस 'व्याम' की जुग-जुग, राज करौ यह जोरी॥३१२॥

गावति आवति² पिय सँग स्यामा।
केलि-संग ते भोर चले उठि, बिधु सम मनहु त्रिजामा॥
छूटी लट, टूटी मुकुतावलि, लर लटकति अभिरामा।
उरज करज अंकित मृगमद मनु, माह मौरे हैं आमा॥
बिलुलित कटि पर अरुझाने पट, तरनि रुनित मनिदामा।
जनु संग्राम-विजय-सुख सूचत, बाजत काम-दमामा॥
बिहसति हँसति त्रिखंडिन सैननि, बंक बिलोकनि बामा।
'व्यास' स्वामिनी की उपमा कह, ललकौ काम ललामा॥३१३॥

राग देवगंधार

आवत, गावत प्रीतम दोऊ बने मरगजे बागैं।
सुरत-कुंज तें चले प्रात उठि, पिय पाछैं धन आगैं॥
छूटी लट, टूटी बनमाला, अध घूँघट, चल पागैं।
फूले अधर पयोधर मंडित, गंड बिराजत दागैं॥
नख-सिख बिषिख कुसुम की सेना, रन छूटी जनु बागैं।
'व्यास' स्वामिनी कौ सुख सर्बसु, लूट्यौ स्याम सभागैं॥३१४॥

राग सारंग

झूलत कुंजनि कुंजकिसोर।
सुरत रँग सुख सैननि सूचत, नैन रँगीले भोर॥
सिथिल पलक महँ बंक बिलोकनि, बिहसनि चित-वित-चोर।
फिरि-फिरि उर लपटात, समात न, फूले तन कुच-कोर॥
अधर मधुर मधु प्याइ जिवाये, बिबि बर बदन चकोर।
मादक रस रसना न अघात, लहत मंडल चल छोर॥
बीच-बीच नाँचत मिलि गावत, कल सुर-मंदिर घोर।
रीझि पुलकि चुंबन करि कुलकत, झुलवत जोबन-जोर॥
हरिबंसी फूलत हरिदासी, निरखत सुरत हिंडोर।
'व्यासदास' अंचल चंचल करि, मोद-बिनोद न थोर॥३१५॥

---

¹ चबोरी (क); चचोरी (च, छ)

² गावति आवति (ग, च छ), पीछे गावत (क)

राग घट

आजु पिय के सँग जागी भामिनी ।
चोरी प्रगट करत तेरे अँग, रति रँग राचे जामिनी ॥
भूषन लट अंचलु न सँभारति, हसति लसति जनु दामिनी ।
पुलकित तनु, स्रम-जलकन सोभित, वेपथजुत गजगामिनी॥
फूले अधर, पयोधर, लोचन, उर, नख, भुज अभिरामिनी ।
गंडनि पीक मषी न दुरावति, 'व्यास' लाज नहिं कामिनी ॥३

राग देवगंधार

कहाँ निसि जागे रसिक सुजान ।
सुरत रंग, अंग-अँग रचे हैं, दुरवत अपनै जान ॥
नैन कपोल पीक रस मंडित, खंडित अधरनि पान ।
विगलित केस कुसुम-कुल बरषत, उर लागे लख* बान ॥
मनिमय माल हृदै अलंकृत, कुच जुग उरज वितान ।
मानहुँ उड़गन सहित गगन महँ, मिले उभै ससि-भान ॥
नख-सिख प्रति, रतिरस बरषावति, विटकुल नृपति‡ निदान ।
विथकित कोटि 'व्यास' कवि मति, या छवि की उपमा आन
'व्यास' स्वामिनी के डर मोहन, कहत आन की आन†

राग गौरी

आजु पिय के सँग जागी रात ।
दुरति न चोरी कुँवरि किसोरी, चीन्हैं परसत गात ॥
पुलकित कंपित गातनि संकित, बात कहत तुतरात ।
जावक, पीक, मषी रँग रंजित, सारी स्वेत चुचात ॥
छूटी चिकुर चंद्रिका, उरजनि पर लटकति लर-पाँत ।
मानहुँ गिरवर कंचन ऊपर, मेघ घटा धुरवात ॥
खंडित अधर पीक गंडनि पर, लोचन अलस जभाँत ।
हँसत अकोर देत, चित चोरत, अंग मोर ऐंड़ात ॥
कहा-कहा रति बरनौं बैभव, फूली अंग न मात ।
वेगि देखाउ बहुरि वह कौतिक, 'व्यासदास' अकुलात ॥२

---

* लषि (क); नख (च, छ)

‡ नृपति (क, च, छ,); निपट (ग)

† यह चरण केवल (क) प्रति में उपलब्ध हुआ है ।

राग सारंग

देखि सखी, आँखिन सुखदैन दोऊ जन।
बिथुरी - अलक, पीक - पलक, खंडित - अधर,
मंडित गंड, सिथिल-बसन गौर-साँवरे तन ॥
नव निकुंज, कुसुम-पुंज रचित सैन, मैन-केलि,
कलित दुहूँ अंग - अंग, स्रम-जलकन ॥
आवेस अरुन चकित नैन चाह, बिवस कमल बैन,
सैननि कछु कहत 'व्यास' दासी जन ॥३१६॥

आज कछु तन की छबि फबि आई।
कहत न बनति देखि मुख सुख अति, दुख पुनि कहत न जाई ॥
निसि की बिपति बिसरि गई, प्रात की संपति उर न समाई।
रंग दुराये दुरत न अंगनि, कहि दीनी चतुराई ॥
व्याकुलताई तकन लालचिन, लाज सरीर सुहाई।
विकल बेदना अधिक व्याधि की, मिटत न पीर पराई ॥
जाकी प्रकृत विकृत रस राच्यौ, तासों कछु न बसाई।
सुनत हिये में राखि 'व्यास' की स्वामिनि पिय पै आई ॥३२०॥

राग सारंग

बने अंग-अंग जनु रंग नग चोखे।
केसरि, चोवा, हीरा, मरकत, लाल, काल बल ओखे ॥
गौर - स्याम सोभा वादर में, उपमा-सागर सोखे।
पाँचि पिरोजा पदिक पदारथ, पुंज गुंज सों जोखे ॥
पोति जंगालि जोति नहिं मोतिहिं, स्वाँति बूँद पय पोखे।
बिबिध बरन घन-दामिनि दारयौ, कुसुमनि कों संतोखे ॥
कंचन - घट बिद्रुमहिं परी चिट, और सबै निरदोखे।
'व्यास' स्वामिनी की छबि बरनत, कबिन परत दिन धोखे ॥३२१॥

राग सारंग

कामवधू कंदुक सों क्रीड़त, सुनि राधा, पिय सनमुख आवत।
कमल पटल तजि, तव मुख सनमुख, देखि तू मधुपावलि धावत ॥
संभ्रम भामिनि चितवहिं पिय चुंबत ललित रतिहिं उपजावत।
छल-बल करि हरि राधा विहरत, देखत 'व्यास' सखी सचु पावत ॥३२२॥

४. मनन-विहार—

राग सारंग व गौरी

पिय प्यारेहिं कहाँ छाँड़ि आई ।
लैन गई ही दैन परम सुख, मुख दिखाइ दुख लाई ।।
अंग अनंगनि की सी नगरी, नागर सुवस बसाई ।
दोऊ सुरत परस्पर राचे, थाती लूटि लुटाई ।।
वंक निसंक ससंक नैन छबि, स्याम-अरुन-सित झाई ।
एक चोर पहँ चोर-मंडली, कैसैं दुरति दुराई ।।
देखत कुच नख-रेख निमेष लगावति, हँसनि सुहाई ।
बिहरत 'व्यास' स्वामिनी भोर, किसोर हियैं न समाई ।।२

बिराजत स्याम उनीदे नैन ।
अरुन अलस इतरात रँगीले, सूचत रति-रस-चैन ।।
निसि कौ अनुभव भोर न भूलत, चितु-त्रितु चोरत मैन ।
भुव-बिलास कल हास न बिसरत, जुव सौं कहैं जु बैन ।।
अजहूँ कर कुंचित रँग रंजित, सकुचन कुचनि गहै न ।
उर कंपित, मुख चुंबन रस सुख, जात वनित घर ऐन ।।
अजहूँ बाहु उछाहु करति बल, भैंटत भुजहिं† गहै न ।
‡बलित कुटिल कटि ललित नेति रट, भामिनि, भारु सहै न ।।
औरौ कोक-कला अँग-अंग नचावति गुन-गति मैन ।
अद्‌भुत कथा 'व्यास' के प्रभु की मोपै कहत बनै न ।।२

राग बिलावल व बिहागरो

सैनन बिसरे नैननि भोर ।
बैन कहत कासौं पिय हिय तें, बिहँसत किनब किसोर ।।
दुख मेंटत भेंटत तुमकौं नहिं, चुंबन देत न थोर ।
काहि देत जोबन-धन करि गहि, लैं कुचकोर अकोर ।।
काके पाँइ गहत मेरे प्यारे, कासौं करत निहोर ।
कौनै बिकल किये नव नागर, तुम पनिहाँ तुम चोर ।।
निजु बिहारि आरोपि अंतःपुर, कोपि मानगढ़ तोर ।
'व्यास' स्वामिनी बिहँसि मचाई, सुरत-समुद्र हिलोर ।।३

---

† भुजहिं (क), तरुनी (ग, च, छ)

‡ चलत (क)

निरखि मुख कौ सुख, नैन सिरात।
सैननि कौ सुख कहत बनै न, निमेष ओट मुसिक्यात॥
अंग-अंग आलिंगन के रस, रोमनि पुलक चुचात।
कुच गहि चुंबन करत, अधर - मधु पीवत, जीवत गात॥
'व्यास' बंस निधि सब निसि लूटी, किसोर भोर पछतात॥३२६॥

या तें माई, तेरे नैन बिसाल।
या नें उनमद पिय पुतरिन में, घरु कीनौ नँदलाल॥
याही तें बिंबाधर - जलधर, बरषावति सब काल।
याही ते तृषित पपीहा-पिय को करत सदा प्रतिपाल॥
याही तें कुच सकुचत नाहीं, पीन कठोर रसाल।
ता तें हरि मन कूँ† हरि लीनौ, कसि कंचुकि-बँद जाल॥
याही तें तुव चरन - कमल की, पिय पहरी उर माल।
या तें मान - सरोवर बूड़त, उबरे कुँवर मराल॥
बोलनि, चितवनि, हँसनि छबीली, गावन, नाचन चाल।
श्री'व्यास'स्वामिनिहिं बरनि सकै को,नीरव कु-कवि सृगाल॥३२७॥

रसोद्गार— राग गौरी

नैननि नैन मिलत मुसिक्यानी।
मुख सुखरासि निरखि उर उमगत, दुख करि लाज लजानी॥
आरज-पथ बेपथ करि भाज्यौ, संका सकुचि डरानी।
धीरज मटकत हू नहिं मटक्यौ, मानु गयौ अभिमानी॥
आस गई उपहास त्रास सँग, सुधि - बुधि अंग समानी।
रह्यौ न अंतरु डरु करि दूती, सब धूती मुरझानी॥
तन सौं तन, मन सौं मन मिलयौ, ज्यौं पिय पय में पानी।
रसिकनि की गति 'व्यास' मंद पै कैसैं जात बखानी॥३२८॥

राग गौरी

आजु लवंगलता गृह बिहरत, राजत कुंजबिहारी।
कुसुम-निकर सचि, ललित सेज रचि, नखसिख कुँवरि सिंगारी॥
प्रथम अंग-प्रति-अंग संग करि, मुख-चुंबन सुखकारी।
तब कंचुकि - बँद खोलत, बोलत चाटु बचन दुखहारी॥
हस्तकमल करि बिमल उरज धरि, हरि पावत सुख भारी।
बधू कपट भुज पटनि दुरावति, कोप भृकुटि अनियारी॥

† मन कूँ (क); मान कु (ग); मानिक (ज,छ)

नीवी मोचत मुंच अलंकृत, नेति कहत सुकुँवारी ।
चिबुक चारु टक टोलनि बोलनि, पिय कोपित है प्यारी ॥
नैन सैन मधु बैन हँसन जब, कोटि चंद उजियारी ।
कोक-कुसल रसरीति प्रीति-बस, रति प्रगटत पिय-प्यारी† ॥
अधर-सुधा-मद मादक पीवत, आरजपथ सों सीव बिदारी
बृंदावन - लीला - रस - जूठनि, चाहत 'व्यास' बिटारी ॥३

राग सारँग

वन की कुंजनि - कुंजनि केलि ।
बिबिध बरन बीथिन्ह महँ बीथी, बिगसित नव द्रुम-बेलि ॥
तिन महँ सहज सेज पर स्यामा - स्याम बिराजत खेलि ।
अंगनि कोटि अनंग रंग छवि, सुरत-सिंधु महँ झेलि ॥
मुख-बिधु-बारिज पर लट लटकति,अंसनि पर भुज मेलि ।
मादक अधर - सुधा - मधु पीवत ,जीवत नवल नवेलि ॥
जोबन जोर किसोर जगे रस, निसि भोरहिं* अवहेलि ।
'व्यास' स्वामिनिहिं सेवत मोहन, निज बैभव पग पेलि ॥३२

६. वसन—

राग कमोद

सोहत सिर सार$ की उढ़ैनी ।
नारी कुंजर को लहँगा, कटि किंकिन पर रुरकत है बैनी ॥
तनी तरतनी कंचुकि की कसि, लेत उसास उरज उर उमगे,
रहसि स्यामहिं मिलि मृगसावक-नैनी ।
रति-रस-सूर'व्यास'की स्वामिनि दामिनि सों चंचल घन महँ,
जनु बरषावति रसन‡ हसति चैनी ॥३३

७. स्नान समय—

राग कमोद

जुगल जल§ राजत जमुना-तीर ।
नंदनँदन - बृषभाननंदिनी, क्रीड़त❀ कुंज - कुटीर ॥
कुसुम - सेज - सजि साज सुरति कौ, सौंधौ भूपन चीर ।
कल सीकर मकरंद कमल के, परसत मलय समीर ॥

---

† यह चरण (क)प्रति में नहीं है ।   * भोरहिं (ग, च, छ); वासर (

$ सारी (क)   ‡ सगनि (क, छ)

§ जन (च, छ), जल (क ग) ❀ क्रीड़त (क) कृतरुचि (ग, च,छ

कुच गहि चुंबन करत परस्पर, परिरंभन रस-बीर ।
मुख मुसक्यात गात पुलकित सुख, मुखरित मनिमंजीर ॥
स्वर नख सर उर उरजनि लागत, नभ गत सही सुधीर ।
बैन कहत रस ऐन सैन दै, नैननि करैं अधीर ॥
विगलित केस सुदेस राम, बरषत सौं मनु समनीर ।
विरह-जनित दुख वाके बैरी, मारि करैं सब कीर ॥
त्रिविध विहारनि ललितादिक की, दूरि करत सब पीर ।
'व्यास' किसोर भोर नहिं बिछुरत, जोबन-जोर सरीर ॥३३२॥

बैनीगुहन—— राग सारंग

पाछे बैठे मोहन जू मृगनैनी की बैनी गुहत,
सोभा न कही परै, देखत नैन सिरात ।
नख-छबि रबि जानि पानि-कमल फूले,
निकसि चली अलिसैनी अधरात ॥
मानहुँ बारिज बिधु सों रिपु-मति तजि,
सदल* सुधा पीवत न अघात ।
स्याम-भुजंगिनि के डर डोरी बाँधत,
'व्यास' की स्वामिनी को सुंदर अकुलात ॥३३३॥

राग नट

बैनी गुही मृगनैनी की पिय ।
चंपकली सोहति अलकनि बिच, मोहति मन नैननि सुख लागत,
निरखि आरसी उमग भई जिय ॥
नखसिख अंग बनाइ रंग-रस, रचि मिलवत हिय सों हिय ।
गुन-गन- निपुन 'व्यास' की स्वामिनि, रति महँ गति उपजावति,
गावत सी ताता थेई§ तताथिय ॥३३४॥

राग कमोद

पाटी सिलसिली सिर लसति ।
सहज सिंगार सुकेसी केसनि, स्वरनि जूथिका लसति ॥
रंगभरे नग माँग बिराजत, लाजत मुक्ता, मनिनि खसति[1] ।
मृगनैनी की बैनी मानहुँ स्याम भुअंगिनि बिधु मधुहिं[2] ग्रसति ॥
अनुपम छबि देखैं छबि रहै सुखमा, सकुचि रमापति पछताय हँसति ।
'व्यास' स्वामिनी पिय के हिय तें निमिष न इत-उत धसति ॥३३५॥

---

* सबदल (क) § ताता थेई (क) तथेई (ग) तत थेई (च, छ)

[1] मन रस [क] [2] मधुर [क]

६. नैन-वर्णन—

राग बिलावल व बिहागरौ

राधा, तेरे नैननि काहू की दीठि लगी सी ।
लगत न पलक जम्हाँति, मनौ खिजति सब रानि जगी सी
झलमलाति गेंड़ाति दूध सौं, डारन लाज भगी सी
लटकति लट मनौ हाथ देत, मोहन ठगु आजु ठगी सी
कज्जल - बिंदु डिठौना से कछु, पीक - पराग पगी सी,
'व्यास' वचन सुनि विहसति, अति आनंद-सिंधु उमगी सी*

अंजन पनच धनुष सम भौंहैं ।
बंक निसंक अनी अनियारे, लगन नैन सरसौंहे ॥
मुख सुखरासि, नाग की फाँसि बँध्यौ मोहन-मृग मोहैं ।
स्यामहिं डर उपज्यौ देखत, जनु कामिक सिंघ बिछोहैं ॥
तजैं पीतपट नागरनट, जानत मानत‡ बलदाहैं ।
'व्यास' स्वामिनी त्रास हारि हँसि, कुच-गिरि पर आरोहैं ॥३

राग सारंग

नैन कर सायल से बिडरे ।
मोहन रूप अनूप हरे तृन, चाखत गर्ब भरे ॥
मनि ताटंक जुगल फंदा, लट फाँसी देखि डरे ।
भौंह कमान बान बिनु जानैं, आतुर जियहिं हरे ॥
सरनु तक्यौ कच बिपिन सघन में, मदन-बधिक निदरे ।
'व्यास' त्रास कर भाजत बागुरि, घूंघट माँझ परे ॥३३८

राग भोपाली

नैन खग उड़िबे कौं अकुलात ।
उरजन डर बिछुरे दुख मानत, पल पिंजरा न समात ॥
घूंघट बिटप छाँह बिनु बिहरत, रबिकर-कुलहिं डरात ।
रूप अनूप चुनौ, चुनि निकट अधर सर देखि सिरात ॥
धीर न धरत, पीर कहि सकत न, काम-बधिक की घात ।
'व्यास'स्वामिनी सुनि करुना हँसि, पिय के उर लपटात ॥३

---

† 'दूध सौ' (ग); 'दूध सौ' (क); दगन सौं' (छ); दग सौं' (च);
* 'उमगी सी' (च,छ); 'सीम उमगी सी' (ग); 'सीम उमड़ी सी' (
‡ मानत (क)· मानहु (ग); मानहुँ (च, छ)·

राग सारंग

नैन छबीले कतहिं दुरावति ।
घूँघट - पट - पिंजरा महँ मानहुँ, खंजन जोट चुरावति ॥
लेत उसास कुचन पर चोली के बँद कतहिं दुरावति ।
'व्यास' स्वामिनी बिहँसि,विरह-बंधन तें पियहिं छुड़ावति ॥३४०॥

राग धनाश्री

नैन बने खंजन से खेलत ।
चपल पलक तारे अति कारे, बंक निसंक ठगौरी मेलत ॥
भृंग, कुरंग, मीन, कमलनि की भाँति,कांति छबि कवि अवहेलत ।
अंजनरेख बिसिख-मद गंजन,सैन चलनि सैननि पग पेलत ॥
घूँघट - पट महँ चितै, कुँवर कौ चितु चोरति, रति-सिंधुहिं झेलत ।
'व्यास' स्वामिनी तेरौ प्यारौ, बड़भागी सुखरासि सकेलत ॥३४१॥

राग सारंग

नटवा नैन सुधंग दिखावत ।
चंचल पलक सबद उघटत हैं† थ्रं थ्रं तत् थेई थेई कल गावत ॥
तारे तरल तिरप गति मिलवत, गोलक सुलप दिखावत ।
उरप भेद भ्रू-भंग संग मिलि, रतिपति कुलनि लजावत ॥
अभिनय निपुन सैन सर ऐननि, निसि बारिद बरषावत ।
गुनगन रूप अनूप, 'व्यास' प्रभु निरखि परम सुख पावत ॥३४२॥

राग भूपाली

चितै मन मोहत पिय कौ नैन ।
सरबस हरत करत री री सुख, चल अलकनि बिच सैन ॥
भ्रुवबिलास कल हास मनोहर, प्रगट नचावत मैन ।
'व्यास' स्वामिनी की अद्भुत छवि, कवि पै कहत‡ बनै न ॥३४३॥

राग कमोद व कान्हरौ

मन मोह्यौ री मेरौ नैननि ।
तवति ही चित-वितु इनि चोर्‌यौ, फोर्‌यौ तनु धनुसर* सैननि ॥
: छबि कहूँ न है, नहिं ह्वै है, कवि बपुरा कहि सकत न वैननि ।
: गति खंजन, मीन, कमल, अलि, सुनी न देखि मिटैननि ॥
ही तें तेरे खरैं प्यारे, जातें मोहन बसतु सु ऐननि ।
व-कुच-चिबुक-भौंह मनु नेरे, श्री 'व्यास' स्वामिनी चैननि ॥३४४॥

---

† तट (क) ‡ कवि पै कहत (च, छ)· मोपै कहत (क): कहत (ग)

* धनुसरे क)

राग गौरी व षट

नैननि ही की उपमा कौ को है री ।
सैननि ही मैननि उपजावति, भौहनि मन मोहै री ॥
वारिज, अंग, विहंग, मीन, मृग, बिनती सुनि को है री ।
अंजन पर खंजन मधुकर, बलि जाति गात मोहै री ॥
जिन महँ बसत लसत अति मोहन, रति-सुख-रस दोहै री ।
'व्यास' स्वामिनी सिखयौ मोहन, बसीकरन मोहै री ॥३

निरुपम राधा नैन तुम्हारे ।
बंक-बिसाल-स्याम-सित-लोहित, तरलित-तुंग अन्यारे ॥
अंजन छवि खंजन-मद-गंजन, मीन पानि बुड़ि हारे ।
निसि ससि डरत, पंकजकुल सकुचत, बधिकन मृगज बिडारे ॥
पीक पलक भुव अलक कुटिल, बिकट निकट घुंघरारे ।
डरत न, हरत परायौ सरबस, 'व्यास' प्रान-धन बारे ॥३

राग कल्यान

कुंडल जुगल फंदन डर लोल, द्वै गोलक घट तें सटके ।
सुख पायौ इनि लोभिनि मिलि, मकरंद-बृंद-रस गटके ॥
मिलत सहे* सुदेस परिहरि, दोऊ सरबस देत न मटके ।
घूँघट-पट-पिंजरा में निज कुल, निरखत कोरन ठटके† ॥
कातरता तजि, चातुरता सजि, निजु कंचुकि महँ लटके ।
तोसों जोरि हित, मोसों तोरि चित, तातें मैं नहिं हटके ।
'व्यास' स्वामिनी तेरे कारन, घन बन-कुंजनि भटके ॥३

राग नट

बने राधा के नैन सुरंग ।
झलकत पलक अंक छवि लागत, बिडरे मनहुँ कुरंग ॥
मानहुँ कमल परागहिं चाखत, तारे चंचल भृंग ।
गोलक बिमल सरोदक खेलत, मीन मनहुँ भ्रुव संग ॥
भृकुटि कटाच्छ-बान मोहन मन, बेधत व्याधि अनंग ।
'व्यास' स्वामिनी नागरनटहिं नचावति सरस सुधंग ॥३

१०. मुख-वर्णन— राग बिलावल व बिहागरौ

गौर मुख चंद्रमाँ की भाँति ।
सदा उदित बृंदावन प्रमुदित, कुमुदिनि-बल्लभ जाँति ॥
नील निचोल गगन में सोभित, हार तारिका-पाँति ।
झलकति अलक, दसनि-दुति दमकति, मनहुँ किरनि-कुल-काँति ॥

---

* 'सहे' (ग), 'सहेली' (क, च, छ) † पटके (क)

गंड-कोप पर स्रम-जल-ओस जु, अधरनि सुधा चुचाति ।
मोहन की रसना सु चकोरी, पीवति रस न अघाति ॥
हास कलाकुल सरद सुहाई, तन-छवि चाँदिनि राति ।
नैन कुरंगनि, कटि सिघनि डर, उन पर अति अनखाति ॥
नाह निकट, नहिं राहु बिरह डर, पट-सोभा न समाति ।
देखत पाप न रहति, 'व्यास' तन दासिनि ताप बुझाति ॥३४६॥

राग सारंग

राधाबदन चंद्रमा की जुन्हाई, सीतल सुखदाई ।
नंदकिसोर - चकोर पियतु हू, अरु पूजी न अघाई ॥
झरपत स्याम तनूरुह भूरुह, बरषत स्रम-जल-ओस सुहाई ।
अधर सुधा मकरंद माधुरी, बृंदाविपिन पुरंदर पाई ॥
हास-कला फबि* पूरन मंडल, संतत राकातिथि जु बढ़ाई ।
भूपन-निकर किरन नग परसत, बिरह-तरनि§ तन-ताप बुझाई ॥
महाराज बृषभान-घरनि-वपु, प्राचीदिसि जु जननि जग गाई ।
वल्लभकुल सागर अति प्रमुदित, निरखत 'व्यासदास' बलि जाई ॥३५०॥

राग नट

प्यारी तेरे वदन-कमल-रस अटक्यौ लालन-अलि ।
तन सों तन, मन सों मन अरुझयौ, न सकतु चलि ॥
तुव बृंदावन कनक बेलि सी, रही उरजनि फलि ।
यह सुख निरखत 'व्यासदास' जाइ बलि ॥३५१॥

• हास—

राग नट

हँसत ज्यौं - ज्यौं हा री ! त्यौं - त्यौं दसन—
लसत, मनहुँ सरद - ससि कोटि उज्यारी ।
बरषत रस बिंबाधर - जलधर,
पीवत चातिक - कुंजबिहारी ।
नैननि सैननि दै चितु चोरत,
लै भ्रू भंग अनंग नचावत प्यारी ।
गावत मोहन मृगहिं रिझावत, छाती सों—
लगावति, निरखि 'व्यास' जुग जुवती वारी ॥३५२॥

---

* बिरह तरनि (क); बिरह तरन (ग); बिहरत रति (च, छ);
§ फुल (क)

१२. उरज वर्णन—

राग सारंग

उरज जुगल पर सहज स्याम-छवि, उपमा कहि सब कवि पचिहारे
रूप - बरन - गुन जस - रस राचे, सुख की रासि दुखारे।
कर-कमलनि† मकरंद पीवत अलि, चलिहिं न सकत सुखारे
मानों नूत मंजरिनि बैठे, कोकिल करत कुकारे$।
नखसिख सुंदर कनकलता के, फल जम रसमय भारे
मानौं हितकरि बदन दिठौना, कज्जल-बिंदु अन्यारे।
बिनु भूषन भूषित पट सुंदर, सहज सिंगार बिसारे
'व्यास' स्वामिनी वे री, मेरे प्रानन के रखवारे।

राग सारंग व नट

सबै अंग कोमल उरज कठोर।
कहि काहे तें आपुन गोरे, सुंदर स्यामल बोर* ॥
ते बाँधे रिस कें कंचुकि महँ, ये मेरे चितचोर।
तोरि तनी चमकत जोबन - बल, माँगत नैन अकोर ॥
मोहू पीठि दई इन लोभिनि, कीनों कपट न थोर।
ताकौ फल पावत हैं निसदिनु, दस नख की झकझोर ॥
निर्दय हृदय भेदत जु बैर करि, डरत न अपने जोर।
'व्यास' स्वामिनी इन से येई, प्रान-जीवन-धन मोर ॥३५

राग कमोद

सब अंगनि के हैं कुच नाइक।
जिन पर पहिलैं दृष्टि परत ही, क्या‡ होत मन साइक ॥
मन कौ दुख न रहत सुख देखत, ताप नसावत काइक ॥
पीर, व्याधि मैटत देखत ही, कर परसन सुखदाइक ॥
दोऊ सूरबीर रति - रन में, टरत न सनमुख पाइक।
मेरौ उर बेधत तो कारन, सहत नखर नख - साइक ॥
घूंघटपट, अंचल, चोलीबँद, ये सब मेरे घाइक।
'व्यास' स्वामिनी प्रेम-नेम तें, हौं कछूक तो लाइक ॥३५

---

† कर कमलनि (क);   कनक कमल (ग, च, छ);
$ कुकारे (क);   कुरारे (ग, च, छ);
* ओर (क):   बोर (च, छ)
‡ भ्या (क ग च)   कया (छ),

राग धनाश्री

बधिक हू तें अधिक उरज की चोट* ।
अनी अन्यारे बान-धनुष बिनु, तकि बेधत तन-ओट ॥
मोहन-मृग मोह्यौ बिनु नादहिं, लगत न जानत चोट ।
'व्यास' बराबस हाव कियौ हठि, चंचल अँचल ओट ॥३५६॥

राग घट व गौरी

सब अंगनि महँ उरज निसंक ।
चोली कसैं बसैं अंचलु में, तऊ न होत ससंक ॥
आगे-आगैं फिरत सबनि के, सकुचत नहिं सकलंक ।
पहलैं दीठि परत ही, पीठि न देत, लगावत लंक ॥
बाल काल नव बाल बिधू, निरखत आँखो भरि अंक ।
सदा सकाम हृदय के भेंटत, मेटत दारिद - अंक ॥
गौर - स्याम सोभा - सागर जनु, कंचन-मरकत - पंक ।
'व्यास' स्वामिनी द्वै निधि बीच, बसाये रति रस रंक ॥३५७॥

राग सारंग

तन-छबि के फल उरज अन्यारे ।
सहज स्वरूप सुबेस सुरेसी, गौर - गात सित - कारे ॥
मन-मोहन सुख-दोहन देखत, प्रीतम पलक बिसारे ।
सरबस लुटत छुटत मानों माई, मनमथ-बान अन्यारे ॥
तोरत तनी तमकि चोली की, जोबन - जोर उघारे ।
'व्यास' न त्रास करत विपयनि सों, रति-रन खर नख हारे ॥३५८॥

राग घट

चौंही, तें माई कुचनि के ओर भये कारे ।
ये पिय के नैननि में बसत, इनकें पिय के तारे ॥
भेंटत दुख मेंटत सखि उर में, नाहिंन गड़त अन्यारे ।
रति बिपरीत मीत से लागत, जद्यपि जोबन भारे ॥
हाथनि मांझ सांझ समात, रहत बासर अति बारे ।
अंचर डारि, फारि चोली पट, सुभट लौं फिरत उघारे ॥
श्रीफल, कनक, कलस, गजकुंभ, कबिन छबि ऊपर वारे ।
'व्यास' स्वामिनिहिं लागत प्यारे, मोहन के रखवारे ॥३५९॥

चोट (च, क , बोट (क, ग ,

१३. चरण-वर्णन— राग घट

सुभग गोरी के गोरे पाइ ।
स्याम काम-बस जिनहिं हाथ गहि, राखत कंठ लगाइ ।।
कोटि चंद नख-मनि पर वारौं, गति पर हंस कराइ ।
नूपर - धुनि पर मुरली वारौं, जावक पर ब्रजराइ ।।
नॉचत रास रंग महँ, सरस-सुधंग दिखावत भाइ ।
जमुनाजल के दूर करत मल, चरननि पंक छुटाइ ।।
सघन कुंज-बीथिन में पौढ़त, कुसुमनि सेज बनाइ ।
कुमकुम-रज-कपूर-धूरि, धुरि की छवि बरनि न जाइ ।।
धनि बृषभान, धन्य बरसानौ, धनि राधा की माइ ।
तहाँ प्रगट नटनागर खेलत, रति सौं रति पछिताइ ।।
ताके परस सरस बृंदावन, बरषत सुखनि अघाइ ।
ताके सरन रहत का कौ डर, कहत 'व्यास' समुझाइ ।।३

राग गौरी

सुभग सुहाग कौ चीन्हौ प्यारी, तेरे चरननि सोहै ।
जिनकी रज राजत बृंदावन, देखत ही मोहन-मन मोहै ।।
गौर-अंग-छवि स्यामहिं फबि गई, सकल-लोक चूड़ामनि जो है ।
'व्यास' स्वामिनी की उपमा कों, भुवन चतुर्दस कामिनि को है ।।२

१४. अंग-वर्णन—

राग बिलावल व बिहागरौ

सुभग राधामोहन के गात ।
विहरत अंग-अंग बिबि तन-मन, सहज मधुरता तात ।।
निरुपम अति उपजति छवि, कबिकुल उपमा कों अकुलात ।
बर बंधुक अति मूक होत सब, मन मनसाहि लजात ।।
कोटि - कोटि जो कीजै बुधि-बल, सरवा सिंधु न मात ।
कैसैं 'व्यास' रंक की बसनी, लंक - सुमेरु समात ।।३८

राग बिलावल व बिहागरौ

आजु अति सोभित सुंदर गात ।
अरुन सुलोचन पिय-दुख-मोचन, अति आतुर अकुलात ।।
डरत न हरत परायौ सरबस, मंद - मंद मुसक्यात ।
मानहुँ रंक महा - निधि पाई, फूले अंग न मात ।
'व्यास' कपट-फल तब पावहुगे, जबहिं मदन-सर घात ।।३६

राग षट

कौन-कौन अंगनि के रंग - रूप बरनौं ।
तिनके रस विवस स्याम, रहत सदा सरनौं ॥
कामातुर कुँवर धाइ, धरत सीस गौर - चरनौं ।
अधर - सुधा - पान, मिटत बिरह - ताप जरनौं ॥
मधुर वचन - रचना सुनि, अति जुडात करनौं ।
नैनानि की ओट होत, आनि बनत मरनौं ॥
'व्यासदास' आस अधिक, अनत नहीं सरनौं ॥२६४॥

राग सारंग

देखत नैन सिरात, गात सब नागरता की खानि ।
कोटि चंद्रभानि मंद करत, मोहन-मुख मृदु-मुसकानि* ॥
खंजन, मीन, मृगज, कंजनि, मनहरति चितै नैनानि ।
कोटि काम - कोदंडनि खंडन, भ्रू-भंगन की बानि ॥
केस निचय घन रुचि जस कारी, कुंतल अलि वलि जानि ।
उरज - करज गजकुंभ - हेमघट, श्रीफल-छबि की हानि ॥
दाख सिता मधु सुधा मुधा तें, अधरामृत पहिचानि ।
बाहु बिलोकत उपजी सकुच, मृनाल भुजंग लतानि ॥
दसननि देख दुरी दामिनि, दारयौ उर अति अकुलानि ।
'व्यास' स्वामिनी स्याम-भामिनी, सब अंगनि सुखदानि ॥२६५॥

राग नट व खट

देखि सखी, राधामुख चारु ।
मनहुँ छिड़ाइ लियौ इनि सब उपमनि कौ रूप - सिंगारु ॥
दारयौ दामिनि, कुंद मंद भये, दसननि दै सतु सारु ।
बिद्रुम बर बंधूक बिंब मिलि, अधरनि दै रस - भारु ॥
सुक, किंसुक, तिलकुसुम तज्यौ मृदु, निरख नासिका दारु ।
सुभग कपोलनि बोल दियौ तनु, मधुपनि अधिक उदारु ॥
खंजरीट, मृग, मीन, कमल, नैननि कीनौ सब आरु ।
अंजन भौंहनि धनुष कियौ रद, चल सैननि सिरदारु ॥
चंदन-बिंदु ललाट इंदु सम, अलकनि किरनि प्रसारु ।
नकबेसरी तरौना तरका, स्रवन कुरंग उफारु ॥

---

* मुख मृदु मुसकानि (न, छ), मुख मुस्कियान (क) मुख मुसकान (ग)

स्यामल रसमय चिकुरनि के डर, मेघन पर्‌यौ पिंडारु।
बैनी लट पटतरहिं डरानौं, भुजगनि गह्यौ पतारु॥
स्याम सहित स्यामाहिं विलोकत, भूल्यौ रतिहिं भरतारु।
कमला कहति सुनहुँ पति, दंपति पर वारौं संसारु॥
गौर-स्याम सोभा-सागर कौ, नाहिंन वारापारु।
'व्यास' स्वामिनी की छबि आगैं, सकल सरूप उगारु॥३'

राग कमोद

क्रीड़त कुंज कुरंगज‡-नैनी।
सोभा-सिंधु न मात गात महँ, कुच श्रीफल रुचि दैनी§॥
कुंजनि सुरत मानु करि कोकिल, चाल मरालनि लैनी।
चौकी की चमकनि के आगैं, दामिनि भई कुचैनी॥
बसि पताल व्याल नहिं आवत, जानि मन्यारी बैनी।
उरजनि पर नख-अंक मनहुँ विधु-सुधा स्रवत घन सैनी॥
मानहुँ कनक-कलस पर दीनी, हेम चौर छबि छैनी।
रसना एक अनेक मधुर-गुन, बरनत बनहिं न भैनी॥
'व्यास' स्वामिनी की चलि सैननि, बानन हूँ तें पैनी॥३६

१५. षोड़श शृंगार-वर्णन—

राग सारंग

आजु बनी वृषभानुदुलारी।
अंगराग भूषन पट रचि रुचि, मोहन अपने हाथ सिंगारी।
चिकुरनि चंपकली गुहि बैनी, डोरी रोरी माँग सँवारी
मृगज बिंदुजुत, तिलक इंदु छबि, झलकत अलक, मनहु अलिनारी।
स्रवननि खुटिला खुभी झलमली, नैननि अंजन-रेख अन्यारी।
नासापुट लटकनि नकबेसरि, भौंह तरंग भुजंगनि कारी॥
मंदहास बसि बलि दामिनि, जलधर-अधर कपोल सुढारी।
कंठ पोति†, उर-हार, चारु कुच, गुरु नितंब, जंघनि अति भारी॥
गजमोतिन के गजरा, हाथनि चारु चुरी, पहुँचिन पर वारी।
नील कंचुकी, लाल तरौटा, तनसुख की तन झूमक सारी॥
नखसिख कुसुम-विसिख, रस बरषत, रोमनि कोटि सोभ उजियारी।
'व्यास' स्वामिनी पर तृन तोरत, रसिक निहोरत जय-जय प्यारी॥

‡ कुरंगज (च, छ); रंग पंकज (क, ग)

§ काम चढ़ाइ स्याम अँग कहँ मनहुँ सुरत रंग चैनी। (च, छ) प्रति में चरणा पर अतिरिक्त पंक्ति है † पोति (क बोति (ग, च,

राग कान्हरौ

आजु बनी वृषभानुदुलारी ।
नव निकुंज विहरत प्रीतम सँग, मंदपवन, चाँदिनी उज्यारी ॥
भूषन भूषित अंग सुपेसल, नीलवसन तन झूमक सारी ।
चिकुर-चंद्रकनि चंपकली गुहि, सिर सीमंत सुकंत सँवारी ॥
मनिताटंक विलोल कपोलनि, नासामनि लटकति लटकारी ।
झलकति अलक, तिलक भौंहनि छबि, नैननि अंजन-रेख अन्यारी ॥
स्याम दसन सित चौका चमकत, अधर-बिंब प्रतिबिंब बिहारी ।
कुच-गिरि पर घनस्याम†-कंचुकी,कृस कटि,जघनि नितंबनि भारी ॥
तरुवनि कुमकुम, नखनि महावर, पद मृगमद चूरा चौधारी ।
नखसिख सुंदरता की सींवाँ, 'व्यास'स्वामिनी जय पिय-प्यारी ॥३६६॥

राग सारंग

सुभग सुहागिल नवल दुलारी ।
नखसिख अंग रंगसागर-छवि, नागर सुहथ सँवारी ॥
गजमोतिन सिर सुंदर बैनी, जनु अहिबधू-मन्यारी ।
चिकुरनि चंपकलिन की रचना, सैंदुर सरस पनारी ॥
अलक, तिलक झलकत गंडनि पर, ताटंकन लटकारी ।
भौंह - धनुष सर नैन-मैन हन, अंजन-रेख अन्यारी ॥
अधर-सिंधु-सर राधा-मोहन,बिहँसत दसननि मनि उजियारी।
सोभित स्यामलबिंदु चिबुक, सुक नासा ललित रवारी ॥
बाहु - मृनाल नाहु के अंसनि, पीन - पयोधर भारी ।
नील कंचुकी, लाल तरौटा, लटकत झूमक सारी ॥
गुरु,नितंब किंकिनि-रव कृस-कटि, जघननि बीच बिहारी ।
मुखरित मनिमंजीर अधीर करति, रति गति की चारी ॥
निभृत निकुंज भवन महँ, सुखपुंजनि बरषत पिय-प्यारी ।
विविध विनोद मोद दिन देखति, 'व्यासदासि' बलिहारी ॥३७०॥

राधिका मोहन की प्यारी ।
नखसिख रूप-अनूप गुन-सीमा,नागरी श्रीवृषभानुदुलारी ॥
वृंदाविपिन निकुंजभवन तन, कोटि चंद उजियारी ।
नव-नव प्रीति प्रतीति रीति-रस-बस किये कुंजविहारी ॥
सुभग सुहाग प्रेमरँग राची, अँग-अँग स्याम सिंगारी ।
'व्यास'स्वामिनी के पदनख पर,बलि-बलि जात रसिक नर-नारी॥३७१॥

† घनस्याम (ग, च, छ) धरिस्याम (क)

१६. नवलता-वर्णन—

राग धनाश्री

दिनहिं दिन होत कंचुकी गाढ़ी ।
बैठत पौढ़त चलत नई छवि,संभ्रम पियहिं देखि कैं ठाढ़ी ॥
पोषी रस ज्यौंसार माइ कै, ग्वाल दूध की साढ़ी ।
बोलत, चितवत, हँसवनै धोखें, रात रूठ जब करत उकाढ़ी
'व्यास' स्वामिनी के गुन गावत, रसिक अनन्य सुढाढ़ी ॥†

राग सारंग

छिनहीं छिन जोवन-सलिता बाढ़ी ।
स्याम सजल घन रतिरस बरषत, गिरत करारनि चाढ़ी ॥
सोभित भँवर - फैन कुल - पंकज, पोषत पै दधि साढ़ी ।
कुच-कठोर चकवनि पर कंचुकि, चीन तरंगिनि गाढ़ी ॥
कंज-मृनाल, व्याल, गज, खंजन, केलि त्रास गहि काढ़ी ।
मीन - मकर बंसी में बींधे, मृगमाला ढिग ठाढ़ी ॥
पथिक न बारपार पावत, जस गावत दादुर - ढाढ़ी ।
'व्यासदास' खग उपवन सेवत, नेह सनेह न आढ़ी ॥३

राग सारंग

नव-जोबन-छबि फबति किसोरिहिं, देखत नैन सिरात ।
वलि-वलि सुखद मुखारबिंद की, चंद्र बृंद दुरि जात ॥
गौर ललाट - पटल पर सोभित, कुंचित कच अरुझात ।
मानहुँ कनक-कंज मकरंदहिं, पीवत अलि न अघात ॥
दुखमोचन लोचन रतनारे, फूले जनु जलजात ।
चंचल पलक निकट स्रवननि के, पिसुन कहत जनु बात ॥
नकबेसर बंसी के संभ्रम, भौंह - मीन अकुलात ।
मनि ताटंक कमठ घूँघट डर, जाल बींध पछितात ॥
स्याम कंचुकी माँझ साँझ, फूले कुच-कलस न मात ।
मानहु मद गयंद - कुंभनि पर, नील बसन फहरात ॥
नखसिख सहज सुंदरिहिं विलसत, सुकृती स्यामल गात ।
यह सुख देखत 'व्यास' और सुख, उड़त* पुराने पात ॥३

---

† (क) प्रति में ३, ४ थी पंक्तियाँ नहीं हैं ।
* उड़ब (च, छ) उड़ै (ग)

नव रँग, नव रस, नव अनुराग-जस, नव गुन, नव रूप, नव जोवन-जोर।
नव वृंदावन, नव तरुवर घन, नव निकुंज क्रीड़त नवलकिसोर॥
नव घन, नव दामिनि, नव बूँदैं, नव राग-रागनि§ सुनि नटत नवल मोर।
नवल चूनरी, नवल पीतपट तन, नवल मुकुट, नव सिरपाटी फूल जोर॥
नव-नव चुंवन, नव परिरंभन, नव कच मीड़त नव कुच कठोर।
नवल सुरत हाव-भावनि प्रगटत, देखत 'व्यास'हिं नव प्रीति न थोर।३७५।

राग गौड़मलार

नव निकुंज सुख पुंज नगर कौ, नागर साँचौ भूप।
मृगज, कपूर, कुमकुमा, कुंकुम-कीच, अगर, दिस धूप॥
संग पतंग सुधंग सुदेसी रागिनि-राग अनूप।
जीवत निरखि लाड़िली राधा रानी कौ गुन-रूप॥
नव-नव हाव-भाव अँग-अंग, अगाध सुरत रसकूप।
'व्यास' स्वामिनी सौं हरि हार्‌यौ, सरवस रति-रन-जूप॥३७६॥

राग कल्याण

चंद्र विंब पर वारिज फूले।
ता पर फनि के सिर पर मनिगन, तर मधुकर मधुमद मिलि भूले॥
तहाँ मीन, कच्छप, सुक, खेलत, वंसीहिं देखि न भये बिकूले।
बिद्रुम दार्‌यौ में पिक बोलत, केसरि-नख-पद नारि गरूले॥
सर में चक्रवाक, बक, व्यालिनि, बिहरत बैर परस्पर भूले।
रंभा-सिंध बीच मनमथ धरु, ता पर गान-धुनि सुनि सुख-सूले॥
म्रग ही पर घनु बरषत, हरषत, सर-सागर भये जमुना-कूले।
पूजी आस 'व्यास' चातक की, स्थावर-जंगम भये त्रिसूले॥३७७॥

१७. मोहन रस—

राग कमोद

मदनमोहन माई मन-मोहनियाँ।
लटकन हँसि उर के लटकन ज्यौं, चढ़त अचानक कनियाँ॥
सीस-टिपारौ, स्रवननि-कुंडल, कंठ सु कंचन-मनियाँ।
पीत पिछौरी, लाल लाग कटि, कसि किंकिन मनि तनियाँ॥
बिहँसि कपोल बिलोल बिलोचन, नमित भौंह चल अनियाँ।
सुखद मुखारबिंद अवलोकत, नाचत मोर नचनियाँ॥

---

§ नवरंग रागनि (ख, छ) नवरंग राजन (ग); नवरंग राजनि (क)
अनुमानित पाठ—नव राग-रागनि।

अंग-अंग में छवि अति प्रगटत, कोटिक चंद किरनियाँ
राई नोंन उतारि, तोरि तृन, वारि पियहु किन पनियाँ ।
चित-वित हरत, बेनु- धुनि करत, मैन हू पाँय लगनियाँ
'व्यास' कहै, को मानैं यह रस, जानैं जान मिलनियाँ ।

राग सारंग

मोहन-बन की सोभा स्याम ।
स्याम-हरित दुति तन महँ उपजति, सो छवि कवि अभिराम ।।
बदन चंद करि रंजित दोऊ, मानहु सरदनि - जाम
भूषन उड़गन दमकत, नील निचोल गगन सुखधाम ।।
अधर अरुन पल्लव† मनु सोभित, बिहँसनि कुसुमनि वाम ।
श्रीफल - कुच काँपि सु कल फूले, लाजत मौरे आम ।।
चालि दृगंचल चंचल, खंजन, मीन, मृगज, अलिजाम ।
कुंजनि कुहुक - कुहुक पिक कूजत, पियहिं बढ़ावत काम ।।
सकल अंग घनस्याम बनहिं नव, पोषत सुरस ललाम
'व्यास' स्वामिनी कौ रस वैभव, गोपी - ग्वाल सुदाम ।।

राग धनाश्री

मोहन माई राधिका कौ कंत ।
विहरत बृंदावन - घन - वीथिन, बसत सु सदा बसंत ।
नव-निकुंज प्यारी सँग अँग-अँग, सुख पुंजनि बरसंत ।
प्रगट करत रस - रीति छबीलौ, प्रीतहिं नाही अंत ।।
गनतु न काहू जोबन के बल, जनु हाथी मैमंत
रूप-अनूप देखि जग भूल्यौ, मुदित जल थल जीव-जंत ।
बड़भागी अनुरागी नागर, सुघर कुवँर भगवंत
'व्यास' सहै उपहास स्याम, सौभागिन नेह जरंत ।

१८. जोरी जू कौ सनेह—

राग गौरी

राधा-मोहन सहज सनेही ।
सहज रूप, गुन सहज लाड़िले, एक प्रान द्वै देही ।
सहज माधुरी अंग - अंग प्रति, सहज रची बन - गेही
'व्यास' सहज जोरी सों मन मेरे, सहज प्रीति कर लेही ।

---

† पल्लव सोमित [क ग]   पल्लव सुसोभित [घ, छ]

अंग - अंग सब रंग भरयौ, मुख देखत ताप बुझाइयै ॥
जासों बिछुरन कबहूँ नहिं, ता हरि सों हित उरझाइयै ॥
सब सुखदाता जगतपिता के ह्वै‡, अनत न जाइयै ।
हरि सों प्रीति प्रतीति करी अब, मन मनसा न चलाइयै ॥
कौतिक अवधि बिनोद की लीला - रस - सिंधु बढ़ाइयै ।
स्याम - सिंध के सरन रहन, माया - हिरनी बिझुकाइयै ॥
तब सुख - संपति जानबी, जबै एक चित्त मन लाइयै ।
देखि बिहरत जुगल किसोर,'व्यास'तब दासिनि कों सिर नाइयै ।

राग मोतिला

मेरौ स्याम सनेही गाइयै। तातें बृंदावन रज पाइयै ॥
श्री राधा जाकी भाँवती, करि कुंजनि - कुंजनि केलि ।
तरुन तमालै अरुझी मानौं, लसन कनक की बेलि ॥
महा मोहनो मोहियौ, रति - रास - बिलासनि लाल ।
कुच-कमलनि रस बस कियौ, लट बाँध्यौ मनहुँ मराल ॥
नैन - सैन - सर मनु बिंध्यौ हो, तनु बेध्यौ कल गान ।
अंजन - फंदनि कुँवर-कुरंग बँध्यौ, चलि भौंह - कमान ॥
नकबेसरि - बंसी लग्यौ, छबि - जल चित चंचल मीन ।
गिधयौ अधर - सुधा दै, वदन - चकोर कियौ आधीन ॥
अंग - अंग रस - रंग में हो, मगन भये हरि नाह ।
'व्यास' स्वामिनी सुख-नदी, पिय-संगम-सिंधु प्रवाह ॥३८६॥

१६. गान रस— राग धनाश्री

जैसै ही जैसैं ही गावै मेरौ प्रीतम, तैसैं ही तैसैं ही हौ मिलि चलौं ताहि
नीचैं लेत ऊँचैं लेउँ सम नेम दोऊ, घोर मैंवथोर निपाद* निबाहि
सुघर - राइ गुन - सागर नागर न थहायौ जाइ जाहि
'व्यास' की स्वामिनी मोहन सौं बादु भयौ, बिकट औघर† गाइ रिझाहि

ताल मंदिर सुर सब ही पह‡ आवत, सोई-सोई बादिजे जु गावै थोरि ।
कंठ सुकंठ रागरंग सचि काचिहिं मति,
सुघरु क्यों मानें साँची थोरि यै भली कोर ।
जो तुम हीं पै ह्वै आवै प्रीतम, तौ दैहौं नव उरज अकोर
'व्यास' के प्रभु कहि घटि-बढ़ि आवत, रचकि भेटिहै जोबन-जोर ।।३८८

‡ के ह्वै (ग, च, छ); कौ छाँडि (क); * मै व थोर निषाद (क
मै मद्दोर निपाद्दि (ग) † औघर (क च,छ) औघट (ग) ‡पह(च,छ,ग)-यह(घ

राग पट

मृगनैनी पिकबैनी तू राधिका, बिनती सुनि, नैंक गाउ री।
त्रमसुर आलापि, तासु हरि, पट-राग के पट तान सुनाउ री॥
रस बिरस बुद्धि तोही यह पावन, याही तें लालच कीजतु तू गुनराउ री।
'व्यास'की स्वामिनि, तेरे दरस-परस बिनु,मो अनुचर कहूँ अनत न सहाउ री॥

लाल कौ धीरज न रह्यौ, ललना के गावत।
सुनत ही सुख लागै, बूझे तें भरमु भागै,
अनुराग गिरि पर्‌यौ बैनु बजावत॥
रंग कौ रसरंग न भायौ, तान तरंगनि छायौ,
प्रिया बाहु बिच नाहु लगावत।
'व्यास की स्वामिनि हियौ† पियहिं लगावति,
चेत्यौ कुँवर अधर - मधु प्यावत॥२६०॥

राग कमोद

रसिक - सिरोमनि ललना - लाल मिले सुर गावत।
मत्त मधुर बिबि धुनि सुनि कोकिल कूजत‡, तन-मन-ताप बुझावत॥
मोर मंडली नाँचति प्रमुदित, आनँद नैननि नीरु बहावत।
मंद - मंद घनबृंद - गाज लजि, सीतल जल - सीकर बरसावत॥
नाद-स्वाद मोहे गो, गिरि, तरु,खग,मृग,सर, सरिता सचुपावत।
बृंदाविपिन - विनोदी राधा-रवन बिनोद, 'व्यास' मन भावत॥२६१॥

राग कमोद व सारंग

बहुत गुनी मैं देखे सुने री, सुधि न परै राधे तेरे गान की।
मोहू कछू गर्व हुतौ री गुन कौ, हौं पचिहार्‌यौ,
समुझि न परै कछू तेरे तान की॥
तू जानत गति रेख नेम की,
ताल मंदिर घोर सुर - बंधान की।
'व्यास' की स्वामिनि, तेरे गावत कछु,
सुधि न रही मेरे लोचन कान की॥२६२॥

---

† यौ (क)

‡ मत्त मधुर बिबि धुनि सुनि कोकिल कूजत (ग);
मत्त मधुर बिबि धुनि सुनि कोकिल कूज्जित (च);
मत्त मधुर बिबि धुनि सुनि कोकिल कूँजित (छ);
मंद मधुर धुनि सुनि कोकिल कुल किलकत (क);

राग कमोद व कान्हरौ

जोई भावै सोई क्यों जानै री परत गाइबौ।
कोऊ अनी बानी गिररी लै, कोऊ औघर सुर बढ़ाइबौ ॥
कठिन है रंगमहल कौ रिझाइबौ, सहचरि कहाइबौ।
यह सब छवि तब ही फबि आवै,
जब 'व्यास' स्वामिनी के चरन - कमल - मकरंद पाइबौ ॥३६३

राग कल्याण

गावत गोरी नैन चलावत।
सुघराई तन मुख सनमुख करि, विहँसि दसन चमकावत ॥
रीझत सुवर नव तरुनि नागरी, सुनि धुनि पिकहिं चुनावत।
तान बँधान तकहि तकि मारत, मोहन-मृगहिं गिरावत ॥
लेत उसास कठिन-कुच उकसत, स्यामहिं काम बढ़ावत।
'व्यास' स्वामिनी आतुर पिय कौं, रवकि कंठ लपटावत ॥३६४

राग गौरी

मेरे भाँवते की भाँवती।
जाति अहीरी आहि कुँवर सँग, सुघर अहीरी गावती ॥
रास - धरनि पर तरनिसुता-तट, अंग सुधंग दिखावती।
नदत मृदंग संग ललितादिक, करतल ताल बजावती ॥
रसिक-अनन्य न होते जो, बृषभान - घरनि नहिं जावती।
'व्यास' स्वामिनी बिनु बृंदाबन, ब्रजगोपी न कहावती ॥३६५॥

राग गौरी

गोरी गायौ, सुनि स्याम रिझायौ।
लटक्यौ मुकुट,पीतपट झटक्यौ,चटक्यौरी, नासापुट सुंदर,कर तें बेनु गिर
नैननि असुवा गिरत स्रमित अति, कंपित जानि रवकि उर लायौ
'व्यास' की स्वामिनि कुंजमहल में, अधर - सुधा - रस प्यायौ ॥३६

नागरी* नट नारायन गायौ।
तान - मान - बंधान सप्त सुर, राग सौं राग मिलायौ ॥
चरन घूँघरू, जंत्र भुजन पर, नीकौ झमक जमायौ।
तत-थेई,तत-थेई लेत गति में गति, पति ब्रजराज रिझायौ ॥
सकल त्रियन में सहज चातुरी, अंग सुधंग दिखायौ।
'व्यास' स्वामिनी धन्य-धन्य राधा, रास में रंग मचायौ ॥३६७

* कीर्तन सग्रह, भाग१, पृष्ठ ३०६ से सकलित

भोजन-विलास—

राग धनाश्री

आजु बनी कुंजनि ज्यौनार ।
जैंवत स्याम परोसति स्यामा, नखसिख अंग उदार ॥
सपरि स्वेद जल-गंडुका[†] कर गहि, धोइ कमलदल थार ।
अमित अरुन सुपक्व अधर, पट-रस मादिक आहार[‡] ॥
दरस सुगंध सुस्वाद तहाँ पुट, रुचिकर मधुर सुखार ।
माँगि लेवे मन लेत देत सुख, तन-मन स्वाद सुसार ॥
रोम-रोम आनंद सोमकुल, स्रवत सुधा मधु धार ।
सर्बसु देत न डर भयौ दातहिं, जाचक कीन सँभार ॥
लालच ही की लटी लोलता, चलत न लागी वार ।
ऐसे ही विविध विहार विलोकत, 'व्यासदास' बलिहार ॥३६८॥

राग आसावरी

बनी बन आजु की ज्यौनार ।
जैंवत राधामोहन अँग-सँग, उपजति कोटि बिकार ॥
धूमकेतु मकरध्वज मानहु, जानि दुख-इंधन भार ।
सुरति मुदारि चिर कुंचित, आतुर तजि आचार ॥
संतत सद्य सुवास गातरस, मीठौ देत उदार ।
कुसुम-पत्र-पत्रावलि रचिकरि, नैन चषक सुखसार ॥
तृपित न भई, छुधा न गई, अँचवत अधरामृत-धार ।
'व्यास' स्वामिनी भोग भोगवत, हरि-गुन-सिंधु अपार ॥३६९॥

राग कान्हरौ व कमोद

मेरे माई, स्यामा-स्याम खिलौना ।
पलक ओट छिन होहु लाडिले, अनत करौ जिन गौना ॥
प्रीति-रीति-परतीति बढ़ावत, मेलि परस्पर टौना ।
निसिदिन कुंजनि-कुंजनि बिहरत, वृषभान-नंद के छौना ॥
हँसत बदन सुख-सदन छबीले, चितवत लोचन-कौना ।
चारु भुजनि के बल आलिंगन, उरज होत नहिं* चौना ॥
दरस-परस, रस-भोजन करि कै, अधरामृत के लेत अचौना ।
बाइस 'व्यास' बिहारी रति-सुख-जूठनि हू कौ दौना ॥४००॥

[†] गण्डूप (च, छ); गंडुक (ग); कंडुक (क);
[‡] आधार (ग) * नहिं (ग, घ, छ) अति (क)

२१. आरती— राग धनाश्री

आरती कीजै जुगलकिसोर की ।
नखसिख अंग बलैया लीजै, साँझ-दुपहरी-भोर की ॥
भूषन-पट नागरि-नट अद्‌भुत, चितवनि चंचल कोर की ।
'व्यासदासि' छवि नैननि फबि रही, अंचल चंचल छोर की ॥४

२२. बलैया— राग गौरी

राधा जू के वदन की बलि जैहौं ।
कोटि मदन, बसंत रबि-ससि, करि न्यौछावर देहौं ॥
हँसत दामिनि लसति दसननि, अधर बिंब रसाल ।
नासिका सुक मुक्त-फल छबि, तिलक मृगमद भाल ॥
लोल लट सुकपोल स्रवननि, खुभी† खुटिला चारु ।
अलक झलकत झलमली छवि, नील सिर पर सारु ॥
भृकुटि-भंग-तरंग उपजति, चिबुक स्यामल बिंदु ।
'व्यास' स्वामिनि नैन सैननि, बस किये गोबिंदु ॥४

राग जयतिश्री

मोहन-मुख की हौं लेउँ बलाइ ।
बोलन, चितवत, हँसत, लसत, छवि उपजत कोटिक भाइ ॥
भँवरन कौं संभ्रम करि भँवरनि, भैंटत अलकनि आइ॥
खेलत नैननि सौं खंजन, भुव धनुषहिं रहैं उराइ ॥
दार्‌यौ दसन जानि सुक दाता, भँवरनि बँधि* अकुलाइ ।
अधर सुधाकर मानि चकोरी, दुख मैंटत सुख पाइ ॥
बाम कपोल बिलोल कुटिल लट, उरज रही अरुझाइ ।
स्याम भुजंगिनि मनहु सुधा-घट, पीवत हू न अघाइ ॥
निरुपम कह उपमा थोरी सब, मन में रही लजाइ ।
'व्यास' स्वामिनी बिहसि मिली, हँसि चुँबनि दै पछिताइ ॥५

२३. बन-विहार— राग गौरी व गौड़मलार

देखौ माई, सोभा नागर-नट की ।
बिहरत राधा के सँग निरखि, बिलखि कमला-रति सटकी ॥
सुरत स्रमित प्यारी प्रीतम के कंठ भुजा धरि लटकी ।
मनहु मेघमंडल में दामिनि, चंचलता तजि अटकी ॥

---

† खुभी (क) खुमी (ग, छ); * बिधु (ग);

मोहन करजनि बीच सोभियत, सुंदरता कुच-घट की ।
मानहु कनक-कमल पर हंस, चरन धरि भँवरनि हटकी ॥
कुच गहि चुंबन करत, अधर खंडित हू कुँवरि न मटकी ।
मानहु निकट चकोर चोंच गहि चंद सुधा-मधु गटकी‡ ॥
गौर गंडस्थल मंडित स्याम - वदन गति नैक न ठटकी ।
मानहु नृत मंजरी के रस, अनत न कोइल भटकी ॥
देखत ही सुख कहत न आवै, क्रीड़ा बंसीवट की ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि बरनत, कबिनु लिलारी पटकी ॥४०४॥

राग गौरी

देखौ माई, सोभा नागर-नट की ।
मानौं चपल दामिनी, जामिनि मेह सनेहनि अटकी ॥
कुंज-सयन कमनीय किसोरी, राजति पिय उर लटकी ।
कोमल सुंदर पानि जुगल महँ छबि उपजत कुच-घट की ॥
जनु वारिज पर मधुकर जोरी, हंस बैर करि हटकी ॥
परिरंभन चुंबन करि, कर धरि, अधर-सुधा-मधु गटकी ।
मनौं चकोर मिथुन-मधु पीवत, बन गति बिधु संकट की ॥
लोचन सफल करन निजु दासी, अति आतुर नहिं लटकी ।
परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि, सरबस देत न मटकी ॥४०५॥

राग सारंग

समाइ रहे गातनि में गात ।
निकसत नहीं निकासें, प्यासे रस पीवत न अघात ॥
गौर-स्याम-छबि की उपमा कह, कोटिक कबि अकुलात ।
मधुर बैन सुनि सैननि† सोभा, सिंधु न सीप समात* ॥
बसीकरन आकरषन मोहन - मंत्र बरन लपटात ।
सहज रूप - लावन्य नदी महँ, गुन - नौका न समात ॥
कुंज - कुटीर तीर जमुना के, खेलत द्यौस बिहात ।
'व्यास' बिपिन बैभव सुनि सिर धुनि, कमलापति पछितात ॥४०६॥

---

‡ गटकी (च, छ); घटकी (ग),
† मैननि (क, ग); सैननि नैननि (च, छ);
* न सीप समान (क); न मात (ग, च, छ);

२४. रसावेश— राग कल्याण

चपल चकोर-लोचन मेरे तरसत, देख्यौ री चाहत बदन-मयंकहिं ।
घूंघट-पट महँ कतहिं दुरावति, कृपन दुरत ज्यों देखत रंकहिं ॥
तो बिनु मोकों ठौर न और कहुँ, इतनौ भरोसौ करि अब जिनि संक
बिहँसि लगी पिय के हिय राधा, 'व्यास'की स्वामिनी हठ मेटति कल

निरखि मुख सुख पावत मेरे नैन ।
स्रवन सिरात गात उमगत सब, सुनत छबीले बैन ॥
बिहसनि बंक बिलोकनि† भौहैं, धनुष तें चलै सर-सैन ।
रोम-रोम गति सोम बिराजति, कोटि - कोटि रति-मैन ॥
महा माधुरी सिंधु समात न, अंग साँकरे ऐन ।
श्री'व्यास' स्वामिनी की अद्भुत छबि कवि पहँ कहत बनै न ॥४

राग कान्हरौ

नैन सिराने री प्यारी देखत मुख ।
सुनि राधा, बाधा न रही अब, तैं कीनौ मो पर रुख ॥
स्रवन सीतल भये बचननि सुनि, सुनत गये दारुन दुख ।
'व्यास' की स्वामिनि सों मिलि बिहरत, नख-सिख भयौ री परमसु

२५. प्रियाजी के व्यंग वचन—

राग देवगंधार

अब मैं जाने हौ जू ललन$, ताही पै सिधारियै जहाँ नवौ* नेहरा ।
मुख को हला - भला यां मोहो सों करन आये,
जिय की और सों, तुम बिन सूनौ है जू वाकौ गेहरा ॥
निसि के चिह्न प्रगट देखियत अंग प्रति अंग,
काहे को दुराव करत नख - रेख लागे देहरा ।
'व्यास' के स्वामी स्याम बेगि पाँय धारियै,
नातर भीजैगौ पीरौ पट, आवत है जू मेहरा ॥४

राग देवगंधार

आजु पिय पाये मैं जानि ।
कहत बचन वृषभानकिसोरी, तुम्हरी कहाँ लगि कीजै कानि ॥
सुचत सुरत - प्रसंग सकल अंग, कतहिं दिखाये आनि ।
अधरनि - अंजन, नयन पीक-रस, उर नख - रेख सुबानि ॥

---

† बिलोकनि (ग, च) बिलोकनी (क) बिलकनि (छ)

$ ललन (च, छ) ललना (क, ग) * मयौ (क) नवौ (ग, च, छ

कहहु कृपा करि कैसै आये, बहुत सही सुख - हानि ।
मद अंतिका मषी जावक रँग, कहाँ रँगाये पानि ॥
जानति हौं पर धन रस - लंपट, कपट सम्हारी थानि ।
कैतव कपट तजत नहिं कबहूँ, 'व्यास' वृथा पहिचानि ॥४११॥

राग सारंग

आजु पिय काके हाथ बिकाने ।
ताही कौ भाग सुहाग छबीलौ, जाके उर लपटाने ॥
सुरत रंग की अंगनि उपमा दुरति न, बनति बखाने ।
उर नख-रेख अंग सोहत, मानौं ससि-गन गगन समाने ॥
पीक-लीक नैननि फिरि आई, सोभित पल अलसाने ।
मानौं अरुन पाट के फंदनि, द्वै खंजनि अरुझाने ॥
पीक अधर अंजन रस राचे, परत नहीं पहिचाने ।
मानौं सरद - ससि निसि के प्रात, सुधाकन वारि निधाने ॥
वसन रँगमगे†, केस रँगीले, बिगलित स्वेद चुचाने ।
मानहुँ भूमि - पपीहा कारन, घूमि घटा‡ घहराने ॥
गर्डनि मनि - ताटंक अंक जनु, रथ चकपैया बाने ।
बाहनि कुंडल-मकर थके जनु, मनसिज कियौ पयाने ॥
सनमुख पाँइ न परत इतै धर, कुँवर कहा अकुलाने ।
लै धन चले चोर ज्यों भोरहिं, कुसमैहिं§ देखि डराने ॥
उघरि गई मुलमा की बाजी, स्याम कपट मन आने ।
करत कितव की आस 'व्यास', सुनि बहुत लोग पछिताने ॥४१२॥

चरण-स्पर्श-रस — राग नट

बसीठी सैननि ही जोरी ।
रूठेहूँ न तजी चंचलता, जानत चित-बित चोरी ॥
कुंचित नासा, लोल कपोलनि, मोहति मन मुख मोरी ।
अंग-अंग प्रति रति-रस लालच, साहस चिबुक टटोरी ॥
काम-कनक-सिंहासन तरलित, सिथिल बसन कटि डोरी ।
कंपित कुच,कर,जघन,अधर, उर, स्रमजल पुलक,तन थोरी ॥
नैननि राची, भौंहनि बिरची, हँसि पिय कुँवरि निहोरी ।
कैतव गुरु गोपाल 'व्यास' प्रभु, चरन गहे, लट छोरी ॥४१३॥

---

† रंगमगे (च, छ); रंग में (क);
‡ कारन घूमि घटा (च, छ); कानन रस घन धुव (क)
§ कुसमैहिं (च, छ), असमहि (क)

राग गौरी

छलबल छैल छुवत कत पाइ ।
अपनौ काजु सँवारि, और कौ काज बिगारत आइ ।।
सटपटात लपटात कपट, दुख देत सुखहिं दिखराइ ।
जामहिं जाइ दुरावत सोई, चोरी देत बताइ ।।
मानहु कीर चतुरई तुव तन, कहत महा पछिताइ ।
पोष्यौ भरयौ कहूँ हु कैतव, कहूँ लगाये घाइ ।।
नैन पिसुनता करत सैन दै, बरजत तुम अकुलाइ ।
कुटिल संग भ्रू-भंग रंग सुख, कहत रहै मुसक्याइ ।।
घर कौ चोर बिकारी सौं कछु काहू कौ न वसाइ ।
'व्यास' स्वामिनी बिहसत, मोहन कंठ रहे लपटाइ ।।४१४।

राग गौरी व कल्याण

नटनागर कौ औसरु देखत, रसिक-सिरोमनि रीझि रह्यौ ।
सरस बजावत नाँचत गावत, अंग दिखावत रंग रह्यौ ।।
राग - तान - बँधान मिलि, देसी सुघंग न परत कह्यौ ।
जो कछु गुन की मन महँ उपजी, सो नखसिख तर लै निबह्यौ ।
मोहत धुनि सौं लाज छाँड़ि पुनि, कौतुक देखत जग उमह्यौ ।
'व्यास'स्वामिनिहिं रीझि लटू ह्वै, हारि मानि पिय चरन गह्यौ।।४१

राग केदारौ व बिभास

चाँपत चरन मोहनलाल ।
प्रजंक पौढ़ी कुँवरि राधा, नागरी नव बाल ।।
लेत कर धरि परसि नैननि, हरषि लावत भाल ।
लाइ राखत हृदै सौं, तब गनत भाग बिसाल ।।
देखि पिय की अधीनता भई, कृपासिंधु दयाल ।
'व्यास' स्वामिनि लिये भुज भरि, अति प्रबीन कृपाल ।।४१६।

२७. बतरस—

राग आसावरी (मूलताल)

मोहनी कहत मोहन सौं बात ।
कोमल मधुर मनोहर धुनि सुनि, पिय के स्रवन सिरात ।।
सरस अधर-मधु मादक बरषत, रसिक कुँवर पीवत न अघात।
जनु अलि - लंपट के मुख मेलत, मकरंदहिं जलजात ।।

दंपति की छवि निरखि दामिनी, दार्‍यौ, कुंद लजात ।
मानौ कोकनद माँझ किरनिका केसर तृपित* बसात ।।
नैननि नैन मिलत सैननि दै, मंद - मंद मुसिक्यात ।
जनु खंजन खेलत प्रतिबिंबनि, जल में चंचल गात ।।
रसना एक अनेक रूप - गुन, बरनत कवि अकुलात ।
कोटिक 'व्यास' करत हू बुधि बल, सरवा सिंधु न मात ।।४१७।।

राग कान्हरौ

जो तू राधा, मन-क्रम-वचन परम हितु मो पर,
करि आई,तौ बलि§ बलि बलि कुमया नहिं कीजै ।
नैकु सुदृष्टि कै मो तन जो चितवौ तौ,
अपनौ जीवन जनम सुफल करि लीजै ।।
तेरे रूप-रंग-रस चितु चहुँट्यौ, तो सी कौन जाहि मन दीजै ।
सी तुही तातें 'व्यास' की स्वामिनि,कंठ लागि अधरामृत पीजै ।।४१८।।

राग सारंग

तन-मन-धन न्यौछावरि ताहि हौं दैहौं,
जो मोसों कहै बेगि राधा है आवत ।
कौ हौं सदा सेवक हौं, जोई प्यारिहिं रूसियै छलबल कै मनावत ।।
सब भली सखी सहेली, हित - चित करि तेरे जिय भावत ।
त मेरी आस 'व्यास' दासी, चौप लागैं मोहि तोहि मिलावत ।।४१९।।

राग कमोद

सुन सुंदरि, इक बात कहत हौं ।
मेरी‡ गति - मति तुही, कृपा तेरी चाहन मैं चहत हौं ।।
सर्बोपरि मेरौई भाग, जु तेरे संग रहत हौं ।
तू जु मोहिं अपनौ करि जानत, हौं पुनि इतौ लहत हौं ।।
मेरे छमि अपराध जु बरसौं, करजनि उरज गहत हौं ।
खंडत तेरे अधर मधुर धरि, हौं अति पीर सहत हौं ।।
निर्दय बहुरि भेंट तोही हौं, दुखसागर न थहत हौं ।
'व्यास' स्वामिनी अंग संग के, रंगहिं लै निबहत हौं ।।४२०।।

---

* कोकनद माँझ करन का के सर तास (क); कोक नंद माझ कठिन का केसर (ग); कोक नद माँझ किरनिका केसर तृपित (च, छ);
§ बेनि (ग);
‡ मेरी (क) तेरी (ग, च, छ)

राग धनाश्री

तब मेरे नैन सिरात किसोरी, जब तेरे नैन निहारौं ।
कोटि काम - रति, कोटि चंद, वदनारविंद पर वारौं ॥
तब मुख - सुख जब तेरे प्यारी, पावन नाम उचारौं ।
हाथ सनाथ होत, जब तेरे अंग सुधंग‡ सिंगारौं ॥
स्रवन रवन तब ही, जब तेरे गुन-गन सुनत उधारौं ।
तब रसना रसमय, जब तेरे अधर - सुधाहिं न डारौं ॥
उर कौ जुर डर जात न तब, जब भुजन बीच तैं टारौं ।
तब बुधि-मन-चित मेरौ हित, जब रूप अनूप विचारौं ॥
तब मम मोर-मुकट साँचौ, सब सेजमहल रज झारौं ।
तब बंसी - धुनि जगत प्रसंसी, जब तुव गुननि$ उचारौं ॥
तू भूषन धन जीवन मेरै, यह ब्रत मन प्रतिपारौं ।
'व्यास' स्वामिनी के तन - मन पर, राई - लौन उतारौं ॥४[illegible]

राग देवगधार

कुँवरि, छबीली तेरी बतियाँ ।
सुनत सिरात स्रवन, मन आनँद, सुख पावत अति छतियाँ ।
बिहँसत नयन, कपोल, अधर, भ्रुव, उपजावत गुन - गतियाँ
अँग - अँग फूल निरख नकबेसर, उर लटकति लटपतियाँ ॥
गावत लेत उसास उरज उमगत, मारति करि घतियाँ
'व्यास' स्वामिनी मेरौ सरबसु, लूटि लेत निज थतियाँ ।

राग गौरी

कहत दोऊ मिलि मीठी बातैं ।
मन-मन बिहँसत, नैन नचावत, अधर - सुधा मधु मातैं ॥
अनतहिं चितु,चितवत दोऊ अनतहिं,लखत न कोऊ घातैं ।
कछु वे गहत, कहत कछु वे, दोऊ खात न पेट समातैं ॥
तन-मन मिलि अरुझे, जनु कोटिक चंद अमाउस रातैं ।
गौरस्याम सागर मिलि बाढ़यौ,'व्यास'अंगनि रँग चुचातैं ॥४[illegible]

राग गंधार

रूप तेरौ री, मोपै बरन्यौ न जाइ ।
रोम - रोम जो रसना पावौं, तौ गाऊँ तेरौ गुन अघाइ ॥
कोटि जतन जो कीजै, कैसैं हू सरवा सिंधु न माइ ।
कैसैं 'व्यास' रंक की बसनी, लंक - सुमेरु उराइ ॥४[illegible]

‡ सुधंग (क); सुमंग (ग); सुमांग (च, छ)
$ तुव गुननि उचारौं (क) तव बसु न बिसारौं (ग), तव बस न बिसारौ ([illegible]

स्तुति-रस—— राग सारंग व देवगंधार

सुनि राधे, तेरे अंगनि पर सुंदरता न बची ।
लोक चतुर्दस नीरस लागत, तैं रस-रासि सची ।।
पद-नख की छबि निरखि,बिलखि रति, कमला आइ लची ।
तो कारन सुत - पति - गृह सब तजि, गोपी रास नची ।।
किसलय दल, कुसमनि की सैया, कौतिक अवधि रची ।
सहज माधुरी रोमनि अरषत, रति - रन - कीच मची ।।
तो सी नार, न पुरुष स्याम सौ, विधि बेकाज पची ।
'व्यास' सुमेरु कोटि की पटतरि, क्यों पावै घुँघची ।।४२५।।

राग बसंत

सुंदरता की रासि नागरी, देखत नैन सिरात ।
अंगनि कोटि अनंग वारियतु, बिहँसि कहत जब बात ।।
कोटि कलप कोऊ जो जीवै, रसना कोटिक जात ।
निरुपम नख की छबि उपमा कहँ*,कोटिक कवि अकुलात ।।
लोक चतुर्दस की वरु तरुनी - तरुन, सुनत बलिजात ।
नयन - स्रवन - उर - अयन सांकरे,सोभा - सिंधु न मात ।।
बड़भागी अनुरागी मोहन, हिलत मिलत न अघात ।
धन्य 'व्यास' की ठकुराइनि, राधा कहि स्याम सकात ।।

राग बिहागरौ

मुख-छबि देखत नैन लचे ।
मान कृत अपमान बिसरे, पलक प्रेम नचे ।।
अधर, दसन, कपोल, भौहनि, रूपसिंधु सचे ।
मनहुँ मुक्ता - लाल - कंचन - इन्द्रनील - खचे ।।
लोल लोचन सैन सर पै, मैन ओल बचे ।
अलक झलकनि नासिकामनि, हँसनि रंग रचे ।।
भोर जुगलकिसोर, जोबन - जोर तमकि तचे ।
'व्यासदास'हिं रंगरासहिं देत मार मचे ।।४२७।।

राग देवगधार

रूप - गुन - सुख कौ रस राधिका पायौ,
सुजस और त्रियनि कौं छोई आग ।
अति करुनाकरि पिय हित कारनि,
कुच-घटि भरि राख्यौ प्रेम ही कौ पाग ।।

* कहँ (च, छ); कहं (ग); कहि (क);

छिन - छिन भोग करत, काम-रोग नासै,
याही तें न कह्यौ परै‡ मोहन जू कौ भाग ।
रोम-रोम प्रति 'व्यास'हिं कोटिक रसना होंय,
तौ न बरन्यौ परै§ प्यारी कौ सुहाग ॥४२८॥

राधिका सम नागरी प्रवीन को नवीन सखी,
रूप - गुन - सुहाग - भाग आगरी न नारि ।
बरुन-नागलोक*, भूमि, देवलोक की कुमारि,
प्यारी जू के रोम ऊपर डारौं सब वारि ॥
आनँदकंद नंदनंदन जाके रस रंग रच्यौ,
अंग वर सुधंग नच्यौ मानत हँस हारि ।
ताके बल गर्व भरे रसिक 'व्यास' से न डरे,
लोक - वेद, कर्म - धर्म छाँड़ि मुकुति† चारि ॥४२९

राग गौड़मलार

बनै न कहत राधा कौ रूप ।
बिहँसि बिलोकि बिमोह्यौ मोहन, बृंदावन कौ भूप ॥
अंगनि कोटि अनंग सोमकुल, एक अंग कौ कूप ।
नख - सिख भोग भोगवत नागर, अधर-सुधा-रस तूप ॥
लेत उसास बास मुख महकत, मनहुँ अगर कौ धूप ।
मानहुँ चंपे कौ बन फूल्यौ, गोरौ गात अनूप ॥
बाम पयोधर राजत मानहुँ, सुरत-जग्य कौ जूप ।
'व्यास' स्वामिनी सों बिहरत हो, मोहन लगत सरूप ॥४३०

राग कल्याण

गुन-रूप की अवधि राधिका, तैं रसिक‡ राइ सिरोमनि बस कियो
तन - मन - धन - जोबन भूषन, प्रानप्यारे कैं और न बियौ ।
बोलत हँसत मिलत चितवत ही, मोहन कौ चित चोरि लियौ
नवनिकुंज बृंदावन बिहरत, सीतल करत 'व्यास' कौ हियौ ॥४

---

‡ परै (च, छ); मेरे (क);   § परै (च, छ); परयौ (क)
* नागलोक (च, छ); नागओक (क);   † मुकुति (च, छ); मुक्ति (
‡ रसिक (क); परवसी (ग, च, छ);

राग कमोद

कुंज-कुंज प्रति रति बृंदावन, द्रुम - द्रुम प्रति रति - रंग ।
बेलि-बेलि प्रति केलि, फूल प्रति, फल प्रति विमल बिहंग ।।
कंठ - कंठ प्रति राग - रागिनी, सुर प्रति तान - तरंग ।
गौर-स्याम प्रति, स्याम-बाम प्रति,अँग-अँग सरस सुधंग ।।
मुख प्रति मंद हास, नैनन प्रति सैन, भौंह प्रति भंग ।
रास-बिलास पुलिन प्रति, नागर नागरि प्रति कुल संग ।।
रूप - रूप प्रति गुन - सागर, सहचरि प्रति ताल - मृदंग ।
अधरनि प्रति मधु,गंडनि प्रति विधु,उर प्रति उरज उतंग ।।
कहत न आवै सुख, देखत मुख मोहे कोटि अनंग ।
'व्यास' स्वामिनी राधहिं सेवत, स्याम धरै बहु अंग ।।४३२।।

राग देवगधार

सर्वोपरि स्याम की दुलिहिनि बहू ।
श्री बृषभानु भूप की बेटी, नंदराइ की पुतबहू ।।
बृंदावन - मंदिर की देवी, सुख - रति तरत सरद हू ।
रूप-अवधि गुन की निधि राधा, चरन-कमल-सरनैं रहू ।।
रसिक अनन्य धर्म आराधन, साधन की धारा गहू ।
केलि रँगीली बेलि, उरज फल, गंड - अधर मेवा महू ।।
अंग-अंग सत रंग भोगिया, भोग-भवन भामिनि सहू ।
बन अनुपम मनि मन जु सुरासुर-पद कौ 'व्यास' उपानहू ।।४३३।।

राग कल्याण

गौर अंग रंग भरी, दुसह बिरह - सिंधु तरी,
सुख गिरवर सर सुंदर स्याम - बंदिनी ।
प्रानरवन बदन-कमल, नयन-कुमुद मुदित करन,
हास - रस - बिलास सरद* - सूर - चंदिनी ।।
मोहन - मन चपल मीन, खंजरीट सरन† (‡),
रोमावलि नील छबि कालिंद - नंदिनी ।

---

* सरद (ग) सरस (क) † सरन (ग,छ); सरस (क)

‡ (क) प्रति मे संकेत किया गया है कि लिपिकार को किसी विवशता से इस स्थल पर कुछ छोड़ना पड़ा है। तीन मात्रा का शब्द यथा 'दीन' आदि छंद की गति के अनुसार उपयुक्त बैठता है। अन्य किसी लिखित प्रति मे यह पदांश मिले तो पाठक सूचित करने की कृपा करें।

—संपादक

नव-नव निज बृंदावन, सुरत - पुंज कुंज-रवन,
प्रानवल्लभा करेनु दुख - निकंदिनी ॥
नागर वर कर मराल मधुप जीव जीवका,
पीन तुंग उरज, जलज सुदृढ़ फंदिनी ।
कृष्न - राधिका - प्रताप, सुनत दूरि होत ताप,
नेति-नेति वदति 'व्यास' निगम - छंदिनी ॥४

राग सारंग

बनी राधा-मोहन की जोरी ।
नील - पीत- पट भूषन - भूषित, गौर - स्याम तन गोरी ॥
दुख - मोचन चल लोचन चारौं चितै, करत चितचोरी ।
बंक निसंक चपल भ्रुवभंग, अनंग नचावत होरी ॥
नाँचत अंग सुघंग किसोरहिं, सिखवत कुंवरिकिसोरी ।
गावत पियहिं रिझावति नागरि, सुखसागर में बोरी ॥
नव - निकुंज कमनीय कुसुम - सयनीय सुरंग चँभोरी ।
विहरत 'व्यास' स्वामिनी की उपमा कहुँ भामिनि कोरी ॥४३

राग देवगधार

राधाहीं आधीन किसोर
गौर अंग के रंग - सिंधु कौ, पावत नाहिंन हरि आदि - ओर ।
महामाधुरी अधर-सुधा-विधु पियत, जियत उर चामुये कोर
मेघ सुदेस केसकुल देखत, नाँचत गावत मोहन - मोर ।
मानसरोवर ऊपर निवसतु, लाल-मराल कमल - कुच कोर
स्वेद - सलिल - सरिता महँ विहरत, मीन मनोहर चंचल चोर ।
बरषत मेह सनेह बूँद चुनि, हरि - चातिक मधु जोबन-जोर
'व्यास' बैस - बस लूटत दोऊ, छूटत नाहिंन जानत भोर ।

२९. सखी की बिकानि—

राग कमोद

गौर - स्याम सुंदर मुख देखत मेरे नैन ठगे ।
मानहुँ चंदकिरन - मधु पीवत, राति चकोर जगे ॥
सरद - कमल - मकरंद - स्वाद - रस, जनु अलिराज खगे ।
निरखत हास - विलास - मधुरता, लालच पल न लगे ॥
चंचल चारु दृगंचल चितवत, प्रेम - पराग पगे ।
भृकुटि, कुटिल कच, तरल तिलक, चितवत अँसुवा उमगे ॥
नासाभरनि, हँसनि दामिनि - छवि, दसन - फूल सुभगे ।
नखसिग अंग निहारत, आन पथ तें 'व्यास' डगे ४३

उत्थापन समय —

राग सारंग

चलहि तू भेद की माई चाल।
गावत मनि - मंजीर बजावत, मिलवत गति झपताल।।
झलकत अलक, छबीली भौंहैं, चंचल नैन विसाल।
मानहुँ बधिक डरनि बिडरे खजन, मीन, मधुप, मृगमाल।।
पीन गगन कुच उन्नत देखत, पग डगमगत रसाल।
मानहुँ फँदन के संभ्रम, मग तजत गयंद, मराल।।
मंद हँसनि घूँघट में सोभित, उर लटकत लटजाल।
'व्यास' स्वामिनी लौ तन देखत, स्याम भयौ बेहाल।।४३८।

राग षट

छूटी लट न सम्हारति गोरी, अंचल डारैं आवति।
घूमत नैन, बैन तुतराने, लटकति अंग नचावति।।
स्याम-अंस भुज धरैं करे बस, हँसनि भौंह मटकावति।
सावधान परबसी यही रस, रीझि अधर - मधु प्यावति।।
कबहुँक रति बिपरीत मीत पर, सुख - वारिद बरषावति।
इहिं विधि बिहरत संतत देखत 'व्यासदासि' सुख पावति।।४३६

राग भूपाली

आवत सखि, चंदा साथ अँध्यारी।
घन-दामिनि चकोर - चातिक मिलि, मोरति राका प्यारी।
गज, मराल, केहरि, कदली, सर,बक, चकवा, सुक, सारी।।
खंजन, मीन, मकर,कच्छप, मृग, मधुप, भुजंगिनि कारी।
कमल-मृनाल, लाल, मनि, मुक्ता, हीरा सरसु पवारी।।
'व्यास' स्वामिनी की सुख - संपति लूटत कुंजबिहारी।।४४०

राग कमोद

उनीदे नैननि रसु।
सुरत - रंग रँगमगे लोल, डोल कछुक आलसु।।
सिथिल पलक अलक झलक, झलमलात किरीट पसु।
कमल में अलि अरुझे, जनु प्रात करत गवन सहसु।।
गर्व इतरात अति, गावत गति रन - जय - जसु।
स्याम स्वामिनी स्याम छबि 'व्यास' रसिक सरवसु।'४४१

राग सारंग

सुरत-रँग राचे ललित कपोल ।
मधुर-मधुर कर रंग नागरहि, छवि न कवनि गति गोल ।
अधर दसन - नख अंक, पीक-रस, पंकिल करत कलोल
अलक पलक प्रतिबिंबित, झलकत मनि-तार्टंक बिलोल ।
बिहँसत लसत बसत पिय नैननि, माँगत मैननि ओल
छूटी लट लटकति कुच-घट पर, नाहिंन नील निचोल ।
जानि कमलदल आनि लचे, लंपट मधुपन के टोल
'व्यास' स्वामिनी भ्रुवविलास लव, मोहन लोने मोल ।

राग पट व गौरी

फिरत सँग अलिकुल - मोर - चकोर ।
घनरु जुन्हाई सरद वसंत, मनहुँ हैं जुगलकिसोर ।
निकट कुरंग-कुरंगिनि आवत, सुनि मुरली - धुनि घोर
'व्यास' आस करि त्रास तजत सर, चक्रवाक भरि भोर ।

३१. बंसीवट को खेल—

राग बिलावल

ठाढ़े दोऊ कुंजमहल के द्वारैं ।
राधामोहन मोहि लागतु है, तू देखियौ ,
नैकु नैन भरि सोभित अंग सुठारैं ।
अति आतुर तोहीं तन चितवत इकटक,
पलक लगत नहिं,लोचन-मीन लगैं ज्यों गारैं
'व्यास' स्वामिनी चितवत ही चुँवत ललित ,
विहँसि उरसि पिय लई.विहरत राख्यौ रंग अँ

राग षट व टोड़ी

कुँवरि प्रवीन सुबीन बजावति ।
बंसीवट निकट निकुंजनि बैठी, सुख पुंजनि बरषावति ।
स्याम चुरी पहुँची कर सोभित, अँगुरिनि रंग बढ़ावति ।
ताँति मोर नासारि पान सजि, हँसति दुति मन भावति ।
उपजति राग-रागिनी अद्भुत, मोहन-मृगहिं रिझावति ।
सुर - बंधान - तान - मानहिं मिलि, ग्रीवा-नैन नचावति ।
गावत गीत मीत के स्रवननि, वर संगीत सुनावति
व्यास जानि कुँवरहिं,करुनाकरि अधर-सुधा दै ज्यावति

कोटि काम ह्वै स्यामहिं मोहति, हँसि-हँसि कंठ लगावति ।
लेति उसाँस देति कुच दरसन, परसत सकुचि दुरावति ।।
कुसुम-सयन पर कोक-कलाकुल,प्रगटति पतिहिं सिखावति ।
इहिं विधि रसिकनि की निधि राधा,'व्यास'हिं सुख दिखरावति ।'

राग केदारौ

देखि सखी, खेलत नागर-नट ।
अद्भुत बात कहत नहिं आवै, क्रीड़ा करत चढ़े बंसीवट ।।
मोहन के करजनि में सोभित, प्यारी के कुच-कनक-सुधा-घट ।
मानौ हेम-कमल पर मधुकर, रिस करि हंस गहे कर संकट ।।
चुंबन करत लरत नासा सुक, दारयौ दसन,स्वाद-रस लंपट ।
नैननि चंचल खंजन बिहरत, मधुर बचन बोलत कोकिल रट ।।
रति-रन साजत भाजत नाहिंन,नखसिख तें सब अंग-अंग सुभट ।
यह रस'व्यासदास'हिं न उबीठत,जद्यपि सेत भई सिर की लट ।।४६

राग भूपाली व सारंग

लटकति फिरति जोबन-मदमाती, चंपक-बीथिनि चपक - बरनी ।
रतनारे अनियारे लोचन, दुखमोचन लखि लाजत हरिनी ।।
अंस भुजा धरि लटकति लालहिं,निरखि थके मद-गजगति करिनी ।
बृंदाविपिन बिनोदहिं देखत, बैमानिक (मोहि) बृंदारकघरनी ।।
रास-बिलास करत जहाँ मोहन,बलि-बलि धनि-धनि है बन-धरनी ।
श्री बृषभाननंदिनी के सम, 'व्यास' नहीं त्रिभुवन महँ तरुनी ।।४६

८. भेष-पलट—

राग कान्हरौ

कुँवरि कुँवर कौ रूप-भेष धरि, नागरपिय पहँ आई ।
प्यारिहिं हरि न मिले सकुची जिय,उपजी तब इक बुद्धि उपाई ।।
हौं बृंदावनचंद छबीलौ, राधा - पति सुखदाई ।
तू को प्रिया - प्रिया कह टेरत, तजि बनभूमि पराई ।।
कैसी तेरी तरुनि सुहागिल, कहि मो सौं समुझाई ।
'राधा' नाम गाँव बरसानौ, बड़े गोप की जाई ।।
सुंदर पुरुष स्याम तन मोहन, प्रिया अधिक गोराई ।
तेरी सी उनहारि 'बारिहौं' जब मो तन मुसिक्याई ।।
नकबेसरि के वेह नेह में, मृगमद बांटि लगाई ।
'व्यास'स्वामिनी बिहँसि मिली जब, प्रगट जानि चतुराई ।।४४८

राग बिलावल

दंपति कौ सौ रूप-भेष धरि, द्वै सहचरि बृंदावन खेलति
एक स्याम, दूजी राधा ह्वै, मनसिज-बस कंठनि भुज मेलति ॥
राधा मान कियौ तिहिं औसर, हरि आये दूती ह्वै मनावन
सकुची देखि कहत तब माननि, कत आये तुम बदन दिखावन ॥
फिरि आतुर चातुरता कीनी दगा, दूति कर पाँइ गहे ।
'व्यासदासि' रस-रासि हँसी तब, चारौ लटकि रहे ॥

राग जयतिश्री

कहि धौं तू काकी बेटी ।
बन महँ फिरति अकेली सुंदरि, सहचरि संग न चेटी ॥
तो सी कुँवरि न ब्रज मे कोऊ, मैं देखी गुजरेटी ।
बिनु चोली, अंचल हू डारैं, उरजन मृगज लपेटी ॥
बरषति स्वेद हरषि रोमनि, बेपथ तन जीभ लपेटी ।
प्रानबल्लभा मेरी बिछुरी, बिरह-पीर तैं मेटी ॥
सुनत बचन हँसि बोली राधा कहाँ, बिहँसि पिय भेटी ।
रतिरस राखि 'व्यास' की स्वामिनि, कुंज-महल में लेटी ॥४५

मान करि कुंजनि-कुंजनि खेलनि ।
पिय की पीर जानि व्याकुल ह्वै, स्याम-स्याम करि बोलनि ॥
संभ्रम मिलि भेंटत, मेटति दुख, चिबुक चारु टक-टोलनि ।
सुनहि न, पिय की चिंता तजि, मसि सम लै घसत कपोलनि ॥
सुनत निकट नटनागर डर करि, हँसि कंचुकि-बँद खोलनि ।
कुच गहि चुँबन कियौ, लियौ मनु लट अंचल झक-झोलनि ॥
कोक-कलाकुल प्रगट करन, सैननि मैननि तक-तोलनि ।
'व्यास' स्वामिनी छल बिनु प्रीतम, बस कीनौ बिन मोलनि ॥४

३३. आतुर-रस—

राग सारंग

दुहूँ आतुरनि चतुरता भूली ।
कुंजगली अनबोले डोलत, भेंट भई सुख-मूली ॥
स्याम पीतपट सेज करी, स्यामा निजु कंचुकि खूली ।
रजनीमुख सुख देख परस्पर, चितवत झूला झूली ॥
अंग टटोरि अँगुरियनि बातें, कहत कुँवरि सुख फूली ।
पिय-हिय सुख, दै 'व्यास'स्वामिनी सुरति-डोलि चढि झूली ४५

राग गौरी (जयत्रिताल)

बिहँसि नैननि कछु बात कही ।
दोउ सैननि एकहि सँग सरके, बिषय-बेलि उलही ।।
आतुरता भुलई चातुरता, नाहु सु बाँहु गही ।
रस बाढ्यौ तिहिं अवसर परसत, कछु सुधि बुधि न रही ।।
स्याम कामबस चोली खोली, रबकि गहत कुच ही ।
मनहुँ रंक के हाथ परी निधि, अपुन उमगि उमही ।।
तन सों तन,मन सो मन मिलि झिलि,रति-रस लै निबही ।
'व्यास' सुरंग तरंगिनि जस, सुखसागर मांझ बही ।।४५३।।

आँख मिचौनी—

राग सारंग

चंपक - बीथिन फिरत अकेली, सुंदरता की खानि ।
राति अचानक स्याम, कुँवरि के लोचन मूंदे आनि ।।
काकी नारि, गारि हौं देहौं, तेरी करौं न कानि ।
तूँ पाछे तें छलकरि मोहि, सुनाउ नैक मुख बानि ।।
गजमोतिन के गजरा, चचरि[1] चुरी - मुदरी तुव पानि ।
पीन पयोधर पीठि गड़ावति, दीठि बरावति जानि ।।
सबै मनोरथ पुजऊं तेरे, करि मो सों पहिचानि ।
कृपा-वचन सुनि सनमुख करि, हँसि भेटी सुख निधानि ।
'व्यास' स्वामिनिहिं मिलत कुँवरि कै, भई लाज की हानि ।।४५४।।

मुरली—

राग श्रीराग (धनाश्री)

मधुर-मधुर धुनि आज बेनु बजावत ।
उदित तान - बंधान-रागनि के, रसिक कुंवर श्रीराग अलापत
गुंजनि मधुकर, मोर नाँचत, थिथकित चंद मुदित घन गाजत
बहत सलिता, सर उमगत, पुलकित बृंदाविपिन विराजत
कपोल लोल, सोभित अति निचोल, मंद हँसनि देखि रति-पति लाजत
निरंकुस ब्रजपति जोई जोई करत, सोई सोई छाजत
कुसुत मुदित नभ नाइक, जय जय धुनि सुनि सब ब्रज आजत
ज्ञामिनी रंग,'व्यास' की स्वामिनि सँग,नटवर अंग सुधंगहिं साजत

[1] 'चचरि (ग च छ) 'चार चार' न)

राग सारंग

बजावत स्यामहिं बिसरी मुरली।
मोहन सुर अलाप जब गायौ, राधा चित-त्रित चुरली।
अरुन बरुन दिसि,निसि ससि बिकसित,सकुचत कमलकली
तमचुर-सुर सुनि मिलि बिछुरी, चकवनि की जोट छली।
फूली धरनि सदा गति भूली, तनिसुता न चली
बिकल भँवर, पिक पथिक अचल पथ, रोकत कुंजगली।
स्थावर-जंगम, संगम बिछुरे, सब की गति बदली
कै यह मरम जानि है महलनि, कैरु 'व्यास' बृषली।

राग सारंग

किसोरी सहचरि संग चली।
जिय की बानि हानि करि भानी, सुनि पिय की मुरली।
सुनत सुरनि सज्जित ह्वै लज्जित, उझकति कुंजगली
मैन बिबस ह्वै भई ठेंन बीच ही, मोहन मिलि करम बली।।
उर सों उरज मिलत न भिलत, सुखसागर बढ़े अली,
हरि-मधुपहिं मधु प्यावत 'व्यास' स्वामिनी-कमल कली;

३६. राम— राग सारंग व गूजरी (चंचरी)

नाँचति वृषभानकुँवरि हंससुता - पुलिन मध्य,
हंस - हंसिनी मयूर - मंडली बनी
गावत गोपाललाल, मिलवत झपतार ताल,
लाजत अति मत्त मदन कामिनी - अनी।
पदिक लाल कंठ माल, तरल तिलक भाल झलक,
स्रवन फूल, वर दुकूल नासिकामनी
नील कंचुकी सुदेस, चंपकली कलित केस,
मुखरित मनि दाम, वाम कटि सुकाछिनी।।
मरकतमनि वलय[1] राव, मुखर नूपुरनि सुभाव,
जावकजुत चरननि नखचंद्रिका घनी
मंदहास, भ्रू बिलास, रास - लास सुखनिवास,
अलग लागि लेति सुघर राधिका धनी।।
काम-अंध, कितव-बंध, रीझि रहे चरन गहै,
साधु - साधु कहत रहत राधिका गनी।
भेंटति गहि बाँहु मूल, उरज परस भई फूल,
'व्यास' बचन सानुकूल रसिक जीवनी

राग आसावरो तथा सारंग

वृषभान-नंदिनी सरद-चंदिनी नटति गोविंद-संगे ।
जगतवंदिनी,सूरनंदिनी-तट, वंसीवट, नागर मिलि प्रगट सर सुधंगे ॥
रास रच्यौ गुनि रूप सच्यौ, न विनोद बच्यौ, देसी अँग-अंगे ।
तालि - मानि - बंधानि गति, रतिपति निरखि मन मान - भंगे ॥
कंकन - किंकिन नूपुर - धुनि मिलि, सुनियत ताल मृदंगे ।
हस्तक मस्तक भेद दिखावत, उमगत उरज उतंगे ॥
भृकुटि - विलास, बंक अवलोकनि, मंद हास उपजत रंगे ।
'व्यास' स्वामिनी के रस गावत, तरु - मृग - भँवर - विहंगे ॥४५९

राग सारंग व सूहौ

बिराजमान आन वृषभानकुँवरि गान करति,
रूप - गुन - निधान, सुभग स्याम-भामिनी ।
राग - तान - बान लगत,व्योम जान मान डगत,
कोटि चंद मंद थकित, काम-कामिनी ॥
अंग वर सुधंग नचति,देखि सुघर सभा लजति मेघ - दामिनी ।
भ्रुव-विलास मंद हास, नैन बल विनोद-रासि,
कुँवर कंठ पासि दासि 'व्यास' स्वामिनी ॥४६०॥

राग सारंग

नदित मृदंग राइ, नटत गोपालराइ, गावति तरुनिमनि राधिका बनी ।
नागरि नव रूप गुन - आगरि, अलापति तान बितान तनी ॥
पंचम की धुनि सुनि सुक मुनिव्रत धरयौ, थकित मदन-अनी ।
बछरा न छीरु पियैं,नाद के आनंद जियैं, उलटी सलिता बहै मोहित फनी ॥
द्रुमकुल कुसुमनि बरषत, गुलम-लता खग जय-जय,
'व्यास' स्वामिनी रसिक कुँवर सिर मुकुट-मनी ॥४६१॥

राग सारंग

अंग अंग प्रति सुधंग, रंग गति तरंग संग,
रति - अनंग - मान - भंग मनि - मृदंग बाजे ।
सुर-बंधान गान - तान मान जान गुन-निधान,
भ्रुव-कमान, नैन-बान सुर-बिमान छाजे ॥
उरप,तिरप,सुलप सुघरि,अलग लाग लेति कुँवरि,
बृंदचाल ताल रसिक लाल लाजै ।
'व्यास दासि' रंग रासि, देखति मुख सुख बिलास,
काम विवस स्याम-बाम सुरति साज साजै ॥४६२

राग कामोद

नाँचत नंद-नंदन बृषभान-नंदिनी बनी,
रास - रंग अँग संगीत तरनि - तनया तीरे।
राका निसि सरद - ससी कर रंजित बृंदावन,
फूलि रही जाइ जुही, मलय धीर समीरे॥
घुँघरी पद बाजति कटि किंकिनी, कर कंकन रव,
कंठमाल, स्रवन फूल, चल दुकूल धीरे।
मंद हास, मधुर बैन, भ्रू बिलास, नैन सैन,
देखत सुख मुख भगत ताप, होत हृदै सीरे।
पंचम धुनि गावत पटु, तान सुनि बिमान चिकल,
बृंदारक - बृंद - वधू बिगलित खीरे।
कुसुमावलि बरषि, हरषि स्याम कहैं होरी हो,
बार फेर देत 'व्यास'हिं भूषन पट पीरे॥८

राग बिलावल

स्याम-बाम अंग संग, नाचति गति वर सुधंग,
रास - लास रंग भरी सुभग भामिनी।
तरनि-तनया-तीर खचित, मृदुल कनक रचित हीर,
त्रिगुन सुख समीर, सरद - चंद जामिनी॥
चरन रुनित नूपुर, कर कंकन, कटि किंकिनी धुनि,
सुनि खग - मृग मोहि गिरत काम - कामिनि
पंचम सुर गान तान, गगन सघन भये आन,
भगन मगन जान, गिरत मेघ-दामिनी॥
झपताले चालि उरपि, लेति तिरप मान सुखहिं,
चंद सुघर औघर वर सुलप गामिनी।
नयन लोल, मधुर बोल, भृकुटि भंग, कुच उतंग,
हँसति पियहिं बिवस करति 'व्यास' स्वामिनी॥९

राग आसावरी

नाँचति नव रंग संग, अंग छबिन माई।
गावति मन भावति, गति देसी दिखराई॥
सनमुख रुख स्याम-गौर, गातनि महँ झाई।
बिकसित बदनारबिंद, सोभा अधिकाई॥
चरन पटकि, नैन मटकि, बंक भ्रुव चलाई।
हस्तक चल, मस्तक कल, कुच वर सुखदाई॥
कौतिक-निधि राधा कौ गुन-गान कह्यौ न जाई।
काम-बिवस स्याम 'व्यास' स्वामिनी उर लाई॥४६५॥

राग कल्याण

साँवरे गोरे सुभग गात, सुरति रस चुचात,
देखत नैना सिरात, रोम - रोम सुख साँति ।
सुरंग बीथिन महँ गावत, नाँचत नव अंग-अंग रंग भरे,
अंसनि सुख वाहु धरि, लटकति लट-पाँति ।।
पलटे दुहूँ निचोल, बोलत मधुर बोल,
हँसत कपोल लोल, सोभित छबीली भाँति ।
बाजत ताल मृदंग, देखि 'व्यासदासि',
रंगरासि फूली न अंगनि समाँति ।।४६५।।

राग सारंग

नाँचत गोपाल बने, राधा संग गावैं ।
बृंदावन रास रच्यौ, लाल बेनु बजावैं ।।
गौर - स्याम बाहु जोर, मंडली बनावैं ।
मनहुँ हेम - मरकत - मनि - मालहिं नचावैं ।।
भूषन-पट, तन-छबि, घन-चपलाहिं लजावैं ।
मोर - मुकुट कोटि-कोटि मदन-मद नसावैं ।।
कंकन,किंकिनि,नूपुर-धुनि,मुनिहिं मोह बढ़ावैं।
नाग, तान, मान, सुर-बिमान, बन बुलावैं ।।
उरप, तिरप, सुलप, सुघर,औघर गति भावैं ।
अंग - अंग बर सुधंग, रंग कहि न आवैं ।।
चंद-बदन, द बिहँसि, नैननि मटकावैं ।
कबहुँ नाहु प्यारी गहि, बाहु उर लगावैं ।।
जय-जय धुनि सुनि सुरेस,सुमननि बरषावैं ।
'व्यासदास' रंगरासि चरन - रेनु पावैं ।।४६७।।

ग-अंग सरस सुधंग रंग रचत, नाँचत बृंदावन-चारी ।
त्रिबिध-बरन मन-हरन बसन,तन भूषन भूषित पिय-प्यारी ।।
ताल मृदंग संग, ललितादिक ललित बजावति करतारी ।
मोहन-धुनि सुनि मुनि-मन मोहे,खग-मृग कुल मुनिव्रत धारी ।।
राधा गुन-सागर अगाध पतिहिं रिझावति, गति न्यारी ।
औघर सुघर मान महँ, मोहन धाइ धरी उर सुकुमारी ।।
अदभुत छबि कवि कहि न सकत कछु, हँसत लसत सोभा भारी ।
'व्यास' स्वामिनी के पटतर कहूँ त्रिभुवन में उपमा हारी ४६८

राग भैरव

स्यामा सँग स्याम नचत, रास-रंग गुननि खचत,
सासि अखंड मंडल हँसि सरद-जामिनी।
तरनि-तनय कछू मृदुल, अच्छ ससित रज पुनीत,
त्रिविध-पवन ताप-दवन काम-कामिनी॥
चरन चलित, बाहु बलित, ललित गान, कलित तान,
मान-सुर-बँधान, तिरप लेत भामिनी।
बर सुधंग रंग ताल, मनि मृदंग, चंद चाल,
लाल सुघर, औघर गजराज-गामिनी॥
रिझै पतिहिं गति दिखाइ, लेति कुँवर कंठ लाइ,
स्याम-घटा माँझ मनहुँ दुरति दामिनी।
नैन सैन भ्रू विलास, मंद हास सुख-निवास,
सुनि-सुनि मुनि बोलत जय 'व्यास' स्वामिनी॥४६९॥

राग सारंग

बृषभानकुँवरि गान करत बंसीवट मूले। नाँचत गोपाललाल अंग-संगकूले
कुंज-भवन कोक-कुसल सुरत-डोल झूले।
दसन-अधर-नैन निरखि 'व्यास' विकच फूले॥४७०॥

राग केदारौ

स्याम-नटवा नटत राधिका संगे।
पुलिन अद्भुत रच्यौ, रूप-गुन-सुख सच्यो, निरखि मनमथ-बधू मान भंगे
तत्त थेई-थेई, मान सप्तसुर घट गान, राग-रागिनी, तान स्रवन भंगे
लटकि मुँह मटकि, पद पटकि, पटु झटकि,
हँसि बिबिध कल माधुरी अंग-अंगे
रतन कंकन क्वनित किंकिनी नूपुरा, चर्चरी ताल मिलि मनि-मृदंगे
लेति नागर उरपि, कुँवरि औघर तिरप, 'व्यासदासि' सुघर बर सुधंगे

राग कान्हरौ

सुघर राधिका प्रवीन, बीना बर रास रच्यौ,
स्याम संग बर सुधंग तरनितनया-तीरे।
आनँदकंद बृंदावन, सरद-चंद, मंद पवन,
कुसुम-पुंज ताप-दवन धुनित कल कुटीरे॥
रुनित किंकिनी सुचारु, नूपुर मनि बलय हारु,
अंग रच मृदंग तार, तरल तिरप चीरे।
गावति अति रंग रह्यौ, मोपै नहिं जात कह्यौ,
'व्यास' रस प्रवाह बह्यौ निरखि नैन सीरे॥४७२

राग गौरी

पखावज ताल रबाब बजाइ ।
सुलप लेत दोऊ सनमुख, मुख मुसकित नैन चलाइ ॥
पद पटकनि, नूपुर - किंकिनि - धुनि सुनि न नबेरी जाइ ।
उरप मान मँह, तिरप मान लै, सुर - बंधान सुनाइ ॥
देसी सरस सुधंग सुकेसी, नाँचत पियहिं रिझाइ ।
काम बिबस स्यामहिं तकि स्यामा, रवकि कंठ लपटाइ ॥
गुनसागर की सीवाँ उमगी, कवि न छबिहिं कहि जाइ ।
'व्यास' स्वामिनी कौ सुख सर्वसु, लूटत मोहनराइ ॥४७३॥

राग कान्हरौ

नाँचत नँदनंदन बृषभान-नंदिनी समीप,
देखि चंद भूलि रह्यौ, कलप जामिनी ।
नख प्रति प्रतिरूप ठानि, भूषन उड़बृंद जानि,
आनि चरन भजत, तजत गगन धामिनी ॥
नील पीत बर दुकूल, गौर-स्याम अंग फूलि,
अंग मिले हरषि बरष मेघ दामिनी ।
बर सुधंग रंग रचे, दंपति गति रीझि लचे,
बिगत गर्व अर्ब - खर्ब काम - कामिनी ॥
पंचम स्वर गान, मधुर तान, सुर बँधान,
मान लेति तिरप राधिका गजराज-गामिनी ।
वारि फेरि देत हार, हरि उदार कहत रहत,
हो हो हो साधु - साधु 'व्यास' स्वामिनी ॥४७४॥

राग केदारौ

नाँचत गोपाल बनै नटवर वपु काछैं ।
गावति गति मिलवत अति, राधा के पाछैं ॥
किंकिनि, कंकन, नूपुर धुनि ताल मृदंग सोहैं ।
मंद हास, भ्रू-बिलास, सैननि मन मोहैं ॥
तरुबर, गिरिबर, मृग नाद - बान पोहैं ।
बृंदारक - बृंद - बधू तारक बिधु मोहैं ॥
समीर, नीर पंगु भयौ, बालक न पय - प्यावैं ।
'व्यास' सकल जीव जंतु नाद स्वाद ज्यावैं ४७५

३७. संभ्रम मान—

प्रियतम के हृदय में अपना प्रतिबिंब देखकर श्री राधा जी क

राग सारंग

पिय के हिय तें तू न टरति री।
मेलि ठगौरी खेलि स्याम सों, मोहू तें न डरति री।
मेरौ नाह कि तेरौ कहि धौं, जासों प्रीति करति री
हौं इनकी प्यारी तू न्यारी, हौं ही बकत अरति री।
जद्यपि रूप-रासि तेरे अँग, निरखत आँखि जरति री
जोवन - जोर किसोर-चंद कौ, चितु-चितु चाह हरति री।
इतनौ सुनत कुँवर के तन तें स्वेद - नदी उतरति री
हँसि हरिराम* 'व्यास' की स्वामिनि, लालहिं अंक भरति री।

सखी-वचन मानिनी प्रतिः—

राग गौरी व भैरव

काम-कुंज-देवी जय राधिका वर दायिनी,
निस्चै देहि प्रियै बृंदावन - बृंद - वासिनी
करत लाल आराधन, साधन बल कर प्रतीनि,
नामावलि मंत्र जपत, जय विलासिनी।
प्रेम पुलक गावत गुन, पावन मन भावन अति,
नाँचत गति रीझि, देखि मंद हासिनी
अंगन पट - भूषन पहिराइ, आरसी दिखाइ,
तोरत तृन लै बलाइ, सुख - निवासिनी।।
कर जोरें, चरन गहत, कहत चाटु वचनावलि,
बिनती सुनि दास की, दुखरासि - नासिनी
प्रतिपालय करुनालय मो सों जिनि मान करै,
देहि प्रिय प्रान बदत 'व्यास दासिनी'।।

श्री प्रिया जी के वचन सखी प्रतिः—

राग मलार

तू कत मोहिं मनावन आई।
कोटि बार बरजेहू, पिय चंचल की टेव न जाई।
मो देखत अपनें उर मोहत, सुंदर बसन दुराई
मोहू तें गुन - रूप - आगरी, ता तें तन - मन भाई।

---

* हरिराम (ग, च, छ), हरि दास (क)

मो सों बिरति बढ़ी वा सों रति, करि तब हौं बिसराई।
करि अपराध साधु ह्वै बैठे, तोहिं सिखै चतुराई॥
पट-भूषन तजि, छल करि नागर, तन कुमकुम लपटाई।
'व्यास' स्वामिनी निरखि हँसी, सुंदर हँसि कंठ लगाई॥४७८॥

राग सारंग

रूसैं हू न तजी चतुराई।
सकति बसीठी सीठी जानत, नैननि सैन चलाई॥
आजु नेह सों बात कहत, सुनि स्रवननि रुचि उपजाई।
बिनु काजैं रूठे, झूठौ दुख पावति, कहत लुगाई॥
आपुन सों सब भले कहावत, हरत न पीर पराई।
तब ताकौ अपराध न दुरिहै, कहि दैहै जल-झाँई॥
इतनौ कहि, जमुना महँ मुख देखत ही लाज गँवाई।
स्याम काम-बस 'व्यास' स्वामिनी, राखी कंठ लगाई॥४७९॥

श्री लाल जी के बचन श्री प्रिया जू प्रति—

राग सारंग

बाधा दै राधा कितहिं गई।
बृंदाविपिन अछत प्यारी बिनु, सब बिपरीति भई॥
मेरे मंद भाग तें, काहू पोच प्रकृति सिखई।
मुख सुखरासि, उरज देखे बिनु, क्यों जीवै बिपई॥
ताके प्रान रहैं क्यों जिय, वह अधर-सुधा अँचई।
'व्यास' स्वामिनी बिहँसि मिलत ही, बाढ़ी प्रीति नई॥४८०॥

राग नट

काहे कों लाड़िली, मो सों मान करति।
कृति जैसी, तैसी तुहि जानति, गुन अपगुन कत जिय महँ धरति॥
र कीजै कोप,जाही सों सपने हू न बीच,नीच कामहिं पाछैं हू डरति।
' स्वामिनी तू चतुर-सिरोमनि,औचका पाछै तें नीकैं आँकौ भरति॥

राग सारंग

बिरह-व्याधि तन बाढ़ी, राधा करि उपचारु।
अधरामृत, मृतक-रसाइन, कुच-गुटिका घटिका उर हारु॥
ग-हरन निज चरन-सरोरुह, नैननि धरि कर-पंकज चारु।
ंगराग-अँजना सु देहि अब, अंजन-पीक लीक गदसारु॥
तिपालय, करुना-बरुनालय, तो बिनु अनत नहीं निस्तारु।
, सुनि ब्रत तजि,पिय अँग-अंगनि'व्यास'स्वामिनी करत बिहारु॥४८२

राग-कमोद व कमोदी (इकताल)

मान-दान दै री, प्रान राखि लै ।

विनती सुनि, मुनिव्रत तजि बलि जाऊँ, रिस सलिता की सींव नाखि
तोहि वृषभानु की सौंह बेगि कहि, जिय के प्यारे, अधर-सुधा तू चाखि
विरह-सिंधु हौं मगन होत कुच-तुंबिनि दै, उछारि जो न पत्याहि तौ 'व्यास' स

राग बिलावल

राधा प्यारी, हो मान न कर ।

अंतर-बिरह-दहन तन जारत, बरषावहिं विद्याधर-जलधर ।।
विनु अपराधहिं कोप न कीजै, दीजै हो प्यारी,
प्रान दान धन, राधा ! तेरौ हौ अनुचर ।
'व्याससखी' तन मंद हास करि, कंठ लगाइ लयौ सुंदरवर ।।४

राग केदारौ (ताल चौताल)

मुख-छबि अद्भुत होत रिसानैं ।

नैननि की सैननि महँ सुंदरि, तेरे हाथ बिकानैं ।।
तारे तरले बंक भ्रुव ओट, मनहुँ मनसिज सर तानैं ।
पलक अलक मिलि अनखि करति हँसि, ताहि बदौं जु बखानैं ।।
बिहँसत अधर कपोल औल, मनु माँगत नित पहिचानैं ।
चमकत दसन दामिनी मानहुँ, पट-घट अरि अरुझानैं ।।
फरकत उर, भुज करत चोबि-इत, जघननि स्वेद चुचानैं ।
तोरत अंग रंग भरि पुलकित, रिसि न तजत अकुलानैं ।।
अपनौ काज बिगारति नाहिंन, आतुर कुसल सयानैं ।
'व्यास' उसास लेत दोऊ जन, रचकि कंठ लपटानैं ।।४८

राग केदारौ

मान तजि मानिनि, बदन दिखाउ ।

दुख-मोचन तेरे दरसन बिनु, लोचन जरत, बुझाउ ।।
मंद मधुर मृदु कोकिल के से, अपने बचन सुनाउ ।
पंचम सुर पटतार अलापति, तू पटरागहिं गाउ ।।
परम भाग मेरौ अब सुंदरि, देखे तेरे पाउ ।
'व्यास' स्वामिनी बिहँसि मिली, हँसि बिरह-सिंधु की नाउ।।४८

राग कल्याण

तेरौ जानि कुँवरि, मैं जान्यौ ।

मोहू से अनुचर कौ, तैं अनुराग नहीं पहिचान्यौ ।।
तो बिनु मोहिं अनाथ जानि, अब मदन बान संधान्यौ ।
चंदन, चंद, पवन तन जारत, करतु कछू नहिं कान्यौ ।।
तेरे बिरह भयौ दारुन दुख, कैसैं जात बखान्यौ ।
तेरे — — हौं सुंदरि, 'व्यास' सखी गहि आन्यौ ४८

राग गौरी

तू जिय में बसति, नवल प्रिया प्रान-प्यारी !
दरस-परस राग-रंग उपजत, मान जिन करि हा, हा री !
ही जीवन, तू ही प्रान, तू ही सकल गुन-निधान,
तो समान कोऊ और नाहिंन मो कों हितकारी ।
ास' की स्वामिनि, तेरी माया तें, मैं पायौ है नाम बिहारी ॥४८८॥

• श्री लाल जी के वचन सखी प्रति—

राग धनाश्री

गोरी एक सीख सुनि, हित-बात कहौं ।
प्रान मान सों बैरु बढ़यौ, क्यों दारुन बिपति सहौं ॥
दुख की रात बिहात न सुख बिनु, क्यौं करि कुंज रहौं ।
को तन-ताप बुझावै कहि धौं, का के पाँइ गहौं ॥
जान अधीर पीर को मेटै, जानत जुगति न हौं ।
जोबन-मंतहिं मिलत 'व्यास' कहि, आनँद लै निबहौं ॥४८९॥

राग कमोद

सहचरि, मेरौ सँदेसौ कहियहु ।
करि मनुहारि, वारि जल पीजहु, पद-पंकज गहि रहियहु ॥
जो कछु कहैं किसोरी मो सों, तू सब सनमुख सहियहु ।
मेरे ओर तें बड़ी बेर लौं, कुच-आँकौ भरि रहियहु ॥
मेरे दुख-सागरहिं सोखि, सुख-सागर जल थल लहियहु ।
इतनौ करत 'व्यास' स्वामिनि कहँ, पिय-हिय ओर निबहियहु ॥४९०॥

राग गौरी

कौन सों कहियै दारुन पीर ।
सुनि ललिता, वनिता बिनु छिनु-छिनु, जैसी सहत सरीर ॥
जीवन रहत जीवका बिछुरै, का की कुंज-कुटीर ।
मदन-दहन उर जारत, उमगि बुझावत लोचन-नीर ॥
प्रान पयान करतु अनदेखैं, देखैं धरत न धीर ।
दरसन आस उसास रही, दुखदानि सखिनि की भीर ॥
भूषन दुख-पूषन तन लागत, धूमकेतु सम धीर ।
मालावलि ब्यालावलि, मुकुट कुकुट, बंसी खरतीर ॥
कंटक किसलय-सेज, चंद्रमा-चंदन गरल-समीर ।
सुनत भयानक मोर, चकोर, हंस, पिक, मधुकर, कीर ॥
करुनाकरि सहचरि लै आई, ये दोऊ रति-रनधीर ।
बिहरत 'व्यास' स्वामिनिहिं बाढी, सुरत नदी गंभीर ॥४९१॥

राग जयतिश्री

क्यौं सखी, जामिनि जाम विहात ।
कछु बाधा न रही, राधा बिनु प्रान छूटिहैं प्रात ।।
दुख-सागर महँ मोहिं छाँड़ि गई, भामिनि भर अधरात ।
कुंज-महल महँ, अंधकूप जनु, कोऊ न पूछत बात ।।
हौं बलि ताकी ललिता, मोहिं मिलावै गोरे गात ।
तब नैननि तें मैन निकसिहै, जब देखौं उर जात ।।
सुनि आरतहिं पुकारत, प्यारी पियहिं मिली अकुलात ।
पियत किसोर-चकोर वदन-बिधु, अधर-सुधाहिं चुचात ।।
रति-लंपट नटनागर सरबस, रस लूटत न अघात ।
'व्यास' स्वामिनी के रस-सागर, स्याम-गात न समात ।।४६२

राग केदारौ तथा सारंग

चलि ललिता, क्यौं हू कै बोलौ, राधा माननि आवै हो ।
अधर-बिधुहिं मुख में बरषावै, प्राननि मरत जिवावै हो ।।
बरषत मदन, काम की चोटहिं, उरजनि ओट बचावै हो ।
राधा-बल्लभ गहि भुज-पल्लव, दुखितहिं कंठ लगावै हो ।।
सुनि बिहँसी बृषभान-नंदिनी, लालहिं मोद बढ़ावै हो ।
'व्यास'स्वामिनी आसा पुजवति,हँसि रति-रास नचावै हो ।।४६३।

राग सारंग

नैंक सखी राधा पुनि आवति ।
नूपुर-धुनि सुनियत हैं निकटहिं, विकट बीथिन कोऊ ऐसैं ही गावति
अरु गोरे अंगन कौ परिमल महकत, मैं पहिचान्यौं मदन बढ़ावति
इतनी कहत 'व्यास' की स्वामिनि रहसि-बिहँसि,
पिय-उर लागी, सुरत-पुंज कुंजनि बरषावति ।।४

४०. सखी वचन श्री प्रिया जू प्रति—

राग भूपाली

अजहूँ माई, टेव न मिटति मान की ।
जानति पिय की पीर, न मानत सौंह बबा बृषभान की ।।
कुसुमित सेज भयानक लागत,भवन पवन गति खान की ।
बन की संपति कहि न जात सखि,सहि जात बिष जान की ।।
भूषन-बसन सुहात न गातन, बिकल सुरति नहिं गान की ।
चातिक-कृष्नहिं तृष्ना बाढ़ी, जलधर-अधर सुपान की ।।
सुनि पिय उरज ओटि दै, चोट बचाई, मदन-बान की ।
'व्यास'स्वामिनी हरि-जाचक कौं, दानी प्राननि दान की ४६५

राग कल्याण

के सरीर महँ, अगनित दुखरासि,
कैसैं कै समात री, कहि धौं राधिका प्यारी।
रे जिय कौ संसय तू दूरि करि, जे तीन्यौ फिरि होंइ सुखारी ।।
ही कहैं हम, बहुत समझि, तू अति सयानी जानी कुंजबिहारी।
स'हिं जानि निज दासी, मान मनावौ,
हँसि पियहिं मिलौ श्री बृषभान-दुलारी ।।४६६।।

राग षट

कबहूँ तैं काहू कौ कह्यौ न कियौ।
जुरत बसीठी तैं सीठी करि डारी, हठ करि कछु न लियौ ।।
नैननि तोहि कुटिलता सिखई, और न हेत बियौ।
कठिन कुचन की संगति कौ फल, ह्वै गयौ कठिन हियौ ।।
बिनु अपराधहिं साधु पियहिं, तैं कबहुँ न चैन दियौ।
सरधा हू तें कृपन अधर-मधु, पिय न अघाइ दियौ ।।
सुनत चली आतुर ह्वै, चातुरता बिसरी सखियौ।
'व्यास' स्वामिनी भैंटत ही, मेरौ मोहन मरत जियौ ।।४६७।।

मानि न मानि लड़ैती, तोहिं मनमोहन बोली।
चाहत फिरत तोहि, हौं कुंजनि-कुंजनि बूझत डोली ।।
तो कारन रचि-पचि पिय पठई, चंप-कलिन की चोली।
सुंदर गोरे गात पहिरि चलि, नील सारि पचतोली ।।
पाइन परति करति हौं बिनती, तो सों बोलत बोली।
लेत बलाइ करति हौं हा, हा, अब जिन होइ अबोली ।।
प्रान-दान दै चली अली सँग, प्रीति बढ़ी निरमोली।
'व्यास' स्वामिनिहिं कुँवर मिले हँसि, कंचुकि-नीबी-बँद खोली ।।४६८।।

राग सारंग

नवल नागरी मान न कीजै पिय सों।
बहुत बार मैं तू सिखराई, तो बिनु छिन क्यों–
जीवै बिषई, नागरु रूस्यौ अपने जिय सों ।।
तोहिं जनाउ दयौ मैं चितकैं, तो तें होइ सु तू करि,
को जु बराबरि करि सकै सुंदरि बृषभान-धिय सों।
दीन बचन सुनि उठि चली अली सँग, सहज सनेह रँग,
हँसि कुँवर लगाइ लियौ हिय सों। ४६६

राग स्यामगूजरी

विहरत मोहन कुंज-कुटीर ।

सुनि प्यारी, तो बिनु छिनु पिय के, प्रान न रहत सरीर ॥
छवि दुवि गई मुखारविंद की, तरलित सरस समीर ।
बिरह-दहन तन जरत बुझावत,बरषि नैन-घन पीवत नीर ॥
बेपथ स्वेद सहित‡ पुलकावलि, चलि नहिं सकत अधीर ।
कहत रहत राधा बिनु कब लगि, धरियै मन में धीर ॥
सहचरि 'व्यास' बचन सुनि सुंदरि,बेगि चली पिय तीर ।
कंठ लगाइ लये, अधरामृत प्याइ, हरी तन-पीर ॥

राग गौरी

कहाँ लगि कहियै दुख की बात ।

सुनि राधा, तेरे बिछुरत, पिय के सीदत सब गात ॥
गिर-गिर परत सम्हार न तन की, चलत चरन अरुझात ।
यह वदनारविंद देखे बिनु, लोचन-अलि अकुलात ॥
अंग निरंग भये जैसैं हिम, मारुत सुख तजि लात ।
मन मनसा सँग उड़े फिरत, ज्यौं विटप पुराने पात ॥
दासिनि सों कर जोरि निहोरत, हरि पूछत कुसलात ।
प्रान-अधारहिं बेगि मिलावौ, पुनि पाइँन लपटात ॥
कुंज-भवन कल गावत अलि,सुक,पिक बोलत न सुहात ।
हा राधे, रव रटत अटत बन, नैननि नीर चुचात ॥
तो बिनु भामिनि, कोटि कलप सम, जामिन-जाम बिहात ।
सुनि करुना करि'व्यास'स्वामिनी,पियहिं मिली मुसिक्यात ॥५

राग सारंग

बिहारी बन बिलपत बिरही ।

जो न पत्याउ सुनहि स्रवननि दै, हा राधा, टेक रही ॥
स्याम जपत तो नाम, काम-सर की तन चोट सही ।
तेरे दरस-परस की आसा, छूटत देह रही ॥
तू दाता ह्वै लची, परायौ सरबस चाँपि रही ।
चरन गहत हू कहत कछू नहिं, सैन दै बिहँसि रही ॥
'व्यास' स्वामिनी मिलि प्रीतम कों, बढ़ाइ सुरत रही ॥५०

‡ स्वेद सहित (क), स्वाद रहित (ग, घ, छ)

राग नट

समझि राधिका, कीबौ अब मान ।
तेरे दुसह बिरह, प्रीतम कौ दुखित रहत सखि प्रान ॥
रस में बिरस न कीजै सुंदरि, तो तें को अतिजान ।
दारुन बिपति परत पिय कों, तो बिन सुखदानि न आन ॥
तुव गुन-रूप-सील-छबि क्यों, को कबि पहँ जात बखान ।
मीठी 'व्यास' बसीठी जोरी, मिलि कीनौ बंधान ॥५०३॥

राग सारंग

मान तें होत निसा - रस हानि ।
तो बोलि-बोलि बूझत है री, बेगि चलहि सुखदानि ॥
बिलपत कुंज - कुटीर, कुँवर की पीर धीर पहिचानि ।
मृत भय दामहिं दै अधरामृत, जीवैं सिर धरि पानि ॥
चेतै स्रवनन टेर सुनावहि, इहि रव मधुरी बानि ।
कर सौं उरज मिलाउ चरन करि, गोरी राखहि कानि ॥
आतुर चली अली सँग, चातुरता बिसरी हित जानि ।
'व्यास' स्वामिनी कंठ लगावति, रसिकहिं रति-रस सानि ॥५०४॥

मेरे कहैं न मानति तू, सर्वोपरि मोहन की भामिनि ॥
प्रानरवन सों हिल-मिलि खेलि, सरद की जामिनि ।
तोहि सपथ बृषभान बबा की, मान करहिं जिनि ॥
बलि जाँउ मुखारबिंद की, मुख बिहँसि लसति सैननि गजगामिनि ।
बिछुरि बिराजति नहीं'व्यास'की स्वामिनि,ज्यौं घन दामिनि ॥५०५

काम सौं स्यामहिं काम पर्यौ ।
घन बसंत बैरिनि मिलि तो बिनु, दीन जानि निदर्यौ ॥
हा राधे ! हा कुँवरिकिसोरी ! बिलपत बिपति भर्यौ ।
जैसैं पंक - कूप महँ बिधयौ, कौन करी निकर्यौ ॥
बरसत मनसिज पीर बीर अति, पति धीरज न धर्यौ ।
जैसैं दृढ़ बागुर महँ उरझ्यौ, सु को जु मृग बिड़र्यौ ॥
लाल भयौ बेहाल बिरह बस, पहिलौ सुख बिसर्यौ ।
जैसैं बृषभ बल गह्यौ अजासुत, बचनु न सुख उचर्यौ ॥
कौन - कौन दुख बरनौं पिय कौ, जो दुख करनि कर्यौ ।
'व्यास' स्वामिनी करुना करि हरि कौ सब ताप हर्यौ ५०६

लाड़िली मान मनावौ, पिय कौ मुख चाहि ।
तो बिनु दीन, मीन ज्यौं जल बिनु, ता सों कहा रिसाहि ॥
जलधर-अधर राखि, मोहन - चातिक की मेटि तृषाहि ।
बेगि किसोर - चकोरहिं, चंद्रबदन की प्याउ सुधाहि ॥
जैसी प्रीति रीति कर आये, तैसी ओर निबाहि ।
सुनत बचन करुना करि 'व्यास' स्वामिनी मिली ललाहि ॥

पिय पर जिय तें करहि न रोष ।
तेरे तामस तमुरानौ मोहन - मुख - पंकज - कोष ॥
साँची झूँठी बात सुनत तू, करत नहीं निरजोष ।
कवन भवन तें सुंदर देख्यौ, जाहि लगावत दोष ॥
उठि चलि बेगि जाँउ बलिहारी, अधर-सुधा दै स्यामहिं तोष ।
सुनत बचन प्यारेहिं मिलत ही, मिट्यौ 'व्यास' कौ सोष ॥

राग नट

ठाढ़े लाल कुंज - महल के द्वारैं ।
हा राधा ! बिलपत मनमथ - डर, सुनि री करत पुकारैं ॥
इक - इक मूँठि पाँचसर बरषत, मोहन गात उघारैं ।
अंचल कवच उढ़ाउ स्याम - उर, डारत काम बिदारैं ॥
तेरौ बिरह बढ़्यौ है बैरी, दिनहीं डारत मारैं ।
जीवै मृतक तबहिं नैननि पर, पीन - पयोधर डारैं ॥
नैकु कृपा करि मुख महिं बरषहि, अधर-सुधा-रस-धारैं ।
'व्यास'स्वामिनिहिं मिलि नागर, रति-रन कह भयौ उतारैं ॥

राग कमोद

सब निसि ढोवा करति किसोरहिं, भोर मान-गढ़ टूट्यौ ।
गोरे गात गढ़ौई गाढ़ै, मनु सेनापति कौ सत छूट्यौ ॥
स्याम-अंग सों निकस्यौ ज्यों छल, दल बल तें जनु खूट्यौ ।
उरनि डरनि रनभूमिन छूटी, जद्यपि काम-सुभट हू कूट्यौ ॥
सहस बाँह सुनि राखि सहज ही, सुख-सागर जनु फूट्यौ ।
'व्यास' स्वामिनी मिली बाँह दै, पुनि लचि लालन लूट्यौ ॥

कह्यौ मानि री मेरौ भामिनि !
कुंज-महल तल मोहन बिलपत हा, हा, कैसी कामिनि ॥
बेलिय बिटप न बिछुरि बिराजत, जैसैं घन बिन दामिनि ।
ऐसैं जोटहिं ओट न सोभा, बिधु बिनु सरद की जामिनि ॥
इतनौ सुनि उठि चल अली सँग, गावत अति अभिरामिनि
बीचहिं भेंटि, मेटि पिय कौ दुख, 'व्यासदास' की स्वामिनि ।

सुचित ह्वै सुनि सखि, बात नवीन ।
तेरे कोप धोप दै संगी, दुखित करैं सब दीन ॥
जीव जीवका बिन क्यौं जीवैं, निराधार आधीन ।
हानि दानि की जाचक बिमुखै, कैसैं चलै प्रवीन ॥
पियत पपीहा घन ही कों, बन सेवत जियहिं न मीन ।
प्रान दान कौ देहि चकोरहिं, भयौ चंद्रमा खीन ॥
यह बिचित्र जो मानसरोवर, हंस होय क्यौं छीन ।
बन बसि करत विलाप भोगवत, करि प्रलय प्राचीन ॥
मुनि - मन धीर नहीं पर पीर, सु मिले हरषि कर पीन ।
'व्यास'स्वामिनी सुखहिं दियौ दुख,करिकैं हरि बल हीन ॥५१२

बृंदावन-गोरी, मान री मान निहोरौ ।
तो सी चतुर सुजान आन को, मोहन है अति भोरौ ॥
प्रान-रवन के भवन गवन करि, मन महँ धरि हठ थोरौ ।
अति कै कोप ओप नाहिन कछु, स्याम भयौ तन गोरौ ॥
छमि अपराध साधु तेरौ उर, पिय-हिय सौं हित जोरौ ।
'व्यास'स्वामिनी मिलि प्रीतम सौं,मचकति सुरत हिंडोरौ ॥५१३

स्याम सरोवर कौ जल छीन ।
गोरे गात मेघ बरषे बिनु, तन-मन लागत दीन ॥
आस नितंब बिंब कंदावलि, तुचा कमलिनी - पात ।
नाल-मृनाल जघन-भुज, कर-पद-कमल, सुदल कुम्हिलात ॥
लोचन-हीन मीन पिय के बिनु, कुंडल मकर थके ।
केस - सिवाल निरख भूषन - गन, संख - सीप अटके ॥
रोमावलि उपवन वहि बोलत, बानी कोकिल - कीर ।
मुख इंदीवर बिकसत नाहिंन, कूजत मधुप अधीर ॥
सुरत-जलद-रस पूरित सर, ऊसर बसि 'व्यास' गँभीर ॥५१४

राग नट

कौन समै सखी अबहिं मान कौ ।
सरद निसा गई,अरुन दिसा भई, होत न उदौ भान कौ ॥
दधि-भाजन घनघोरि घमर ब्रज, सुनियत सबद गान कौ ।
चकई बोलत, भँवरन गुंजत, तोहि स्वाद नहिं कान कौ ॥
बिलपत रुदन करत तन छाँड़ै, लोभ करत नहिं प्रान कौ ।
लेत उसास बास लै तेरी, करि बिस्वास सुदान कौ

चौंकि चितै उझकत तेरौ पथ, आहट सुनतहिं पान कौ ।
धरकि धरनि पर लुठत उठत नहिं, डरु करत पंचबान कौ ।।
रति के भूखे पतिहिं परोसति, भोजन अंग - दान कौ ।
'व्यास'स्वामिनी दियौ आचवनु,कुँवरहिं अधर-पान कौ ।।४

राग देवगंधार

रति बिहात न बन-बन भटकैं ।
तो बिनु छिनु जुग सत सम लेखत, मोहन रति-गृह अटकैं ।
संभ्रम हरि जु जुन्हाई भेटत, चकृत पान के फटकैं
तुव पथ जोवत, रोवत ठाढ़े, तर हरि बंसीवट कैं ।
जमुना-जल झंपत अति कंपित, मानत नाहिंन हटकैं
क्यौं करि धीर धरै अलि लंपट, या मुख कौ मधु गटकैं ।
इतनौ सुनि मुनिब्रत तजि नागरि, आई नागर - नट कैं
'व्यास' आस पुजई, हँसि बस कियौ, लालन भौंहनि मटकैं ।

राग गौरी

मान-गढ़ चढ़त सखी कत आजु ।
स्याम कामबस घेरि सुदृढ़ कै, करिहै अपनौ काजु ।।
तेरे सुभट कटकई जोरि, तोरि हित करत अकाजु ।
मन सेनापति मिल्यौ बाहि लै, जाहि लग्यौ सब काजु ।।
मेरौ कह्यौ सुनहि किनि, पियहिं अकोर उरज दै गाजु ।
'व्यास' बचन सुनि कुँवरि निवाज्यौ,स्याम लियौ सिरताजु ।।

राग कल्याण

सँदेसौ कह्यौ दूतिका आनि ।
अनबोलैं सब अंग दिखाये, नागरि लैहै जानि ।।
बदन पसारि निमेषनि बिनु चितयौ, सिर पर धरि पानि ।
कान कुकाइ, गाइ -हँसि नाच्यौ, धरनि गिरनि मुरझानि ।।
पुलकित,कंपित, स्वेद भेद तन, अँसुआनि आँखि चुचानि ।
मूँदत स्रवन, उसास कंठ धरि, फारत पट दुखदानि ।।
बनमाला तोरति, जोरति कर, पाँइ परति मुसकानि ।
सीतल भेंटि कमल उर पहँ धरि, कदलि - खंभ लपटानि ।।
औरौ बिपदा सुनि मुनिब्रत तजि, छूटी जिय की बानि ।
' ' के समुझि बिनोदनि, कुँवर बिपाये आनि ।।५

राग कान्हरौ

कुँवरि करि प्रान-रवन सों हेत ।
तेरे स्वास उसास न आवत, मोहन भयौ बिचेत ॥
तोहू अछत मदन कदनानल, स्यामहि अति दुख देत ।
जलधर-अधर बरषि किनि सींचहि, सुरति बीज कौ खेत ॥
त्राहि, बिरहि-बिपदा तें सुंदरि, कुँवरहि हमहिं समेत ।
तो बिनु बृंदावन हम कहँ भयौ, कारागृह संकेत ॥
आतुर हमहिं निहोरत, पाइँनि परत, बलैया लेत ।
पियहिं मिली हँसि'व्यास'स्वामिनी, सुख सागर कौ खेत ॥५२३

राग कान्हरौ

कहा भयौ जो प्रान-रवन तें बारिक चूक परी ॥
ठाकुर लेइ सँवारि बेगि ज्यौं, सेवक तें बिगरी ॥
तेरे डर कर काँपत पिय के, पियरि परी मुखरी ।
अलकनि ओट, पलक नहिं नैननि, हिरनी सी बिडरी ॥
अधर दुरावत उरहिं धकधकी, सुधि - बुधि सब बिसरी ।
लेति उसास, 'व्यास' प्रभु कौ उपहास करहि जिन री ॥५२४

राग सारंग

गावत प्यारौ, राधा ! तेरो जसु ।
तेरोई नाम जपति अरु बिलपत है, काम कौ स्यामहिं संक सु ॥
कह्यौ न परै दारुन दुख प्यारा, तेरे बिरह मोहन के कंठ रह्यौ असु
'व्यास'स्वामिनी,करुना करि राख्यौ,हरि चाख्यौ अधर-सुधा-रसु॥५

मानसरोवर हंस दुखारौ ।
सीतल कमल - खंड - मंडन बिनु, कैसैं होत सुखारौ ॥
नीर छीर नहिं निबरत प्यासैं, बिलपत ह्वै गयौ कारौ ।
मुकताफल बिन दीन छीन भयौ, जीवन - धन कौ गारौ ॥
खंजन मीन मधुप देखे बिनु, जानत जग अँधियारौ ।
'व्यास' हंसिनी बिहँसि मिली, निजु अंग चुनायौ चारौ ॥५२६

कोप, करति कत बात कहे तें ।
रास रजनि में बिरस होत सखि, पिय सों रूसि रहे तें ॥
धरमुईन रहतु नाइका कौ कछु, पति कौ बिपति सहे तें ।
कीरत बिमल बाढ़िहै जुग - जुग, प्रीति ओर निबहे तें ॥
बलि-बलि जाउँ रहै न कछू सुख, चंचल मन उमहे तें ।
यह सुनि पिय के हिय,लपटानी, 'व्यास'हिं चरन गहे तें ५२७

राग जयतिश्री

करि प्यारी, पिय कौ सनमान ।

मानिनि ! मान मनायौ, बलि जाउँ, सुनि विनती दै कान ॥
सुंदर सुघर रसिक कुंवरहिं तू, निज अनुचर करि जान ।
तू जीवन-धन भूषन हरि कैं, तो बिन सरन न आन ॥
तौ हू अछत मृदुल उर बेधत, विरह - बधिक कौ बान ।
अधर - पान प्रीतम माँगत सखि, दै चिवि उरज प्रधान ॥
मदन भुजंग गरल को औषद, तुव अधरामृत - पान ।
तेरौ प्यारौ जाचक जाचत, तोपै जीवन - दान ॥
तो बिनु दीन छीन बिलपत ज्यौं, जल बिनु मीन तजत है प्रान ।
सु करि जु तो तैं होइ सयानी, तो सौ कौन सुजान ॥
तो बिनु बिपिन भयानक, कुंजमहल अति करत बिथान ।
फूल त्रिसूल, दुकूल दहन सम, चंद किरनि जनु भान ॥
धीर - समीर तीर से लागत, करत भँवर - पिक गान ।
मोर - मुकट सिर, भार हार सखि, चंदन गरल बितान ॥
कहौ कहाँ लौ, कहौं धीर की पीर, सखी जिय जान ।
हा राधे, हा कुंवरिकिसोरी, बिलपत रूप - निधान ॥
सुख - साधन सब दुख-भाजन भये, कहत न बनै बखान ।
करुना-सिंधु 'व्यास' की-स्वामिनि, पियहिं मिली तजि मान ॥५२८

राग मारू व मालव

आवत जात सबै निसि निघटी, अजहू मान निवारियै मानिनि !
तेरौ मग जोवत मनमोहन, तुव पटतर कोऊ और न भामिनि !
तुही राज, तुही पाट, तुही तन, तुही मन, तुही प्रानन की प्यारी गजगामि
कुंज-महल में तलप साजि बैठे, बेगि पाँउ धारियै, 'व्यास' की स्वामिनि

राग सारंग

तुम बिनु स्याम भयौ अति दीन ।

जैसैं जल बिनु जेठ की सलिता, कैसैं जीवत मीन ॥
कृपन गाँव में कैसैं जीवै, जाचक बपुरा छीन ।
तो मुख बिनु बृंदावन कौ सुख, कुँवरहिं लागत खीन ॥
चंदहिं लग्यौ चकोर, व जैसै चातृक घन - आधीन ।
ऐसै तेरे अंगन के रस, जीवत कुँवर प्रवीन ॥
जैसैं सकल कला - गुन प्रगटत, नहिं जानत गुनहीन ।
ऐसैं 'व्यास' स्वामिनी कुच बिच, प्रीतम कीनौ लीन ।५३०

राग केदारौ

रजनी बिहान होत, तुव न मान हीनौ।
काहे कों कुँवरि, ऐसौ हठ कीनौ॥
चंदा द्युति मंद, तारागन-छबि छीनी।
तू अनारिनि सरस लागतु नवीनौ॥
कुमोदनी कुंदन की कली कुम्हिलानी।
रति-रस रिस भरी तैं न प्रीति ठानी॥
अरुन बरन दिसा, रवि प्राची अनुरागी।
नैन-कोर ओर निरख तू न प्रेमपागी॥
बिकसन लागे कमल, मधुप मधुर बोलैं;
बाँके, बड़े टौनहा, ये तोन नैन खोलैं॥
'व्यासदासि' कहत हौं, कह्यौ मान मेरौ।
जानौंगी, जो लालजी सों मान रहै तेरौ॥५

राग जयतिश्री

कहाँ लौं कहियै दुख की बात।
सुनि सुंदरि, तो बिनु सुंदर कौं, जैसैं बीस बिहात।
एक संदेसौ कहि पठयौ पिय, आतुर अति अकुलात
तौ जीबै जो मेरी सखी, दिखावै तू उरजात॥
मोहिं बहुत सुख ह्वै है, मेरी दूतिहिं उर लपटात
मेरौ हियौ सिरैहै दूतिहिं, चुंबन दै मुसिकात।
जो कछु सहचरि कहै, सु मेरौ कह्यौ जानिबौ जात
'व्यास' बिनोद समुझि हँसि प्यारी, पिय सँग बिहरन प्रात।

कहौं का सों, समुझै को बात?
जानै जान सयान कहैं हू, मानै मन अकुलात।
कैसैं जियै चकोर कहा पियैं, चंदहिं गगन समात
पियै न बारि बिडारयौ चातृक, करि मन घन की घात;
दीन न होत मराल, मीन-कुल सर सूखै मरि जात
माधूकरी न माँगत मधुकर, गिरत कमलदल पात।
बारि बियारि झकोर दुखित ह्वै, गिरि पर मेघ चुचात
कनक चुराये बिनु कनक चुरी ये, सहज सुखी न अघात।
लगि दुहुँदिसि धावत, व्याकुल मृग न बुझात
'व्यास'बचन सुनि मुनि मिल खेलत,सोच सकुचि पछितात

राग नट

तू नैक देखि री, प्रीतम कौ मोहन - मुख ।
न पर, अरुन-स्याम छबि, मनौ बिधुकुल सों करत कमल रुख ॥
चन जल-बिंदु बिराजत, मनहुँ मधुप मधु बमत मानि दुख ।
जानि आनि उर लालहिं, 'व्यास' स्वामिनी देति सुरत-सुख ॥५२

राग पट (गजतिताल)

सुनहि सुचित ह्वै सुंदरि, गुपत सँदेसौ स्याम कह्यौ ।
कठिन दह्यौ जिहिं वारक चाख्यौ, ताहि न रुचित मह्यौ ॥
सुबसु सरोवर सूखि गये हू, दादुर धीर रह्यौ ।
पावस ऋतु बिछुरैं सब मूखै, चातक सवै सह्यौ ॥
उपहति बहुत सहति मृग, बन सों प्रीति-रीति निवह्यौ ।
एक-एक अँग के सुख बिनु, दुख-सागर नहिं परतु थह्यौ ॥
सब कोऊ अपनौ हठ पोषत, करि जेही जु गह्यौ ।
'व्यास' स्वामिनी सुनत मिली हँसि, करुना-सर उमह्यौ ॥५३५॥

राग केदारौ व कमोद

पीन पयोधर दै मेरी दीनै ।
अधर-सुधा मधु प्याइ जिवावहु, बिरह-रोग बलहीनै ॥
ओली ओटत चोली के बँद, खोलन दै आधीनैं ।
कुच गहि चुंबन - दान लैन दै, चरन-कमल-रज-लीनैं ॥
अपनै अंग नगन के घर में, मिलन दै स्याम नगीनैं ।
'व्यास' स्वामिनी सुनि रति-सलिता, पोषत मोहन-मीनैं ॥५३६॥

श्री लाल जू की उत्सुकता—

राग बिलावल

बोलन लागे री, तमचुर मधुर बोल ।
अज हूँ न आई प्रान प्यारी, फूलन लागे कमल - टोल ॥
वरुन - दिसा खसत ससि, कंज-कोष मधुप लोल ।
मदन - दहन ताप ज्वलित, अंग-राग कुसुम झोल ॥
पिय-बिलास† सुनत निकट, मिलत कंप पुलकित कपोल ।
बिहरत 'व्यास' स्वामिनी मोहन, बस कीनौ बिनु मोल ॥५३७॥

---

† बिलास (क, ग) बिलाप (च छ)

राग धनाश्री

देखि धौं री, इहिं मग राधा आवति ।
तन चमकत, भूषन-धुनि सुनियत, अरु गुन-गति लै गावति ।
अद्भुत राग-रागिनी-बन बरषत, आनँद-सिंधु बढ़ावति
सौंधौ महकि रह्यौ तन गोरे, अंग परसि सब ताप बुझावति ।
'व्यास' स्वामिनी उझकि औचका, पियहिं हिय सों लावति ।

४२. सखी वचन श्री लाल जू प्रति—

राग कान्हरौ, बागेश्वरी (मूलताल) व सारंग

अब हीं आवैगी पिय, प्यारी ।
काम पोच अति, स्याम सोच तजि, सुनहु मते की—
बात स्रवन दै, ननक रही उजियारी ।
जैसी तुमहिं चोंप, तैसीयै उनहिं जानि,
मोहि संतोष आनि, जाउँ बलिहारी
धीर धरहु मन, पीर सहहु तन, तुम जु कहावत—
सूर सब ही विधि, कहा करै वह नार
अरबरात, हौं अब ही देखि आई,
बिकट वीथिनु धाई, देह न सिंगारी
'व्यास' की स्वामिनि दामिनि सी चमकति, लखी न परति,
अँग - अँग लपटानी बिहरत विहँसि बिहारी ॥

४३. सखी के चोज के वचन—राग कमोद

कहि या सों तोहिं कौन सिखाई ।
तू गोरी यह स्याम किसोरी, धन्य तुम्हारी माई ।
इहिं बन कब कौ वास तुम्हारौ, कहि मो सों समझाई
अदभुत रूप तुम्हारौ देखत, नैननि नहीं अघाई ।
तुम राधा मोहन हू तें सूझत अंग-अंग अधिकाई
कोटिक कवि रसना पावैं हू, मुख-छबि कहत न जाई ।
इतनौ सुनत मान तजि मानिनि, कौतिक देखन आई
'व्यास' स्वामिनी नागर हँसि कैं, सरस हियें लपटाई ।

राग देवगिरि

आज बन एक कुँवरि बनि आई ।
ताहि देखि रीझे मनमोहन पिय, ता तें तू न मनाई ।
बाजत ताल मृदंग संग उहि, अंग सुघंग दिखाई
गावति, हस्तक-भेद दिखावति, नख-सिख स्याम बनाई

रास-रसिक सों हिलमिलि खेलति,सब बिधि सुघर सुहाई ।
मोहिं पत्याहि न, तौ तू ही चलि, अलि बृपभान-दुहाई ॥
वचन मानि धुनि सुनि दुख-सुख करि,सहचरि उर लपटाई ।
थिन कुच सकुच समझि'व्यास'स्वामिनी,हँसी रसिक रिझाई ॥५४

राग बिलावल

ऐसी कुँवरि, कहाँ पिय पाई ।
राधा हू तें नख-सिख सुंदर, अब लौं कहाँ दुराई ॥
का की नारि, कौन की बेटी, कौन गाँव तें आई ।
सुनी न देखी ब्रज - बृंदावन, सुधि-बुधि हरति पराई ॥
या कौ सुभग सुहाग भाग अति, भाम जुवति मन भाई ।
या ही के रस - बस ह्वै तुम, बृषभान-सुता बिसराई ॥
यह बिनोद सुनि देखन आई, रचकि कंठ लपटाई ।
'व्यास' स्वामिनी बिहँसि मिली तहाँ,सरस सुघंग नचाई ॥५४२॥

राग धनाश्री

सुनि राधा,मोहन हौ दूती, कपट बचन कहि-कहि बौराई ।
तोहिं मनावन मोहिं पठै पुनि, दूती एक अनत दौराई ॥
मैं अपनौ सौ बहुत कियौ, पै कहा करौं लंपट अधिकाई ।
अति सूरौ जो चनावचूरौ, तौ पूरौ गिरि भेद न जाई ॥
चलि हौ कौतिक तोहि दिखाऊँ,सुंदरि एक ललन पै आई ।
तोहू तें गुन - रूप - आगरी, मानहुँ रंक परम-निधि पाई ॥
इतनौ सुनि उठि चली अली सँग,रुचिकरि कुँवरि कंठ भुज नाई ।
अंगनि-अंग परसि हँसि दोऊ,'व्यास'गिरे आतुर मुसक्याई ॥५४

राग गौरी

सुनि गोरी, तै एक किसोरी बन में देखी जात† ।
ता बिनु दीन छीन हौं डोलत, कोऊ न बूझत बात ॥
तेरी सी उनिहारि, नारि के सबै लुभारे गात ।
चितवत चलत अधिक छबि उपजति,कोटि मदन-सर-घात ॥
तू अपनौ ब्यौरौ कहि मो सों, अधर नैन मुसिक्यात ।
'व्यास' स्वामिनिहिं बार न लागी, स्याम-कंठ लपटात ॥५४४॥

† यह पद 'किसोरी देखी बन मे जात' स्थायी से भी प्रति (ग, च, छ),
र लिखा गया है ।

राग गौरी

मोहन की देही उलट रची री ।
भई स्याम तें पीत घरनि, दुख - तरनि प्रताप तची री ।
नैननि - सर बूड़त, विरह - दहन तें जरत बची री ।
हा राधे, रव स्रवन सुनत ही, अजहूँ न निठुर लची री ।।
चंदन, चंद, पवन, बन घन करि, दुख की रास रची री ।
तो बिनु अनत न सरन मीत कहँ, मीति सभा विरची री ।।
इतनी सुनि उठि चली अली सँग, अंग सुधंग नची री ।
'व्यास' स्वामिनी रति-रस बरषति, रति-रन-कीच मची री ।।

राग बिलावल

कहूँ न पत्यैहै कोऊ बात ।
स्याम काम - बस गौरे ह्वै गये, राधा के से गात ।।
जैसोई ध्यान धर्‌यौ तैसेई भये, अधर, गंड, उरजात ।
नख-सिख अंग अनंग मोहियत, देखत नैन सिरात ।।
वह गुन - रूप तो हू मे है सखि, फूल झरत मुसिकात ।
गज-मराल-गति निरखत मोहे, रति - मनसिज संघात ।।
अपनी जोरिहिं भेंट्यौ चाहत, ललिता की बलि जात ।
तै ही रस में विरस कियौ, अब कौन काज पछितात ।।
कंठ बाहु धरि चली अली कैं, सुनि अद्‌भुत अकुलात ।
'व्यास' स्वामिनी परसत मोहन, धरनि गिरे लपटात ।।

राग देवगंधार

कोऊ राधाहिं देहु जनाउ ।
ठाढ़ी सखी कुंज के द्वारैं, कुँवरि बेग ह्वै आउ ।।
कौतुक एक अचंभे कौ सखि, निरखत नैन सिराउ ।
इन तुम ऐसौ सुन्यौ न देख्यौ, कीजे या पर भाउ ।।
सुंदरि एक हौन आई तव, सहचरि करि चित - चाउ ।
मेटन कहति कुटेव कुँवर की, छलबल करति सहाउ ।।
यह सुनि आनि पाँउ गहि भेंटि, मेटि दुख मुख दिखराउ ।
'व्यास' आस मोहन की पुजई, मिटि गयौ बात बढ़ाउ ।।

राग सारंग

मोहन - मुख देखत छूट्यौ मान ।
नैन लालची हँसि लपटाने, छवि महँ दव्यौ सयान ।

मंद हँसनि सब कौ धीरज हरि, चित चेत्यौ करि गान ।
घूँघट - पट उभर्यौ चलि सैननि, लग्यौ मैन कौ बान ।।
बिकल जानि, गहि पानि, आनि उर, बिरच्यौ सुरत-बितान ।
'व्यास' स्वामिनी पियहिं सुनायौ, रति-रन कौ जु निसान ।।५४८।।

• अभिसार— राग कमोद

मोहनी मोहन की प्यारी ।
सुरत सेज, लै चली अली सँग, कोटि चंद-चाँदिनी उज्यारी ।।
नारीकुंजर कौ लहँगा, अँगिया कारी झूमक सारी ।।
कंकन, किंकिनि, नूपुर बाजत, लाजत कोटि-काम बलिहारी ।
अँग-अँग सोभित नाना भूषन, सहज रूप-गुन - गान सिंगारी ।।
दृष्टि कमल-दल पंथ रच्यौ पिय, हिलगनि उरज माँह अनियारी ।
'व्यास' स्वामिनी के सँग बिहरत, बिरह चमूँ अनिआस बिडारी ।।५४६।

रजनीमुख सुखरासि चली ।
पिय सुरति - सेज ससि स्याम, बाम अँग रँगी अली ।
बदन चंद कर रंजित, अबिध सुगंध सुबासित कुंज गली ।।
कुमकुम-रज-कपूर - धूर पर, चरननि परसत चंपकली ।
सेज रचत उझकत द्वारैं, हँसि भेटत, मोहन करमवली ।।
लाल तमालहिं अरुझी ललना, कनकलता, कुच फलनि फली ।
रंग रह्यौ क्यों कह्यौ परै, देखत दुरि सुखहिं 'व्यास' बृषली ‡ ।।५५०।।

राग कान्हरौ

चलत तू भेद की माई चाल ।
रचि-रचि चरन धरति मति उपजत, देखि लजाने कीर-मराल ।।
किंकिनि-कंकन-नूपुर-धुनि सुनि, नदत मृदंग सुघंग सुताल ।
हस्त-कमल हस्तकनि दिखावत, मनु मिलवत अरु बाहु-मृनाल ।।
अंचल साँझ न चंचल कुच-घट, मटकि चटकि चित हरत रसाल ।
मुरि मुसक्याति भाँति सों चितवत, काम करत स्यामहिं बेहाल ।।
गावत, काम-बान तकि मारत, बिथकित मोहन-मन मृग-माल ।
इहिं बिधि 'व्यास' बिहरि भामिनि सँग, जीवन कौ फल पायौ लाल ।।५५१।।

---

‡ परै 'व्यास' देखत सुखहि दुरि दुषली (क)
देखत दुरि सुखहिं 'व्यास' बृषली (ग च, छ)

राग बिलावल, बिहागरौ

बिहरत गौर - स्याम सरीर ।
कुसुम - कुल सयनीय रचि, कमनीय भूषन - चीर ॥
सीत सीकर - निकर, मंजुल कुंज - कुंज - कुटीर ।
नदति भृंग, कुरंग, केकी, कोक, कोकिल, कीर ॥
बिकच, बकुल, गुलाब, चंपक, केतकी, करवीर ।
तरनिजा वल बीच कल, पट बास बहत समीर ॥
चंद्र - किरनि तुषार - मंडित, विटप दल वा नीर ।
हरित गिरि - भू - पंथ पंकिल, स्रवत गो-धन - छीर ॥
अमित नव कपूर, कुमकुम, मृगज, मलय, उसीर ।
बिमल बृन्दाविपिन बाढ़ी, सुख - नदी गंभीर ॥
अंग - अंग अनंग - सायक, सहत नहिं तन पीर ।
'व्यास' त्रास न करत स्यामा - स्याम रति - रन - धीर ॥

४५. श्री किसोरी जू के प्रेम के बचन——

राग मलार तथा कल्याण

बोल बँधान न मान करौ, अपराधहिं हौं न छमौंगी ।
लबा-लूतरी अब न मानिहौं, देखत कछू* कहौंगी ॥
दुरुख दुभाषहिं साख नहीं कछु,इकरुख दुखहिं इहौंगी ।
आतुर होइ न चतुर स्याम सुनि, हौं फिरि पाँइ गहौंगी ॥
बरवट लटपट गहत 'व्यास' की, प्रीतिहिं लै निबहौंगी ॥

राग जयतिश्री

कबहूँ अब न रूसिहौं प्यारे ।
सदा तूठि हौं सुख दै प्रीतम, कृतिहिं न मानत कारे ॥
तुम बड़जीव, जीविका हौं, पिय ! तुम अखियाँ, हौं तारे ।
तुम मन, हौं मनसा, तुम चित, हौं चिंता प्रान-पियारे !
तुम सरीर, हौं अंतरजामी, हौ धन, तुम रखवारे ।
तुम बिषई, हौं विषय, भोगता तुम, हौं भोग ललारे !
हौं चाँदिनी, चकोर तुम हौ,हम घन,तुम चातक वर न्यारे ।
हौं जलरुह, तुम अलि, हौं जल, तुम मीन अधीन हमारे ॥
हम - तुम बृंदावन की संपति, दंपति सहज सिंगारे ।
'व्यासदासि' रस - रासि हमारी, लूटत कोटि बिसारे ॥

* कछु (ग, च, छ , कछु न (क)

राग धनाश्री

सुनहि पिय, जिय तें हौं न रिसानी।
तुम्हरे मन कौ मरमु लेत ही, अरु चित काज निसानी ॥
साँचे ही दुख पायौ, सुंदर मुख-कमल-कांति कुम्हिलानी।
मेरौ कोप जानिबौ झूठौ, सदा मौन अभिमानी ॥
प्रगटी ऊपर सबै कालिमा, भीतर कौनैं जानी।
उर न समाति बिपति की संपति, सुनियत कपट-कहानी ॥
लेत उसास आस करि हरि-हरि कहि, सहचरि मुसिकानी।
समुझि विनोद 'व्यास' की स्वामिनि, स्याम-कंठ लपटानी ॥५५॥

राग कान्हरौ

मान करत मैं कीनौ, फिर पाछैं पछितानी।
रस मैं बिरस कियौ क्यौं प्रीतम, सुनत तुम्हारी करुना - बानी ॥
हम तुम एक प्रान द्वै देही, सहस सनेही ज्यौं पय पानी।
बहनि,रहनि,गति,मति,रति एकै,प्रीति-रीति क्यौं जाति बखानी ॥
मेरौ तनु तुम्हरौ भूषन-धन, यहै हिलग सकल जग जानी।
ता तें तुम सौं लाड़ करति हौं, जा तें तुम नाहिंन अभिमानी ॥
जो हौं करति सोई सब छाजत, तुम सौ पति, बन सी रजधानी।
ललिता सी सहचरि अनुगत अब,'व्यासदासि'मम हाथ बिकानी ॥५

३. सेज्या रस—

राग बिलावल

स्याम - सुंदरी सुबेस, बदन - कमल भँवर - केस,
बृंदावन पुन्य देस, नव नरेस प्यारे।
कंठ बाहु मेलि केलि करत, हरत सब कौ मन,
डरत नाहिंन जोबन - जोर बिलसत न सम्हारे ॥
नव निकुंज, सुखनि पुंज बरषत अति हरषत दोऊ,
मंद हँसनि दूरि करत कोटि चंद उज्यारे।
गावत कल, नाँचत बल, भृकुटि भंग, लोचन चल,
अंग - अंग रंग भरे भाँवते हमारे ॥
विचित्र पत्र - सेज रची, बिबिध माधुरी न बची,
निरखि मदन - घरनि लची, तन - पट न सँभारे।
विनोद-रासि राधिका कौ कौतुक सखी बृंद देखि,
'व्यासदासि' दारुन दुख मेटि, प्रान वारे ॥५

राग सारंग

विहरत नवल रसिक राधा संग ।
रचित कुसुम सयनीय, भामिनी - कमल बिमल, हरि - भृंग ।।
अधर - पान - परिरंभन-चुंबन, बिलसत कर जुग उरज उतंग ।
नीवी बंधन मोचत, सोचत, नेति बचन सुनि अधिक उमंग ।।
नैन सैन, परिहास-बचन कहि, हँसत लसत पुलकित भ्रु व-भंग ।
कबहुँक प्यारी मुरली बजावति, मोहन अधर धरत मुख चंग ।।
नवनिकुंज रति पुंजनि बरषत,सुख सूचत, नखसिख अंग-अंग ।
बीच-बीच पंचम सुर गावत, सुनि धुनि विथकित'व्यास'-कुरंग ।।५५

राग सारंग

नमो नंदनंदन-घरनि ब्रजजुवति मुकुट-मनि,राधिका सकल गुन रस-निवासे
राग-रागिनी गान, सप्तसुर पट ताल, सूलक लगिनि मान रंग रासे
सरद-ससि बिमल निसि मृदुल पुलिनस्थली,
नलिन, अलि, हंस कुल, पिक बिलासे
अंग सुघंगमय निपुन अभिनय, नौतन बयनि, कल सयनि, मंद हासे
कुसुम-सयनीय पर कुँवर कमनीय भुज,कुचनि बिच अधर-मधु-रस बिकासे
सुरत-रस-सिंधु मन मगन राधा-रवन,निरखि सखि बृंदावन'व्यासदासे' ।

राजत निकुंज-महल ठकुरानी ।
कुसुम - सेज पर पौढ़ी स्यामा, राग सुनत मृदु बानी ।।
ललिता चरन पलोटत, लाल - दृष्टि ललचानी ।
पाँइ परत सजनी के मोहन, हित सों हा - हा खानी ।।
भई कृपाल लाल पर ललिता, दै आज्ञा मुसकानी ।
आओ मोहन, चरन पलोटौ, जैसै कुँवरनि जानी ।।
आज्ञा दई सखी कों प्यारी, मुख ऊपर पटतानी ।
बीन बजाय, गाय कछु तानन, ज्यों उपजे सुखसानी ।।
गावन लगे रसिक मन - मोहन, तब जानी महारानी ।
उठ बैठी श्री 'व्यास' की स्वामिनि, बृंदावन की रानी ।।५६०।।

४७. बिहार—

राग सारंग

राधे जू अरु नवल स्यामघन, बिहरत बन-उपबन, बृंदावन ।
ललित लता प्रति लता माधुरी, कुंज-पुंज फूले तिन के तन ।।
भँवर गुंज कोकिलाऊ न बोलत मुनि पक्षी बैठे समूह गन ।
नैन चकोर भये देखत हैं, प्रेम मगन भीजे तिन [illegible]

थुन-हास-परिहास-परायन, कोक-कलानि-निपुन राधा-धन ।
कयौ नवल कुँवर वर प्यारौ, लै उछंग पुलकित, आनँद-घन ।।
ऐबसी - हरिदासी बोली, नहिं सहचरि समाज कोऊ जन ।
यासदासि' आगै ही ठाढ़ी, सुख निरखत बीते तीनौं पन ।।५६१।।

राग सारंग

विहरत राख्यौ रंग अँध्यारे ।
परे पीठ दै रूसत हू, दोउ लपटि भये नहिं न्यारे ।।
चंचल अंचल सनमुख ह्वै, लै उसास दै गारे ।
बरबट ही आँको भरि, बंधन करि, हँसि नैन उघारे ।।
अति आवेस सुदेस देखियत, दूरि करत पट फारे ।
'व्यास' स्वामिनी रूठी तूठत, पिय के दुखहि बिसारे ।।५६२।

राग बिलावल

छबीले रंगनि अंग रचे ।
विहरत रसिक निकुंज - भवन में, रति-सुख-पुंज सचे ।।
कितव किसोर चोर लौं सरबस, लूटत रात पचे ।
अति आवेस मदन बैरी पहँ, मारत भले बचे ।।
खंडित गंड कपोलनि उमग, बिदारत कुचनि लचे ।
जनु रन में जूझत द्वै जोधा, तामस तमकि तचे ।।
आसन करत देत मुख वास, सैन रस ऐन मचे ।
मानहुँ रंग-महल मे नटवा, सरस सुधग नचे ।।
निरखि विनोद 'व्यासदासिन' के, नैन कमल विकचे ।
पुतरिनि में प्रतिबिंबित जनु, मरकत-मनि-कनक खचे ।।५६३।।

राग सारंग

अति सुख सुनत छबीली बतियाँ ।
त कुँवर काम-कुंजनि पर, रति-रस-पुंज, सरद-ससि-रतियाँ ।।
के - नीबी-बंधनि झटकत, पटु नागर - नट नाटक घतियाँ ।
स्यास कर कलह करत हू, बिलसत अपनी थतियाँ ।।
त्रल चुंबन करि परिरंभन, सैन चलति अनभतियाँ ।
न लसत भौंहनि मटकावत, उपजत गुन-गन - गतियाँ ।।
तें [illegible] न टरत, हरत दुख, सुख लटकत लट-पतियाँ ।
न 'व्यासदासि बड़भागिनि, नैन सिरावत छतियाँ ।

बृंदावन कुंज-कुंज केलि-बेलि फूली।
कुंद - कुसुम, चंद, नलिन, बिद्रुम-छबि मूल
मधुकर, सुक, पिक, मराल, मृगज सानुकूली।
अद्भुत घनमंडल पर दामिनि सी भूली।
'व्यासदासि' रंग-रासि देखि देह भूली।

राग देवगंधार

बिराजत बृंदाविपिन विहार।
यह सुख बैननि कहि न परै सखि, नैननि को आहार।
गौर - स्याम सोभा - सागर कौ नाहिंन पारावार
बलि-बलि कहत, रहत पिय-हिय पर, पीन पयोधर भार।
सनमुख सैन - सरन सहि सुंदर, कीन्हे मार सुमार
सुधा-सिंधु मुख में बरषावत, बर बिधु अरुन उदार॥
सुजनि भेंटि दुख मेटि बिरह कौ, बिहसत पर्‍यौ बिडारु।
खर नख कुंदकली दसननि पहँ, छलबल नहीं उबार।
कुच - गहि चुंबन करत हरत मनु, कछू न राखत सार।
पट - भूषन अंगनि के अंग, सुरत - रस - रंग सिंगार।
'व्यास' स्वामिनी, कुँवर कंठ पर मानहुँ चंपक - हार॥

राग सारंग

क्रीड़त कुंज-कुटीर किसोर।
कुसुम-पुंज रचि सेज हेज मिलि, बिछुरि न जानत भोर।
स्याम काम बस - तोरि कंचुकी, करजनि गहि कुच-कोर
स्यामा मुंच - मुंच कहि, खंडित गंड अधर की ओर।
नागर नीवी - बंधनि मोचत, चरन गहि करत निहोर।
नागरि नेति - नेति कहि, कर सों कर पेलत गहि डोर॥
मत्त-मिथुन मैथुन दोऊ प्रगटत, बरवट जोबन - जोर।
'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखत, भये सखि लोचन चोर।

बिहरत दोउ ललना - लाल।
रसिक अनन्य सरस सुख - कारन, बैरिन के उर-साल।
कुंज - महल में हेज सेज पर, चंपक बकुल गुलाल
उड़त कपूर - धूरि कुमकुम - रँग, अंगराग बनमाल।
गौर-स्याम परिरंभन राजत, पीवत बाहु मृनाल
मानहुँ कनक बेलि बेली सों, उरझी तरुन तमाल

कुच गहि चुंबन करत, डरत नहिं, पीवत अधर - रसाल ।
नीवी मोचत नेति बचन सुनि, सोचत नहीं गुपाल* ।।
जघनि परस पुलकावलि बेपथ, कल कूजित नव बाल ।
भृकुटि - विलास हास मृदु बोलत, डोलत नयन विसाल ।।
उरजन पर कच सोभित,जनु कमलनि पर चुगत† मराल ।
रति-विपरीति राधिका निरतति, बजति नीवी जति ताल ।।
अंग सुधंग रंग - रस बरषत, हरपत सहचरि जाल ।
बृंदाविपिन राधिका - मोहन, 'व्यास' आस प्रतिपाल ।।५६८।

राग बिलावल

स्याम गूजरी कहाँ,अति कोमल सरल किसोर।
सुनि सुकुँवारि कहाँ अति कठिन, कुटिल नख-सिख अँगतोर।
कहाँ कपोल गोल मृदु मंजुल, कहाँ नखर रस कोर ।
कहाँ बिंबाधर जलधर सम, कहाँ दसन अन्यारे ओर ।।
कहाँ कुँवर कौ साधु हृदय, कहाँ तव कुच पीन कठोर ।
कहाँ अनुराग, सनेह कहाँ दृढ़ बाँहनि बंधन जोर ।।
कहाँ दीन आधीन, कहाँ तुव बंक नैन चित-चोर ।
'व्यास' स्वामिनी रसिक प्रीत के नाते कह्यौ सुथोर ।।५६९।

राग कल्याण

ललन की बतियाँ चोज सनी ।
परम कृपाल चितै करुनामय, लोचन - कोर - अनी ।।
उमगि ढरे दोऊ सुरत - सेज पै, टूटी तरकि तनी ।
परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि, बकसति मौज घनी ।।५७०

राग सारंग व बिहागरौ

बृंदाबन सुख-पुंजनि बरषत कुंजनि-कुंज विहार ।
तहाँ सेज पर दोऊ बिहरत, जीवन - प्रान - अधार ।।
अंगराग, भूषन - पट भूषित, नख सिख - सजि सिंगार ।
अति आतुर चातुरता बिसरी, लूटत मदन - विकार ।।
सोई - सोई करत न डरत हठीले, जोई-जोई परत बिचार ।
मानहुँ कनक - कामिनी कौतुक, जूझत सुभट जुझार ।।
किंकिनि-नूपुर - धुनि सुनि प्रमुदित, उपजत कोटिक मार ।
मानहुँ निडर नट पद पटकत, तोरत अति गति तार ।।
बिंबाधर - जलधर झर लायौ, बढ़े सुरत के सार ।
'व्यास' स्वामिनी कुच-तुंबनि पर, हरें - हरें कीने पार ।।५७१

---

* गुपाल (ग सुलाल (क च, छ) † चुगत (क) चुग (ग, च,

पिय - मधुपहिं मधु प्यावति,ज्यावति राधा कमल - कली ।
अधर - माधुरी छिन न तजत, सेवत कुच कुंजगली ॥
मनहुँ हेम ऋतु हित न तज्यौ, चितु द्वै नहिं बिचली ।
संतत सरद, वसंत कंत कहँ, रति - सुख फलनि फली ॥
सहज प्रीति, रस - रीति - सरोवर, सोभा अंग भली ।
'व्यास' स्वामिनी के रस बस भे, मोहन करम चली ॥५

राग सारंग

स्याम कैं गोरी सहज सिंगार ।
कंचन तन, हीरा दसनावलि, नख मुकता सुखसार ॥
कुच-कलसन महँ प्रान-रतन धरि, अधर-सुधा आधार ।
चरन सिरोमनि कर, नैननि धरि, भुज चंपक मनि-हार ॥
अंग - अंग सेवा रस मेवा, बन - बिहार आधार ।
परिरंभन पट - भूषन चुंबन, चितवनि हँसनि भँडार ॥
पिय के गंड अधर, रसना, सुख सुखमय जूठौ थार ।
'व्यासदासि' दिन पीक पियन, बड़भागिनि लेत उगार ॥५

राग सारंग व बिहागरौ

सखि अनुसरत स्याम रिसात ।
समझि अनादर रसिक उजागर, कंठ - उर लपटात ॥
नैक टेढ़ी भौंह के डर, नैननि नीर चुचात ।
मनहुँ मुक्ता चुनत बाल मराल, चिचु न मात ॥
मनहुँ कंचन - कमल के रस - लोभ, अलि अरुझात ।
वदन चुंबन करत अटपट, सुनत परिभव बात ॥
कुटिल लोचन देखि तिहिं छिनु, स्रवन स्रम-जल गात ।
मनहुँ चंद तुषार बरषत, सरद पुरइन पात ॥
पीठि दीनैं होत सनमुख, करनि गहि उरजात ।
मनहुँ जुग जलजात उपवन, हंस - चरन सुहात ॥
अब न ऐसौ मान कीजै, नमित कैतव गात ।
'व्यास' प्रभु की गति न जानत, बिरस कवि सनिपात ॥५५

राग कमोद

अंग - अंग रंग भरे, सुरति - समर - खेत खरे,
गौर - स्याम काम - धाम कुंज - पुंज राजैं ।
सैना छबि, सैनक फबि, आगैं सजि उरज,
बृंदावन बीर खेत चीर कवच साजैं ॥५

निरखि सखि, स्यामा विहरति पिय सों।
मुख महँ अधर, नाहु बाहुन महँ, बिछुरत नाहीं कुच जुग हिय सों॥
लट में लट, पट में पट अरुझे, तन में तन, मन में मन हिय सों।
मिलि बिछुरी न 'व्यास' की स्वामिनि, ज्यों व खाँड़ मिलि घिय सों॥५७६॥

विपरीत-बिहार—

राग देवगंधार

आज बन बिहरत जुगल-किसोर।
सुरत रास नाँचे सब रजनी, बिछुरत नाहिन भोर॥
कामिनि कुटिल तमकि तन झूलति, रति बिपरीति हिलोर।
कामी करत बयारि, स्रमित प्यारी बसनांचल - छोर॥
बिगलित केस कुसुम-कुल बरषत पिय पर, जनु घन घोर।
अधरामृत माते कोऊ काहू गनत न, जोबन - जोर॥
हरि - उर ऊपर बिलसत दोऊ, पीन पयोधर टोर।
मानहुँ गौर - स्याम सुख - सागर, तरलित तुंग हिलोर॥
मंद हास परिहास - परायन, भ्रकुटि कुटिल चित - चोर।
बिबि मुख - चंद - सुधा-रस पीवत, लोचन चारु चकोर॥
कबहूँ कामिनि के हरि पाँइन, लागत लेत निहोर।
झिलत, मिलत, सुख निरखत 'व्यास'हिं, आनँद बढ़्यौ न थोर॥५७७

आज बन बिहरत जुगल-किसोर।
सघन निकुंज-भवन महँ बिहरत, सहज सयान प्रीति नहिं थोर॥
गौर - स्याम तन नील - पीत पट, मोर - मुकुट सिर होर।
भूषन, मालावलि, सज मृगमद, तिलक भाल भरि ओर॥
प्रथम अलिंगन - चुंबन करि, अधरन की सुधा निचोर।
मानहुँ सरद - चंद की मधु, चातिक तृषित चकोर॥
मंद हँसन मन मोह्यौ भृकुटिन, सैननि चित बितु - चोर।
करजनि जुगल उरज - रस - आतुर, कसि कंचुकि - बँद तोर॥
कोमल मधुर बचन - रचना रचि, नागर नीवी छोर।
सरस जघन परसत सुख उरजत, कुँवरि हँसी मुख मोर॥
कोक - सुरत - रस बीर धीर दोऊ, कहत रहत हो, होर।
सिथिल नैन प्रिय के देखत बिपरीति 'व्यास' रस-रति गोर ५७८

राग सारंग

वन विहरत वृषभान-किसोरी ।

कुसुम - पुंज सयनीय, कुंज कमनीय, स्याम -रँग बोरी ॥
नीवी-बंधन छोरत, मुख मोरत, पिय चिबुक चारु टकटोरी ।
ओली ओढ़ि खोलि चोली, दुख मेटि भेटि कुच जोरी ॥
सरस जघन दरसन लगि, चरन पकरि हरि कुँवरि निहोरी ।
मदन - सदन कौ बदन बिलोकत, नैननि मूँदति गोरी ॥
केस करषि आवेस, अधर खंडित, गंडनि झकझोरी ।
रति विपरीति, पीत छबि स्यामहिं, फबि गई अंगनि रोरी ॥
विविध विहार माधुरी अद्भुत, जो कोऊ कहै सु थोरी ।
जाहि प्यास या रस की ता सों, 'व्यास' प्रीति निल जोरी ॥५

राग जयतिश्री

गोरी-गोपाललाल विहरत वनवासी ।

सघन कुंज तिमिर - पुंज हरत, करत हाँसी ॥
अधर - पान - मत्त, नैन - सैन भुव - विलासी ।
अकोर उरज दै किसोर, बाँधे लट - पासी ॥
कच धरि हरि चुंबन करि, भुजन बीच गाँसी ।
कर अंचल चंचल अति, हित की निजु दासी ॥
बिपरित रति रंग रचे, अंगनि छबि भासी ।
'व्यास' निरखि मुदित, निगम - सिंधु - सींव नासी ॥५

राग बिलावल

निरखि सखि ! बिबिमुख, नैन सिरात ।

रति बिपरीति मीत स्यामल पर, सोभित गोरे गात ॥
लट में लट, पट मे पट अरुझे, उर में उर नव जात ।
मुख में अधर, नाहु बाहुनि में, सुदृढ़ बँधे, बलि जात ॥
चंद-बदन रस नंदकिसोर - चकोर पीवत न अघात ।
'व्यास' स्वामिनी पिय सँग विहरति, मान-सीस दै लात ॥५

विहरत राधा कुंज लसी री ।

सीस सुगंध, मंद मलयानिल, सीतल सरद - ससी री ॥
करुनारस बरुनालय नख-सिख, मोहन अंग गसी री ।
बिपरित रति बितरति पिय ऊपर, अधर - सुधा बरसी री ॥
मानहुँ पावस ऋतु को आगम, घन - दामिनि बिगसी री ।
रूप - सील - गुन सहज माधुरी, रोम - रोम बरसी री ।
यह छबि 'व्यास' सेव-चतुरानन बरनत बैस खसी री ५

राग कल्याण

...ो, रसवती, गुनवती राधा प्यारी,प्रकट करत अति सरस सुधंग।
...तिरप, गति - भेद लेति अति, नटवति, मिलवति तान-तरंग ॥
...ति मोहनलालहिं छाती सों लगाइ लेति,देति अधर-मधु प्रीत अभंग।
...ती रति विपरित गति बितरति, निरखत'व्यास'हिं सुख अँग-अंग ॥

राग गौरी

प्रगटत दोऊ सुरत सुधंग।
नव निकुंज - मंदिर मृदु तालिम, उपजत कोटिक रंग ॥
मनिमय बलय किंकिनी, नूपुर, बाजत ताल - मृदंग।
उरप - तिरप, आलिंगन - चुंबन, लेत सुलप अँग संग ॥
अलग लाग आतुर नागर नट, कर जुग उरज उतंग।
रति विपरीत मान महँ नागर, दसन अधर अनुषंग ॥
लोचन लोल बिलोल चरन - कटि, मंद हास, भ्रू - भंग।
यह छवि कहत 'व्यास' कवि भूलत, सेष अनंत अनंग ॥५८४॥

सुरत-युद्ध—

राग नट

मानौ माई, काम - कटकई आवत।
मद गयंद चंचल आगैं दै, अंचल ढाल ढुलावत ॥
घूँघट - छत्र छाँह, बिगलित कच, मानौ चौंर ढुरावत।
कुच जुग कठिन सुभट,कवची-पट सजि, लट-असि चमकावत ॥
कोकिल सी धुनि गावति, कीर धीर सहनाइ बजावत।
झाँझि भारही, गुंज भँवर, नूपुर नीसान बजावत ॥
अंग - अंग चतुरंग सैन - रव, नव नागरहिं चुरावत।
'व्यास' स्वामिनिहिं बाँह बोल दै,सहचरि हरिहिं मिलावत ॥५८५॥

मदन दल साजै प्यारी आवत।
रजनी मुख मो तन मुख कीनै, सघन निसान बजावत ॥
कवची पहरि सुभट आगैं करि, मदन-गयंदै सनमुख लावत।
नैन बाँधि बानैत बने अति, उर काँपतु जब असि चमकावत ॥
सनमुख धनुष-बान अनियारे, ऐंचत पनच कान लौं लावत।
मोहिं प्रवीन जानिकैं इकलौ निदरति, राग मलारनि गावत ॥
जोवन मदमाती नहिं सकुचत, कोऊ बीच करहु डरपावत।
कहि ब्यौरौ हँसि,जोरि बसीठी,'व्यास'सखी दै बाँह मिलावत। ५८...

राग घट

गौर-स्याम बानै तनैंत सजि, सनमुख चमूँ चली
बाम अंग तामस तकि तमकें, सुनत दाम तवली।
अपनी जय-जग्म कहि ,ममिता करि, जूझन जुगल बली
बिरद बिबस चमकनि आयुध की, सोभा लगत भली।
कुच, कपोल, कर, अधर, नैन, भुव की मति-गति बदली
स्रमित परस्पर अमृत पिवावत, ज्यावत मिथुन-थली।
'व्यास' किसोर भोर नहिं बिछुरत, कोक-कला-कुसली
रसिकनि की रसना रस चाखत, बिकल बिरस बगलो।

राग मारू

आजु अति कोपे स्यामा-स्याम।
बीर खेत बृंदावन दोऊ, करत सुरत-संग्राम।
मर्मनि कंचुकि-वर्म, सुदृढ़ कुच चर्मनि, लट करवाल
अंग-अंग चतुरंग सैन (वर), भूपन रव-दुंदुभि-जाल।
गौर-स्याम बानैत बने, निजु बिरदावलि प्रतिपाल
अंचल चंचल धुजा-पताका, (छवि) केस चमर बिकराल।
भौंह-धनुप तें छूटत चहुँ दिसि, लोचन-बान बिसारे
भेदत हृदय-कपाटनि निर्दय, तोवर उरज अन्यारे।
दसन-सक्ति, नख-सूलनि बरषति, अधर, कपोल बिदारे
घूंघट, धुधी, मुकुट, टोपा, कवची, कंचुक भये न्यारे।
जीती नागरि, हारे मोहन, भुज संकट में घेरे
पीन पयोधर, हार नितंब, प्रहार किये बहुतेरे।
प्रनय-कोप बोली कैतव, अपराध किये तैं मेरे
परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि, छाँड़ि दिये करि चेरे।

राग षट

जोवन-बल दोऊ दल साजत, राजत खेत खरे।
गौर-स्याम सैनिक सनमुख, रजनीमुख कोप भरे।
दस नख-बान प्रहार सहत।दोउ, उरज-सुभट न टरे।
भागत नहिं लागति छति अधरनि, दमनायुध निदरे।
नैन-सिलीमुख छूटत, अंगनि फूटति हर न डरे
मानहुँ मत्त गयंद-गयंदिनि, बन अहुँकार परे।
तन सों तन, मन सों मन अरुझ्यौ, धीर न प्रभु बिचरे
'व्यास' हँसत दोऊ कुंज सैन तें, प्रात समय निकरे

सुरत रन स्यामा-स्याम जुझार ।
बीर खेत बृंदावन बिरचे, कुंजराज के द्वार ॥
नख-सिख अंग सुभट दल साजै, भूषन पट सिंगार ।
सेज सुरति आरूढ़ गूढ़ गति, उपजति कोटि बिकार ॥
कर उरजन सों लरत, टरत नहिं, लागत नख-सर सार ।
सनमुख अधर, दसन सहि जूझत, खंडित गंड उदार ॥
घूमी-घूमि सुभट दोऊ जन, रोस भरे न टरे सुकुँवार ।
अति आवेस केस बिगलित, गिरत न लागी बार ॥
बाँधि चतुर भुज-पासि परस्पर, गौर - स्याम सुख लार ।
'व्यास' स्वामिनी के रसबस, हरि कीने मार सु मार ॥५६०॥

राग बिहागरौ

सुरत-रन बीर दोऊ धीर सनमुख लरत ।
इतहिं नागरि कुँवरि, उतहिं नागर कुँवर,
मल्ल प्रति मल्ल अँग संग तालिम करत ।
अंग प्रति अंग सैनिक सुभट साजि-दल, वलय नूपुर-घोष, रोप-नीसान हत
दसन तोमर सकति सूल, लागत हूल, अधर खंडित, गंड पीक, स्रोनित स्रवत ।
कुंज-सयनीय रथ-रूढ़, सारथि सखी गूढ़, विगलित केस-चँवर धुज फरहरत
खर नखर बान छूटत, कवच कंचुकी, सुदृढ़ फूलत उरज, सूर नहिं डर डरत
बाहु जुग बंधननि बाँध नँदनंदनहिं, राधिका जयति आचरति बिपरीति रत
रमित संग्राम भर, स्रमित स्यामहिं जानि,
'व्यास' निज दासि कर-कमल अंचल चलत ॥५६१॥

राग कल्याण

मेरे तनु चुभि रहे अंग अन्यारे ।
टारे हू तें टरत न सुंदरि, उर तें पीन पयोधर भारे ॥
मेरे नैन - कुरंगनि बेधत, तेरे लोचन - बान दिसारे ॥
तेरे दसन प्रचंडनि मेरे, अधर गंड खंडनि कर डारे ॥
अति निसंक तेरे खर-नखरनि, मेरे गातनि अंग सिंगारे ।
नख-सिख कुसुम बिसिख सर बरषत, 'व्यास' स्वामिनी तो सों हारे ।

बाँके नैन अन्यारे बान ।
चितवनि फंदनि महँ मोहन - मृग, अरुझ गिर्‌यौ बिनु गान ॥
कियौ सहाउ अधर करुना करि, दियौ सुधाधर - पान ।
गहि-भुजमूल कुचनि बिच राखे बाहु, नाहु के प्रान ॥
रति-रन मिथुन लरत भट दोऊ, बाजत दाम निसान ।
'व्यासदास' के नैन - चकोरी, पीवत कोकिल - गान ॥५६३॥

तृतीय परिच्छेद

समय के पद

★

१. श्री गुरु-मंगल—

राग सूहौ, बिलावल (रूपक ताल)

जय-जय श्री गुरु सुकल - वंस उदित भयौ ।
ऊग्यौ है जस-भान, तिमिर जग कौ गयौ ॥
गयौ जग कौ तिमिर सजनी, ताप तीनौं भ्रम घटे
पंच रस कौ तत्व लै, सिंगार प्रेम सुखानि जटे
पियत निसदिन तत्सुखी सुख, नवल तन सहचरि नयौ
जय-जय श्री गुरु सुकल-वंस उदित भयौ ॥
जय-जय श्री गुरु सुकल,भक्ति हित अवतरे ।
कर्म-ज्ञान कौं छाँड़ि, प्रेम-पथ अनुसरे ॥
अनुसरे प्रेम सुपंथ दृढ़, आगम - निगम कथि जो कह्यौ
सुनि गिरा अगनित जीव उधरे, भक्ति-रस भक्तनि-लह्यौ
लोभ - रत अरु क्रोध कामी, चरन परसत सब तरे
जय-जय श्री गुरु सुकल भक्ति हित अवतरे ॥
जय-जय श्री गुरु सुकल सहचरी प्रिया की ।
सदा बसैं नव कुंज चाह लखि पिया की ॥
पिया उर की जानि वपु दो, प्रान एक सहज सदा
दोऊ रस-बिवस जब होत सजनी,प्रेम-रस छवि छकि-मदा
बौरात से त्रिबि बचन बोलैं, सुधि नहीं कछु जिया की
जय-जय श्री गुरु सुकल सहचरी प्रिया की ॥
जय-जय श्री गुरु सुकल,मोहि सरबसु दियौ ।
उरके प्राननि प्रान निवारत सुख्ख हियौ ॥
हियौ सुख बसि चाह सजनी, जुगल हिय दरसाइयौं
अंग - अंगनि चखु - रसना, प्रीत सौं उर - लाइयौ
दई 'व्यासवासि' हिं पीकदानी, बास दंपति हिय नयौ
जय-जय श्री गुरु सुकल मोहि सरबसु दियौ

ी राधा मंगल—

राग अलैया, बिलावल (मूलताल)

श्री बृषभान-किसोरी सुंदरि, बृंदावन की रानी जू।
चंद-बदन, चंपक - तन गोरे, स्याम - घरनि जग जानी जू॥
सुक सनकादिक नारद जाकी, गुपति रति-गति पहिचानी जू।
ताकी महिमा श्री हित हरिवंस, रसिक जयदेव बखानी जू॥
ताहि 'व्यास' कैसैं कै बरनै, हरि सुंदरि मति दैहै जू।
जो नर-नारी भगति चाहि है, सो निसदिन सुनि कैहै जू॥
राधा-मंगल नाम अनभतौ, पतितन कौ पावन है जू।
रुचि करि गावत हरिहिं सुनावत,सो बृंदावन में बसि है जू॥
जो कोऊ कोटि कलप लहुँ, जीवै, रसना कोटिक पावै जू।
तदपि रुचिर बदनारबिंद की, सोभा कहत न आवै जू॥
कोटि मदन - लावन्य सुभग तन, मोहन के मन भावै जू।
नॉचति गावति क्रीड़ति नागरि, पिय नागरहिं रिझावै जू॥
नख-सिख सुंद ता की सोवाँ, कौतिक अवधि किसोरी जू।
रसना एक अनूप१ रूप गुन, जो कछु कहैं सो थोरी जू॥
निसदिन कुंज-भवन प्रीतम सँग, सुरत-सिंधु महँ ।बोरी जू।
एक प्रान द्वै देह रीति यह, प्रीति सबनि सों तोरी जू॥
सहज सिंगार लाड़िली सुंदरि, उपमा तरुनी को है जू।
त्रिबिध बिलास हास रस बरषत, सैननि मोहन मोहै जू॥
झूमक सारी, कारी अँगिया, पीन पयोधर सोहै जू।
कनक-कमल की कली अली जुग,अनी अन्यारिन मन पोहै जू॥
केस सुदेस अलक घुँघराले, तरल तिलक मोहनि मटकै जू॥
ऐन नैन की सैन अन्यारी, प्रीतम के उर खटकै जू।
बेसर गजमोती झलकत, उर कारी लट लटकै जू॥
अरुन कपोल बिलोल तरकुली, खुटिला चुटिलहिं हटकै जू।
दारयौं-दसन बिंब सरसाधर, बदन सदन बीरी जु रची जू॥
मधुर बचन कोकिल सी कूजति,पिय स्रवननि सुख-रासि सची जू
बलि-बलि जाऊँ मुखारबिंद की,कोटि,मदन-सोभा न बची जू।
चितवनि ऊपर सब जग वारौं,जा सों बिधि बेकाज पची जू॥

अनूप ग) अनेक च, छ

पोति जँगाली गरें लरैं द्वै, मुक्ताफल उर माला जू
चौकी चमकति कुच बिच मृगमद, तिलक कियौ गोपाला जू।
बने नवैया अति चौपहलू, सोभित बाहु - मृनाला जू
कर कंकन पौंची मखतूली, चचरि चुरी जु रसाला जू।
मेंहदी नखनि, अँगुरियन मुँदरी, नग अंगनि अति छाया जू
हरि ससार बासना सृंखल तजि, बाँधे राधा भाया जू।
आदि अंत छूटत नहिं जैसैं, विषयनि बाँधति जाया जू
हाव भाव करि पिय पर बरषति, रति-सुख पोषति काया जू।
कटि केहरि किंकिनि तिरनी, जघन नितंबनि भारी जू
चरन महावर, नूपुर बाजत, मनि - चूरा चौधारी जू।
नख-सिख पर भूषन सौंधे भूषित, पिय कुँवरि सिंगारी जू
'व्यास' स्वामिनी के पद-नख की, कमला करति न सारी जू।

३. व्याहुलौ— राग जयतिश्री

मोहन मोहनी को दूलहु।

मोहन की दुलहिनि मोहनी सखी, निरखि-निरखि किनि फूलहु।
सहज व्याह उछाह, सहज मंडप, सहज जमुना के कूलहु
सहज सवासिनि गावति नाँचति, सहज सगे समतूलहु।
सहज कलस कंचन कल भाँवरि, सहज परस भुजमूलहु
सहज बने सिरमौर, सहज भूषनि तन, सहजई नवल दुकूलहु।
सहज दाइजौ बृंदावन - धन, सहज सेज - रति भूलहु
सहज सनेह रूप - गुन 'व्यास'हिं, सपनैं हू जिनि भूलहु।

राग गौरी

सहज दुलहिनी श्री राधा, सहज साँवरो दूलहु।
सहज व्याह बृंदावन, निरखि - निरखि किनि फूलहु॥
सहज कुंज सुख - पुंज, महल मंडप छाये।
सहज सवासिनि दासिन, हरषि मंगल गाये॥
गाइ मंगल कलस पूज्यौ, पाँइ परि विनती करी।
बलि जाऊँ सुखद मुखारबिंदहिं, देखत तन - बेदन हरी॥
विधि रवानी जगति जानी, जमुना कुल- देवी पूजी।
कंचन-मनि मय बन भूमि बिराजै, और मति नाहीं दूजी॥
बिटप - बेलि बुलाइ न्यौते, बिविध बरन बनैं घने।
फल फूल न्यौते देत, लाजैं बरषि, मधु तन - मन सने॥

लगुन सुहाई पून्यौ निस की, ससि-जुन्हाई फूलि रही ।*
तहाँ बाँधि कंकन सरद बिहँसी, हरद-केसरि-छबि लगी ।
रति लिखति मृगमद बदन सरबटि, देखि हँसि आपुन ठगी ।।
बाजे बाजत बैनु धेनु-धुनि, सुनि मुनि मोहै जू ।
ताल, पखावज, रुंज, ढाँभ, भ्रप, भिरनाँ-रब सोहै जू ।।
मन सरस अन्हवाइ दोऊ, अंग पट भूषन सजे ।
निरखि वेस निमेष बिसरे, कोटि मनसिज मन लजे ।।
मोर-मुकुट सिर गुंजा मनि, झलक अलक घुँवरारे जू ।
स्रवननि कुंडल चमकत, सोभित गंड सुढारे जू ।।
दसन-दार्यौं, बदन बिहसत, अधर-पल्लव छबि लगी ।
सुवासारी नाक बेसरि, लाल मोती मनि जगी ।।
नैननि अंजन-रेख अन्यारी, भौंहैं अति चंचला ।
पीत पिछौरी, सारी, चोली पर चौकी चल अंचला ।।
बाँधि अंचल गाँठि चंचल, रास-बेदी पर बने ।
सात भाँवरि देत सब निमि, अंग रँगनि मिलि सने ।।
अधर-सुधा ज्यौनार करत, न अघाने प्रीतम दोऊ ।
दरस-परस मुख-सुख दूधाभाती करत, न लखत कोऊ ।।
मोर-प्रोहित बोलि, जित-तित भँवर-भाटन जसु कह्यौ ।
कुल-बधू-कोकिल गारि दै, मनुहार करत न रस रह्यौ ।।
रूप-निधाना पलटत मुख पाना, चतुर सुजानी जू ।
घर बात लुटाइ मिली बृषभान-नंद की रानी जू ।।
करहिं कंकन, कटि सु किंकिनि, चरन नूपुर बाजहीं ।
मोहनी जोबन चाल देखत हंस-गज-कुल लाजहीं ।।
जुग-जुग दंपति रति-रस बरषत, अति हरषत ब्रजबासी जू ।
गावत गोपी मिलि, नाँचत हरिबंसी-हरिदासी जू ।।
यह ब्याहु बरनत-सुनत अति सचु, भगति-संपति पाइयै ।
'व्यास' बृंदाबिपिन बसिकैं, बहुरि अनत न जाइयै ।।

राग सारंग

विहरत बृंदाबिपिन बिहारी ।
दूलहु लाल, लाड़िली दुलहिन, कोटि प्रान ते प्यारी ।।

---

* यह एक चरण (ग) प्रति तथा (च) प्रति मे प्राप्य है, इसके जोड़ का दूसरा चरण उपलब्ध नहीं है

बाम गौर स्यामल कल जोरी, सहज रूप सिंगारी ।
कुसुम-पुंज कृत सैन कुंज महँ, चंद-वृंद अधिकारी ।।
कुँवर कुँवरि गहि चोली खोली, तिरनी तरलित सारी ।
नागरनट के पटहिं झटक, हँसि मटकत नवल दुलारी ।।
सुरति-समर महँ सनमुख राति, दोऊ अनी अनयारी ।
'व्यास' काम-दल जीत रति-रन, बिहँसि बजावति तारी ।। ५

४. श्री लाल जू की बधाई—

राग गौंड़ मलार

गोपी गावति मंगलाचार ।

कान्ह कुँवर प्रगटे जसुदा कें, बाजत बेनु - पखावज - तार ।
घर-घर तें बनि-बनि सब दौरीं, भूपन-पट सजि-सजि सिंगार
फल, मंगली, दूध, दधि, रोचन, हाथन सोभित कंचन-थार ।
राधा लै वृपभान-घरनि मन, आई चंचल अंचल हार
बिहँसे लटकन ललनहिं देखत, लोचन चार मिलत नहिं यार ।
नाँचत ग्वाल हरपि हेरी- दै, गाइ बुलाइ गिरत न समार
ब्रज-जन घर-घर द्रव्य लुटावत, सरबस दीनौ नंद उदार ।।
मागध, सूत, बंदीजन, प्रोहित, असीसत सबै सिंह-दुवार
'व्यासदास' के स्वामी प्रगटे, ताल उसास कँपे भुव-भार ।

राग सारंग

नंद - वृषभान के हम भाट ।

बंदौं हौं ‡ ब्रज-बल्लभ-कुल कौं, मेट हमारी बाट ।।
भूपन-बसननि आज लुटावहु, अरु गायन के ठाट ।
ऐसौ देहु जु मोल लैंहि हम, मथुरा की सब हाट ।।
इंद्र - कुबेर हमारे मागें, ब्रज के गूजर-जाट ।
बढ़ौ बंस हरिबंस 'व्यास' कौ, वास चीर के घाट ।। ६००

राग गौरी

चलहु भैया हो ! नंद-महर-घर, बाजति आजु बधाई ।
जनम्यौ पूत जसोदा रानी, गोकुल की निधि आई ।।
कोऊ बन जिन जाउ गाय लै, आवहु चित्र बनाई ।
करहु कुलाहल, नाँचहु - गावहु, हेरी दै-दै भाई ।।
छिरकत चोवा - चंदन - बंदन, हरदी - दूब सुहाई ।
माखन - दूध, दही कौ कादौं, भादौं मास मचाई ।।

‡ बंदौं हौ (ग); उदै भयौ (घ, छ)

नाँचत गोपी मंगल गावति, घर-घर तें सब आईं।
बिहँसत वदन, नैन-तन पुलकित, उर आनँद न समाईं ॥
बाजत झाँझ, मृदंग, चंग, डफ, बीना, बैनु सुहाई।
जय-जय धुनि बोलत, डोलत मुनि, कुसुमावलि बरषाई ॥
परम उदार सकल ब्रजबासिन, घर-घर बात लुटाई।
जाचक धनी भये बड़भागी, 'व्यास' चरन-रज पाई ॥६०१॥
नंद-महर-घर बाजै बधाई, बाजै हो माई, बाजै बधाई।
जनम्यौ पूत जसोदा के घर, ब्रज की जीवनि आई।
नाँचत गोपी-ग्वाल रंगीले, अँग-अँग चित्र बनाई।
माखन, दूध, दही, हरदी लै, गोरस-कीच मचाई ॥
बाजत ढोल, मृदंग, रुंज, आवज, उपंग, सहनाई।
राइ गिरी गिरि अरु निसान-धुनि, तिहूँ लोक में छाई ॥
बृषभान राइ सुनि आइ, सबनि पहिराइ, चले सुख पाई।
रसिक अनन्य साधु सब फूले, आनँद हिय न समाई ॥
सुर-नर मुनि जै-जै बोलत सब, चिरजीवौ जु कन्हाई।
देति बसन, पसु, मानिक,मोती, नंद-महरि घर बात लुटाई ॥
ब्रज-बासी लूटत सब हारे, यह लीला अधिकाई।
गोकुल राज नंद-नंदन कौ, 'व्यासदास' बलि जाई ॥६०२॥

राग टोड़ी चौताल व श्रीराग—

चिरजीवै यह महरि जसोदा! बालक तेरौ माई।
सुनहि नंद ब्रजराज भैया से, सरवसु खचु बजाउ बधाई ॥
जीवन-जनम सफल भयौ तेरौ,जाकें जनम्यौ कुँवर कन्हाई।
लोक चतुर्दस भई भैया हो, ब्रजबासिनि की आज बड़ाई ॥
माखन, दूध, दही, हरदी लै, गोपी - ग्वालन दूब बधाई।
नाँचत, गावत, करत कुलाहल, हेरी फेरी दै-दै भाई ॥
तरुनी-तरुन तरल फूले सब, अति उदार घर बात लुटाई।
भई भावती बात मैया से, आजु कृपनता देहु वहाई ॥
नारी पर - पुरषै नहिं जानति, पुरुष न जानत नारि पराई।
हँसि हाथा दै, लै कनियाँ कै, करत परस्पर नंद-दुहाई ॥
भूषन-बसन परस्पर लूटत, खूटत नाहिं इती बहुताई।
प्रोहित-भाट-जसौंदी-जाचक,महाधनिक भये सब सिधि पाई ॥
कोऊ बन जिनि जाउ गाइ लै,आवहु नख-सिख चित्र बनाई।
खग,मृग, गिरि,तरु,सलिता फूली,'व्यास' आस करि कीरति गाई

राग टोड़ी

ग्वाल-गोपी नाँचत गावत, प्रेम मुदित जसुदा-सुत ज्यावत ।
फूले अंग न मात परस्पर, करत जुहार चारु सिर नावत ॥
श्री बृषभान सुनंद उपनंदहिं, आनंद में नंद क्या नचावत ।
अति उदार सर्वसु पसु-वसु दै, रुचि रोचन दधि-दूध बधावत ॥
नैननि-सैननि मटक लटकि हँसि, झटकत पटकत कंठ लगावत ।
मृदु उलारि उडेलहिं मुसकति,सुखमय सुख लखि आँखि सिरावत ॥
मार मच्यौ माखन - गो-दधि कौ, भादौं झर कादौंहिं मचावत ।
जय-धुनि सुनि कुसुमावलि बरषत, हरषत देव निसान बजावत ॥
कंसहिं दुख, साधुन सुख तन-मन,'व्यास' न त्रास, चरन-रज पावत

राग आसावरी (ताल सूधौ)

ब्रज-मंडलन दुख कंदन जनम्यौ, जसुदा कैं माई आज
रंक मनौं निधि पाई, आनँद कह्यौ न जाई, बजत बधाई इकछत राज ।
दूध-दधि-दूब लेत परस्पर, कंचन - मानिक - मोती-भूषन - गन-नाज
छिन-छिन लेत देत हू उमह्यौ, बिमुख नंद कौ नंदन भयौ, गरीब-निवाज ।
कंचन-कलस रस भरे सिर धरि चलीं, मुदित मंगल गावैं जुवति-समाज
गाइ सँवारि ग्वाल अँग-सँग हेरी देत फेरी दै,नाँचत भयौ है भैया सब काज
जै जै जै कहत चहुँ दिसि सुनि-मानव,प्रगट्यौ रसिक कुँवर सिरताज
'व्यास'से पतित अगनित भवतारिबे कौं,राधिका-रवन भयौ सिंधु कौ जहा-

५. श्री लाड़िली जू की बधाई—

राग सूहौ

सुख बृषभान जू के द्वारैं ।

जहाँ राधिका-स्याम बिराजत, अंग अनंग सिंगारैं ॥
बिकट सांकरी-खोर फिरत दोऊ, कुँवर-कंठ भुज डारैं ।
गिरत फूल सिर तें पद परसत, तरुवर किसलय डारैं ॥
तिमिर-पुंज घन कुंजनि महँ, देखत सुख-चंद उज्यारैं ।
दुहुँ दिसि सब निसि बिहरत कामी, बिछुरत नहीं सकारैं ॥
बन की छबि कबि - कुल न कहत, बनै न आल बिचारैं ।
'व्यास' स्वामिनी रूप-गुन सीवाँ, नैननि सुखद निहारैं ॥६०६॥

राग सारंग

आजु बृषभान कें आनंद ।

बृंदावन की रानी राधा, प्रगटी आनँद-कंद ॥
मसुवाविक आईं सब गोपी, प्रफुलित आनन-चंद ।
गो-धन ग्वाल सिंगारि कै आये, ब्रजपति बाबा नंद

फूले ब्रज-बासी सब नाँचत, प्रमुदित गावत छंद ।
माखन-दूध-दही कौ काँदौ, तन कुमकुम मकरंद ॥
देत परस्पर हीरा हाटक, साटक सुरभि अमंद ।
प्रगट भये सुख-पुंज, 'व्यास' के दूरि गये दुख-द्वंद ॥६०७॥

प्रगटी हैं वृषभान-नंदिनी, चलहु बधाई बाजति ।
भादौं मास उज्यारी आठैं, मंद-मंद घन-माला गाजति ॥
ब्रज-बनिता धावति, कल गावति, आवति गाँउ गाँउ तें राजति ।
विगलित बसन, रसन लट लटकत, नाँचति पर पुरुषहि नहिं लाजति ॥
फूलो फिरत नंद की रानी, देति बसन, पसु भ्राजति ।
उदै भयौ ब्रज-बल्लभ-कुल कौ, 'व्यास' सबनि पर छाजति ॥६०

राग जयतिश्री व देवगंधार

आजु बधाई है बरसानै ।

कुँवरि किसोरी जनम लयौ, सब लोक बजे सहदानैं ॥
कहत नंद वृषभान राय सौं, और बात को जानै ।
आजु भैया हम सब ब्रजवासी, तेरेई हाथ बिकानैं ॥
या कन्या के आगे, कोटिक बेटन कों अब मानै ।
तेरे भलैं भयौ सबही कों, आनँद कौन बखानै ॥
छैल-छबीले ग्वाल रँगीले, हरद-दही लपटानै ।
भूषन-बसन बिबिध पहिरैं तन, गनत न राजा-रानै ॥
नाँचत, गावत प्रमुदित ह्वै, नर-नारिनु को पहिचानै ।
'व्यास' रसिक सब तन मन फूले, नीरस सबै खिसानैं ॥६०९॥

राग सारंग

भैया आज रावल बजति बधाई ।

ढोल-भेरि-सहनाई-धुनि सुनि, खबर महाबन आई ॥
वह देखौ वृषभान-भवन पर, बिमल धुजा फहराई ।
दूब लयैं द्विज आयौ तब ही, कीरति कन्या जाई ॥
नंद-जसोदा फूले तन-मन, आनँद उर न समाई ।
मंगल-साज लियैं ब्रज-बनिता, गावति गीत सुहाई ॥
चोवा, चदन, अगर, कुमकुमा, भादौं कीच मचाई ।
'व्यासदास' कुँवरि मुख निरखत, कुसुमावलि बरषाई ६१०

आज बधाई बाजति रावलि ।
श्री बृषभानराय - गृह प्रगटी, स्यामा - स्याम सुखावलि ॥
गृह - गृह तें गोपी बनि आईं, आनंदित नंदावलि ।
मानो कनक - कंज - मकरंदहिं, पियत जियत मधुपावलि ॥
नाँचत, गावत, बैनु बजावत, हेरी देत गोपावलि ।
दधिकाँदौ भादौं भरि लायौ, प्रेम मुदित 'व्यासावलि' ॥

राग मारू

नाँचत गावत ढाढ़िन के सँग, ढाढ़ी हुरक बजावै रे ।
नंदराय कौ सत सखिया, बृषभानहिं माथौ नावै रे ॥
गोप - राज - कुल - मंडन जू की कीरति, को कवि गावै रे
बरनत बदन थके फनपति के, मारद पार न पावै रे ॥
यहै मनोरथ सब ही के जिय, कीरति कन्या जावै रे ।
होहिं सफल सब सुकृति सबनि के, मंगल-मोद बढ़ावै रे ॥
गोपी संग लै महरि जसोदा, मंगल गावति आवै रे ।
ब्रज-वासी उपनंद- नंद सब, घर - घर बात लुटावै रे ॥
यह सुनियत सब काहू कें सुत जाये, जाचक आवै रे ।
यह कन्या कुल-मंडन, 'व्यास' वचन साँचौ मोहिं भावै रे ॥

राग मारू

ढाढ़िन ब्रजरानी जू की, कीरति जू कें आई जू ।
भुवन प्रकास करन कुल कन्या, भान-नृपति-घर जाई जू ॥
मम पति हौं हरषी आनँद सुनि, उर आनँद न समाई जू ।
उमहे सब जाचक त्रिभुवन के, सुनि यह सुजस बधाई जू ॥
कीजै मम अजाच कुलरानी, जाचक अनत न जाई जू ।
दीजै मुकता-रतनि- मनि-मानिक, नग निरमोल मँगाई जू ॥
तौ दीजे, जो सात पीढ़ि के, दोऊ बंस बखानौं जू ।
नंदराय बृषभान नृपति की, कुल परिपाटी जानौं जू ॥
बंस अभीर महाबाहु नृपति भये, कंजनाभ कों गाऊँ जू ।
भुवबल चित्रसैन, अजमीढ़ौ, जस परजन्य सुनाऊँ जू ॥
महाभाग कुल-तिलक नंद जू, तिनि कुल-कीरति गाऊँ जू ।
जिहिं कुल सुभग स्याम-घन-सुंदर, मंगल मोद बढ़ाऊँ जू ।
अब सुनि गोप बंस कों रानी, सर्वोपरि रजधानी जू ।
अष्ट सिद्धि नव निधि कर जोरैं, कमला निरखि लजानी जू

भये रतिभान, सुभान मेरु सम, उदैभान रति मानी जू ।
भान अरिष्ट महिभान ज्ञान बड़, कंजनाभ सुखदानी जू ॥
बड़ौ बंस, बरनन कौं लघुमति, कीरति जाति न जानी जू ।
बंस तिलक प्रगटे जाके कुल, श्री बृषभान बिनानी जू ।
अति आनंदित प्रेम-मगन तन, जस तुव गाइ सुनाऊँ जू ॥
कीरति रानी की कल कीरति, आनंद मोद बढ़ाऊँ जू ।
अब तुम मो कौं देहु कृपा करि, जो हौं माँगन आई जू ॥
अपनी लली पर करि न्यौछावर, दीजै रहसि बधाई जू ।
लै ढाढ़िनि पाटंबर - अंबर, नग निरमोल मँगाई जू ॥
देत असीस कहत ढाढ़िन यौं, दिन-दिन रहसि बधाई जू ।
नाँचत, गावत चली भवन तें, उर आनँद न समाई जू ॥
तिहिं कुल, श्री बृषभान-नृपति की, कन्या 'व्यास' जु गाई जू¹॥६१३

राग गौरी

बाजत आज बधाई, बरसाने में ।
श्री बृषभान राय की रानी, कुँवरि किसोरी जाई, बरसाने में ॥
गोपी सँग लै महरि जसोदा, मंगल गावति आई, बरसाने मे ।
नंदीसुर तें नाँचति, नंद महरि - घर बात लुटाई, बरसाने में ॥
नाँचत, गावत, करत कुलाहल, दधि की कीच मचाई, बरसाने में ।
लटकत फिरत श्रीदामा हँसि-हँसि, दीनी है नंद-दुहाई बरसाने में ॥
व्योम बिमान अमर-गन छाये, कुसुमावलि बरसाई, बरसाने मे ।
भये मनोरथ 'व्यासदास' के, फूल भई अधिकाई, बरसाने में ॥६

राग सारंग (मूलताल व इकताली ताल)

बधाई बाजति रावल आजु ।
श्री वृषभान राय की रानी, प्रगट कियौ आजु ब्रज काजु ॥
घर-घर तें गोपी आईं बनि, नाँचति गावति करि सब काजु ।
गाइ सिंगारि ग्वाल लै आये, रसिक बैन बर बाजु ॥
हरद, दूब, दधि, रोचन अरन्यौ, नर - नारीन समाजु ।
दधिकाँदौ, भादौं झरि बरषत, मुख देख्यौ लै छाजु ॥
जाचक परम धनिक भये, पायौ धनिक इंदिरा लाजु ।
'व्यास' स्वामिनी स्यामहिं दीनौ, कुंज-केलि रस - राजु ॥६१५।

1 इस पद के अंतिम चरण के पूर्व के आठ चरण प्रति (न) तथा (छ) के अनुसार हैं

नाँचत नंद, जसोदा गोरी।
श्री वृषभान - नंदिनी प्रगटी, नंद-नंदन की जोरी॥
व्रजवासिनि कें होड कुलाहल, देखति कुँवरि - किसोरी।
बाल,वृद्ध,नर.नारिनि कें सुख, 'व्यासहिं' प्रीति न थोरी॥६१६॥

६. पालनों-झूलन—

सुबरन - पलना ललना - लाल झूलहु।
अंग-अंग प्रति गुन-गन निरखत, दुख मोचत लोचन अति फूलहु॥
मुख महँ अधर पयोधर उमह, लाहु - बाहु महँ तूलहु।
गौर - स्याम गंड खंडित नख, पद मंडित कबहुँ दुकूलहु॥
सो रस स्रवन सिथिल तन, मन मुख बाढ्यौ आलन भूलहु।
'व्यासदासि' रस - रासि दृगंचल, चंचल अंचल तूलहु॥६१

७. सरद्-रासोत्व— राग सारंग

नाँचति नागरि नटवर - बेप धरि, सुखसागरहिं बढ़ावति।
सरद सुखद निसि-ससि-गो-रंजित, वृंदावन-छवि रुचि उपजावति॥
ताल लये गोपाल लाल सँग, ललिता ललित मृदंग बजावति।
हरिवंसी - हरिदासी गावति, सुघर प्रवीन रबाब बजावति॥
मिस्रित धुनि सुनि खग - मृग मोहित, जमुना जल न बहावति।
हर्पित रोम तन, सोम थकित घर व्योम बिमान गिरावति॥
लेत तिरप बिगलित मालावलि, कुसुमावलि बरपावति।
जय - जय साधु करत हरि सहचर, 'व्यास' चिराक दिखावति॥६१

राग केदारौ तथा कल्याण

रसिक, सुंदरि बनी रास - रंगे।
सरद-ससि जामिनी, पुलिन अभिरामिनी, पवन सुख भवन बन बिहंगे
नीलपट भूपननि नटवर सुबेस धरि, मदन मुद्रा बदन कुच उतंगे
चरन नूपुर रुनित, कटि किंकिन क्वनित, कर कंकनचूरी रव भंगे
चरन धरनी धरति, लेत गति सुलप अति, तत्त थेई-थेई नदति मनि-मृदंगे
चरचरी ताल में तिरप बाँधति बनी, तरकि टूटी तनी, बर सुधंगे
सप्त सुर गान, पट - तान - बंधान में, मान औघर सुघर अंग - अंगे
सरस मृदु हासिनी नैन सैननि लसति, निरख त्रिभुवन-बधू - मान - भंगे
विविध गुन माधुरी सिंधु में मगन,दोऊ लसत, गोरी बसति पिय उछंगे
थकित चंदन - पवन - चंद - मंदार कुल, सोम बरषति 'व्यासदासि' संगे

राग कमोद

नमो जुग-जुग जमुना-तट रास ।
सरद सरस निसि चंद-चंद्रिका, मारुत मदन - सुवास ॥
नटवर बेष सु रेख राधिका, अंग सुघंग निवास ।
देसी सरस सुदेस दिखावति, नैननि नैन मिलास ॥
तिरप मान महँ तान लेत दोउ, सुर बंधान उसास ।
औघर सुघर अतीति अनागति, रीझि जनावति हास ॥
दंपति की गुन-गति निरखति रति, कोटि मदन-मद-नास ।
अति आवेस केस कुल बिगलित, बरषत कुसुम विकास ॥
बाहुनि बीच नाहु गोरिहिं गहि, लेत मधुर मधु ग्रास ।
बिबस भये रस - लंपट जानति, रस महँ लाज-बिनास ॥
'व्यास' स्वामिनी पियहिं हियैं दै, लीनौ कुंज - अवास ॥६२०॥

राग बिहागरौ

*दोऊ मिलि देखत सरद-उजियारी ।
बिछी चाँदनी मध्य पुलिन के, तास जरी फुलकारी ॥
सेत बादलौ, सेत किनारी, ऐसी है यह सारी ।
हीरन के आभूषन राजत, जो वृषभान - दुलारी ॥
मोतिन की मालावलि उर महँ पहरैं कुंज-बिहारी ।
रतन जटित सिरपेच, कलंगी, मोर - चंद्रिका न्यारी ॥
सखियाँ संग एक सीं सुंदर, मानौ चंद्र - कला री ।
बाजे बहु बाजैं अरु गावैं, सब निरतत बारी - बारी ॥
यह सुख देखत नंद लाड़िलौ, अरु कीरति की प्यारी ।
इनकी प्रीति रीति भक्तन सों, 'व्यासदास' बलिहारी ॥६२१॥

राग केदारौ

† पिय कौं नाँचन सिखावत प्यारी ।
बृंदावन में रास रच्यौ है, सरद - चंद - उजियारी ॥
मान गुमान लकुट लियैं ठाढ़ी, डरपत कुंज - बिहारी ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखत, हँसि-हँसि दै कर-तारी ॥६२२॥

प्रति (छ) मे यह पद ६ चरणों का है। तीसरा और चौथा चरण उ[स के]
अनुसार इस प्रकार है—
ताल, मृदंग, उपंग बजावति, प्रफुलित है सखी सारी ।
बीन, बेनु धुनि, नूपुर झुमकत, खग - मृग दसा बिसारी ॥

राग पूरवी सारग

जमुना-तट दोऊ नाँचत नागर नट, कुँवरि नटी ।
देखत कौतुक भूलि रह्यौ ससि, आनँद-निसि न घटी ।।
बाजत ताल, मृदंग, उपंग, अंग सुघंग ठटी ।
लटकति लटपट झटकि पटकि पद, मटकति भृकुटि-तटी ।।
मानहुँ सनमुख सिंधुहिं मिलि, रस-सरिता भरि उपटी ।
हस्तक मस्तक भेद दिखावत, गावत एक गटी ।।
तान, बंधान बेधि सुर बनिता, बिथकित लाज कटी ।
नारद - सारद और गुनी की, परदा सबै फटी ।।
लोक चतुर्दस माँझ 'व्यास' की स्वामिनि गुननि गटी ।।६२३।

राग सारंग

नाँचति गोरी, गोपाल गावै ।
कोमल पुलिन कमल-मंडल महँ रास रच्यौ,
स्यामा - स्यामल सखि, मोहन बैनु बजावै
सरद-चाँदिनी,मंद पवन बहै दुहूँ दिसि,फूल जाति परिमल मनभावै
कनक-किंकनी-धुनि सुनि खग-मृग आकर्षत, बन मधु बरपावै
लटकति लट भुज मुकुट बिराजति,
पटकति चरन धरनि सौं कुमकुमहिं उड़ावै ।
उरप - तिरप गति मान बढ़ायौ,
हस्तक मस्तक भेद जनावै, अंगनि सरस सुघंग दिखावै ।।
रूप - रासि गुन - गन की सींवाँ,
भ्रूकुटि विलास हँसि के प्यारेहिं रिझावै ।।
बिच - बिच कच - कुच परसति हँसि करि,
परिरंभन - चुंबन दै रस - सिंधु बढ़ावै ।
नव रँग कुंज - बिहारी - प्यारी खेलति देखि,
जाऊँ बलिहारी यह सुख 'व्यास' भागनि पावै ।।६२४।।

राग केदारौ, चौतारौ, सारंग

आज अति बाढ़्यौ है सखि, रंग ।
सुघरि लेति औघर गति सुलप, सु रेख दिखावति अंग ।।
स्यामा-स्याम रास बनि नाँचत, बाजत ताल-मृदंग ।
गावत सुर बंधान तान महँ, नागरि लेत सुघंग ।।
हस्तक मस्तक भेद दिखावत, नचावत भृकुटि अनंग ।
'व्यासदास' कौ हित करि दीनौ, चारु चरन-रज संग ।।६२५।।

राग सारंग

बन्यौ बन आजु कौ रस-रास ।
स्यामा-स्यामहिं नाँचत गावत, बाढ़यौ विविध बिलास ॥
सरद बिमल निसि ससि-गो-मंडित, दुहुँ दिसि कुसुम-विकास ।
भूषन पट अटके नट-नागर, उड़ति पराग सुवास ॥
अंगनि कुँवरि अनंग नचावति, भृकुटि भंग मुख-हास ।
नव नागरि इक निसान बजावत, सुनत सकल सुख 'व्यास' ॥६२६॥

राग सारंग

मोर सिंगारे नाँचत, गावत किसोरी संग ।
आगैं पाछैं कछिनी, टिपारे सिर लटकत,
नील पिछौरीनि छबि उनत, नमित बदन सोहै अंग ॥
मोहन कौ बैनु सुनियत है अनुराग बढ़यौ
नैन स्रवन तन नीर अधीर दुहूँ राखति रंग ।
'व्यास' की स्वामिनि आगैं औसर सब बन्यौ,
पाछैं दामिनी चिराक, घन - घोर मृदंग ॥ ६२७ ॥

नाँचत दोऊ बृंदावन महँ ।
स्यामा-स्याम मिले सुर गावत, छबि उपजत आनन महँ ॥
गौर-स्याम नट, नील-पीत पट, प्रतिबिंबित नग तन महँ ।
जनु उद्योत बलाहक मानियत, धनुष दामिनि दमकत घन महँ ॥
सहज स्वरूप सु गुनि की सीमा, कहत न बनै बचन महँ ।
'व्यास' स्वामिनी कुँवरहिं रीझि रिझावत राखि कुचन महँ ॥६२८॥

राग सारंग

कृष्न भुजंगिनि बैनी नाँचति, गावति गौरी आसावरी ।
नाहु-बाहु-अंसनि पर बिलसति, उपजति कोटिक भाव री ॥
आलय बाल किंनरी सी सुनि, बिछुरत बन मृग मावरी ।
खग नग धम पर स्वर बदले, पुलकित बन दाव री ॥
सुख-सागर की सीमा उमगी, बिथा तरंगिनि नाव री ।
'व्यास' स्वामिनी की उपमा कहँ, कौन कामिनी बावरी ॥६२६॥

राग सारंग

नाँचत गोपाल बने गोपिन सँग गावै ।
मोहत मन, सोहत बन नैननि सिरावै ।
अंग-अंग बर सुधंग राधहिं नचावै ॥
पंचम सुर गान-तान-मान मिलि बढ़ावै ।
उरप-तिरप, सुघर सुलप प्यारेहिं रिझवै

चरन-रेनु उर लगाइ, रीझि वेनु बजावै ।
मंद हास निरखि, काम स्यामहिं सिर नावै ॥
नागर गुन-सागर कौ पार कौन पावै ।
कहत कोटि 'व्यास' थके देखत बनि आवै ॥६३

राग सारंग

बन महँ कुंजनि-कुंजनि केलि ।
जमुना-पुलिन कमल-मंडल महँ, रहे रास-रस झेलि ॥
बीथिन बर बिहार गहवर गिरि, लीला ललित सुबेलि ।
खोरि, खरिक प्रति रचना सखी री, जानि बाहु गल मेलि ॥
रस-सरिता झिरना सौरभ-जल, अवगाहत पग पेलि ।
'व्यास'स्वामिनी बिरमित छिनु-छिनु,निसदिन पिय सँग खेलि ॥६

राग गौरी

प्यारी राधा के गावत-नाँचत, मोहन रीझि रहे सिर नाइ ।
तिरप-मान-बंधान-तान सुनि, बिथकित ब्रज-कन्या रहीं मुरझाइ ॥
गुन-सागर की हो, सीमा उमगी, सकत न कोटिन मदन थहाइ ।
'व्यास'स्वामिनी अधर-सुधा दै,नवल कुँवर लयौ है कंठ लगाइ ॥६३

राग केदारौ

सरद सुहाई जामिनि, भामिनि रास रच्यौ ।
बंसीवट जमुना-तट सीतल, मंद सुगंध समीर सच्यौ ॥
बजत मृदंग-ताल राधा सँग, मोहन सरस सुधंग नच्यौ ।
उरप-तिरप गति सुलप लेत अति, निरखत बिथकित मदन लच्यौ ॥
कोक-कला संगीत गीत रस रूप, मधुरता गुन न बच्यौ ।
भृकुटि-विलास हास अवलोकत, 'व्यास' परम सुख नैन खच्यौ ॥६

राग बिलावल

प्यारे नाँचत प्रान-अधार ।
रास रच्यौ बंसीबट, नट-नागर बर सहज सिंगार ॥
पाँइनि की पटकार मनोहर, पैंजनि की झनकार ।
रुनझुन किंकिनि - नूपुर बाजत, संग पखावज तार ॥
मोहन धुनि मुरली सुनि कर तब, मोहे कोटिक मार ।
स्थावर जंगम की गति भूली, भूले तन - ब्यौपार ॥
अंग सुधंग अनंग दिखाइ,रीझि सरबसु दोऊ देत उदार ।
'व्यास' स्वामिनी पिय सों मिलि, रस राख्यौ कुंज-बिहार ॥६३

राग केदारौ

दुलहिन - दूलहु खेलत रास।
धीर समीर तीर जमुना के, जल-थल कुसुम-बिकास ॥
द्वादस कोस मंडली जोरी, फिरत दोऊ अनयास।
बाजत ताल मृदंग संग मिलि, अंग सुधंग बिलास ॥
थके बिमान गगन धुनि सुनि-सुनि, ताननि कियौ बिसास।
मोहन मुरली नैंक बजाई, श्री - पति लियौ उसास ॥
नूपुर - धुनि उपजाइ बिमोह्यौ, संकर भयौ उदास।
कंकन-किंकिनि - धुनि सुनि नारद, कीनौ कहूँ न बास ॥
या रस कों गोपिनि घर छाँड़्यौ, सह्यौ जगत-उपहास।
यह लीला मन महँ आवत ही, सुकदेव बिसर्‌यौ 'व्यास' ॥६३५॥

राग सारंग व कान्हरौ

आजु बनी अति रास मंडली, नदी जमुना के तीर सहेली।
नाँचति गति बृषभान - नंदिनी, मकर चंदिनी राति नवेली ॥
मानहुँ कोटिक गोपी धावति, फिरति राधिका तरल अकेली।
संभ्रम तितनेई रूपनि धरि, हरि आतुर कंठन भुज मेली ॥
अद्भुत कौतुक प्रगट करत दोउ, नाँचत - माँचत ठेला - ठेली।
अति आवेस केस पट - भूषन, सिथिल सिंधु-रस झेला-झेली ॥
जय-जय धुनि सुनि खग-मृग मोहे, पुलकित धन्य कुंज तरु केली।
बिबिध बिहार 'व्यास' की स्वामिनि, मोहन सों मिलि खेली ॥३३६

राग टोड़ी

देसी सुधंग दिखावति नैननि, हस्तक मस्तक गति भुव - भंग।
कंठ सुकंठ राग - रँग राची, मान लेत मुख मुखर मृदंग ॥
कटि त्रुटि मानहुँ ग्रीव चरन मिलि फिरत,
कुलालि चक्र सौं लखत न बनत तरंग।
'व्यास' स्वामिनी कौ कौतुक देखत, बिनु पखियन अँखियाँ-
पिय की, खग सँग फिरत दोऊ स्रवन-कुरंग ॥६३८

राग सारंग

छबीलौ बृंदावन कौ रास।
जा पर राधा मोहन - बिहरत, उपजत सरस बिलास ॥
जीवन मूरि कपूर - धूरि जहँ, उड़ति चहूँ दिसि बास।
जल-थल कमल मंडली बिगसत, अलि मकरंद निवास ॥

कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि, खग-मृग तजत न पास ।
तान - बान सुर जान विमोहित, चंद सहित आकास ।।
सुख-सोभा रस - रूप प्रीति-गुन, अंगनि रंग सुहास ।
दोऊ रीझि परस्पर भेटत, छाँह निरखि बलि 'व्यास' ।।

रास रच्यौ बन कुंजविहारी ।

सरद-मल्लिका देखि प्रफुल्लित, बनि आई पिय - प्यारी ।।
बाम स्याम के स्यामा सोभित, जनु चाँदनी अँधियारी ।
भूषन - गन तारका तरल छवि, वदन - चंद उजियारी ।।
कोमल पुलिन कमल - मंडल महँ, मंडित नवल दुलारी ।
बाजत ताल मृदंग संग नव, अंग सुधंग सिंगारी ।।
रति - अनंग अभिमान भंग ह्वै, पद-रज घसत लिलारी ।
तान - बान सुर जान विमोहत, मोहन - गर्व प्रहारी ।।
सहज रूप - गुन - सागर नागर, बलि लीला अवतारी ।
'व्यास' विनोद मोद रस पीवत, जीवत विवस विहारी ।।६

राग जयतिश्री

रच्यौ स्याम जमुना - जल पर रास ।
संग राधिका अंग रंग छवि, सब गुन - रूप निवास ।।
त्रिविध कमल-मंडल की सोभा, जल-थल कुसुम-विकास ।
उडुगन सहित सकल राका निसि, बरननि तन आकास ।।
भूषन - धुनि सुनि हंस - हंसिनी, मधुप न छाँड़त पास ।
पद पटकत, जल छींटन छिरकत, लेति मान तजि त्रास ।।
लेति नाक की भौंरी नागरि, गावत पियहिं जिवास ।
रीझि सुघर वर कंठ लगाई, पाँइ गहे मुख वास ।।
इहिं विधि भामिनि भावहिं भजि, अवतार कर्दब उदास ।
आनँद - सिंधु मगन ह्वै 'व्यास', विसरि प्रपंच बिलास ।।६

राग अड़ानो

बंसीवट के निकट हरि रास रच्यौ, मोर-मुकुट और ओढ़ैं पीत
वृंदावन नव कुंज सघन घन, सुभग पुलिन अरु जमुना के
आलस भरे उनींदे दोउ जन, श्री राधा प्यारी, नागर
'व्यास' रसिक बलि रीझि-रीझि कैं, लेत बलैया कर अँगुरिन चट

वलय - नूपुर - किंकिनी - रव, वलित ललित - सुलंग ।
भ्रुव - भंग तक चंद कर्तरि - भेद, रस अनुषंग ।।
थकित सुक, पिक, हंस, केकी, कोक, भृंग, कुरंग ।
'व्यास' स्वामिनि नित्य विहरति, प्रनय कोटि अनंग ।।

८. बसंत— राग बसंत

देखि सखी, अति आज बन्यौ री, वृंदाविपिन सभाज ।
आनंदित ब्रज-लोग भोग सुख, सदा स्याम कौ राज ।।
राधा-रवन वसंत रचायौ, पंचम धुनि सुनि कान ।
धरनि गिरत सुर-किंनर-कन्या, बिथकित गगन विमान ।।
कुलकित कोकिल कुंजनि ऊपर, गुंजत मधुकर - पुंज ।
बाजत महुवरि, बैनु, झाँझ, डफ, ताल, पखावज, रुंज ।।
केसरि भरि-भरि लै पिचकारी, छिरकत स्यामहिं धाइ ।
छिरकि कुँवरि बूका भरि चोवा, लई कंठ लपटाइ ।।
मुकलित बिबिध बिटप-कुल बरषत, पावन पवन पराग ।
तन-मन-धन न्यौछावर कीनौ, निरखि 'व्यास' बड़भाग ।।

चलि चलहिं बृंदावन वसंत आयौ ।
झूलत फूलनि के भँवरा, मारुत मकरंद उड़ायौ ।।
मधुकर, कोकिल, कीर, कोक मिलि, कोलाहल उपजायौ ।
नाँचत स्याम बजावत, गावत, राधा राग जमायौ ।।
चोवा, चंदन, बूका, बंदन, लाल गुलाल उड़ायौ ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखत,रोम-रोम सचु पायौ ।।

ऋतु वसंत मथमंत कंत सँग, गावति कुँवरि किसोरी ।
सुर - बंधान - तान सुनि मोहन, रीझि कहत हो, होरी ।।
रंग - छींट - छबि अंग बिराजत, मंग जलज मनि रोरी ।
बीथिन बीच कीच मची, मानसरोवर केसरि घोरी ।।
बाजत ताल मृदंग, बेनु, डफ, मन मुहचंग उमंग न थोरी ।
उड़त गुलाल - अबीर, कीर - पिक बोलत मोरन - मोरी ।।
छूटी लट, टूटी मालावलि, बिगलित कंचुकि, कटि डोरी ।
'व्यास' स्वामिनी स्याम अंग भरि,सुख-सागर महँ बोरी ।।

नाँचत मोहनी मोहन संग धुनि बाजै,
सुनि सुरत मदन रति गावत बसंत ।
राग - रंग रह्यौ, रस कौ प्रवाह बह्यौ,
सौपै नहिं परत कह्यौ, तान मान गुन-गति न

मधु पटवी सुवास फूलनि कौ रंग जाकौ,
कीच बीच बीथिन के, राजत बृंदावन सुकंत।
गौर-स्याम तन छींट छबीली, छबि फबि गई 'व्यासहिं',
कहि क्यों आवै, मगन मगन भयौ मन मयमंत ॥६४८

खेलति राधिका, गावति बसंत।
मोहन संग रंग सों देखति सब सोभा, सुख कौ न अंत॥
बाजत ताल मृदंग, झाँझ, डफ, आवज, बीना, बीन सुकंत।
चोवा, चंदन, बूका, बंदन, सखि गुलाल कुम-कुम उड़ंत॥
मौरे आम काम उपजावत, गावत कोकिल मनों मयमंत।
गुंजत मधुप-पुंज कुंजनि पर, मंजु रेन मलयज बहंत॥
गौर-स्याम-तन छींटन की छबि, निरखि बिमोहे कमलाकंत।
'व्यास' स्वामिनी के बन बिहरत, आनंदित सब जीव-जंत ॥६४६॥

खेलत बसंत कंत-कामिनि मिलि, हो-हो बोलत, डोलत फूले।
सुख-सागर गावत दोऊ नाँचत, नट-नागर बंसीबट भूले॥
मौरे आमनि कोकिल कूजति, फूल झूमकनि अलिकुल झूले।
बिबिध रंग छिरकति छबि अंगनि, भूषन भूषित चित्र दुकूले॥
पर-नारी पर-नाहु बाहु गहि बिगत लाज जोबन-मद भूले।
'व्यास' स्वामिनी सँग हरि बिहरत, बिलपत पथिक-बधू जन सूले॥६५०

बसंत खेलत बिपिन-बिहारी।
ललित लवंग-लता-बीथिन मे, संग बनी बृषभान-दुलारी॥
सखिन ओट दै कुँवरहिं छिरकति, राधा भरि पिचकारी।
लाल गुलाल चलावति तकि-तकि, कुँवरि बजावति हँसि दै तारी॥
बरसाने तें गोपी आई, स्यामहिं देत काम-बस गारी।
छल करि आँको भरि, काजर लै आँखि आँजि, पहिरावति सारी॥
सैननि ही मन की जब पाई, रुख कीनो है राधा प्यारी।
'व्यास' स्वामिनी बिहँसि मिली, मोहन की छबि करत न न्यारी ॥६५

बसंत खेलत राधिका प्यारी।
गावत, नाँचत, बैनु बजावत, अंस-भुजा धरि कुंजबिहारी॥
साखि, जवादि, कुमकुमा, केसरि, छिरकत मोहन भूमक सारी।
उड़त अबीर पराग गुलालहिं, गगन न दीसै दिनु भयौ भारी॥
मधुकर, कोकिल कुंजनि गुंजत, मानौं देत परस्पर गारी।
नख-सिख अंग बनीं सब गोपी, गावति देखत चढ़ीं अटारी॥
ताल, रबाब, मुरज, डफ बाजत, मुदित सबै बृंदावन-नारी।
यह सुख देखत नैन सिरावैं, 'व्यासहिं' रोम-रोम सुख भारी ६५

लाल-बिहारी प्यारी के सँग, बसंत खेलत बृंदावन में ।
गौर-स्याम सोभा सुख-सागर मोद-बिनोद समात न मन में ।।
तनसुख की चोली कुमकुम रँग, भीजि रही न देखियत तन मे ।
उरज उचारे से अनियारे, चुभि रहे नागर के लोचन में ।।
बाहु धरी कामिनि मोहन पिय, हियें लसति, दामिनि ज्यों घन में ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि-छोटै, प्रतिबिंबित मोहन-आनन में ।।

खेलत राधिका-मोहन मिलि माई, आई री बसंत पंचमी ।
कंठ बाहु धरि नाहु छबीलो छिरकत अरगजा,
गावत नाँचत हो - हो होरी, हो धमारि जमी ।।
मौरे आम काम उपजावत, फूले फूलनि की न कमी ।
'व्यास' बिपिन बैभव अवलोकत, नारायन बिसरी लछमी ।।६

राग सारंग

नाँचत गोप, पराग - फूल-फल, मधु-धारा महँ धरनिहिं बोरी ।
पुलकि-पुलकि गौ,गिरि,गोपीकुल,सर उमगत, सरिता गति थोरी ।।
इहिं बिधि डोल बसंत माधुरी, सुंदर बृंदावन महँ घोरी ।
स्याम तुम्हारे राज, लाज तजि, 'व्यास' निगम दृढ़ सींवाँ तोरी ।।७

९. होरी की धमार—

राग गौरी

आजु बनी नव रंग किसोरी ।
कुँवर-कंठ भुज मेलत-झेलत, खेलत फाग कहत हो-होरी ।।
बाजत ताल, मृदंग, झाँझ, डफ, सहचरि गावति कीरति कोरी ।
उड़त अबीर गुलाल चहूँ दिसि, चँदन, बंदन, चोवा, रोरी ।।
कारी अँगिया झूमक सारी, तन भूषित भूषन सिर डोरी ।
प्रथम मंगलाचरन कियौ पिय, मंगल कलस पूजि झकझोरी ।।
केसरि भरि पिचकारी छिरकत, लूटत बिधि छूटति नहिं थोरी ।
साखि,जवादि,कपूर,धूरि मिलि,मुदित उड़ावति भरि-भरि झोरी ।।
नाहिंन कोऊ काहू सूझति, चतुर सखीनु चुराई गोरी ।
करि हाँसी ललितादिक दासी, अंचलु गाँठि कुँवर जौं जोरी ।।
चाहति फिरत राधिका-स्यामहिं, निरखि हँसी सुंदरि मुख मोरी ।
मन भायौ फगुआ लै छाँड़्यौ, मोहन ठग्यौ गाँठ तब छोरी ।।
बिहँसि मिली प्रीतम कौं प्यारी, जनु आनंद - सिंधु महँ बोरी ।
कर गहे नागरि के नागर, करि आलिंगन चिबुक टटोरी ।

रपत विटप-पराग फूल-फल, मधु-धारा महँ धरनि हिलोरी ।
लकि-पुलकि गोपी-कुल, सर उमगत, सरिता गति थोरी ॥
हिं विधि डोल बसंत - माधुरी, सुंदर बृंदावन महँ घोरी ।
ग्राम तुम्हारे राज लाज तजि,'व्यास'निगम दृढ़ सीवाँ तोरी ॥६५

राग सारंग

अब हो हरि ! प्यारे सों खेलहु ।
आँकौ भरि भेटौ, दुख मेटौ, सुख - सागर उर झेलहु ॥
कुँवर नाह की बाँह पानि गहि, कंठ आपनैं मेलहु ।
'व्यास'हिं यह उपहास स्याम लगि, लोक-बेद पग पेलहु ॥६५७॥

खेलत फाग फिरत दोऊ फूले ।
स्यामा-स्याम काम-वस नाँचत, गावत सुरत - हिंडोरेझूले ॥
बृंदावन की सपति दोऊ, नागर - नट बंसीवट मूले ।
चोवा, चंदन, वंदन छिरकत, छींट छबीले गात दुकूले ॥
कोलाहल सुनि गोपी धाईं, बिसरे गृह - पति, लोक भरू ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत,नैन-कुरंग रहे तकि भूले ॥६५

राग गौरी

ललन भरहिं मिलि चलि हो, चलि अलि वेगि गिरिधरन भरहिं मिलि
अली चली गिरिधरन भरन कों, पहरैं सुरँग दुकूल ।
नवसत-अभरन साजि चली सब, अंगनि - अंगनि फूल ॥
सनमुख आवत होरी गावत, सखन महित बलबीर ।
उमै मदन - दल उमड़े मानहुँ, जुरे सुभट रन-धीर ॥
महुवरि, चंग, उपंग, बाँसुरी, बीना, मुरज, मृदंग ।
ढोलक, ढोल, झाँझ, डफ बाजत, कह्यौ न परत सुख-रंग ॥
ब्रज जन बाला, रसिक गुपाला, खेलत रँग भरे फाग ।
तान तरंगनि मुनि - गन मोहे, छाइ रह्यौ अनुराग ॥
रतन जटित पिचकारिन भरि-भरि, छिरकत चतुर सुजान ।
कनक-लकुटि छैलन पर टूटति,फिरत कुँवरि जू की आन ॥
छूटति बसन, टूटति मनि-माला, धरत भरत भुज पेलि ।
लाल गुलाल आनन पर बरषत, करत चपल कल केलि ॥
इक भानपुरा की अमान गूजरी, फूली अंग न माइ ।
छैलनि देखि कहूँ ज्यौं आई, हलधर पकरे धाइ

आईं सिमिट सबै ब्रजवाला, लेति आपनैं दाइ।
मानौ मन्नि अवनी पर घेर्‍यौ, उड़गन पहुँचे धाइ॥
एकै धाइ धरत आँकौ भरि, एक मरोरति कान।
इक सनमुख ह्वै साजि आरतौ, बहु पूजा सनमान॥
जोरि सखन मन-मोहन धाये दाऊ जू की भीर।
जुवती-जूथ सनमुख ह्वै उमड़े, कूकें देत अहीर॥
जुवतिनि नैन-सैन-भेदनि में, मोहन लीनौ घेरि।
मधुमंगल हँसत दूरि भयौ ठाढ़ौ, सुबल बजावत भेरि॥
मोहन पकरि जूथ में ल्याईं, पूजा रचित बनाइ।
दधि-अच्छत-रोरी कौ टीकौ, गनपति-गौरि मनाइ॥
एकै कुच बिच लेत लाल कौं, लाइ रहत उर भेलि।
मानहु तरुन तमालहिं लपटीं, कनकलता बहु मेलि॥
गौर लेप मोहन मुख लेप्यौ, लिखी छबीली भौंह।
ये ढोटा वृषभानराइ के, सुबल तुम्हारी सौंह॥
पकरि श्रीदामा चोबा माड़ौ, लै आये भरि बाथ।
नँदराइ यह ढोटा जायौ, दयौ हमारे साथ॥
भजि मनसुख जसुमति पै आयौ, कहत आतुरे बोल।
वृषभान-पुरा की जोर गूजरी, भैयन लै गईं बोल॥
चली महरि तब यह सुख देखन, जोरि आपनौ बृंद।
सुर-नर-मुनिजन एक भये हैं, थकित भये रवि-चंद॥
देखति सोभा ब्रजपति रानी, आनँद मन महँ होइ।
आजु रोहिनी भाग हमारौ, ताहि न पूजै कोइ॥
तब रोहिनि-ललिता जू बोलीं, आगैं आवहु भाम।
कर जोरैं हम करत बीनती, चलहु हमारे धाम॥
तब ललिता राधा पै आईं, बात सुनहुँ दै कान।
बड़ी महरि अपनैं घर बोलति, पायौ चाहति मान॥
तब राधा सखियन पै आईं, परत सबन के पाँइ।
गावत, खेलत, हँसत, हँसावत, चलहु महरि कैं जाँइ॥
इतनौ सुनत सबै जुर आईं, चलीं महरि के द्वार।
ब्रजपति-रानी दृष्टि परी तब, भाजि गये सब ग्वार॥
आगैं ह्वै रोहिनी जू आईं, अरघ-पाँवड़े देति।
कंचन-थार उतारति रानी वारि बलैया लेति॥

रतन जटित सिंहासन आन्यौ, दियौ किसोरिहिं राज ।
बाबा जू अब करत बीनती, मोल लये हम आज ।।
अगनित मेवा गनौं कहाँ लगि, भूषन - बसन अमोल ।
प्रेम मगन नँदरानी बरषति, कहत बचन मधु बोल ।।
नौतन भूषन खुले बसन तन, उपजत कोटिक भाइ ।
प्रथम उतीरन दये 'व्यास' कौं, विमल - विमल जस गाइ ।।६५६।।

डोल— राग बसंत व सारंग

स्यामा-स्याम बने बन झूलत, मरकत - कनक - हिंडोरैं ।
ऋतु बसंत अनुराग फाग सब, खेलत केसर घोरैं ।।
बाजत ताल, मृदंग, झाँझ, डफ, मुरली मिलैं सुर थोरैं ।
गावत मोहन की मोहन धुनि, सुनि सब कौ चित चोरैं ।।
झूका जोबन - जोर देत दोउ, कुलकि - पुलकि झकझोरैं ।
स्याम काम - बस चोली खोलत, आतुर निसि के भोरैं ।।
डाँड़ी छाँड़ि करत परिरंभन, चुंबन देति निहोरैं ।
सैंननि बरजति पियहिं किसोरी, दै कुच - कोर अकोरैं ।।
खैंचत पट लंपट नट-नागर, झटकति नीबी - बंधन छोरैं ।
नेति - नेति सुनि रहत लाल, निहोरत चिबुक टटोरैं ।।
देखि सखिन गुलाल उड़ायौ, निरखत छबि कर जोरैं ।
'व्यास' स्वामिनी राजति स्यामहिं, सुखसागर में बोरैं ।।६६०।।

राग सारंग

फूलत दोऊ झूलत डोल ।
रच्यौ अलौकिक कौतुक निरखत, रति-पति दीजतु ओल ।।
पिय-प्यारी उर सौं उर जोरैं, अधरन सौं अधर कपोल ।
चारयौ बाहु पीठि पर दीठि, नाहु पर कुचनि बिलोल ।।
जोबन - जोर देत दोऊ झोका, चंचल अलक निचोल ।
मुंच - मुंच रव नेति - नेति, नवनागरि बोलति बोल ।।
तन सौं तन, मन सौं मन उरझ्यौ, बाढ़ी प्रीति अमोल ।
परिरंभन-चुंबन रति - लंपट, नीवी - बंधनि खोल ।।
बाजत ताल पखावज, आवज, डफ, ताल, दुंदुभी, ढोल ।
बीथिन बीच कीच अगरजा की, गावति सहचरि टोल ।।
सुक, पिक, मोर, मराल, मधुप, मृग, मुदित पुलिंदनी कोल ।
'व्यास' स्वामिनी कौ जस गावत, मधुऋतु होली होल ।।६६१

राग मलार

भूलत फूलत कुंजविहारी ।

दूसरी ओर किसोर - वल्लभा, श्री वृषभान-दुलारी ।
कुलकत - हँसत व्यमत कुसुमावलि, सुंदर भूमक सारी ।।
कबहुँक पटतरि भुलवति गावति, प्यारिहिं पिय रसिया री ।
देखति नैन सफल करि खेलत, कोटि 'व्यास' बलिहारी ।। ६६२ ।

११. फूल-रचना—

राग कल्याण

फूलन को भवन,फूलन को पवन बहै, फूलन की सेज रचि,फूलन के चँदोये
फूलन की सारी-चोली पहिरैं प्यारी, देखत फूलैं मोहन के नैननि के कोये।
परिरंभन - चुंबन तन फूले, सुरति बिवस सब राति न सोये
फूले उरज करज परसत ही, पान करत फूले अधर निचोये।
यह सुख निरखि 'व्यास' सखी फूलीं, फूले अंग न मात सकल दुख खोये।

फुली फिरति राधिका प्यारी, पहिरैं फुलन की डँड़िया ।
नख-सिख फूलन ही के भूषन, पहिरैं फूलन की अँगिया ।।
फूले बदन सरोज पयोधर, फूली अलक पलक अँखियाँ ।
नाँचति,गावति राग बसंतहिं, सुनि फूली मोहन की छतियाँ।।
चोवा - चंदन भरि पिचकारी, छाँड़त नंदनँदन रसिया ।
केसरि-साख, गुलाल लाल पर,बरपि हरपि वृषभान-धिया ।।
बजत मृदंग,उपंग,ताल,डफ, रुंज, रवाव, झाँझि,डफिया ।
हाव-भाव परिरंभन देखति, 'व्यास' भई परवसिया ।। ६६४ ।

१२. जल-क्रीड़ा—

राग पट

जमुना-जल खेलत जुगल किसोर ।

सुरत बिवस सब राति जगे दोउ, कोउ न बिछुरत भोर ।।
पानि कमल-मुख जल भरि तकि-तकि,छिरकत वोट हिलोर ।
नैननि नीर लगत नहिं सकुचत, अरुभत जोवन-जोर ।।
बुड़की लै उछरत एकहिं सँग, अंग सहत झकझोर ।
तरत न डरत प्रवाह पग पेलत, खेलत मिलि दुरि चोर ।।
करतल ताल बजावत, माँधत, गावत मंदिर घोर
श्री स्वामिनी पियहिं मिली दै उरज झकोर ६६५

राग धनाश्री

मान करि मानसरोवर खेलति ।

ग्रीषम ऋतु रजनी सजनी सँग, बिरह-ताप पग पेलति ॥
बुड़की लै जल ही जल आये, हरि सहचरि कौ वपु धरि ।
थाह लेत ही जहाँ राधिका, धाइ धरी आँकौ भरि ॥
परिरंभन - चुंबन पहिचान्यौ, नागरि जान्यौ नागर ।
इहि बिधि जल-थल बिहरत छलबल,'व्यास' प्रभू सुख-सागर ॥६६६॥

राग सारंग

रति-रस सुभग सुखद जमुना-तट ।

नव-नव प्रेम प्रगट वृंदावन, बिहरत कुँवरि नागरि, नागर नट ॥
सीतल तरल तरंग अंबु - कन, बरषत पद्म - पराग पवन वर ।
कुसुमित अमित कुसुम - कुल परिमल, फूलत जुगल किसोर परस्पर ॥
विविध विलास रास परमावधि, गावति मिलि दोऊ रीझति अति ।
मधुप, मराल, मोर, खंजन, पिक,बिथकित अद्भुत कोटि मदन - रति ॥
कुमकुम कुसुम - सयन मंजुल मृदु, मधु पूरित कंचनमय भाजन ।
रजनीमुख सनमुख दल साजत, सुभटन जूझत लाज न ॥
अति आतुर कंचुकि - बँध खोलत, बोलत चाटु वचन रचना रचि ।
नेति-नेति कल बोल स्रवन सुनि, चरन - कमल परसत मोहन लचि ॥
इहिं बिधि करत बिहार मगन दोऊ, पोषत रति - सुख - सागर ।
'व्यास' ललित लीला ललितादिक, देखत रसिक उजागर ॥६६७॥

१३. मान की मलार—

राग मलार

मान-बिमान चढ़ी तू धावति ।

पाछैं लाग्यौ फिरत कुँवर, ताहू तू मुख न दिखावति ॥
तेरी कानि करत वन निबिड़, निकुंजनि निकस न पावति ।
तो बिनु काम बिवस स्यामहिं, कत बन-बीथी अरुझावति ॥
सनमुख हरि आये सहचरि ह्वै, रचकि कंठ लपटावति ।
दै चुंबन हँसि 'व्यास' स्वामिनी, प्रगट बेद बौरावति ॥ ६६८ ॥

राग कामोद

[illegible]सि अँधियारी दामिनि कौंधति, राधिका प्यारी बिनु कैसैं रहैं वृंदावन ।
[illegible]मरि-घुमरि घन - धुनि सुनि दादुर, मोर, पपीहा सुघर मलार सुनावन ॥
[illegible]मद मदन महीपति दल सज, बिरही कौ बल धीर हलावन ।
[illegible]टिक कहि-कहि मैं समुझाई,'व्यास' स्वामिनी मान न कीजै सुनि सावन

राग मलार

मावन मान न कीजै मानिनि !
काम नृपति दल साजे आवत, पठयौ बादर धावनि ।।
दादुर, मोर, पपीहा बोलत, कोकिल-सब्द सुहावनि ।
गर्जत सावन आयौ बन-घन, दामिनि-असि चमकावनि ।।
निसि आँधियारी विहारी आयौ, पैयाँ लागि मनावनि ।
'व्यास' स्वामिनी हँसि उर लागी, तन की तपन बुझावनि ।।

राग मलार

होति कत पियहिं मिलन कों सीरी ।
उठि चलि बेगि राधिका, वह देख पश्चिम खसित ससी री ।।
तेरे नाम-रूप-गुन की छवि, मोहन-उर माँहि बसी री ।।
आवत जात मनावत 'व्यास' सखी की बैस खसी री ।।६

मनावौ मानिनि मान अली री ।
बिलपत विपिन अधीर स्याम, कहि पठई बात भली री ।।
घन-दामिनि कबहूँ नहिं बिछुरत, मधुकर-कमल-कली री ।
सारस, कोक, मराल, मीन जल, प्रीति रीति कुसली री ।।
सहचरि-बचन रचन सुनि सुंदरि, मुरि मुसकाइ चली री ।
'व्यास' आस तजि बिहरत दोऊ, रति-संग्राम बली री ।।६

राग मलार

स्याम कौं काम करत अपमान ।
सुंदर सुघर कुलीन दीन अति, दाता रूप - निधान ।।
ता सों रूसत क्यों मनमान्यौ, जान्यौ तेरौ ज्ञान ।
साधुहिं हठ अपराध लगावति, च्यौरौ करति सयान ।।
तेरौ नाउँ जपत बिलपत री, करत रहत गुन-गान ।
मोहू कत बत-रस बौरावति, बादत बहुत बखान ।।
बचन सुनत उठि चली अली सँग, छौड्यौ निजु करि मान ।
पिय के हिय हँसि लगी, 'व्यास' की स्वामिनि दै जिय-दान ।।६७

मान न कीजै मानिनि वर्षा ऋतु आई ।
अंग-अंग मिलि गाउ राधिका, राग मलार सुहाई ।।
बिनु अपराधहिं रूसनौं छाँड़ि दै, श्री वृषभान दुहाई
'व्यास' स्वामिनी साँवरे सुंदर, पौंइनि लागि मनाई ६

रस की मलार—

राग मलार

प्यारी के नाँचत रंग रह्यौ ।
पिय के बैनु बजावत गावत, सुख नहिं परत कह्यौ ।।
कोमल पुलिन नलिन-मंडल महँ, त्रिविध समीर बह्यौ ।
विथकित चंद मंद भयौ, पथ चलिबे कहँ रथ न रह्यौ ।।
कंकन - किंकिनि-नूपुर सुनि, मुनि-कन्यनि कौ मन उमह्यौ ।
उलट बह्यौ जमुना कौ जल, सब ही के नैननि नीर बह्यौ ।।
अंग सुधंगनि देखत, गर्व-पर्वत तें मदन ढह्यौ ।
तिरप, उरप, सुलपनि की गति कौ, पति नहिं मरम लह्यौ ।।
निरखत स्यामहिं काम बढ़्यौ, रस-भंग न परत सह्यौ ।
'व्यास' स्वामिनी नैन - सैन दै, नागर बिहँसि गह्यौ ।।६७५।।

राग मलार

पावस की सोभा अधिकाई ।
गगन सघन बन मिले बिराजत लाजत उपमा देति सकुचि दबि,
अध ऊरध छवि कही न जाई ।।
दोउ नाइक नँघट पट साजैं, गावत नाँच-
बजावत, रीझत रूप की निकाई ।
बिबिध बरन मन-हरन छबीले, नाना धुनि स्रवन सिरानैं,
बरषत - हरषत बिधि सुहाई ।।
मंद हास कल, भ्रू-बिलास चल, नैन सैन, सुख बैन, ऐन भरि,
उमगि चले तिहिं सागर माईं ।
जीव - जंत मयमंत भये सब, तरनि-तनया परिताप गये,
'व्यास'हिं प्यास न भई अघाई ।।६७६।।

पावस ऋतु कौ रास पुलिन महँ स्याम रच्यौ ।
तैसौई घुमरि-घुमरि घन बरषत, गावत-नाँचत रंग सच्यौ ।।
कहत रमा बृंदावन रूप, सील, गुन, रसु न बच्यौ ।
ताल, मृदंग, झाँझ, डफ बाजत, सुनत स्रवन सुख-पुंज खच्यौ ।।
कुँवरि सुकेसी मिलवत देसी, नटवर अंग सुधंग सच्यौ ।
मंद हँसन सैननि रति नाँचति, चल भ्रू-भंग अनंग लच्यौ ।।
'व्यास' सकल लोकन सौं मूरिख, बिनही काज बिरंच पच्यौ ।।६७७

मनिमय धरनि तरनितनया तट, नाँचत मोर किसोरी वर सुधंग ।
राग मलार कोकिल कल गावत, बाजत मधुर धुनि मेघ-मृदंग ।।
चँदवा चुंग टिपारे माथैं, कटि-काछनी, चंद्रिका सुरंग ।
रिमझिम बूँद स्वेद-कन वरपत, चातक रव जनु ताल उपंग ।।
तिरप किसोरी मोरनि सिखवति, सुलपि निपुन अभिनय सव अंग ।
ग्रीवा नील पिछौरी चमकति दामिनि हँसत लसत भ्रू - भंग ।।
खग,मृग,गा,ागार,सलिता विथकित, मोहे निसि ससि,पवन,अनंग ।
राधा - रवन प्रताप - दीप महँ,'व्यास' मुदित सुख परत पतंग ।।६७८।।

राग गौड़ मलार

बंसीबट जमुना तट नाँचत, दोऊ वर सुधंग ।
लाघवजुत सब्द कहत मृदु तत् तत्, थेई थेई, ता थुंग थुंग तान तरंग ।।
जानति संगीत साँचु सरस विरस बिरम,लेत नैन,लोल लोचन भृकुटि भंग ।
चिद चाल - ताल, सुघर अवघर, गति निरखि थकित कोटि अनंग ।।
अलित वलित चक्र-सम पटचक्र-भेद, गगन में अति तिरप प्रबीन अंग-अंग ।
रास रसिकनी 'व्यास' स्वामिनी रस राख्यौ,
रसिक कुंवर रीझि रहे, चरन गहे लै उछंग ।। ६७९ ।।

राग गौड़ मलार

नाँचत नटवा मोर सुधंग अंग, तैसैं बाजत मेह मृदंग ।
कटि चंद्रिका काछनी चमकति, सिरहिं सिखंडि टिपारे चुंग ।।
तैसेंई कोकिल - कुल गाइन गावति, सुरति दिखावति मधुप उलंग ।
तैसेंई मोहन राग मलारन बाजति, अभिनय निपुन राधिका कुच तुंग ।।
साख जबाद कुमकुमा नरपत, ललितादिकनि उमंग ।
कुंज महल तहँ पवन केहल नहिं, 'व्यास' चिराक दिखावति संग ।।

१५. बिहार की मलार—

राग मलार

मानौ माई कुंजन पावस आयौ ।
स्याम घटा देखत उनमद ह्वै, मोरन सोर मचायौ ।।
दामिनि दमकति, चमकति कामिनि, प्रीतम उर लपटायौ ।
निसि अँधियारी,दिसि नहिं सूझति,काजु भयौ मन-भायौ ।।
डोलत बग बोलत घन-धुनि सुनि, चातक वदन उठायौ ।
बरषत धुरवा सीतल बूंदनि, तन-मन-ताप बुझायौ ।।
कुसुमित धरनि तरनि-तनया तट, चंद बदन सुख पायौ ।
'व्यास' आस सब ही की पूजी, सरिता सिंधु बढ़ायौ ६८१

राग मलार

सुरँग चूनरी भीजत, लाल ! उढ़ाउ पीत पट।
झला झकोरत आवत दुहुँ दिसि, निसि अँधियारी,
दामिनि कौंधति, बेगि चलहु प्रीतम वंसीवट॥
बीथिनि बीच कीच मचिहै, तब मोहि लयौ चहौगे कनियाँ,
कंटक विकट घने जमुना - तट।
लई उछंग 'व्यास' की स्वामिनि रसिक-मुकुट-मनि,
धनि-धनि मोहन बार-बार कर परसत कुच - घट॥६८२॥

ब जब कौंधति दामिनी, तब-तब भामिनी डराति, प्रीतम उर लागति।
न्मद मेघ घटा-धुनि सुनि निसि, पियहिं जगावति आपुनि जागति॥
ादुर, मोर, पपीहा बोलत, मदमाती कोकिल बन रागति।
ंज - कुटीर 'व्यास' के प्रभु पै, श्री राधा रति पागति॥६८३॥

हरषति कामिनि, बरषत दामिनि, मेघन की माला पहिरैं तन।
बिबिध बिराजत गिरिवर ऊपर उड़त पताका
पाँति अरु सोभित सुरराज - सरासन॥
बोलत चातक चंद्र - मँडल महँ, कुंजित—
कोकिल कल, खेलत खंजन।
रेंगति चंद्र - बधू धुरबानि बिच - बिच,
कीच बन घन महँ सौरभ समीरन॥
गरजन सिंह, बिथकित गज, हंस विहरत,
मीन - मधुप मिलि तन - मन।
सर - सरिता - सागर भरि उमगे,
यह सुख पीवत 'व्यास' प्यास बिन॥६८४॥

राग मलार

प्यारी री ! मो पै कही न जाइ तेरे रूप की निकाई।
लोक चतुरदस की सुंदरता, तेरे एक रोम अरुझाई॥
तब राग मलारनि बाजति है,तब मोर-मंडली नाचति जु सुहाई।
निविड़ निकुंज अँध्यारी जामिन, होड़ परी भामिनि—
दामिनि सों, 'व्यास' स्वामिनी हँसि कंठ लगाई॥६८५॥

राग मलार

आजु कछु कुंजनि में बरषा सी।
बादल दल मे देखि सखी री, चमकति है चपला सी ।।
नान्ही-नान्ही बूँदनि कछु धुरवा से,पवन बहै सुख-रासी ।
मंद - मंद गरजनि सी सुनियतु, नाँचति मोर-सभा सी ।।
इंद्रधनुष बग -पंगति डोलनि, बोलति कोक-कला सी† ।
इंद्रवधू छवि छाय रही मनु, गिरि पर अरुन घटा सी ।।
उमँगि महीरुह सी महि फूली, भूली मृग - माला सी ।
रटत 'व्यास' चातक ज्यों रसना, रस पीवत हू प्यासी ।।३

१६. हिंडोरा—

राग कल्याण

देखौ गोरिहिं स्याम झुलावहिं ।
बर्षा ऋतु बृंदावन हित करि, हरषि हिंडोरना गावहिं ।।
डोलत बग,बोलत चातक-पिक,घन दामिनि घन-घन आवहिं ।
रिमझिम बूँद परत तन भीजत, मन परिताप बुझावहिं ।।
कबहूँ ,हिलमिल प्रीतम दोऊ, जोबन - जोर मचावहिं ।
उर सौं उरज परसि हँस रसिया,अधर-सुधा-रस प्यावहिं ।।
बरषत बिटप कुसुम-कुल व्याकुल,सुर-वनिता सिर नावहिं ।
ताल-मृदंग बजावति दासी, 'व्यास'निरखि सचु पावहिं ।।६८

राग सारग

मेह सनेही स्याम के बृंदावन परवत ।
दामिनि दमकति, चमकति कामिनि, झूलत दंपति तन मन हरषत ।
ललना-लाल हिंडोरा गावत, सुनि धुनि मुनिव्रत को मन करषत
कुलकि - पुलकि बेपथजुत भेंटत, उर उरजनि सों घरषत ।
झूका सह तन डाँड़ी गहत न, कर गहि चुंबन लेत न तरपत
नैन-सैन दै हँसत-लसत दोऊ, 'व्यासदासि' निवि सुख सुख बरसत ।

राग मलार

हिंडोरना झूलत नवलकिसोर ।
बरषत मेह हरयारौ साँवन, जहँ - तहँ नाचत मोर ।।
दामिनि दुरति,भामिनि छवि निरखति,चंचल अंचल छोर ।
डोलत बग, बोलत पिक - चातक, सुनत मंद घन - घोर ।।

† कोक कला सी (क) है कोकिला सी (घ, छ)

हिय सों पियहिं लगाइ, मचायौ अबला जोबन - जोर ।
सीकत स्याम गिरत ते उबरे, कर गहि उरज कठोर ।।
पट - भूषन लट उरझि न छूटति, बाढ़ी प्रीति न थोर ।
कुच गहि चुंबन करि मुख देखत, सुख-सागर झकझोर ।।
गावति नाँचति सखी झुलावति, गांत उपजत चित-चोर ।
राख्यौ रंग 'व्यास' की स्वामिनि, रति-रस-सिंधु-हिलोर ।।६८८।।

राग धनाश्री

जा कें राधिका सी घरनि , तरनिजा - तट घर,
सो नागर - नट काहि न फूलै ।
बृंदावन सुघर ललितादिक दासी गावति,
मुदित झुलावति,सुरति हिंडोरा निसि-दिन भूलै ।।
सो अवतार कदंब - मुकुट - मनि सुंदर,
सुघर स्याम - तन पीत दुकूलै ।
रास - बिलास हास - रस बरषत,
सपनें हू जिन 'व्यास'हिं भूलै ।।६६०।।

राग जयतिश्री

झूलत - फूलत रंग भरे मैन ।
सहचरि रँग भरी गान करत कल, पावति अति सुख,
झुलवति हैं सब समुझति है सैन ।।
नख - सिख छबि बीजु परस्पर,
अधर अरुन बीरी बिबि दैन ।
नासा - मोती थकित न चकित रहे,
गहे सेज जदपि चपल अन्यारे नैन ।।
उर नग मुकुर बिलोकति नागर,
हँसत - लसत छबि कहत बनै न ।
उपमा जितीं तितीं सब वारीं, तुच्छ करि डारीं,
या छबि ऊपर अब कहा कहौं लहै कछु बैन ।।
हरिबंसी, हरिदासी सनमुख,
कान लगै कछु बोलत बैन ।
'व्यासदास' कें चुभी, खुभी ग्रीवा भुज,
किलकि - किलकि प्रीतम उर लैन ।।६६१।।

चतुर्थ परिच्छेद

ब्रज-लीला

★

१. रूप-माधुरी— राग गौड़ मल्हार

श्री बृषभान-सुता-पति बंदे। उदित मुदित मुख सुख मय चंदे
बिगत बिरह रोग, स्याम भँवर भोग, उरज-जलज मादक मकरंदे
कुंज-भवन हित कुसुम-सयन कृत, सुरत-पुंज रस आनँद-कंदे
वलित नयन-भ्रुव, ललित वयन जुव, दलित मदन-मद, हास सु मंदे
सहज स्वरूप दंपति,'व्यास'निरास संपति,दीन बिपतिहर बर आनंदे ॥६४

राग कल्याण

मोहनी कौ मोहन प्यारौ।
आनँद-कंद सदा बृंदावन, कोटि चंद उजियारौ॥
ब्रज-बासिन के प्रान-जीवन धन, गो-धन कौ रखवारौ।
नंद-जसोदा कौ कुल-मंडन, दुष्टनि मारनवारौ॥
चरन-सरन साधारन-तारन, आरत-हरन हमारौ।
नव-निकुंज सुख पुंजनि बरषत,'व्यास'हिं छिन न बिसारौ ॥६६

राग सारंग

हरि-मुख देखत ही सुख नैननि।
निरखत रूप अनूप, निमेष लगत ही देत कुचैननि॥
वारै घर-घर बात-बात सुनि, स्रवन भरत सुख-चैननि।
हंस कोटि दामिनि प्रतिबिंबित, बिंबाधर रस ऐननि॥
बिनु दामनि हौं मोल लई इति, स्याम छबीले मैननि।
भौंह-धनुष तें चलत नयन-सर, भेदत उरज गुरैननि॥
रोम-रोम की छबि पर वारौं, कोटि सोम-छबि मैननि।
सहज मधुरता 'व्यास' मंद पै, कहत बनै क्यों बैननि ॥६

राग धनाश्री

नंद बृषभान के दोऊ वारे।
बृंदावन की सोभा-संपति, रति-सुख के रखवारे॥
गोरी राधा, कान्ह साँवरे, नख-सिख अंग लुभारे।
बोलत,हँसत, चलत,चितवत, छबि बरनत कबि-कुल हारे॥
धीर समीर तीर जमुना के, कुंज-कुटीर सँवारे।
विविध बिहारहिं बिहरत दोऊ, सहज स्वरूप सिंगारे॥
रसिक अनन्य मंडली मंडन, प्रानन हू तें प्यारे।
जुगलकिसोर 'व्यास' के ठाकुर, लोक बेद तें न्यारे ६

राग नट व आसावरी

मनोहर मोहनी की भाँति ।
पलकनि नैन समात न देखत, नव बिटपनि की पाँति ॥
कुंजनि गुंजत मधुप-पुंज, पिक कूजति कै इतराति ।
कुसुमित अमित कुसुम नव बेली, निरझर सुधा चुचाति ॥
मंद समीर धीर गति, चंद-किरनि मनि भुव मुसकाति ।
मिथुन प्रगट मैथुन रस-सिंधु, माधुरी सी बरपाति ॥
श्री 'व्यास'स्वामिनी पिय के हिय पर,बिलसत हू न अघाति ॥६६६

नैन सिरात गात अवलोकैं ।
इनि महँ सोभा - सिंधु समात न, पलक साँकरी ओकैं ॥
स्रवन होत सुख भवन हमारे, सुनत तुम्हारी टोकैं ।
कहा-कहा अनुभव कहियै हो, सकल कला-कुल कोकैं ॥
कुच को रस चाखत कर जैसैं, रुधिरहिं पीवत जोकैं ।
ऐसैं ही 'व्यास'रसिक रस-भोगी,बिरस दुखित सिर ठोकै ॥६६७

राग धनाश्री

सब गुन गोरी तेरे गातनि ।
कछुक काम-बस स्यामल हैं कछु, मलय चंद निसि-प्रातनि ॥
मृगज, मीन, खंजन, गज, हंस, हेम कपट के भ्रातनि ।
घन, दामिनि, पंचानन, सुक, पिक, मधुप सर - घातनि ॥
नागर राग बिराग लयै कछु, सुधी कृपन धन-दातनि ।
नव बिलास छबि कवि न अगोचर, कोटि कबिन के ताननि ॥
सबै भाव मन में क्यौं आवत, कहत सुनत सठ बातनि ।
'व्यास' रसिक तब फल पायौ, निरखत नैन समातनि ॥६६८

राग देवगंधार

छिड़ाइ लये तैं मेरे नैन ।
बंक बिलोकि समार बिहँसि किये, भौंह-धनुष सर-सैन ॥
देखत गुन गति मति हरि लीनी, दै कजरा महँ ऐन ।
इन ही मेरो मन मोह्यौ, ह्वै गई पलक सों ठैन ॥
तारे तरल पुतरिया कोये, रतिरस में यह मैन ।
सहज मोहनी इनही की यह, किधौं कियौ कछु तैन ॥
बन बधिकनि ये मृगज गीधे, बिधये लट फंदनि चैन ।
बिलगु न मानैं हिलगि हिये की, 'व्यास' हिं कहत बनै न ६६

राग गौरी (तिताला)

आजु मैं मोहन कौ मुख मोह्यौ ।

दह्यौ मथत अँचल चंचल छवि, देखि कुँवर उर जोह्यौ ॥
नैन-भँवर कुच-कमलनि अटक्यौ, लटकत लटकन सोह्यौ ।
बिकल स्याम गैया के धोखैं, लोई बृषभ सों दोह्यौ ॥
चितै बिचेत भई मुहिं जानी, पानि जु हियौ टटोह्यौ ।
पर बस रसिक 'व्यास' कौ स्वामी, प्रीति-रीति-सर पोह्यौ ॥

राग सारंग

गोबिंद मेरे मन भायौ ।

आनँदकंद नंद-नंदन सखि, भागन ही मैं पाइ कंठ लपटायौ ॥
सुख-सागर महँ मगन भये इह, रस झर मैं जेहि झर लायौ ।
को हौं, को वह, को निसि-बासर, बन किहिं बिसरायौ ॥
हिलग बावरी बिलग न जान्यौ, बिधि-संजोग बनायौ ।
जो पै 'व्यास' प्रभुहिं भाइ इतनौ, कुल-लोक अलोकु अघायौ ॥

राग देवगंधार

मन मोह्यौ मेरौ मोहन माई ।

कहा करौं चित लगी चटपटी, खान-पान-घर-बन न सुहाई ॥
बिहँसनि बंक बिलोकनि सैननि, मैन बढ्यौ कछु कहत न जाई ।
अदभुत छबि बदनारबिंद की, देखत लोक-लाज बिसराई ॥
मेरैं साहस उनके वाहस, मनचीती बिधि भली बनाई ।
पालागौं यह कहहि कहूँ जिनि, बिरस न जानैं लाज पराई ॥
रह्यौ न परतु, कह्यौ बहुतनि मिलि, है न होहि कबहूँ सुखदाई ।
'व्यास' त्रास करि को अब छाँड़ै, भागन पायौ कुँवर कन्हाई ॥

राग धनाश्री

जो भावै सो लोगनि कहन दै ।

अबनि पिछौड़ौ पाँव न दीजै, न्याव मेटि प्रीति निबहन दै ।
हौं जोबन मदमाती सखी री, मेरी छतियाँ पर मोहन रहन दै ॥
नव-निकुंज पिय अंग संग मिलि, सुरति-पुंज रस-सिंधु बहन दै ।
या सुख कारन 'व्यास' आस कै, लोक-बेद उपहास सहन दै ॥

राग आसावरी

गोबिंद सरद-चंद बन मंद हास सोहै ।
नटवर-बपु-बेष निरखि, सकल लोक मोहै ॥
मेघ स्याम पीत बसन, बनमाला सोहै ।
बरह-धात गुंज-पुंज, उपमा कौ को है ॥

बंसीबट बेनु - नाद, सब कौ मन मोहै ।
गोरी चितु चोरि लयौ, बिकल वृषभ दोहै ॥
मोहन धुनि सुनत लोह चुंबक विछोहै ।
'व्यास' मंद, स्यामहिं तजि और प्रभुहिं टोहै ॥ ७०४ ॥

राग सारंग

रंग भरे लालन आए मेरैं, हौं देखत भूलि रही ।
चित्र विचित्र बनाव कियौ अंग - अंग,
अनंग कोटि वारौं, मोपै सोभा नहिं परति कही ॥
जब मुसक्याय चितै सैननि दै,
नैननि सों नैन मिलत मेरी बहियाँ गही ।
अति नवीन प्रचीन सब ही अंग, 'व्यास' कौ-
प्रभु चाहत सुरत - केलि - सुख ही ॥ ७०५ ॥

राग धनाश्री व आसावरी

माई री मेरैं मोहन आये ।
बहुत दिनन के बिछुरे, भाग बड़े घर बैठे पाये ॥
करि न्यौछावरि तन-मन-धन-जोबन, आनँद-गीत गवाये ।
चोवा - चंदन चौक पूरि मैं, मंगल कलस पुजाये ॥
मगन भयौ मन में मनु हँसि, नैननि सैन मिलाये ।
कछुव न सकुच रही तिहि अवसर, उरज उमँगि उर लाये ॥
भये मनोरथ पूरन मेरे, सब परिताप बुझाये ।
'व्यास' काम - बस हम दोऊ जन, सिगरी राति जगाये ॥ ७०६ ॥

बाल लीला— राग धनाश्री

कन्हैया ! देहि धौं, नैकु हेरी ।
अपनौ राग सुनाउ छबीले, हौं बलिहारी तेरी ।
मो सनमुख नैक गाइ बुलाउ, आँखि चाँपि नैकु डेरी ॥
बैनु बजाउ लटकि मेरे लटकन, नाँचहि दै - दै फेरी ।
सुनि मोहन,सब कियौ,दियौ सुख,'व्यास' मोल बिनु चेरी ॥ ७०७ ॥

राग गौरी

आवौ रे आउ भैया, से हे हेरी दीजै ।
गाइ बुलाउ दुहाउ छबीले, मथि - मथि घैया पीजै ॥
आस पास गोपाल मंडली, मिलि कोलाहल कीजै ।
मुहुवर बैनु बजावत गावत, आनँद ही तन भीजै ॥
गोरस बेचन जाति ग्वालिनी, घेरि दान किन लीजै ।
'व्यासदास' प्रभु झगरत घर, बन आनंदहिं सुख जीजै ॥ ७०८ ॥

ग्वाल-चवैनी ग्वाल चवात ।
मीठी लागत मोहन के सँग, घर की छाक न खात ॥
टोरि पतौवा जोरि पतोग्वी, पय पीवत न अघात ।
मधुर दही के स्वाद निवेरत, फूले अँग न समात ॥
कबहुँक जमुना-जल में पैरत, मोहन मारत लात ।
बूड़क लै उछरत छलबल सों, स्याम-गात लपटात ॥
कबहुँक खग-मृग-भाषा बोलत, बन सिंघै न डरात ।
अद्भुत लीला देखि-देखि कैं, 'व्यासदास' बलि जात ॥ ७०६ ॥

३. दान लीला—

राग गौरी

ऐसे हाल कीने री नागर नट ।
गोरस बेचन जाति अकेली, आनि परयौ औचक जमुना-तट ।
फोरि मथनियाँ, तोरि मोतिन-लर, छोरि कंचुकी,
गहि झकझोरि अंचल चंचल लट
फारत पट, कुच-घट औघट री, 'व्यासहिं' देखत भागि चढ़यौ बंसीवट ।

चंद्र-बदन चंद्रावलि गावै ।
सोने की मटुकिया पाट की इँडुरिया, सिर धरि गोरस बेचन आवै ।
घेरें रे भैया हो, जैसें जान न पावै,
इहि सघन कानन-बन ऊवट बाट-घाट धावै
आजु नंद बाबा की सौंह दान लैं, तब छाँड़ौ याहि,
जोबन-गर्व यह अधिक कहावै ।
बत-रस अटकति, भौंह-नैन मटकति, छल करि कुच-घटनि दुरावै
अंचल कंचुकी लट गहतही रुठ्यौ देत, मुरली छिड़ाय लेत, अँगूठा दिखावै
आजु हो कन्हैया लूटी, मोतिन की लर टूटी,
चूरा चाँपि फूटी, घर झूँठी ये बनावै
'व्यास' जोर न बीच होतौ, को जानैं कहा यह करतौ,
ऐसी बातें जोरि ब्रज साँझ सुनावै ॥७११॥

स्याम रोकत फिरौ आज ब्रज की गैल ।†
लेहौ संग ग्वाल,बछरा गाय चारौ जाय, दान कहा लेउगे करौ बन की सैल ।
किये बन पात के चित्र सब अंग में, भये ठाढ़े आय करत मो सौं फैल
अनकटौटी बात करौ मनहिं बिचार कोऊ, ऐसो भयौ नाहिं ब्रज में छैल ।
जात हैं निस-दिना याही हम गैल में, दान कोई ना लियौ आज पाये पहैल
मदन मोहन कहैं'व्यास'स्वामिनि सुनौ,धरौ मटुकी धरनि चलौ अपने महैल।

---

† कीर्तन संग्रह, भाग १, पृष्ठ २४२ से संकलित

नघट लीला—

कान्ह ! मेरे सिर धर गगरी।
यह भारी, पनिहारी कोउ न मनसा पुजवत सगरी॥
राति परी घरु दूर, डर बाढ़्यौ, मेरे सासुज नगरी।
देहु पीतपट करहुँ इँडुरी, छाँड़हु छैल अचगरी॥
अंचल गहि चंचल बन झगरत, नग बगरत लट बगरी।
विहरति 'व्यासदास' के प्रभु सों,ग्वालिनि सुख लै डगरी॥७१३॥

जमुना जातिही हौं पनियाँ।
बीचहिं भई और की औरै, मिलि गये मन - मोहनियाँ॥
मो तन विहँसि बिलोक्यौ नागर,चल नैननि की अनियाँ।
धीरज रह्यौ न कह्यौ परै कछु, रबकि लई हौं कनियाँ॥
चिबुक पकरि चुंबन करि खोली,चोली छुन तन तनियाँ।
सघन कुंज लै गयौ लालची, हाथ परे 'कुच मनियाँ॥
परी सुहस्त वैस हौ भागन, पायौ प्रान - रवनियाँ।
'व्यास' मिलाये केवल छैलहिं, चलत गैल पर धनियाँ॥७१४॥

राग गौरी (तर्ज तिताला)

आजु जिन जाउ री माई कोऊ, पनघट है मोहन फैंटी।
नंद - किसोर दुरयौ कुंजनि में, चोर देत है सैंटी॥
बाट चली आवत ही वरवट, नागर नट सों भेटी।
परसत ही धीरज न रह्यौ तन,मनसिज आन खखेटी॥
तो.ह निहोरौं सुंदरि, मेरौ बचन मानि गुजरेटी!
पुजई आस 'व्यास' के प्रभु की, कुसुम - सेज पर लेटी॥७१५॥

राग सारंग

भूली, भरन गई ही पानी।
गैल बतावहि छैल छबीलौ, तू न परति पहिचानी॥
मेरी सासु त्रासु करिहै घर, मेरौ पति अभिमानी।
कुल की नारिहिं गारि चढ़ै, जो बन में रैन बिहानी॥
झलकनि गागरि अलक सलिल भई, सारी स्वेद चुचानी।
सीत-भीत तें कंपु चढ़्यौ अति, त्रिबलि न जाति बखानी॥
भागनि भेंट भई तोही सों, भारनि चाँद पिरानी।
नैंकु उतारहि पाँइ परत हौं, तो तें कौन सयानी॥
दीन वचन सुनि सदय हृदय के,निरखत मुख मुसिक्यानी।
पूजी आस 'व्यासदासी' की, देखत आँखि सिरानी ७१६

सघन कुंज बन बीथिनि - बीथिनि, अरुझति पनियाँ जात
निकट विकट कंटक पट फाटत, दुख पावत सुख - गात
खुर खूँदे तृन पथ भूलत, बेपथ नैन चुचात
औसत पट खैंचत नीवी कटि, कुच कंचुकि न समात
खंडत गंड अधर प्रचंड सखि, का सों कहियै बात
स्यामहिं देत अलोक लोक सब, 'व्यास' न मोहिं सुहात

राग गौरी

छाड़ियै नागर नट की नगरी।
गैल साँकरी छैल गही लट, जाति हुती डगरी॥
पनवट गहे उरज - घट घाटहिं, गहि राखी गगरी।
चुंबन के बदले में दीनी, मुक्ता लर सगरी॥
बरबट ही लै गयौ गह्वर बन, अपनौ सौ हौं झगरी।
मेलि मोहनी बस करि मोहिं, लगाय टकटकी ठगरी॥
अब कहि कैसें रहियै ब्रज महँ, सहियै सबै अचगरी।
'व्यास' सुनत उपहास त्रास नहिं, जोबन-जोर उमग री

५. उपालंभ—

राग सारंग

नाहिंन काहू की स्यामहिं संक।
आइ औंचक लट गहि मेरी, चोली चटकि निसंक॥
मुरि मुसकात सकात चोर चितु, चितै बिलोकनि बंक।
भागि चलै, छोरै, पुनि टारै, कितवनि करौ कलंक॥
अंचल फारि, उतारि हार उर, दीने खर नख अंक।
कुंज - कुटीर गयौ लै छलबल, छैल तोहिं भरि - अंक॥
रंग रह्यौ न कह्यौ परै मोपै, माँची रति - रन - पंक।
'व्यास' आस पुजई तन-मन की, निधि पाई जनु रंक॥
गई ही खरिक दुहावन गाइ।
खोरि साँकरी छैल छबीले, अंचल पकर्‌यौ धाइ॥
तैसी निसि अँधियारी, तैसोई स्याम, न जान्यौ जाइ।
इहिं गोरे तन घर के भेदी, बन में दई बताइ॥
कुच जुग घट झटके नागर नट, कंठ रहे लपटाइ।
सखि सुधि बुध न रही तिहिं औसर, धरनि परी मुरझाइ॥
सुख में दुख उपजत उत देखत, नैन मुँदे अकुलाइ।
फरी हती हौं आरज पथ में, लीनी 'व्यास' बचाइ।

विवाह-लीला—

राग देवगंधार

नंदीस्वर इक नगर अनूप, नंद गोप तहँ जानियै ।
संपति हो उनकी कही न जाइ, तिहूँ लोक में मानियै ।।
जाति - पाँति - कुल उत्तम, रीति तिनकौ सुख-सागर ।
देखत ही जाकों सजन सिहाइँ, रूप-रासि-गुन-आगर ।।
बोलि लेहु सब मित्र सुबंधु, बेगि मतौ इक कीजियै ।
कही बात वृषभान बिचारि, कुँवरि स्याम कों दीजियै ।।
बिप्र लेहु तुम लगन, सुदेस दस हू दोष निवारिकैं ।
माँगहु प्रिय पहँ रतन अमोल, अरु पट-चीर सँवाँरिकैं ।।
प्रोहित पठयौ सुघरी साधि, लोग घरनि वहुराइयौ ।
पहुँचौ प्रोहित नंद के धाम, सुख दै पग पखराइयौ ।।
कीनौ नंद बहुत सनमान, पूछ कुसल सुख पाइयौ ।
गावनि ही तिय गीत रसाल, सभा सु गोप बनाइयौ ।।
चंदन हो घिसि आँगन लिपाइ, मोतिन चौक पुराइयौ ।
बैठे मोहन पटा अनूप, अंजुलि करन जुराइयौ ।।
पंच बिदित भई लगुन प्रमान, रोचन - तिलक कराइयौ ।
बेद-मंत्र पढ़ि, कलस पुजाइ, तब कर लगुन धराइयौ ।।
बाजत द्वार दमामें, ढोल, भेरि भँवर सँग गुंजरैं ।
बाजत सरस स्वरनि सहनाइ, उपजति तानिनि पुंजरैं ।।
पठये रानी घरनि तें बीर, अरुनि ब्रत तिल - चाँवरी ।
पूछी एक तिय विप्रहिं बात, दुलहिन गोरी कै साँवरी ।।
बोलि नगर के बाह्मन, भाट, मंगत औरनि को गनैं ।
जो जैसो ताहि तैसो ही देत, का पै जुगति कहत बनैं ।।
कियौ बिदा प्रोहित बहु भाँति, कर जोरैं बिनती करी ।
बिनु दामनि हम लीने मोल, सुभ कीजै नीकी घरी ।।
आयौ बिप्र जहाँ वृषभान, समाचार जे सब कहे ।
वर सुंदरता कही न जाइ, स्रवन सुनत अति सुख लहे ।।
प्रथम दुहूँ दिसि सुभ दिन साधि,मंगल फल घर-घर दिये ।
द्वितीय देव कुल विधिहिं बनाइ,जुगति जतन जे सब किये ।।
आनँद सौं गावत नर - नारि, कुँवरहिं तेलु चढ़ाइयौ ।
माँगे हो तब हरे हरे बाँस, चंदन खंभ कटाइयौ ।।

मंडप रच्यौ बिमल बहु भाँति, खंभनि दियल कराइयौ ।
अंब - मौर - दल बंदनवार, सोभा कहत न आइयौ ।
नंद बुलाये गोप बरात, मनभाये आगे दिये ।
पहुपमाल बर बीरी अनूप, भाँति-भाँति सौंधे लिये ॥
हय-गय पैदल रथ - आरूढ़, चँवर - छत्र सोभा भई ।
बाजे अगनित गने न जाइँ, लोक-लोक प्रतिधुनि छई ॥
नंद-महर की चली बरात, बरसाने बृषभान कैं ।
ज्यों-ज्यों चलत नगर नियरात,त्यों-त्यों सुख स्याम सुजान नैं

आगौनी करि सजननि भेंटि, बारौठी बहु बिधि करी ।
देखत श्री मोहन कौ रूप, नर-नारिनि की गति हरी ॥
जनवासौ दै चरन पखारि, चार हुते जे सब किये ।
अँगन लिपाइ उज्यारे दीप, सजन बोलि भीतर लिये ॥
गोप जुगति सों चरन पखारि, बैठारे कर जोरिकैं ।
पातरि हरी बहुत, अति दौना,परसत बहुरि झकोरिकैं ॥
बिंजन कौन गने, पकवान सुबस पछ्यावरि चरपरी ।
महलनि चढ़ी देति तिय गारि, को बरनें आनँद घरी ॥
चौक पूरि बिधि बेदी बानि, दूलहु स्याम बुलाइयौ ।
बैठ पंच सुजन सुख पाइ, हरि कों अरघु दिवाइयौ ॥
दच्छिन दिसि दुलहिन बैठारि, बेद मंत्र बिधि सब करी ।
भयौ ब्याह सबकैं आनंद, साखि दुहूँ दिसि उद्धरी ॥

बाजत बहु बिधि सबद,निसान,सुर-नर-मुनि कौतुक देखियौ
फूले दंपति अँग न समात, जनम सुफल करि लेखियौ ॥
दुलहिन लै जनवासैं आइ, कीनौ आनँद बधावनौ ।
मुख देख्यौ दै रतन अमोल, पायौ मन कौ भावनौ ॥
प्रात कियौ पलकाचार, गौर-स्याम जोरी बनी ।
सोभा हो कछु कही न जाय, भुवन चतुर्दस के धनी ॥
हय, गय, हाटक, पट बहु मोल, गोप सबै पहिराइयौ ।
कलस पचहँड़े अगिनित और नग-मनि थार भराइयौ ॥
बिदा करी, बिनती कर जोरि, हौं सेवक करि जानिबौ ।
कीनी कृपा दीन जिय जानि,सजन भलैं करि मानिबौ ॥
ज्यों घन गरजैं, बजैं निसान, नंद कनक-बल बरषियौ
जाचक दारिद न पातक तूल, त्रिपत भये मन हरषियौ

निरख बरात चली ज्योंनार, रानी जसुमति नंद की ।
मानिक-दीपक सँजोये थार, जननी आनँद-कंद की ॥
दूलहु-दुलहिनि आये पौरि राजत, ज्यौं घन-दामिनी ।
करति आरतौ आनंद-रूर महरि, महर की भामिनी ॥
मान जिते तिन रोके दुआर, नेग बहुत भाँतिनि दिये ।
करे दान पाँवड़े अनेक, कनियाँ लै भाये किये ॥
जो सत सेष सहस मुख होइ, गुन-गन तौ न कहत बनैं ।
बेद - उपनिपद पायौ ना पार, और इतर नर को गनैं ॥
कंकन छोरत स्यामा-स्याम, निरखि बदन दंपति हँसैं ।
ताके भाग कहे नहिं जाँइ, जो गावै प्रिय हरि-जसैं ॥
चिरजीवै जोरी संजोग, सकल लोक की संपदा ।
यह जस गायौ 'व्यास' अघाइ, जनम न परसै आपदा ॥
जीवत रसिक जुगल-रस गाइ, श्री बृंदावन के चंद कौ ।
नर-नारी गावत सुख पाइ, दरस करत नहिं द्वंद कौ ॥७२

नृत्य संगीत विनोद—

राग गौंड़ मलार

बिराजमान कानन बृषभान-कुँवरि गान-तान-
थान हत बिमान काम - कामिनी ।
प्रान-रवन मोहन-मन-मृग सुमार किये,
हो - हो रव बार-बार बिकच जामिनी ॥
राग-रंग पवन पंग, सेप चलन मान-भंग,
नारद, सिव, सारद लजत भाम-भामिनी ।
निरवधि गुन-जलधि बृंद बृंदावन रस अगाध,
राधा-धव नव बिहार 'व्यास' स्वामिनी ॥

राग कान्हरौ

ठाड़ी भई रंगभूमि में रँगीली प्यारी रेख प्रमान सों ।
ई सब्द उघटि लाग डाट, तिरप बाँधि उरु चचमान
, ग्रीवा भेद, हस्तक भेद करि रिझावति, गावति तान-बंधान
ा रह्यौ अति, 'व्यास' के प्रभु स्याम सुजान

राग गौरी (अठताली)

नाँचति नागरि सरस सुधंग ।
ल बजावत ताल तरल गति, गावत सुघर नचावत अंग ॥
ा थेई तत्त थेई थुँग-थुँग, घमन तमनना बाजत मृदग

सप्त सुर गान रागिनि-राग-सागर मान-नागर,
तान-पट - बंधान धुनि सुनि विगत गर्व अनंग ॥
कोटि कंदर्प लावन्य मुख, चंद मंद, सुचि हास, चल नयन, भ्रू-भंग
रूप - गुन - निधान जान, दंपति रत्न समान,
आन 'व्यासदासि' रंग-रासि देखत सुख संग ॥ ७२४ ॥

राग मारू (अठताल)

नटवति नट अंग प्रति सरस सुधंग, रंग-रासि रसिक सरूप सुजान
नागर नटवर तार लये कर, उघटि सब्द,
थेई-थेई रूप-निधान करत कल गान
उरप - तिरप-सुलप लेत, ध्रुवा धरु, चंद्र विवि विधि मान
रीझि मोहन उर लगावत 'व्यास' स्वामिनी, स्यामा भामिनी नहिं आन

राग सारंग

विहरत बनैं विहारी - विहारिनि ।
रास - रंग अँग संग रचे, गावत - नाँचत करतारिनि ॥
कुसमित मुकुट, काछनी झलमल, झूमक झमकत सारिनि ।
पटकत पद, लटकत मुख, नैननि बाँकी सैन विकारिनि ॥
तिरप लेत चंचल रस राख्यौ, उरज उघारिनि ।
स्याम काम-बस उर लपटानौ, निरखि निपट सुख नारिनि ॥
देखत कौतुक केकि, कपोत, सुक, पिक चढ़ि कुंज-अटारिनि ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि बरनत, कैसे फबै भिखारिनि ॥७२

राग नट व आसावरी

मदनमोहन गावत लाल ।
विकट तान - बंधान मान - सुर, कोऊ न पावै ताल ॥
गति महँ गति, मति महँ मति उपजति, गुन गंभीर रसाल ।
नारद, सारद, सिव, गंधर्व, किंनरकुल कौ पर्‌यौ चाल ॥
सैननि ही समुझावति सखियनि, राधा परम कृपाल ।
श्री 'व्यास' स्वामिनिहिं रीझि कुँवर मिलि, उपज्यौ सुरत सुकाल

राग गौरी

बजायौ कौनैं बन महँ बैन ।
मोहनि धुनि सुनि मुनि-मन मोह्‌यौ, बाढ़्‌यौ नख-सिख मैन ॥
मोहन बीर सुर के ताननि, माननि बाँधे हर कौ ऐन
तजियै सुत, पति, संपत्त, हीरा, भजियै कुसुमनि कौ सैन

चली अली सब तजि, सुंदर पहँ आईं मेटि कुचैन ।
नैन चषक भरि पीवत जीवत, हरि - दरसन - पय - फैन ।।
पिय कौ हियौ जानि, नहिं मानै बचन, परसि पद - रैन ।
'व्यास' स्वामिनी की सब सहचरि, रास नची दै सैन ।।७२८।।

खंडिता वचन—

पगे रँगीले नैननि रंग ।
अदभुत छवि कवि कहि न सकत कछु, लाजत निरख कुरंग ।।
मुक्ता, मरकत, लाल, कमल - रस, रचे कनक - जल अंग ।
गोलक गति निर्मोल लोल मति, देखि लजाने भृंग ।।
तारे चंचल पलक पुतरिया, देसी राय सुधंग ।
चोज - चाव नव, हाव - भाव लव, सैननि नचे अनंग ।।
कहिबे कहत उपमा झूँठी, खंजन, मीन, पतंग ।
अनत स्याम सर्वोपरि, सकुचत 'व्यास' स्वामिनी संग ।।७२९।।

राग गौरी

भोर किसोर चोर लौं सकुचत, फूले अंग न मात ।
चोरी फबी न थोरी, चारी करत तुम्हारे गात ।।
नैन भरे सुख, चोर सैन दै, कहत गुपति की बात ।
सनमुख पाँइनि परत डरत कत, सुख हू में पछतात ।।
भागु रावरो कपट करत हू, महँगे मोल बिकात ।
सुनत अनादर हँसत जात, बरबट ही उर लपटात ।।
सर्वसु दान 'व्यास' जैसैं लै, मीन अधीन अघात ।।७३०।।

राग कल्याण

ओली ओढ़ति चोली तो सौं ।
मम हिय पिय के बीच बसत कत, बैर करत बिनु काजहिं मो सौं ।।
अरुन नैन के पलक किये जिहिं, ताहि कहाँ लगि कोसौं ।
पारति बीच 'व्यास' के प्रभु सौं, ता पापिनि की नारि मसोसौं ।।७३१।।

राग धनाश्री

सर्बसु लूटि छूटि क्यों आये ।
सकुचि न कारी सारी ओढ़ैं, नैन न दुरत दुराये ।।
लटपटी पाग, सटहटे पाँइ परत ही, तुम लखि पाये ।
ना कहुँ दुख दै मुख सनमुख कै, हम कहँ अति दुख लाये ।।
नाक महावर काजर कौ रँग, अस सुरंग रंगाये ।
एक घरी के बिछुरें 'व्यास', त्रास तजि भये पराये ।।७३२

राग देवगंधार

आजु पिय ! राति न तुम कछु सोये ।

कौन भामिनि के भवन जगे हरि, जाके रस - बस मोये
रति - रस उमगि चले नख - सिख अंग, नीरस अधर निचोये
खंडित मंड पीक मुख की छवि, अरुन अलस अति पोये
जावक, पीक, मषी - रस कुमकुम, स्वाद बासना भोये
लटकति सिर पगिया, लट बिगलत, सुंदर स्वाँग सजोये
तन-मन कारे होहिं न गोरे, कोटि बारि जो धोये
खोटी टेव न तजत 'व्यास' प्रभु, मैं कै बार बिगोये

राग सारंग

राख्यौ रंग कौन गोरी सों ।

सुनहु स्याम फवि आइ कितव, तुमहिं लहनौं चोरी सों ॥
चंदन - विंदु ललाट इंदु सम, सिर बंदन रोरी सों ।
अधरनि अंजन - रेख न मेंप, नैन अरुन लेरी सों ॥
भोर किसोर चोर लौं आये, प्रीति करत भोरी सों ।
सौंह करत, चीन्हें पर कछू वसाइ न बरजोरी सों ॥
नील निचोल प्रगट चोली, भूषन चूरा डोरी सों ।
जानति सबै 'व्यास' के स्वामिहिं प्रीति टराटोरी सों ॥

मौंगे रहहु, तुम कहहु जिनि बात ।

सुनहु किसोर चोर तुम खोटे, आये प्रगट प्रभात ॥
सकुचत नख - कुच - अंक दुरावत, नील बसन महँ गात ।
मानौं द्वय राका-निसि ससि गन, घन में मुदित न मात ॥
ता महँ अदभुत छबि उपजति, उर जावक जुत पद लाल ।
मनहुँ सुधा-मधु बरषि मिले रिपु, मति तजि बिधु जलजात ॥
पीक अधर खंडित मषि - मंडित, फूले अंग न मात ।
मानहु विद्रुम मर्कत-मनि मिलि, कनक खचित मुसिकात ॥
लोचन पीक लीक रस - रंजित, अरुन अलस इतरात ।
जनु कुमकुम मकरंद सु रंजित, भ्रमर भ्रमत न अघात ॥
जानत हू मानत नहिं चोरी, ता ऊपर अनखात ।
'व्यास' न करत आस दुख दाता, बरबट उर लपटात ॥

राग कल्याण

आये माई प्रात कहाँ तें नाहु ।
गात चुचात सुरत-रस मोहन, नैननि बहुत उछाह ।
खंडत गंड, अधर मंडित, दर्पन तन धौं बाहु ॥
जैसी प्रभुता दिन-दिन बाढ़ी, कोटिक हाथ बिकाहु ।
या कई सुक्ख, अखिल दुख दै मोहि, पिय अब जिनि तुम लपटाहु ॥
जासों हिलमिलि राति पगे, अब वेगि तहीं तुम जाहु ।
सुनहु 'व्यास' के प्रभु तुम, ऐसौ कीनौ कपट निबाहु ॥७२६॥

मोहन न्याउ कहावत स्याम ।
भोर किसोर चोर लौं आये, जगे कौन के धाम ॥
कितवनि के भैयनि की लैंहु वलैया, हँसनि ललाम ।
सुख देखे बिनु सुख न पाइयै, दुख न रहत सुनि नाम ॥
नख-सिख अंग अनंग संग रति, रंग रचे अभिराम ।
अद्भुत छबि की छटा विलोकत, लोचन मिलत न बाम ॥
महँगे मोल बिकाने पर धन, जोवन-बल बिन दाम ।
'व्यास'हिं है परतीति तुम्हारी, संगति कौ फल काम ॥७२७॥

भयें आये पिय, जिय महँ सकुचात हौ, न सनमुख हू चितवत ।
बारक चूक परी तौ केहा भयौ, अवगुन-
करि, अस्रु न भरि, कत नैननि रितवत ॥
सब अंग रति-रस रँगे लाल, तुम याके-
रस-बस, नहीं जानत रैनि हू बितवत ।
का की आस 'व्यास' के स्वामिहिं टेव परी,
खोटी लोटि पोटि हारे हू जितवत ॥७२८॥

मान-प्रसंग—

राग धनाश्री

ललिता, राधाहिं नैकु मनाइ दै ।
बलि जाउँ नाम तेरे की, पर-दुख में सुखहिं जनाइ दै ॥
नागरि रस-सागर महँ मेरे, अंगनि रंग सनाइ दै ।
मेरे तीन जाचकनि, पाँच पदारथ वेगि गनाइ दै ॥
सुनि हँसि रहसि उरसि लपटानी, मन की बात बनाइ दै ।
'व्यास' स्वामिनी रवि गुन-गति लै, सर्वसु पतिहिं रिझाइ दै ॥७२९

सुखद मुखारविंद बिनु सुंदरि, स्यामहिं लगी चटपटी ।
पिय की बाधा मेटति राधा, छाँड़हि टेव अटपटी ॥
मेरी मिलत बसीठी तेरी, मत्र ही बात लटपटी ।
'व्यास' स्वामिनी सुनत पियहिं मिलि, मेटी बिरह घटपटी ॥७॥

राग कल्याण

मेरौ कह्यौ मानि री भैनी ।
अटकरु पायौ नटनागर कौ, प्रान तूही मृग-नैनी ॥
हिय में पियहिं राखि तू खेलति, कहत पिसुन चल सैनी ।
अंग अंग-रति रंग रचे हौ, सूचति अति मोसों सुख-चैनी ॥
खंडित अधर, गंड पुलकावलि, सकसकाति सुख-गैनी ।
चोली नैकु जु खोली सुंदरि, मनौ मदन की गिरी गुरैनी ॥
दुरत न चोरी कुँवरि किसोरी, कहत और सब झूठी बैनी ।
प्रगट पीक नख-लीक कुचनि जनु, कनक-कमल पर छैनी ॥
बंक बिलोकनि, हँसनि छबीली, सकुच परम सुख दैनी ।
'व्यास' स्वामिनी स्याम - संग जनु, दूध-भात महँ फैनी ॥७॥

राग नट

बल-रस कति बौराबति मान दुरावति मेरौ ।
सुमुखी तुहीं दुख पावत रूसैं, प्रान - रवन बिलपत री तेरौ ।
तेरोई चरन सरन सुंदर कौ, बिरह - सिंधु तरिबे कहँ बेरौ
कामहिं स्यामहिं कठिन परी सखी, तोही तें अब होत निबेरौ ।
हा राधे ! हा प्रान - वल्लभा ! रटतु कुँवर कुंजनि करि फेरौ
'व्यास' स्वामिनी रहसि बिहँसि मिली, रसिक कियौ बिनु दामनि चेरौ ।

राग सारंग

मूरतिवंत मान तेरे उर, फल्यौ कठिन कुच भेष ।
याही तें सुख में दुख के मुख, हँसत न नैन निमेष ॥
प्रान-रवन की तजि परतीति, अनीति बढ़ावत नेष ।
सुभग जामिनी घटनि भामिनी, रति बिनु जानि अलेष ॥
'व्यास' बचन सुनि पियहिं दियौ सुख, बरनत बिथके सेष ॥८॥

राग कल्याण

कठिन हिलग की रीति प्रीति करि, लंपट पै न अघात ।
अति आतुर चातुरता भूलत, प्रीतम कहु अकुलात ॥
परत तेल में माखी मरति, न जानत दुख की बात ।
चंचल चेंटी चाखि राब - रस, प्रान बिसरि लपटात ॥

चंचल मिरिग घंट सुनि, सिर धुनि, बैठि बँधावत गात ।
परत पतंग दीपज्वाला महँ, आरत काहि डरात ॥
चोर, चकोर, मोर, निसि, ससि, घन देखत मैन सिरात ।
सब सों कपट करत अलि, कमलहिं जीवन दै अरुझात ॥
पावत कृपन धनहिं गहि राखत, काहू देत न खात ।
जियत महीरुह सरिता चातिक घन - बूँदनि चुचवात ॥
जा बिनु मीन, जलज नहिं जीवत, दादुर नहिं पछतात ।
'व्यास' वचन सुनि कुँवरि,कुँवर के कंठ लागि मुसकात ॥७४४॥

१०. रथ-यात्रा—

रथ चढ़ आवत गिरिधर लाल† ।
नव दुलहिन बृषभान - नंदिनी, नव दूल्है नँद - लाल ॥
निरखत नयन सिरात मुदित मन, मिटत बिरह की ज्वाल ।
'व्यास' स्वामिनी - कचन - बेली, लपटी स्याम - तमाल ॥७४५॥
तेरोई मान मनावत, रथ चढ़ आये री मदनगोपाल* ।
नव दुलही बृषभान-नंदिनी (नव) दूल्है नंद-कुमार ॥
निरखत नैनन बदन कमल-सुख मिटि है मदन बिरह की ज्वाल ।
'व्यास' स्वामिनी-कंचन-बेली,लिपटी है मानौ स्याम-तमाल ॥७४६

११. विविध रस-वर्णन—

राग धनाश्री (अठताल)

कौन भामिनि त्रिभुवन महँ सुंदरि, राधिका नागरि सों करि सकै सारी ।
रूप - गुन - सील - उदार मुकुट-मनि, आलस-बस किये कुंजविहारी ॥
बायस हंसहिं को पटतरि करै, कंचन काँचहिं अंतर भारी ।
इमिली आमहिं, रावन रामहिं, केसर गेरू, छवि - रुचि न्यारी ॥
काम दुधा गाडरहिं न गायौ, हय रासभ सों उपमा न्यारी ।
मेधा खारी हींग - कपूरहिं, खीर खाँड़ कै सम न सवारी ॥
रवि उदौ ता सरि न अमावस, जामिनि कोटि चंद उजियारी ।
चंपक सैमर से धन, राजा रंकहिं उमग न न्यारी ॥
सुर नर मुनि, हरिदासनि कें सब, नारी हरिदासी नहिं डारी ।
'व्यास' अजू वा जुवति पाँ परसति, गनिका हू तें पति न बिकारी ॥७४७

---

† कीर्तन संग्रह, भाग २, पृष्ठ २६५ से संकलित

* कीर्तन संग्रह भाग १, पृष्ठ २६६ से संकलित

मुख देखत दुख पावत नैन ।
काहू चोट, पीर अति काहू, मो पै कहत बनै न ।।
संपति-बिपति निसि की बिसरी, भोर भई कत ठैन ।
कपट-प्रीति कौ सिद्ध समात न, हृदय सांकरे गैन ।।
निलज सलज सों बैर,घेरु घर-घर हू चलत सुनै न ।
लै उसास पितु पोपि 'व्यास' प्रभु कंठ लगे दै सैन ।।७४८।।

मनौ भई भूषन की सी पट-कुटी ।
बनी विचित्र उतंग तनी तन, देखति करति चट-कुटी ।।
कर गहि चुटी लुटी रति-रन महँ, जहाँ जमुना-तट-कुटी ।
'व्यास' स्वामिनी के आदेस, सुदेस भई व लट-कुटी ।।७४६।।

कह भामिनि, तू फूली फिरति ।
राति जगी नव रंगराय सँग,कतहि दुराव करति तू नागरि अंग-अंग फिरति ।।
नैन - कपोल, अरुन उर नख-छवि, अधरनि रंग कुसम सिर किरनि ।
'व्यास' की स्वामिनि जोवन-मद माती, गज-गामिनि कैसें घेरी घिरति ।।

अधर-सुधा-मद मोहन मोह्यौ ।
भुज-बंधन बँधवाइ पाइ सुख, कुच-गिरिवर भरतार चपि सोह्यौ ।।
खर नख-रेख, सुरेख गंड छबि, खंडित दसन बसन रति मानत ।
गुरु नितंब अँग हन आनंदित, कच करसत हरपत हँसि जानत ।।
खनी कौ रति-रोष रवल कहँ, पोप रहतु अरु हरन मान कौ ।
'व्यास' काम गति बाम स्याम हू, तृपति न राधा सुरत दान कौ ।।

राग गौरी

लागी री मोहि तालाबेली ।
स्याम काम-बस बिलपत बन-बन फिरत हैं, अरु राधिका अकेली ।
नैन चटपटी प्रीतम बिछुरैं, कहा करौं तन छुटत नाहिनैं सहेली
सुनत'व्यास'की स्वामिनि पिय सों,हियौ मिलावति,सुरत-सिंधु मैं खेलत भै

राति अकेलैं नींद न आवति ।
सुनि सखी, हौं पिय सौं कत रूसी, पावस चितहिं चलावति ।।
बोलन लागे मोर - पपीहा, कोयल काम बढ़ावति ।
घन घोरत चित चोरत, कामिनि-दूती चमकि मनावति ।।
लै करि अपने साथ नैक महँ, सूनी सेज न भावति ।
प्रीतम बिछुरैं कौ दुख तेरे मुख की छबि बिसरावति ।।
बोल बँधान भयौ, मिलि पौढ़त, उर सों उर लपटावति ।
कुच बिनु सकुच न आनि'व्यास' की,स्वामिनि अति सुख पावति

राग कल्याण

रूसत हू तूषत दोऊ मन-मन ।
मैन भ्रिवम सैननि दै बिहसत, बैन सुहात न कन-कन ।
नीबी छोरि निहोरति गोरी, मूँदि स्रवन कहै जन-जन ॥
गौर चरन हिय धरि पिय समुझि, बजावत किंकिनि खन-खन ।
ओलि पसारि खोलि चोली, दुख मेंटत भेटत थन-थन ॥
जमुना पावस ऋतु हित करि, दामिनि सों मिलि घन-घन
सुरति - सिंधु पोष्यौ मोहन-मुनि, कीनौ जप-तप बन-बन ॥७५४

राग रामकली

सदा बन बरषत साँवल मेहु री ।
अरु दामिनि कौंधति दुहुँ दिसि, निसि टूटे जुरत सनेहु री ॥
घूम-घुमरि नान्हीं बूँदनि लागत, अति जुड़ात तहँ देहु री ।
दादुर, मोर, पपीहा बोलत, डोलत छाँड़ैं गेहु री ॥
डारत धरनि महँ बूढ़नि रैंगति, निरखत रहत न तेहु री ।
'व्यास' आस सब ही की पूजी, जीवन कौ फल लेहु री ॥७५५।

राग कल्याण

कान लागि सुनहि सखी, तौ कहौं भले की बात ।
हानि कानि दोऊ न रहति री, पाँचनि में पछितात ॥
नैकु अँगुरिया परसत साधु, कुम्हड़े लौं मरि जात ।
सुनत मिले मुँह चार कनभरा, फूले अंग न मात ॥
नाहिन लाज सकुच डर अपने, गुरुहिं दुरायै खात ।
कहा छारि भरि भागनि वै सों, दूध पीयत अघात ॥
सुनत सखी लै उसर कुंज गई, सुंदरि अति अकुलात ।
'व्यास' आस तजि मिलत कपोलनि, चुंबन दै लपटात ॥७५६॥

राग धट व आसावरी

स्यामा-स्याम भलैया लैहौं । दुख-सुख तजि बृंदावन रैहौं ॥
अति पावन जमुना-जल न्हैहौं । ब्रजबासिन की जूठनि खैहौं ॥
बंसीवट की छैयाँ रैहौं । कुंजनि छाँड़ि अनत नहिं जैहौं ॥
श्री राधा रूसी वेगि मनैहौं । क्रीड़ा-रस पीवत न अघैहौं ॥
सुंदर नाम स्याम गुन गैहौं । 'व्यास'कहत रासहिं मन दैहौं ॥७५७

पंचम परिच्छेद

रास पंचाध्यायी

★

छंद त्रिपदी

सरद सुहाई आई राति । दस दिसि फूलि रही बन-जाति ।
देखि स्याम - मन सुख भयौ ।।
ससि - गो - मंडित जमनाकूल । बरषत बिटप सदा फल-फूल ।
त्रिविधि पवन दुख - दवन है ।।
राधा - रवन बजायौ बैन । सुनि धुनि गोपिन उपज्यो मैन ।
जहाँ - तहाँ तें उठि चलीं ।।
चलत न दीनौ काहु जनाव । हरि प्यारे सौं बाढ़यौ भाव ।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ।।१
घरु-डरु बिसरयौ बढ़यौ उछाहु । मनचित्यौ पायौ हरि नाहु ।
ब्रज - नाइक लाइक सुन्यौ ।।
दूध पूत की छाँड़ी आस । गो, धन, भरता किये निरास ।
साँच्यौ हित हरि सौं कियौ ।।
खान-पान तन की न सँभार । हिलग छुड़ाई गृह - व्यौहार ।
सुधि - बुधि मोहन हरि लई ।।
अंजन - मंजन अंग - सिंगार । पट - भूषन, सिर छूटे बार ।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ।।२
एक दुहावत तें उठि भगी । और चली सोवत तें जगी ।
उत्कंठा हरि सौं बढ़ी ।।
उफनत दूध न धरयौ उतारि । सीझी थुली चूल्हैंहि डारि ।
पुरुष तज्यौ जेंवत हु तें ।।
पय प्यावत बालक धरि चली । पति-सेवा कछु करी अनभली ।
धरयौ रह्यौ भोजन भलौ ।।
तेल उबटनौ न्हैबौ भूल । भागनि पाई जीवन - मूल ।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ।।३
अंजत एक नैन बिसरयौ । कटि कंचुकि लहँगा उर धरयौ ।
हार लपेट्यौ चरन सौं ।।
स्रवननि पहिरे उलटे तार । तिरनी पर चौकी सिंगार ।
चतुर चतुरता हरि लई ।

जाकौ मन मोहन हरि लियौ। ताकौ काहू कछु न कियौ।
ज्यौं पति सौं तिय रति करै॥
स्यामहिं सूचित मुरली-नाद। सुनि धुनि छूटे विषय सवाद।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥४॥

मात, पिता, पति रोकी आनि। सही न पिय-दरसन की हानि।
सब ही कौं अपमानिकैं॥
जाकौ मन जासौं अटक्यौ। रहै न छिन ता बिनु हटक्यौ।
कठिन प्रीति कौ फंद है॥
जैसैं सलिता सिंधुहिं भजै। कोटिक गिरि भेदत नहिं लजै।
तैसी गति इनकी भई॥
एक जु घर तें निकसी नहीं। हरि करुना करि आये तहीं।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥५॥

नीरस कवि न कहै रस-रीति। रसिकहिं लीला-रस परतीति।
यह सुख सुक-मति जानिवौ॥
ब्रज-बनिता आईं पिय पास। चितवति सैननि भ्रूकुटि-बिलास।
हरि बूझी हरि मानि दै॥
नीकैं आईं मारग माँझ। कुल की नारि न निकसैं साँझ।
कहा कहौं, तुम लोग्य हौ॥
ब्रज की कुसल कहौ बड़भाग। क्यों तुम आईं सुभग सुहाग।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥६॥

अजहूँ फिरि अपने गृह जाहु। परमेस्वर करि मानौ नाहु।
बन में बसिवौ निसि नहीं॥
बृंदाबन तुम देख्यौ आइ। सुखद कमोदनि प्रफुलित जाइ।
जमुनाजल-सीकर घने॥
घर में जुवती धर्महिं फबै। ता बिनु सुत-पति दुखित जु सबै।
यह रचना बिधिना रची॥
भरता की सेवा सुख-सार। कपट तजैं छूटै संसार।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥७॥

बृद्ध, अभागौ जो पति होइ। मूरख, रोगी तजै न जोइ।
पतित अकेलौ छाँड़िये॥
तजि भरता रहि जारहिं लीन। ऐसी नारि न होइ कुलीन।
जस बिहूँन नर्कहिं परै॥

बहुत कहा समझाऊँ आज। मोहू गृह कछु करनौ काज।
तुम तें को अति जानि है ॥
पिय के बचन सुनत दुख पाइ। व्याकुल धरनि गिरीं मुरझाइ।
रास-रसिक-गुन गाइहौं ॥८
दारुन चिंता बढ़ी न थोर। क्रूर बचन कहे नंद-किसोर।
और सरन सूझै नहीं ॥
रुदन करत नदी बड़ी गँभीर। हरि-करिया बिनु को जानै पीर।
कुच-तुंबिनु अवलंब दै ॥
तुम हरि बहुत हुती पिय आस। बिन अपराधहिं करत निरास।
कितव रुखाई छाँड़ि दै ॥
निठुर बचन बोलहु जिनि नाथ। निज दासी जिनि करहु अनाथ।
रास-रसिक-गुन गाइहौं ॥९
मुख देखत सुख पावत नैन। स्रवन सिरात सुनत कल बैन।
तव चितवन सरबस हर्‌यौ ॥
मंद हँसनि उपजायौ काम। अधर-सुधा दै करि बिस्राम।
बरषि सींच बिरहानलै ॥
जब तें पिय देखे ये पाँइ। तब तें हमैं न और सुहाइ।
कहाँ करैं ब्रज जाइकैं ॥
सजन-कुटुंब-गुरु रही न कानि। तुम बिमुखैं पिय आतम-हानि।
रास-रसिक-गुन गाइहौं ॥१०
तुम हमकौं उपदेसौ धर्म। ताकौ हम जानत नहिं मर्म।
हम अबला मतिहीन सब ॥
दुखदाता सुत, पति, गृह, बंधु। तुम्हरी कृपा बिनु सब जग अंधु।
तुम सौ प्रीतम और को ॥
तुम सों प्रीति करहिं ते धीर। तिनहिं न लोक-बेद की पीर।
पाप-पुन्य तिनकैं नहीं ॥
आसा पासि बँधीं हम लाल! तुम बिमुखे ह्वै हैं बेहाल।
रास-रसिक-गुन गाइहौं ॥११
बेनु बजाइ बुलाईं नार। सिर धरि आईं कुल की गार।
मन-मधुकर लंपट भयौ ॥
सोई सुंदर चतुर सुजान। आरजपथ तजै सुनि[1] गान।
तो देखत पुरुषौ लजै ॥

[1] सुनि (च, छ), सुनि (ग)

बहुत कहा बरनैं यह रूप। और न त्रिभुवन तरुन अनूप।
बलिहारी जा रूप की ॥
सुन मोहन, विनती दै कान। अपयश है कीनौ अपमान।
रास - रसिक – गुन गाइहौ ॥१२।
बिरद तुम्हारो दीन-दयाल। कुच पर कर धर,करि प्रतिपाल।
भुज दंडनि खंडहु बिथा ॥
जैसैं गुनी दिखावहि कला। कृपन करै नहिं हलहू भला।
सदय हृदय हम पर करहु ॥
ब्रज की लाज बड़ाई तोहि। सुख पुजवत आई सब सोहि।
तुमहीं हमरी गति सदा ॥
दीन बचन जुवतिन तब कहे। सुनि हरि नैनन नीर जु बहे।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ॥१३।
हरि बोले हँसि ओली ओड़ि। कर जोरे प्रभुता सब छोड़ि।
हौं असाधु, तुम साधु हौ ॥
मो कारन तुम भईं निसंक। लोक–बेद बपुरा कौ रंक।
सिंघ–सरन जंबुक ग्रसै ॥
बिनु दामन हौं लीनौ मोल। करत निरादर भई न लोल।
आवहु हिलिमिल खेलियै ॥
मिल जुवतिन घेरे ब्रजराज। मनहुँ निसाकर किरन-समाज।
रास–रसिक–गुन गाइहौं ॥१४।
हरिमुख देखत फूले नैन। उर उमगे कछु कहत न बैन।
स्यामहिं गावत काम - बस ॥
हँसत हँसावत कर उपहास। मन में कहत करौ अब रास।
गहि अंचल चंचल चलौ ॥
लायौ कोमल पुलिन मँझार। नख-सिख नटवर अंग सिंगार।
पट–भूषन जुवतिन सजे ॥
कुच परसत पुजईं सब साध। सुख-सागर मन बढ़यौ अगाध।
रास - रसिक - गुन गाइहौ ॥१५।
रस में बिरस जु अंतरधान। गोपिन कें उपजौ अभिमान।
बिरह - कथा में और सुख ॥
द्वादस कोस रास परमान। ताकौ कैसें होत बखान।
आस - पास जमुना झिली ॥

ता महिं मानसरोवर ताल। कमल विमलजलपरम रसाल ॥
खग-मृग सेवैं सुख भरे ॥
निकट कलपतरु वंसीवटा। श्री राधा रति-गृह-कुंजनि-अटा।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ॥
नव कुंकुम जल बरसत जहाँ। उड़त कपूर - धूरि जहँ तहाँ।
और फूल - फल को गनै ॥
तहाँ स्यामघन रास जु रच्यौ। मर्कतमनि कंचन मों खच्यो।
सोभा कहत न आवही ॥
जोरि मंडली जुवतिनि बनी। द्वै-द्वै बीच आपु हरि धनी।
अदभुत कौतुक प्रगट कियौ ॥
घूंघट मुकट विराजत सिरन। ससि चमकत मनौ कौतिक किरन।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ॥
मनि-कुंडल तार्टंक बिलोल। बिहँसति सज्जित* ललित कपोल।
नकवेसरि नासा बनी ॥
कंठसिरी गजमोतिन - हार। चचर चुरी किंकिनि झनकार।
चौकी दमकै उरजन लगी ॥
कौस्तुभमनि तें पोतिन जोति। दामिन हू तें दसननि दोति।
सरस अधर पल्लव बने ॥
चिबुक मध्य अति साँवल बिंदु। सबनि देखि रीझे गोविंद।
रास-रसिक-गुन गाइहौं ॥
नील कंचुकी मौंडन लाल। भुजन नवैया उर बनमाल।
पीत पिछौरी स्याम-तन ॥
सुंदर मुदरी, पहुंची पानि। कटि-तट कछनी, किंकिन बानि।
गुरु नितंब बैनी रुरै ॥
तारामंडल सूथन जवन। पादनि पैजनि नूपुर सघन।
नखनि महावर खुलि रह्यौ ॥
श्री राधा-मोहन मंडल माँझ। मनहुँ बिराजत संध्या साँझ।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ॥
सघन विमान गगन भरि रह्यौ। कौतिक देखन जग उमह्यौ।
नैन सफल सब ही के भये ॥
बाजत देवलोक निसान। बरसत कुसुम, करत सुर गान।
सुर - किंनर जै धुनि करैं ॥

---

* सज्जित (च, छ), लज्जित (ग)

कुंजबिहारी विहरत देखि। जीवन जनम सफल कर लेखि।
यह सुख हम कों है कहाँ॥
श्री बृंदावन हम तें दूरि। कैसें कर उड़ि लागै धूरि।
रास-रसिक-गुन गाइहाँ॥

धुनि कोलाहल दस दिसि जाति। कलप समान भई सुख राति।
जीव - जंत मैमंत सब॥
उलटि बह्यौ जमुना कौ नीर। बालक-बच्छ न पीवत खीर।
राधा - रवन ठगे सबै॥
गिरिवर तरवर पुलकित गात। गोधन-थन तें दूध चुचात।
सुन खग-मृग मुनिव्रत धर्‌यौ॥
फूली मही, फूल्यौ गति पौन। सोवत ग्वाल तजत नहिं भौन।
रास - रसिक - गुन गाइहों॥

राग - रागिनी मूरतिवंत। दूलह - दुलहिन सरद - बसत।
कोक-कला संगीत - गुरु॥
सप्त सुरनि की जाति अनेक। नीकैं मिलवनि राधा एक।
मन मोह्यौ हरि कौ सुघर॥
छंद ध्रुवनि के भेद अपार। नाँचत कुँवरि मिलैं झपतार।
सबै कह्यौ संगीत में॥
सरस सुमति धुनि उघटत सब्द। पिक न रिझावत गावत सुपद।
रास - रसिक - गुन गाइहों॥

स्त्रमित भई टेकत पिय-अंस। चलत सुलप मोहे गज-हंस।
तान-मान मुनि - मृग थके॥
चंदन चर्चित गोरी बाहु। लेत सुवास पुलकि तन नाहु।
दै चुंबन हरि-सुख लह्यौ॥
साँवल - गौर कपोल सुचारु। रीझ परस्पर खात उगारु।
एक प्रान, द्वै देह हैं॥
नाँचत,गावत गुन की खानि। राखत पियहिं कुचनि बिच आनि।
रास - रसिक - गुन गाइहौं॥

अलि गावत, पिक नादहिं देत। मोर-चकोर फिरत सँग हेत।
वनऽरु जुन्हाई है मनौं॥
कुच,कच,चिकुर परसि हँसि स्याम। भौंह चलत नैननि अभिराम।
अंगनि कोटि अनंग-छबि

हस्तक भेद ललित गति लई। पट-भूषन तन की सुधि गई।
कच बिगलित बाला गिरी॥
हरि करुना करि लई उठाइ। स्रम-कन पोंछत कंठ लगाइ।
रास - रसिक - गुन गाइहौं॥२८॥

तिनहिं लिवाय जमुन-तट गयौ। दूर कियौ स्रम अति सुख भयौ।
जल में खेलत रँग रह्यौ॥
जैसें मद - गज कूल विदार। ऐसें खेल्यौ सँग लै नार।
संक न काहू की करी॥
ऐसें लोक-वेद की मैंड़। तोरि कुँवर खेलै करि ऐंड़।
मन में धरी फबी सबै॥
जल-थल क्रीड़त ब्रीड़त नहीं। तिनकी लीला न परत कही।
रास - रसिक - गुन गाइहौं॥२९॥

कह्यौ भागवत सुक अनुराग। कैसें समुझैं बिनु बड़भाग।
श्री गुरु सुकल कृपा करी॥
'व्यास' आस करि बरनौं रास। चाहत हौं बृंदावन - बास।
करि राधे, इतनी कृपा॥
निजु दासी अपनी करि मोहिं। नित प्रति स्यामा सेऊँ तोहिं।
नव निकुंज सुख - पुंज में॥
हरिबंसी, हरिदासी जहाँ। मोहिं करुना करि राखौ तहाँ।
नित्य विहार अधार है॥
कहत सुनत बाढ़ै रस - रीति। स्रोतहिं - बक्तहिं हरि-पद-प्रीति।
रास - रसिक - गुन गाइहौं॥३०॥

षष्ठ परिच्छेद

साखी

*

१. गुरु-स्मरण— दोहा

हरि - हीरा गुरु - जौहरी, 'व्यास'हिं दियौ बताय ।
तन - मन आनँद - सुख मिलै, नाम लेत दुख जाय ॥ १ ॥
आदि, अंत अरु मध्य में, गहि रसिकन की रीति ।
मंत सबै गुरुदेव हैं, 'व्यास'हिं यह परतीति ॥ २ ॥
'व्यास' भलौ अवसर मिल्यौ, यह तनु गुरु मुख पाय ।
फिरि पाछैं पछितायगौ, चौरासी में जाय ॥ ३ ॥

२. युगल चरण ध्यान—

'व्यासदास' से पतित मों, भृगु कौ पलटौ लेहु ।
उन उर दीनौ एक पग, तुम ये दोऊ देहु ॥ ४ ॥
जुगल चरन हिय ना धरे, मिले न संतन दौरि ।
'व्यासदास' तें जगत में, परत पराई पौरि ॥ ५ ॥

३. संत-प्रशंसा—

सती, सूरमा, संतजन, इन समान नहिं और ।
अगम पंथ कों पग धरैं, फिरैं न पावैं ठौर ॥ ६ ॥
'व्यास' भक्ति कौ बन घनौ, संत लगे फल-फूल ।
पत्रनि-पत्रनि जल भिद्यौ, तरुवर साखा - मूल ॥ ७ ॥
'व्यास' न कबहूँ उपजिहै, बिपियन कें अनुराग ।
साधु-चरन - रज - पान बिनु, मिटै न उर कौ दाग ॥ ८ ॥
साधुन की सेवा कियें, हरि पावत संतोप ।
साधु-बिमुख जे हरि भजैं, 'व्यास' बढ़ै दिन रोप ॥ ९ ॥
हौं बलिहारी भक्त की, करयौ बहुत उपकार ।
हरि सौ धन हिरदय धरयौ, छुड़ा दियौ संसार ॥१०॥
'व्यास' भक्त कें जाइयै, देखत गुन कौ हेत ।
सूरा ह्वै तौ उठि मिलै, नातर हारै खेत ॥११॥
'व्यास' बसेरौ कुंज में, बंसीवट की छाँह ।
हरि-भक्तन कौ आसरौ, राधा-बर की बाँह ॥१२॥

'व्यास' सु रसिकन की रहनि, बहुत कठिन है बीर।
मन आनंद घटै न छिन, सहत जगत की पीर ॥१३॥
'व्यास' जगत में रसिक जन, जैसें द्रुम पर चंद।
सत्त - चित्त - आनंदमय, भेद न जानत मंद ॥१४॥
रसिक कहैं सोई भली, बुरी न मानौ लेस।
पद - रज लै सिर पर धरौ, यह 'व्यासै' उपदेस ॥१५॥
'व्यास' कठिन कलि-काल है, नाम-रूप अवगाहि।
मिलि रसिकन सों निरंतर, नर - तन - हीरा पाहि ॥१६॥
'व्यास' बड़ाई और की, मेरे मन धिक्कार।
रसिकन की गारी भली, यह मेरौ सिंगार ॥१७॥
'व्यास' रसिक या सों कहै, काटै माया - फंद।
हरि-जन सों हिलमिल रहै, कबहू व्यापै न द्वंद ॥१८॥

जन-महिमा—

'व्यासदास' हरिजन बड़े, जिनकौ हृदय गँभीर।
अपनौ सुख चाहत नहीं, हरत पराई पीर ॥१९॥
'व्यास' जाति तजि भक्ति कर, कहत भागवत टेरि।
जातिहिं भक्तिहिं ना बनै, ज्यों केरा ढिग बेरि ॥२०॥
बृंदाबन के स्वपच कौ, रहियै सेवक होय।
तासों भेद न कीजियै, पीजै पद - रज धोय ॥२१॥
'व्यास' सुपच बहु तरि गए, एक नाम लवलीन।
चढ़ नाव अभिमान की, बूड़े कोटि कुलीन ॥२२॥
'व्यास' कुलीननि कोटि मिलि, पंडित लाख-पचीस।
स्वपच भक्त की पानहीं, तुलैं न तिनके सीस ॥२३॥
'व्यास' रसिक जन ते बड़े, ब्रज तजि अनत न जाँय।
बृंदाबन के स्वपच लौं, जूठनि मागैं खाँय ॥२४॥
'व्यास' मिठाई बिप्र की, तामें लागै आग।
बृंदाबन के स्वपच की, जूठनि खैयै माँग ॥२५॥
'व्यास'हिं बाह्मन जिन गनौ, हरि-भक्तन कौ दास।
राधावल्लभ कारनैं, सह्यौ जगत - उपहास ॥२६॥
मुहरैं-मेवा अनत के, मिथ्या भोग - बिलास।
बृंदाबन के स्वपच की, जूठनि खैयै 'व्यास' ॥२७॥
'व्यास' बड़ाई छाँड़ि कै, हरि-चरनन चित जोरि।
एक भक्त रैदास पर, वारौं बाह्मन कोरि ॥२८॥

बृंदावन कौ चूहरौ, वेचि खात है सूप ।
ताकी सरवर ना करै, आन गाँव कौ भूप ।।२६।।

हरि-जन आवत देखिकैं, फूलैं अंग न मात ।
तन-मन लै आगैं मिलै, हिलमिल हरि-गुन गात ।।३०।।

'व्यास' बड़े हरि के जना, जिनके उर कछु नाहिं ।
त्रिभुवन - पति जिनके सुबस, और कहाँ किहिं माहिं ।।३१।।

'व्यास' बड़े हरि के जना, जिन के हरि आधार ।
निसि - दिन ते माते रहैं, पियैं प्रेम चित धार ।।३२।।

'व्यास' बड़े हरि के जना, जिनकें हरि आधार ।
निसि-दिन हरि के भजन में, घटत न कबहू प्यार ।।३३।।

'व्यास' बड़े हरि के जना, जिनकौ हरि सौं मित्त ।
निसि - दिन ते माते रहैं, सदा प्रफुल्लित चित्त ।।३४।।

'व्यास' बड़े हरि के जना, सदा रहत भरपूर ।
खात - खवावत घटत नहिं, ज्यों समुद्र के पूर ।।३५।।

'व्यास' बड़े हरि के जना, हरि कों अरप्यौ आय ।
निसि-दिन अति उल्लास मन, मुख सें हरि-जस गाय ।।३६।।

'व्यास बड़े हरि के जना, हरि-जस में भे लीन ।
तन - मन मनसा हरि बिना, और कछू नहिं कीन ।।३७।।

'व्यास' बड़े हरि के जना, हरिहिं नचावत साथ ।
जिनके हिय में बसत है, तीन लोक कौ नाथ ।।३८।।

५. दीनता-गौरव—

'व्यास' दीनता पारसै, नहिं जानत जग अंध ।
दीन भये तें मिलत हैं, दीनबंधु से बंध ।।३६

'व्यास' दीनता के सुखहिं, कह जानैं जग मंद ।
दीन भये तें मिलत हैं, दीनबंधु सुख - कंद ।।४०।।

६. दृढ़ विश्वास—

कोटि ब्रह्म ऐस्वर्जता, वैभव ताकी वार ।
'व्यासदास' की कुँवरि कों, अब को सकै निहार ।।४१।।

काहू कें बल भजन कौ, काहू कें आचार ।
'व्यास' भरोसे कुँवरि के, सोवत पाईं पसार ४२

य-व्रत—

श्री राधा-वर ध्याय कें, और ध्याइयै कौन ।
'व्यास'हिं देन बनै नहीं, वरी - बरी प्रति लौन ॥४३॥
'व्यास'हिं अब जिन जानियौ, लोक-बेद कौ दास ।
राधावल्लभ उर बसे, औरनि ते जु उदास ॥४४॥
'व्यास' एक ही बात गहि, राधावल्लभ - धाम ।
और अनेक सु भक्त सों, मेरौ नाहिंन काम ॥४५॥
आन धर्म में मिल करैं, श्री हरि - भजन समान ।
जैसें रतन अमोल कर, जानत नहीं अजान ॥४६॥
कर्म करैं भव तरन कों, उलटे पर भव माहिं ।
पैड़े 'व्यास' अनन्य कौ, जो पै जान्यौ नाहिं ॥४७॥
बेद - पुराननि हू पढ़ैं, करैं सुकर्म सँजोय ।
'व्यास' सु जन्म अनन्य विन,एकौ गति नहिं होय ॥४८॥
सब तजि भजियै स्याम कों,स्रु ति-सु मृति कौ सार ।
'व्यास' प्रगट भागौत में, भृगु कीनौ निरधार ॥४९॥

की एकाग्रता—

भाव - भक्ति बिनु चौहटौ, जहाँ भक्ति तहँ दोइ ।
'व्यास' एकता तब लखै, जबै एक चित होइ ॥५०॥
मन जो चरनन तर बसै, तन जो अनतहिं जाय ।
तनु चरनन मन अनत ही,ताहि न 'व्यास' पत्याय ॥५१॥
जो हरि चरनलि चित रहै, तन जु कहौ किनि जाहु ।
तनु चरननि मन अनत हीं,ताहि न 'व्यास' पत्याहु ॥५२॥
'व्यास' जु मन चरनन लगै, तन के लगैं न काज ।
मन-तन करि सब तजि भजै, ताहि प्रेम की लाज ॥५३॥

-भाव—

प्रेम अननु या जगत में, जानैं बिरला कोय ।
'व्यास' मतनु क्यों परसिहै, पचि हारयौ जग रोय ॥५४॥
'व्यास' भाव बिनु भक्ति नहिं,नहीं भक्ति बिनु प्रेम ।
झूठी बातन कहकहै, क्यों सु कहावै हेम ॥५५॥
सो मन अटक्यौ स्याम सों, गढ़यौ रूप में जाय ।
चहलं परि निकसै नहीं, मनौ दूवरी गाय ॥५६॥
मोह मुख्य या जगत में, सो कहुँ दैयत नाहिं ।
काम प्रेम के कहन कों, रसना उठति कुकाहिं ५७

१०. कहनी-करनी—

'व्यास' न कथनी काम की, करनी है इक सार।
भक्ति बिना पंडित वृथा, ज्यों खर चंदन-भार॥ ५८।
'व्यास' विदित चतुराइयनि, उपदेस्यौ संसार।
करनी-नाउ चढ़े बिना, क्यों करि पावै पार॥ ५९।
'व्यास' विवेकी संत जन, कहनि-रहनि में एक।
कहनि कहै, करनी करै, ज्यों पाथर की रेक॥ ६०।
'व्यास' बचन मीठे कहै, खरबूजा की भाँति।
ऊपर देखौ एक सौ, भीतर तीन्यों पाँति॥ ६१।
मुख मीठी बातैं कहै, हिरदै निपट कठोर।
'व्यास' कहौ क्यों पाइहै, नागर नंद-किसोर॥ ६२।
वैर करै हरि-भक्त सों, मित्र करै संसार।
भक्त कहावै आप ते, मिटै न जम कौ द्वार॥ ६३।
'व्यास' भागवत जो सुनै, जाके तन-मन स्यास।
वक्ता सोई जानियै, जाके लोभ न काम॥ ६४।

११. प्रसादोत्कृष्टता—

स्वान प्रसादै छुइ गयौ, कौवा गयौ बिटारि।
दोऊ पावन 'व्यास' के, कहु भागौत बिचारि॥६५।
करैं व्रत्त एकादसी, हरि-प्रसाद तें दूर।
बाँधे जमपुर जायँगे, मुख में परिहै धूरि॥ ६६।

१२. नाम-गुण-गान—

जिनके मुख्य गोपाल जी, पावन हरिगुन-गीत।
तिनकों जुग-जुग जानियौ, 'व्यासदास' के मीत॥ ६७।
'व्यास' नाम सम नाम है, नाम समान न कोय।
नामी ते प्रगट्यौ विदित, तदपि गरुवौ होय॥ ६८।
'व्यास' निरंतर भजन करि, वा निष्काम, सकाम।
हाँसी साचे क्रोध करि, बटुक बीज हरि-नाम॥ ६९।
'व्यास' विभौ के मीत सब, अंत काल कोउ नाँहि।
ता तें तुम हरि कों भजौ, जम न गहैंगे बाँहि॥ ७०।

१३. भक्ति-उपदेश—

जम की मार बुरी यहै, छुटै न और उपाय।
दृढ़ करिकै हरि-भक्त ह्वै, तब हरि-भक्ति सहाय॥ ७१।
खाइ, सोइ, सुख मानिकै, हरि-चरनन चित लाँय।
'व्यास' दास तेई बड़े, जे बैकुंठै जाँय। ७२

हरि - हीरा निर्मोल है, निर्धन गाहक 'व्यास'।
ऊँचौ फल क्यों बावनहिं, चौंप करत उपहास ॥ ७३ ॥
'व्यासदास' की भक्ति में, नीरस करै उपाव।
ज्यौं सिंहिन के चेंटुवन, दावन कहत* बिलाव ॥ ७४ ॥
'व्यास' भक्ति सहगामिनी, टेरैं कहत पुकारि।
लोक-लाज तब ही गई, बैठी मूड़ उघारि ॥ ७५ ॥
देखा-देखी भक्ति कौ, 'व्यास' न होत निवाह।
कुल-कन्या की हौस कैं, गनिका करत बिवाह ॥ ७६ ॥
नर-देही द्वारौ खुल्यौ, हरि पावन की घात।
'व्यास' फेरि नहिं लगतु है, तरुवर टूट्यौ पात ॥ ७७ ॥
श्री हरि-भक्ति न जानहीं, माया ही सों हेत।
जीवत ह्वै है पातकी, मरिकै ह्वै हैं प्रेत ॥ ७८ ॥

दावन-वास—

'व्यास' भजन करिवौ करौ, भक्तनि सों करि हेत।
यहि मन सों निस्चै करी, बृंदावन सौ खेत ॥ ७९ ॥
कनक, रतन, भूषन, बसन, मिथ्या अनत विलास।
बैटी हाट सिंगारिकै, बस बृंदावन 'व्यास' ॥ ८० ॥
बृंदावन कौ वास करि, छोड़ जगत की आस।
'व्यास' सुरसिकनि हिलमिलैं, ह्वै नव जनम प्रकास ॥८१॥
बृंदावन की द्रुम-लता, रसिकनि की घर-बात।
राधा बिहरत लाड़िली, निरखि 'व्यास' बलि जात ॥८२॥
बृंदावन की माधुरी, रसिकन की घर-बात।
चारु चरन अंकित सदा, निरखि 'व्यास'बलि जात ॥८३॥
नैन न मूंदे ध्यान कौं, किये न अंग - नियास।
नाँचि-गाइ रासहिं मिले, बसि बृंदावन 'व्यास' ॥८४॥

धना—

'व्यास' न साधन सकल सम, हरि-सेवा सम तूल।
पत्रनि-पत्रनि जल भिदै, सींचत तरुवर मूल ॥ ८५ ॥
'व्यास' राधिका-रमन बिनु, कहूँ न पायौ सुक्ख।
द्वारन - द्वारन मैं फिरयौ, पातन-पातन दुक्ख ॥ ८६ ॥
धर्म मिटयौ,अब कृपा करि, दियौ भजन रस-रीति।
रसिक कुँवर दोउ लाड़िले, 'व्यास'हिं बाढ़ी प्रीति ॥८७॥

* की चौरासी में 'दाव न सकत' पाठ है

मेरे मन आधार प्रभु, श्री बृंदावन-चंद।
नित-प्रति यह सुमिरत रहौं, 'व्यास'हिं मन आनंद ॥ ८८ ॥
'व्यास' जु सूरति स्याम की, नख-सिख रही समाय।
ज्यौं महदी के पात में, लाली लखी न जाय ॥ ८९ ॥
'व्यास' बिकाने स्याम-घर, रसिकन कीनौं मोल।
जरी जेवरी ह्वै रहे, काम न आवत भोल ॥ ९० ॥
खरे-खरे सब लेत हैं, परखि पारखी सार।
खोटे 'व्यास' अनन्य के, गाहक नंदकुमार ॥ ९१ ॥
अपने-अपने मत लगे, बादि मचावत सोर।
ज्यौं-त्यौं सब कौ सेवनैं, एकै नंदकिसोर ॥ ९२ ॥
'व्यास' चंद आकास में, जल में आभा मंद।
जलज मंद यह कहत हैं, जो हम सौं यह इंद ॥ ९३ ॥
'व्यास' न व्यापक देखियै, निगुन परै न जान।
तब भक्तन-हित औतरे, राधाबल्लभ आन ॥ ९४ ॥
राधाबल्लभ मूल-फल, और फूल, दल, डार।
'व्यास' इनहिं तें होत हैं, अंस-कला-अवतार ॥ ९५ ॥
राधाबल्लभ स्रुति-सुमृति, सुमिरौं कहौं सु टेरि।
श्री राधा-बर 'व्यास' कें, एक गाँठि सौ फेरि ॥ ९६ ॥
राधाबल्लभ-मधुररस, जा के हिय नहिं 'व्यास'।
मानुष-देही रतन सी, भली बिगारी तास ॥ ९७ ॥
राधाबल्लभ परम धन, 'व्यास'हिं फबि गई लूट।
खरचत हू निघटै नहीं, भरे भँडार अटूट ॥ ९८ ॥
राधाबल्लभ 'व्यास' कौ, इष्ट, मित्र, गुरु, देव।
श्री हरिबंस प्रगट कियौ, कुंज-महल रस-भेव ॥ ९९ ॥

१६. हरिवंश-कृपा—

उपदेस्यौ रसिकनि प्रथम, तब पाये हरिबंस।
जब हरिबंस कृपा करी, मिटे 'व्यास' के संस ॥ १०० ॥
मोह-मया के फंद बहु, 'व्यास'हिं लीनौ घेरि।
श्री हरिबंस कृपा करी, लीनौ मोकौं टेरि ॥ १०१ ॥
'व्यास' आस हरिबंस की, तिन ही के बड़ भाग।
बृंदावन की कुंज में, सदा रहत अनुराग ॥ १०२ ॥
श्री हरिबंस-कृपा बिना, निमिष नहीं कहुँ ठौर।
'व्यासदास' की स्वामिनी, प्रगटी सब सिरमौर १०३

स्वामिनि प्रगटी सुख भयौ, सुर पुहपन बरषाय ।
हित हरिवंस-प्रताप तें, मिले निसान बजाय ॥१०४॥
'व्यास' भक्ति कौ फल लह्यौ, श्री वृंदावन-धूरि ।
हित हरिवंस - प्रताप तें, पाई जीवन-मूरि ॥१०५॥

कुसंग त्याग—

'व्यास' विवेकी भक्त सों, दृढ़ कर कीजै प्रीति ।
अविवेकी कौ संग तजि, यही भक्ति की रीति ॥१०६॥
'व्यास' न ता सों प्रीति करि, जाहि आपनी पीर ।
पर पीरक सों प्रीति करि, दुख सहि मेटै भीर ॥१०७॥
ब्याह - बधाएँ - स्राद्ध में, पतित नृपति ग्रह दान ।
'व्यास' विवेकी भक्त जन, तजत विमुख कौ धान ॥१०८॥

कपट से घृणा—

नामा के कर पय पियौ, खाई ब्रज की छाक ।
'व्यास' कपट हरि ना मिलें, नीरस अपरस पाक ॥१०९॥
'व्यास' रसिक सब चलि बसे, नीरस रहे कुबंस ।
बग-ठग की संगति भई, परि हरि गये जु हंस ॥११०॥
'व्यास' भक्ति की कुबत कहि, गुरु-गोविंदहिं मारि ।
कै या ब्रतहिं निबाहि कै, माला तिलक उतारि ॥१११॥

लोक-प्रतिष्ठा—

'व्यास' बड़ाई लोक की, कूकर की पहिचानि ।
प्रीति करैं मुख चाटहीं, बैर करैं तनु-हानि ॥११२॥

आशा-परित्याग—

'व्यास' आस इत जगत की, उत चाहत हिय स्याम ।
निलज अधम सकुचत नहीं, चाहत है अभिराम ॥११३॥
'व्यास' आस करि माँगिबौ, हरि हू हरिवौ होय ।
बावन ह्वै बलि कैं गये, यह जानै सब कोय ॥११४॥
महाप्रलय अब ही भई, वृंदावन करि बास ।
पर्यौ रहै निश्चिंत मन, छोड़ि जगत की आस ॥११५॥
'व्यास' भक्त घर-घर फिरैं, हरि प्रभु की तजि सर्म ।
पति खोवैं पर घर गयैं, (ज्यौं) पातसाह की हर्म ॥११६॥
'व्यास' आस जौं लगि हिये, तौ जोगी गुरु दास ।
आस बिहूनौ जगत में, जोगी गुरु जग दास ॥११७॥

२१. अभिमान से दूर—

'व्यास' अहंता-ममतु तजि, संतनि प्रभु कों जानि ।
ताही कर गुर हरि भजहु, भक्तन कों मनमानि ॥११८॥
'व्यास'जगत अभिमान सों,नख-सिख उमग्यौ जाय ।
ते नर बृष के भानु लौं, आपुहिं धूर उड़ाय ॥११९॥
'व्यास' बसै बन-खंड में, करै निरंतर ध्यान ।
तिनकों हरि कैसैं मिलैं, भक्तनि सों अभिमान ॥१२०॥

२२. भ्रम-जाल—

'व्यास' न सुख संसार में, जो सिर छत्र फिरात ।
रैन घनो धन देखियत, भोर नहीं ठहरात ॥१२१॥
'व्यास' बिभूका खेत कों, दुक्ख न काहू देय ।
जो निसंक ह्वै जाय, सो वस्तु घनेरी लेय ॥१२२॥

२३. कंचन-कामिनी-प्रभाव—

'व्यास' कनक अरु कामिनी, ये लाँबी तरवारि ।
निकसे हे हरि भजन कों, बीचहिं लीने मारि ॥१२३॥
'व्यास' कनक अरु कामिनी, तजियें, भजियैं दूर ।
हरि सों अंतर पारिहैं, मुख दै जैहैं धूरि ॥१२४॥
'व्यास' पराई कामिनी, लहसनि कैसी बानि ।
भीतर खाई चोरिकैं, बाहिर प्रगटी आनि ॥१२५॥
'व्यास' पराई कामिनी, कारी नागिन जान ।
सूँघति ही मरि जायगौ, गरुड़-मंत्र नहिं मान ॥१२६॥
नारि, नागिनी, बाघिनी, ना कीजे बिस्वास ।
जो या की संगति करै, अंत जु होय बिनास ॥१२७॥
खाइ, सोइ, सुख मानहीं, कामिनि उर लपटाँय ।
'व्यासदास' अचरज कहा, ते जमलोकै जाँय ॥१२८॥
'व्यास' बिषय-बन बढ़ि रह्यौ, नीच-संग जल-धार ।
हरि-कुठार सों प्रीति करि, कटत न लागै बार ॥१२९॥

२४. कुडंब-शिक्षा—

रे भैया हो, व्यास कों, मति कोऊ पछिताय ।
हरि सों हेत न छूटिहै, जित बछरा वित गाय ॥१३०॥
झूठ मसखरी मन लग्यौ, हरि भजिवे कों फेर ।
'व्यासदास' की पौरि तें, भक्ति गई दै टेर ॥१३१॥
तजि कें रसिक अनन्यता, बिधि-निषेध कै घेर ।
' के भवन तें, भक्ति गई दै टेर ।१३२

रसिक अनन्य कहाइकैं, पूजैं गुहा गनेस ।
'व्यास' क्यों न तिनके सदन, जम-गन करैं प्रवेस ॥१३३॥
'व्यास' डगर में परि रहे, सुनि साकत कौ गाँव ।
मनसा - बाचा - कर्मना, पाप महा जो जाँव ॥१३४॥
'व्यास' बाघ मुख भेटियै, सहियै जिय की हानि ।
साकत भक्त न भेटियै, पाछिलियै पहिचानि ॥१३५॥
'व्यास' बिगूचे जे गए, साकत-राँधौ खाँइ ।
जीवन बिष्टा स्वान कौ, मरें नरक में जाँइ ॥१३६॥
'व्यास' जहाँ प्रभु कौ भजन, होते रास-बिलास ।
के कामिनि-बस ह्वै गए, ऊत - पितर के दास ॥१३७॥
साकत भैया सत्रु सम, बेगहिं तजियै 'व्यास' ।
जो वा की संगति करै, करिहै नरक-निवास ॥१३८॥
साकत बामन जिन मिलौ, बैष्नव मिलि चँडाल ।
जाहि मिले सुख पाइयै, मनौ मिले गोपाल ॥१३९॥
साकत बामन मसकरा, महा पतित जग माँझ ।
पिता नपुंसक किन भयौ, माता भई न बाँझ ॥१४०॥
साकत, सूकर, कूकरा, इनकी मति है एक ।
कोटि जतन परबोधियै, तऊ न छोड़ैं टेक ॥१४१॥
साकत स्त्री छाँड़ियै, बेस्या करियै नारि ।
हरि-दासी जो ह्वै रहै, कुलहिं न आवै गारि ॥१४२॥
पूत मूत कौ एक मग, भक्त भयौ सो पूत ।
'व्यास' बहिर्मुख जो भयौ, सो सुत मूत कुमूत ॥१४३॥
नाम जपत कन्या भली, साकत भलौ न पूत ।
छेरी के गल गलथना, जा में दूध न मूत ॥१४४॥
साकत सगौ न भेटियै, इंद्र - कुबेर समान ।
सुंदर गनिका गुन भरी, परसत तनु की हानि ॥१४५॥
साकत सगौ न भेटियै, 'व्यास' सु कंठ लगाय ।
परमारथ लै जाहिगौ, रहै पाप लपटाय ॥१४६॥
'व्यास' भक्त चंदन जहाँ, सो बन सकल सुगंध ।
निकट बाँस - कुल बहिर्मुख, इनमें होइ न गंध ॥१४७॥
'व्यासै' बहुत कृपा करी, दीनी भक्ति अनन्य ।
कुल-कूर सब साँचौ भयौ, जहाँ भयौ उत्पन्य ॥१४८॥

१x परिशिष्ट

संदिग्ध रचनाएँ

★

यहाँ व्यास जी की 'तथाकथित वे रचनाएं दी जाती हैं, जिनको व्यास-वाणी के अंतर्गत स्वीकार करने के लिए प्रमाण अपेक्षित है. जिन कारणों से इन रचनाओं के व्यास जी कृत होने में संदेह उपस्थित किया जा रहा है, वे इनके नीचे प्रकट किये गये हैं।

राग सारंग

आज बधावौ वृषभान कें, अहो बेटी ! धरहु भानमती साँथियें,
बेटी ! गनि-गनि रोपी सींक ।
बेटी ! उदै भयौ तेरे बीर कें, अहो बेटी ! लेहु आपनी लीक ॥
अहो भाबी ! तौ मैं धरिहौं री साँथियें, भाबी ! नेग हमारौ देउ ।
अहो बेटी ! माल तिहारे बाप कौ, बेटी ! जो भावै सो लेउ ॥
अहो भाबी ! भानु चढ़न कौं घौरिला, सकट जु मौज भराइ ।
अहो भाबी ! दासी देहु बहु सुंदरी, भाबी ! पट-भूषन पहिराइ ॥
अहो भाबी ! रतनजटित की घूँघरी, और गले कौ हार ।
अहो भाबी ! लेंहुगी हाथ मूँदरी, अरु मुतियन भरि थार ॥
अहो भाबी ! सौलो तो लेहौं कला कौ, भाबी ! जान-करम गाइ ।
भाबी धन लौं बरषौ हेम-रतन, भाबी बरसाने कौ गाइ ॥
अहो भाबी ! सकल सुबसिनि बंस की, भाबी ! झगरति माँगति आइ ।
अहो भाबी ! भूषन-बसन सबनि कौं दये, मोहि मनभाये मँगाइ ॥
अहो भाबी ! और एक माँगत यहै, भाबी गरीबदास पहिचानि ।
भाबी दासिनि की दासी करौ, भाबी ! व्यासबंस की जानि ॥१॥

अ० भा० श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृंदावन द्वारा प्रकाशित श्री व्यास-वाणी के पृष्ठ ४५२ पर पद संख्या ३६४ तथा आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी, वृंदावन द्वारा प्रकाशित व्यास-वाणी के पृष्ठ ३८६ पर पद संख्या ३६५ में श्री लाड़िली जू की बधाई के अंतर्गत उपर्युक्त बधाई भी दी गई है।

इसके अंतिम दो चरणों से यह बधाई व्यास-वंशी गरीबदास जी की रचित ज्ञात होती है। श्री गरीबदास जी श्री हरिराम जी व्यास के वंश में चौथी पीढ़ी में हुए थे उनका आविर्भाव काल संवत् १७०० के

लगभग माना जा सकता है। उन्होंने श्री लाड़िली जू की अनेक बधाइयाँ लिखी हैं। एक प्राचीन हस्तलिखित वर्षोत्सव में गरीबदास जी कृत जो जन्म-बधाइयाँ उपलब्ध हुई हैं, उनकी शैली से यह और भी स्पष्ट हो जाता है, कि उपरोक्त पद श्री व्यास-वाणी में प्रक्षिप्त हुआ है—

(अ) मंदिर बजै बृषभानु कें।×

कीरति जू हँसि यों कही, 'गरीबदासि' पहिचान।
निज दासिन दासी करौ, व्यास-बंस की जान॥

(इ) ढाढ़िया भानु-बंस कौ बृषभानु द्वार में आयौ रे।
व्यास-बंस कौ जान आपनौं,'गरीबदास'पहिरायौ रे॥

इन उद्धरणों से पता चलता है कि अपने नाम की छाप देने के साथ वे अपने वंश तथा परिवार का स्मरण भी बहुधा कर लेते थे। जिस वर्षोत्सव से यह अंश उद्धृत किये गये हैं, उसमें आलोच्य बधाई— "आज बधावौ बृषभान कें···" भी है और इसी बधाई के ठीक पूर्व गरीबदास जी की ही एक और बधाई है,जो आलोच्य बधाई में वर्णित भाभी के झगड़े की प्रस्तावना का स्वरूप है। उक्त कारणों से यह निश्चित होता है कि आलोच्य पद व्यास जी कृत न होकर गरीबदास कृत है। न जानें प्रकाशित दोनों व्यास-वाणियों में इसे किस आधार पर सम्मिलित किया गया है, जब कि हस्तलिखित प्रतियों में यह पद संगृहीत नहीं है।

राग बसंत (इकताल)

ऋतु बसंत दुलहिन दूलह सँग, खेलत बाढ़्यौ री रंग - निबाहि।
दहँ दिसि फूलनि देखि भयौ सुख, गावत - नाँचत सैननि चाहि॥
बाजत ताल, मृदंग, झाँझि, डफ, देखति सुनि आनंद न चाहि।
केसरि भरि पिचकारिन छिरकत, मोहन धाइ-धाइ गहत राधाहि॥
परिरंभन - चुंबन मिलि बिहरत, सुख - सागर महँ अवगाहि।
करि न्यौछावर बलि-बलि जाइ, तृनु तोरि जोरि कर मधुकर साहि॥२॥

अ० भा० श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृंदावन द्वारा प्रकाशित श्री व्यास-वाणी के पृष्ठ ४२१ पर पद संख्या ३३५ एवं आचार्य श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी, वृंदावन द्वारा प्रकाशित श्री व्यास-वाणी के पृष्ठ ३६२ पर पद संख्या ३३७ में 'बसंत' विषयक यह पद संकलित किया गया है। इसमें एक तो 'व्यास जी' के नाम की छाप नहीं है, जो बहुत ही कम पदों में छूटी है; दूसरे 'मधुकर साहि' का नाम अंतिम चरण में ऐसे प्रसंग के साथ दिया गया है, जिससे यह पद उन्हीं की रचना प्रकट होती है महाराज मधुकर शाह प्रसिद्ध भक्त और व्यास जी के शिष्य

एवं कवि थे। व्यास-वाणी में 'मधुकर शाह' का नामोल्लेख करने वाले अन्य तीन पद और भी उपलब्ध होते हैं, जो इस पुस्तक में संकलित हैं†, किंतु ये तीनों पद व्यासवाणी की प्रयुक्त हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्य हैं।

एक पकौरी सब जग लूट्यौ।
जप, तप, व्रत, संजम करि हारे, नैकु नहीं मन टूट्यौ॥
माया रचित प्रपंच कुटुंबी, मोह-जाल सब छूट्यौ।
'व्यास' गुरु(हित)हरिवंस कृपा तें,बसि बनराज प्रेम-रस लूट्यौ॥३॥

जय-जय श्री हरिवंस, हंस-हंसिनी लीला रति।
जय-जय श्री हरिवंस, भक्ति में जाकी दृढ़ मति॥
जय-जय श्री हरिवंस, रटत श्री राधा-गाधा।
जय-जय श्री हरिवंस, सुमिरि नासै भव-बाधा॥
'व्यास' आस (हित) हरिवंस की, सु जय-जय श्री हरिवंस।
चरन-सरन मोहीं सदा, रसिक प्रसंस-प्रसंस॥४॥

कोटि-कोटि एकादसी, महाप्रसाद को अंस।
'व्यास'हिं यह परतीति है, जिनके गुरु हरिवंस॥५॥

अ० भा० हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृंदावन द्वारा प्रकाशित श्री व्यास-वाणी के पृष्ठ ४३१ पर पद संख्या २०० तथा २०१ पर क्रमशः उपर्युक्त पद संकलित हैं।इसी प्रकाशन में संगृहीत 'साखी' के अंतर्गत उपर्युक्त दोहा सं० २६ का है।

उक्त तीनों रचनाएँ व्यास-वाणी की किसी अन्य प्रयुक्त प्रति में उपलब्ध नहीं हुई। श्री व्यास जी ने अपनी वाणी में श्री हित हरिवंश जी का अनेक स्थलों पर नामोल्लेख कर उनमें आदर भाव भी व्यक्त किया है, किंतु 'गुरु' विशेषण व्यास जी के अन्य पदों में 'सुकल' के लिए पाया गया है। इस कारण उक्त तीसरी और पाँचवीं रचनाएँ यद्यपि भाव और घटना क्रमानुसार व्यास जी जैसी ही हैं, तथापि उनके वास्तविक पाठ का निर्णय अन्य स्थानों पर इन रचनाओं को देखे बिना नहीं किया जा सकता। चौथे उद्धरण को भी लगभग ऐसे ही कारणों से व्यास-वाणी का अंग मानने में कोई निश्चित मत स्थापित करने के लिए प्राचीन सामग्री का अवलोकन वांछनीय है!

---

† (१) भक्ति बिनु केहि अपमान सह्यौ। (पद सं० १६८)
(२) होइब सोई हरि जो करिहै। (पद सं० १०८)
(३) हरि सौं कीजै प्रीति निवाहि (पद सं० २०५)

२५ परिशिष्ट

व्यास-वाणी की अनुक्रमणिका

★

(भ)

साखी की अनुक्रमणिका

३. परिशिष्ट

नामानुक्रमणिका

★

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८	२८	परगट	पंद्रह
२९	२८	से बानपुर में	में बानपुर से
३०	१६	४६	४२
४१	१६	बुधवार	मंगलवार
४९	२८	अनयंता	अनन्यता
४९	३२	बन को	बन री बैकों
८९	२२	1727V.S.	1627V.S
१३१	२९	भक्त	शाक्त
२४०	११	माला मंदिर	माला हरि मंदिर
२३१	१२	बनिक वनिक	बनिक कनिक
३६०	१२	रासोत्व	रासोत्सव
३७७	१	रस	रास